ष्णु पुराण

(प्रथम खण्ड)

(सरल हिन्दी भाष्य सहित)

सम्पादक:

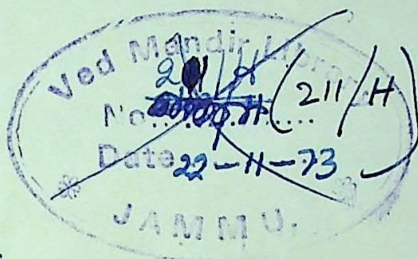
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

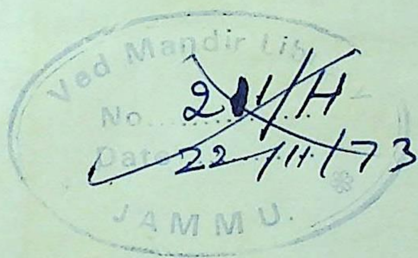
चारों वेद, १०८ उपनिषद्, षट्दर्शन,
२० स्मृतियों और १८ पुराणों
के भाष्यकार

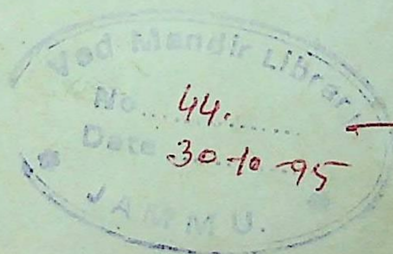
प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान, ख्वाजाकुतुब बरेली (उ०प्र०)


Ved Mandir Library
No. 211/H
Date 22-11-73
JAMMU.

201/H
22·11·73

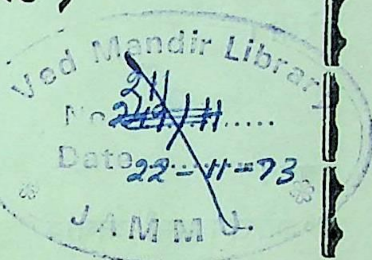

Ved Mandir Library
No. 201/H
Date 22/11/73
JAMMU.


Ved Mandir Library
No. 44.
Date 30-10-95
JAMMU.

201/H
22-11-73

श्रीविष्णु-पुराण

(प्रथम खण्ड)



★

लेखक :

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद्, षट्-दर्शन, २० स्मृतियों
एवं १८ पुराणों के प्रसिद्ध भाष्यकार

★

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब (वेद नगर)

बरेली (उ० प्र०)

प्रकाशक :

डा० चमनलाल गौतम
संस्कृति संस्थान, ख्वाजा कुतुब,
बरेली।

लेखक :

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

सर्वाधिकार सुरक्षित

संशोधित संस्करण :
१९७२

मुद्रक :
हरचरनलाल शर्मा
शान्ति प्रेस, लाल दरवाजा,
मथुरा।

मूल्य :
सात रुपए पचास पैसे

लोक में प्राणियों के हित का साधक हो, महिमान पुरुष मन, वचन, कर्म से उसी का आचरण करे।" (वि० पु० ३—१२)

सत्ता से मदान्ध राजागण—

चौथे अंश में प्राचीन काल के विविध राजवंशों और राजाओं का वृत्तान्त लिखते हुये अन्त में कलियुगी राजाओं का जो वर्णन किया है, वह प्राचीन और अर्वाचीन सभी शासनों के लिये एक उपयोगी चेतावनी है। राजा का धर्म प्रजा का हित साधन और रक्षा करना ही है। जिसको शासक के उच्च पद पर बैठाकर सम्मानित किया जाता है उसके ऊपर एक बहुत बड़े उत्तरदायित्व का भार भी आ जाता है। जो उस उत्तरदायित्व को पूरा करने के लिये अपने सुख, स्वार्थ, लाभ की चिन्ता न करके अपनी समस्त शक्तियों तथा साधनों को जनता के कल्याणार्थ लगा देता है, इस कार्य की पूर्ति के लिये प्राणों को देने में भी संकोच नहीं करता वही सच्चा राजा या शासक कहा जा सकता है। जो इसके विपरीत आचरण करता है, अपने वैभव-विलास की वृद्धि के लिये प्रजा को त्रास देता है, पीड़ित करता है, वह अपने पद को कलङ्कित करने वाला है। ऐसे राजाओं का वर्णन करते हुये पुराणकार कहते हैं—

"इस हेय शरीर के मोह से अन्धे हुये बहुसंख्यक ऐसे भूपतिगण हो गये हैं, जिन्होंने अपने राज्यभूमि से ही ममता की थी।" यह पृथ्वी किस प्रकार अचल भाव से मेरी, मेरे पुत्र की अथवा मेरे वंश की होगी—इसी चिन्ता से व्याकुल हुये इन सब राजाओं का अन्त हो गया। इस प्रकार अपने को जीतने के लिये राजाओं को अथक उद्योग करते देखकर वसुन्धरा शरत्कालीन पुष्पों के रूप में मानो हँस रही है। वह कहती है—

"अहो ! बुद्धिमान होते हुए भी इन राजाओं को यह कैसा मोह हो रहा है, जिसके कारण ये बुलबुले के समान क्षणस्थायी होते हुये भी अपनी स्थिरता में इतना विश्वास रखते हैं। ये लोग पहले अपने घर को ही जीतते हैं, फिर मन्त्रियों को, इसके अनन्तर क्रमशः अपने भृत्यु, पुरवासी एवं शत्रुओं को जीतना चाहते हैं। 'इसी क्रम से हम समुद्र पर्यन्त

सम्पूर्ण पृथिवी को जीत लेंगे, ऐसी बुद्धि से मोहित हुये ये लोग अपनी निकटवर्तिनी मृत्यु को नहीं देखते। यदि समुद्र से घिरा हुआ यह सम्पूर्ण भूमण्डल जीतकर अपने वंश में कर लिया जाय तो भी मनोजय के सामने इसका क्या मूल्य है ? क्योंकि आत्मा का उद्धार तो मनोजय से ही हो सकता है। जिसे छोड़कर इनके पूर्वज चले गये और जिसे साथ लेकर इनके पिता भी नहीं गये, उसी मुझको (पृथिवी को) ये राजा लोग अत्यन्त मूर्खता के कारण जीत लेना चाहते हैं। जिनके चित्त में लोभ समाया हुआ है, उन पिता, पुत्र और भाइयों में अत्यन्त मोहान्धता के कारण पृथिवी के लिये ही परस्पर कलह होता है। जो-जो राजा लोग यहाँ हो चुके हैं, उन सभी की ऐसी कुबुद्धि रही है कि यह पृथ्वी मेरी है—यह सारी की सारी मेरी ही और मेरे पीछे भी यह सदा मेरी सन्तान की ही रहेगी। इस प्रकार राज्य और भूमि में ममता रखने वाले एक के पीछे एक राजाओं को सब कुछ छोड़कर मृत्यु के मुख में जाते हुये देखकर भी न जाने कैसे उनके उत्तराधिकारी अपने हृदय में फिर वैसी ही ममता को स्थान देते हैं ? जो राजा लोग दूतों के द्वारा अपने शत्रुओं से इस प्रकार कहलाते हैं कि 'यह पृथिवी मेरी है, तुम लोग इसे तुरन्त छोड़कर चले जाओ' उन पर मुझे (पृथिवी को) बड़ी हँसी आती है और फिर उन मूढ़ों पर दया भी होती है।"

जो मनोदशा पुराणकार ने छोटे-बड़े राजाओं की लिखी है, वही आज भी अधिकांश शासकों की देखने में आती है। यद्यपि अब राजाओं का नाम मिट चला है, सिंहासन पर बैठकर और मुकुट लगाकर भाट और बन्दीजनों के द्वारा अपनी प्रशंसा सुनने की प्रथा भी बन्द हो गई है, तो भी उनका स्थान एक अन्य सत्ताधारी श्रेणी ने ले रखा है जो शासनाधिकार को अपनी बपौती समझते हैं और हर तरह के छल-बल, कपट द्वारा उस पर अपना अधिकार बनाये रखने का प्रयत्न करते हैं। ये लोग भूमि को तो नहीं, पर भूमि से प्राप्त होने वाले समस्त साधनों-सम्पत्ति को अपने ही अधिकार में रखना चाहते हैं, और इसके लिये साधन-विहीन

जनता पर तरह-तरह के अन्याय करने में आगा-पीछा नहीं करते। यद्यपि वे यह भी जानते हैं और कहते हैं कि "यह लक्ष्मी चंचल है। आज तक कभी किसी के पास चिरकाल तक नहीं ठहरी" तो भी इसकी ममता में वे ऐसे फँसे रहते हैं कि लोक-परलोक के बिगाड़ने का कुछ भी ध्यान नहीं रहता। ऐसे लोगों के लिये परलोक में कोई आशा होती ही नहीं, क्योंकि जो 'माया' (लक्ष्मी) के लिये अपना सर्वस्व—आत्मा तक अर्पण कर देते हैं फिर उनका 'राम' तक पहुँचना असम्भव ही होता है।

वर्तमान शासकों में एक दोष पहले राजाओं की अपेक्षा अधिक देखने में आता है। राजाओं पर कुछ उत्तरदायित्व समझा जाता था और राज्य की हानि को निजी हानि समझने के कारण वे प्रजा को सन्तुष्ट रखने, उसकी रक्षा करने की चिन्ता भी रखते थे। पर आजकल के शासक या नेता अस्थायी होने के कारण इस प्रकार की चिन्ता से भी मुक्त होते हैं और यदि वास्तव में वे धर्मनिष्ठ, कर्तव्यपरायण और निस्वार्थी नहीं हुये तो स्वार्थ-साधन में संलग्न होकर देश और समाज के पतन के कारण वन जाते हैं।

श्रीकृष्ण-चरित्र की विशेषतायें—

पाँचवे अंश में प्रारम्भ से अन्त तक कृष्ण चरित्र का वर्णन है। यद्यपि भगवान कृष्ण के महान चरित्रों का वर्णन 'भागवत और 'महाभारत' में विस्तार से पाया जाता है, पर विष्णुपुराण में भी उनके लोकोत्तर कर्मों का बड़ी उत्तमता से वर्णन किया गया है। कृष्णजी के जन्म से पूर्व इस देश में सैनिकवाद का दौर-दौरा होगया था और प्रत्येक राजा अपनी सेना की संख्या अधिक से अधिक बढ़ाकर दूसरों के राज्य को जीत लेने के लिये आतुर हो रहा था। इसके फल से सामान्य जनता की बड़ी दुर्दशा हो रही थी। उसका शोषण और जीवन-निर्वाह के साधनों का अपहरण दिन पर दिन बढ़ता जाता था। सेना और युद्धों के लिये एक तरफ तो प्रजा को राजा की आज्ञानुसार सब साधन जुटाने पड़ते थे और दूसरी तरफ युद्धों के कारण कृषि-व्यापार आदि के कार्यों में बाधा पड़ती थी

और लोगों को इधर से उधर भागते फिरना पड़ता था। इससे सर्व साधारण के कष्ट बहुत बढ़ गये थे।

इन अन्याय पूर्ण कष्टों को सहन करते-करते जब जन-मानस अत्यन्त क्षुब्ध हो गया, तो उसकी सामूहिक भावना ही मानों पृथिवी का रूप धारण कर ब्रह्माजी की शरण में उपस्थित हुई और उसने कहा—

"इस समय कालनेमि आदि शक्तिशाली दैत्यगण मर्त्य लोक पर अधिकार जमा कर दिन-रात जनता को क्लेश पहुँचा रहे हैं। यह कालनेमि ही उग्रसेन के पुत्र महान असुर कंस के रूप में उत्पन्न हुआ है। अरिष्ट, धेनुक, केशी, प्रलम्ब, नरक, सुन्दर, बलि का पुत्र अति भयङ्कर वाणासुर आदि दैत्य उत्पन्न हो गये हैं तथा अन्य भी जो महा बलवान दुरात्मा राक्षस राजाओं के घर में उत्पन्न हो गये हैं, मैं उनकी गणना नहीं कर सकती। दिव्य मूर्तिधारी देवगण! इस समय मेरे ऊपर परम शक्तिशाली और अहङ्कारी दैत्यराजों की अनेक अक्षौहिणी सेनायें हैं। अमरेश्वरो! मैं आपको बतला देना चाहती हूँ कि अब उनके भार से अत्यन्त पीड़ित होने के कारण मुझ में अपने को धारण करने की शक्ति भी नहीं रह गई है। अतः महाभागगण। आप लोग मेरा भार उतारिये, जिससे अत्यन्त व्याकुल होकर रसातल को न चली जाऊँ।"

उपरोक्त उद्धरण में देश और समाज की स्थिति का जो चित्र खींचा गया है उसमें अस्वाभाविक और असम्भव कुछ भी नहीं है। आज भी संसार ठीक ऐसी ही स्थिति में होकर गुजर रहा है। आज एक देश में ही नहीं, वरन संसार भर में सैनिकवाद का इतना अधिक दौरदौरा है और राष्ट्रों की संहारक शक्ति इतनी बढ़ गई है कि संसार किसी भी समय नष्ट हो सकता है। इस समय जनता की कमाई का आधा भाग तो इसी सैनिक तैयारी में खर्च हो जाता है और इसलिये सर्वत्र लोगों को अभावजनित कष्ट सहन करना पड़ता है। आज भी जनता तरह-तरह के करों के भार से उसी प्रकार कराह रही है, जैसी कि कंस के युग में थी। उस समय यद्यपि गौओं की संख्या हर जगह हजारों और लाखों थीं और

कहने के लिए दूध की नदियाँ बहती थीं, पर तब भी अनेक बालकों को थोड़े से दूध के लिए भी तरसना पड़ता था। कारण यही था कि राज्य के करों को अदा करने के लिये अधिकांश दूध का मक्खन और घी बना कर बड़े नगरों में भेज दिया जाता, जिससे सामान्य जनता को छाछ के अरिरिक्त दूध का एक छोटा भी अंश भी मिलना कठिन हो गया था।

भगवान कृष्ण ने जन्मकाल से ही ग्रामों में निवास करके इस तथ्य की वास्तविकता को भली प्रकार समझ लिया और कुछ बड़े होते ही जनता में इसके विरोधी भाव फैलाने आरम्भ कर दिये। वे सक्रिय रूप से भी दूध और मक्खन को नगरों में भेजे जाने का प्रतिकार करते थे। इन्हीं कारणों से कंस और उसके अधिकारीगण कृष्ण जी से शत्रुता मानने लगे और उन्होंने छल-बल से अनेक बार उनकी हत्या के लिये प्रयत्न किये। पर अपनी लोकोत्तर प्रतिभा और शक्ति के द्वारा उन्होंने शत्रु के गुप्त और प्रकट सभी आक्रमणों को सहज में विफल कर दिया। उनके कार्य साधारण जनता में चमत्कारों की तरह प्रसिद्ध हो गये और अन्त में जब उन्होंने कंस को मारकर उसके अन्यायी शासन का अन्त कर दिया और छोटे-बड़े सभी लोग दमन और अत्याचारों से छुटकारा पा गये तो कृष्ण जी एक महान् दैवी शक्ति के रूप में पूजे जाने लगे।

श्री कृष्ण ने निरंकुश तथा सैनिक शक्ति में विश्वास रखने वाले शासकों के अन्त करने का मानो बीड़ा उठा लिया था, इस लिये कंस के पश्चात् वे उसके श्वसुर जरासन्ध का, जो उस समय भारत में सबसे बड़ा सम्राट शासक था, मुकाबला करते रहे। यद्यपि जरासन्ध की सैन्य शक्ति बहुत अधिक थी, विष्णुपुराण के अनुसार उसने पहली ही बार २३ अक्षौहिणी सेना लेकर मथुरा पर अक्रमण किया था, पर श्रीकृष्ण ने जनता में जागृति के भाव फूँककर उसके विरुद्ध एक ऐसा सुदृढ़ संगठन तैयार कर दिया कि उसकी सैन्य शक्ति विशेष कारगर सिद्ध नहीं हुई और अन्त में श्रीकृष्ण ने युक्तिपूर्वक उसको नष्ट कर दिया।

कालीय दमन का उद्देश्य—

'विष्णुपुराण' में कालीय-दमन का जैसा वर्णन किया है, उससे भी भगवान कृष्ण की लोक कल्याण की भावना प्रकट होती है। कहा जाता है कि जब नन्द जी ने कंस के आतङ्क से बचने के लिये गोकुल छोड़ कर वृन्दावन में अपना निवासस्थान बनाया तो वहाँ यमुना जी के निकट ही कालिय नाग रहता था। वह अत्यन्त क्रूर था और उसके कारण वह स्थान सब प्रकार के जीवधारियों से शून्य हो गया था। श्री कृष्ण के साथी ग्वाल वालों और गौओं को भी उससे भय रहता था। जो कोई भूल से उसके आस-पास जा निकलता उसी को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ता। उसकी 'विषाग्नि' के फैलने से किनारे के वृक्ष भी जल गये थे। जब श्री कृष्ण ने यह सब देखा और कालिय के वहाँ रहने के कारण मनुष्यों और पशुओं के कष्टों पर विचार किया तो उन्होंने उसे वहाँ से हटाने का निश्चय कर लिया। इस उद्देश्य से जब वे कालिय के निवास स्थान के निकट पहुँचे तो उसका वर्णन पुराणकार के शब्दों में ही सुनिये—

"मृत्यु के दूसरे मुख के समान उस महाभयङ्कर कुण्ड को देखकर भगवान मधुसूदन ने विचार किया, इसमें दुष्टात्मा कालिय नाग रहता है, जिसका विष ही शस्त्र है। इसने समुद्रगामी सम्पूर्ण यमुना का जल दूषित कर दिया है, जिससे वह प्यासे मनुष्यों और पशुओं के भी काम नहीं आता। अत: इस नागराज का दमन अवश्य करना चाहिए जिससे ब्रजवासी लोग निर्भय होकर सुखपूर्वक रह सकें। ऐसा विचार कर वे पास के ही ऊँची शाखाओं वाले एक कदम्ब के पेड़ पर चढ़कर अपनी कमर कसकर वेगपूर्वक नागराज के कुण्ड में कूद पड़े।

तब श्रीकृष्ण ने नागराज के द्वार पर अपनी भुजाओं को ठोका, उनका शब्द सुनते ही नागराज बाहर आ गया। उसके नेत्र क्रोध से कुछ ताम्र वर्ण हो रहे थे, मुखों से अग्नि की लपटें निकल रही थीं और वह महाविषैले अन्य वायु भक्षी सर्पों से घिरा हुआ था। उसके साथ में

मनोहर हारों से भूषित और कुण्डलों की कान्ति से सुशोभित सैकड़ों नाग पत्नियाँ थीं। तब सर्पों ने कुण्डलाकर होकर श्री कृष्ण को अपने शरीरों से बांध लिया और वे विषाग्र ज्वाला से व्याप्त अपने मुखों से उन्हें काटने लगे।

"गोपगण के मुख से कृष्ण जी के 'कालीदह' में कूदने का समाचार सुनकर यशोदा, और अनेक गोपियाँ, नन्द जी और गोपगण तथा अद्भुत विक्रम शाली बलराम जी भी शीघ्र ही वहां आ पहुँचे। जब उन्होंने कृष्ण जी को सर्प के चुङ्गल में फँसे देखा तो यशोदा और नन्द जी चेतना शून्य होने लगे। सभी गोप, गोपी भी शोकाकुल होकर रोने लगे।

"उनकी यह दशा देखकर रोहिणी नन्दन बलराम जी ने संकेत से श्रीकृष्ण से कहा—'देव देवेश्वर! क्या आप अपने अनन्त रूप को नहीं जानते? फिर किस लिये यह अत्यन्त मानव भाव व्यक्ति कर रहे हैं?' बलराम जी का संकेत समझकर, मधुर मुस्कान से अपने ओष्ठ सम्पुट खोलते हुए कृष्ण जी ने उछलकर अपने को सर्प के बन्धन से छुड़ा लिया और फिर दानों हाथों से सर्प का बीच का फण झुका कर उसी पर चढ़ कर बड़े वेग से नाचने लगे। उनके चरणों की धमक से कालिया का प्राण मुख में आ गया। वह अपने जिस फण को उठाता उसी पर कूदकर भगवान उसे झुका देते। कृष्ण जी की भ्रान्ति, रेचक, दण्डपात नाम की नृत्य-गतियों द्वारा ताड़ना से वह महासर्प मूर्छित हो गया और उसने बहुतसा रुधिर वमन किया।"

अन्त में नाग-पत्नियों के प्रार्थना करने पर श्रीकृष्ण ने उसे छोड़ा और आदेश दिया कि वह यमुना जी को छोड़कर समुद्र में चला जाय। कई व्याख्यकारों ने इस 'काली नाग' की लीला का अर्थ मानव शरीर में मूलाधार स्थित कुण्डलिनी शक्ति का साधन के करने से लगाया है। जिस समय कुण्डलनी को जाग्रत किया जाता है उस समय वह भी बड़े उग्र रूप में उठती है और साधक को हिलाकर रख देती है। यह भी सम्भव

है कि 'कालिय' वास्तव में नागजाति का कोई बलशाली मुखिया हो। ये लोग उस समय आर्यों द्वारा हटाये जाकर वनों और भूगर्भ स्थित आवासों में रहते थे और वहीं से अवसर पाकर लूट-मार, आक्रमण की तैयारी करते रहते थे। ऐसी दशा में वृन्दावन में नई बस्ती स्थापित करने पर उसके आस-पास के प्रदेश को निष्कण्टक करना श्रीकृष्ण के लिये आवश्यक ही था।

लोक-प्रिय नेता के रूप में—

श्रीकृष्ण के चरित्र की अधिकांश घटनायें उनको एक लोकप्रिय नेता के रूप में ही प्रकट करती हैं। उनमें निस्वार्थ सेवा भाव के साथ ही जनता को अपनी ओर आकर्षित करने का स्वाभाविक गुण था। वे जहाँ कहीं भी रहे अथवा जिस किसी स्थान में गये वहीं पर जन साधारण ने उनका सप्रेम स्वागत किया और सहयोग दिया। यदि ऐसा नहीं होता तो वे गोकुल, वृन्दावन जैसे सामान्य ग्रामों में गोप जाति के साथ रहते हुए कंस, जरासन्ध, शिशुपाल के समान बड़े-बड़े सम्राटों का मुकावला नहीं कर सकते थे। कंसवध के अपसर पर मथुरा में एक विद्रोही की हैसियत से जाने पर भी उनको अधिकांश प्रजाजनों तथा कंस के अनेक पार्षदों का सहयोग प्राप्त हुआ।

कंस को भगवान कृष्ण ने जिस प्रकार अनायास ही मार दिया उससे यह भी प्रकट होता है कि उसके कठोर और अन्यायपूर्ण शासन से ब्रज के प्रजाजन और बहुत से राज्यधिकारी भी विरक्त हो गये थे। उसने अपने पिता उग्रसेन को कैद करके राज्य सिंहासन हथिया लिया था, इससे उसके परिवार और वंश के सदस्यों में भी असन्तोष, की भावना उत्पन्न हो गई थी। श्रीकृष्ण ने एक चतुर राजनीतिज्ञ की भाँति इस परिस्थिति का लाभ उठाया और उसके निकटवर्ती सेवकों और कर्मचारियों को भी अपना सहयोगी बना लिया। मथुरा में कंस के माली तथा दासी कुब्जा ने उनका जिस प्रकार स्वागत किया तथा नगर के नर-नारी उनको देखकर जिस प्रकार प्रसन्न हुए, उससे यह ज्ञात

होता है कि उनमें सबसे मैत्री भाव स्थापित कर लेने तथा व्यवहार कुशलता का गुण पूर्ण मात्रा में विद्यमान था।

पर इतना प्रभाव तथा सामर्थ्य होने पर भी उनमें स्वार्थपरता अथवा अनुचित महत्वाकांक्षा का दोष तनिक भी न था। इस प्रकार एक बड़े राजा का पराभव कर देने पर यदि वे चाहते तो स्वयं राज्य के अधिकारी बन सकते थे, पर उन्होंने उसी समय राजा उग्रसेन को बन्धनमुक्त करके सिंहासन पर बैठाया और उनकी सब प्रकार से सहायता और रक्षा करने का आश्वासन दिया। इसका वर्णन करते हुए पुराणकर्ता ने लिखा है—

"तदनन्तर श्री मधुसूदन ने जिनका पुत्र मारा गया है, उन राजा उग्रसेन को बन्धनमुक्त किया और उन्हें अपने राज्य पर अभिषिक्त कर दिया। श्रीकृष्ण द्वारा राज्याभिषिक्त होकर यदुश्रेष्ठ राजा उग्रसेन ने अपने पुत्र तथा और भी जो लोग वहां मारे गये थे उन सब के और्ध्वदैहिक कर्म किये। और्ध्वदैहिक कर्मों से निवृत होने पर सिंहासनारूढ़ उग्रसेन से श्रीहरि बोले 'हे विभो ! हमारे योग्य जो सेवा हो उसके लिये हमें निशङ्क होकर आज्ञा दीजिए। ययाति का शाप होने से यद्यपि हमारा वंश राज्य का अधिकारी नहीं है तथापि इस समय मुझ दास के रहते हुए, राजाओं को तो क्या आप देवताओं को भी आज्ञा दे सकते हैं।"

श्रीकृष्ण की राजनीति—

शीघ्र ही ऐसा अवसर आ गया कि श्रीकृष्ण को उग्रसेन की रक्षा के लिए प्रयत्नशील होना पड़ा। कंस मगध के सम्राट जरासन्ध का जामाता था। जब उसकी विधवा पत्नी रोती-पीटती अपने पिता के समीप गई तो वह कृष्ण और समस्त यदुवंशियों पर बड़ा क्रोधित हुआ और एक विशाल सेना लेकर मथुरा पर चढ़ दौड़ा। उसके साथ श्रीकृष्ण और बलराम के संग्राम का वर्णन करते हुए बतलाया गया है—

"तब महाबली राम और जनार्दन यदुवंशियों की थोड़ी-सी सेना लेकर नगर से बाहर आये और जरासन्ध की सेना से भिड़ गये। उन्होंने अपने पुरातन अस्त्रों को स्मरण किया और उनके द्वारा शीघ्र ही मगध-

राजा को हराकर मथुरापुरी में चले आये। यद्यपि जरासंध की सेना हार गई थी, तो भी वह जीवित लौट गये इससे कृष्णजी ने अपनी विजय को अपूर्ण समझा। इसी प्रकार जरासंध ने अठारह बार मथुरा पर आक्रमण किया पर उसे सदैव हार कर वापस ही जाना पड़ा। उस समय यदुवंशियों की सेना उसके मुकाबिले में बहुत थोड़ी थी, पर तो भी वह उसे निरन्तर पराजित करती रही, इसका कारण भगवान के अवतार श्रीकृष्ण का माहात्म्य ही था। जो महापुरुष केवल अपने संकल्प मात्र संसार को नष्ट कर सकते हैं, उनके लिये शत्रुपक्ष की सेना का नाशकर देना कोई बड़ी बात नहीं थी। पर उन्होंने मानव धर्म का पालन करने की दृष्टि से साम, दाम, दण्ड, भेद की नीति का सहारा लेकर अपने उद्देश्य की पूर्ति की। इतना ही नहीं अवसर देख कर वे भाग भी जाते थे।"

(वि० ५-२२)

जरासन्ध के साथी कालयवन के आक्रमण के समय उन्होंने इसी नीति का आश्रय लिया। उन्होंने देखा कि लगातार युद्धों के कारण यदुवंशियों की स्थिति सँभल नहीं पाती और समस्त शक्ति इन झगड़ों में ही खर्च हो जाती है। तब उन्होंने मथुरा से हट कर बहुत दूर समुद्र के किनारे द्वारका को बसाकर यहाँ यादवों का राज्य स्थापित किया। इस प्रकार अपनी राजधानी को सुरक्षित बनाकर वे मथुरा चले आये और कालयवन को युक्ति से पराजित करने की योजना करने लगे। वे मथुरा से बाहर बिना कोई शस्त्र लिये निकल आये। कालयवन उनको इस प्रकार अरक्षित देखकर पकड़ने को दौड़ा तो वे भी भागने लगे और भागते-भागते उस गुफा में जा घुसे जिसमें प्राचीन समय का राजा मुचुकुन्द दैवी निन्द्रा में सोया था। वह स्वयं गुफा में छुप गये और जब कालयवन भीतर आया तो मुचुकुन्द को ही कृष्ण समझ कर लात से मार दिया। मुचुकुन्द क्रोधपूर्वक उठ बैठा और उसके द्वारा कालयवन मारा गया।

श्रीकृष्ण की राजनीतिज्ञता का और निरंकुश शासकों के प्रति विरोध भावना का चरम रूप महाभारत में देखने में आता है। उसमें वे

भारतवर्ष के सर्वश्रेष्ठ राजनीतिक विशारद और जनता के हित चिन्तक के रूप में प्रकट हुए हैं। उस काल में साम्राज्यवाद दिन पर दिन प्रवल होता जाता था और जिस प्रकार हम वर्तमान समय में संसार के राष्ट्रों को दो परस्पर विरोधी दलों में बँटा देखते हैं उसी प्रकार उस जमाने में भी भारत के राजागण दो भागों में बँट गये थे, जिनमें से एक का नेतृत्व पाँचालपति द्रुपद और दूसरे का कुरुसाम्राज्य का अधिपति दुर्योधन कर रहा था। भगवान कृष्ण इस साम्राज्यवाद के विरुद्ध थे क्योंकि इसके द्वारा जनता का अतिशय शोषण और उत्पीड़न होता था। लोग असंतुष्ट होते हुए भी राजाओं की सैनिक शक्ति के भय से उनके अन्यायों का प्रतिरोध न कर पाते थे। श्रीकृष्ण ने पाण्डवों का पक्ष लेकर इस राजनैतिक गुटबन्दी की बहुत कुछ तोड़-फोड़ की और पाण्डवों के समर्थन में एक ऐसा दल तैयार कर दिया जिससे दुर्योधन की बढ़ती हुई साम्राज्यवादी महत्वकांक्षाएँ चूर-चूर हो गईं।

अनेक आलोचकों के मत से महाभारत संग्राम भारतवर्ष की महानता को नष्ट करने वाला था और उसके लिए वे श्रीकृष्ण को दोषी ठहराते हैं। पर वास्तव में उनका उद्देश्य युवावस्था से दमनकारी सैनिकादि के स्थान पर जनतन्त्रीय शासन की स्थापना करना था और महाभारत काल से बौद्ध युग के उदय तक हमको जो किसी बड़े सम्राट या साम्राज्य का उल्लेख नहीं मिलता, उसका कारण भगवान कृष्ण की उपर्युक्त नीति ही थी। उस युग में समस्त देशव्यापी एक जनतन्त्र शासन स्थापित हो सकने की परिस्थितियाँ और साधन तो उत्पन्न नहीं हुये थे, तो भी कुछ समय बाद बड़े-बड़े स्थानीय जनतन्त्र अस्तित्व में आये और सैकड़ों, हजारों वर्ष तक उनमें जनता स्वतन्त्रता की साँस लेती हुई निवास करती रही। भगवान कृष्ण का यह लोक नेता का रूप ही उनके वास्तविक महत्व का परिचायक है और उन्होंने गीता के "यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत:" वाले श्लोक में 'अधर्म' का नाश करके 'धर्म' की

स्थापना की जो प्रतिज्ञा की है, उसको सार्थक बनाने वाला उनका यही कार्य है।

विष्णु पुराण में श्रीकृष्ण चरित्र का उपसंहार करते हुये व्यासजी ने भी उनका ऐसा ही महत्व बतलाया है। उन द्वारिकावासी प्रभु के स्वर्गारोहण के उपरान्त जब अर्जुन उनकी सहस्रों आश्रिताओं को लेकर हस्तिनापुर जा रहा था तो उसे लुटेरों ने लूट लिया और वह उनका कुछ भी प्रतिकार न कर सका! अपनी इस हीनता पर उसे बड़ी ग्लानि हुई और उसने अपनी मनोव्यथा व्यासजी को बतलायी। उसने कहा कि "मैंने महाभारत संग्राम में भीष्म, द्रोण, कर्ण जैसे अद्वितीय महारथियों को हरा दिया, पर आज थोड़े से लाठी लेकर लड़ने वाले अहीरों का भी सामना न कर सका। इससे विदित होता है कि श्रीकृष्ण ही मेरी सच्ची शक्ति थे और उन्हीं के प्रभाव से हम इतनी बड़ी सफलता प्राप्त कर सके थे।" व्यासजी ने उसकी बात का समर्थन और श्रीकृष्ण का महत्व प्रकट करते हुहे कहा—

'धनंजय! तुमने श्रीकृष्णचन्द्र का जैसा माहात्म्य कहा वह सब सत्य ही है क्योंकि कमलनयन श्रीकृष्ण साक्षात् काल स्वरूप ही थे। उन्होंने पृथ्वी का भार उतारने के लिये ही अवतार लिया था। जब पृथ्वी ने भारी क्रान्त होकर भगवान् की प्रार्थना की तो श्री जनार्दन स्वयं ही यहाँ आये। अब सम्पूर्ण दुष्ट राजा मारे जा चुके अतः वह कार्य सम्पन्न हो गया। पार्थ! अब शेष बचे वृष्णि और अन्धक आदि सम्पूर्ण यदुकुल का भी उपसंहार हो गया। अतः अपना कार्य समाप्त हो चुकने पर भगवान स्वेच्छानुसार चले गये। इस लिए तुम अपनी पराजय से दुःखी न हो। यह सब उन भगवान की लीला का कौतुक है कि तुम अकेले ने कौरवों को नष्ट कर दिया और फिर स्वयं अहीरों से पराजित हो गये।" (वि० पु० ५-३८)

शूद्रों और स्त्रियों की श्रेष्टता—

षष्ठम अंश के दूसरे अध्याय में एक अद्भुत कथा है कि "एक बार मुनियों में परस्पर पुण्य के विषय में यह बार्तालाप हुआ कि 'किस

समय में थोड़ा पुण्य भी महान फल देता है और कौन उसका सुखपूर्वक अनुष्ठान कर सकते हैं' वे मुनिगण जब स्वयं इसका निश्चय न कर सके तो संदेह को मिटाने के लिये महामुनि व्यास जी के पास गये—

'उस समय व्यास जी गंगा में स्नान कर रहे थे। उन्होंने एक बार जल से थोड़ा उठकर उन मुनिजनों को सुनाते हुए—कलियुग ही श्रेष्ठ है, शूद्र ही श्रेष्ठ है—यह वचन कहा। यह कहकर उन्होंने फिर जल में डुबकी लगा ली। दूसरी बार खड़े होकर फिर कहा—'स्त्रियां ही साधु हैं, शूद्र ही धन्य है, उनसे अधिक धन्य और कौन है ?' तदनन्तर जब व्यास जी स्नान-कर्म समाप्त करके मुनियों के समीप पहुँचे और यथायोग्य अभिवादनादि के पश्चात् अपने आसनों पर बैठ गये तो उन्होंने पूछा—'आप लोग कैसे पधारे हैं ?'

''मुनियों ने कहा—भगवान् ! पहले तो हमें यह बताइये कि आपने स्नान करते हुए जो कई बार यह कहा कि 'कलियुग ही श्रेष्ठ है, शूद्र ही श्रेष्ठ है, स्त्रियाँ ही साधु हैं सो क्या बात हैं !''

'व्यासजी ने कहा, द्विजगण ! जो फल सतयुग में दस वर्ष तपस्या करने से मिलता है, उसे मनुष्य त्रेता में एक वर्ष में, द्वापर में एक मास में और कलियुग में केवल एक दिन-रात में ही प्राप्त कर सकता है। इसी कारण मैंने कलियुग को श्रेष्ठ कहा। द्विजातियों को पहले ब्रह्मचर्य आश्रम का पालन करते हुये वेदाध्ययन करना पड़ता हैं और फिर स्वधर्माचरण से उपार्जित धन द्वारा विधि पूर्वक यज्ञ करने पड़ते हैं। इस प्रकार वे अत्यन्त परिश्रम तथा कष्ट से पुण्य लोकों को प्राप्त करते हैं। किन्तु जिसे केवल मंत्रहीन पाक-यज्ञ का ही अधिकार है वह शूद्र केवल सेवा-धर्म का पालन करके ही सद्गति प्राप्त कर लेता हैं इसलिये वह अन्य जातियों की अपेक्षा धन्यतर है। इसी प्रकार पुरुषोंको अपने धर्मानुकूल प्राप्त किये धन से ही सर्वदा सुपात्र को दान और विधि पूर्वक यज्ञ करना चाहिये। इस द्रव्य के उपार्जन और रक्षण में महान दुःख भोगना पड़ता है तब जाकर उनको प्रजापत्य आदि शुभ लोकों की प्राप्ति होती है। परन्तु स्त्रियाँ तो

तन-मन वचन से पति की सेवा करने से ही उनकी हितकारिणी होकर पति के समान शुभ लोकों को अनायास ही प्राप्त कर लेती हैं,इसीसे मैंने उनको 'साघु, कहा। (वि० पु० ६—२)

पुराण रचयिता ने इस कथानक द्वारा उन लोगों का समाधान कर दिया है जो कलियुग, अपनी जातीय हीनता अथवा साधनों की कमी का बहाना बतला कर कर्तव्य पालन से विमुख रहते हैं। उन्होंने बतला दिया है कि न कोई जमाना बुरा होता है, न कोई जाति छोटी होती है न कोई दर्जा निकृष्ट होता है, यदि मनुष्य व्यर्थ के झगड़ों में न पड़कर सच्चे मन से अपने कर्तव्य का पालन करता रहे। भगवान धन, दौलत, प्रतिष्ठा, विद्वता, मान-सम्मान के भूखे नहीं वे केवल भावना की कदर करते हैं। यही कारण है कि किसी सम्राट के एक लाख दान की अपेक्षा एक दीन-हीन का एक पैसे का दान उनको अधिक बड़ा जान पड़ता हैं। इसी हार्दिक श्रद्धा और प्रेम को देखकर उन्होंने राजसी व्यंजनों के बजाय शबरी से बेरों और विदुर के साग का भोग अत्यधिक प्रेम से लगाया। इसी आधार पर वे बड़े-बड़े फर्मध्वजी विप्रों के बजाय नरसी और तुकाराम, कबीर और रैदास जैसे श्रमजीवी भक्तों के अधिक निकट पहुँच गये।

वतमान समय में भी ऊँच-नीच की दूषित मनोवृत्ति समाज का बड़ा अनहित कर रही है। यद्यपि इस समय छोटी-बड़ी जाति का भेद कुछ शिथिल पड़ गया। पर उससे भी अधिक दूषित धनी और गरीब के भेद ने उसका स्थान ले लिया है। आज धनकी ही पूजा प्रतिष्ठा और सम्मान होरहा है। गरीब व्यक्ति चाहे जैसा सज्जन,सत्कर्म करने वाला,सेवाभावी क्यों न हो उसको आगे बढ़ने का, ऊँचा उठने का, प्रतिष्ठित पद पाने का अवसर नहीं मिलता, जबकि अनेक दोष और दुर्गुणों के भण्डार धन-पात्र व्यक्ति रुपये के जोर से ही समाज के मुखिया और नेता बन बैठते हैं। यह प्रवृत्ति भगवान और धर्म के आदेशों के विपरीत है और जब तक इसे बदला न जायगा संसार दिन पर दिन विपत्ति के दलदल में ही फँसता चला जायगा।

स्त्रियों का महत्व भी स्पष्ट है। वे सच्चे अर्थों में समाज की

निर्मात्री होती हैं। समाज के प्रत्येक व्यक्ति को अपना आरम्भिक जीवन उनकी गोद में ही बिताना पड़ता है और जैसा उनका स्वभाव, व्यवहार आचार-विचार होता है उसका प्रभाव मनुष्यों पर अवश्य पड़ता है। वर्तमान समय के बाल मनोविज्ञान के ज्ञाताओं के अनुसार तो बच्चा जन्म लेने के साथ ही सीखने लगता है और आरम्भिक दो-तीन वर्षों में उसके भावी जीवन का अधिकाँश में निर्माण हो जाता है। अर्थात् उस छोटी अवस्था में उसके ऊपर जो संस्कार पड़ते हैं, वे फिर आजीवन कठिनता से बदलते हैं और उन्हीं के अनुसार वह अच्छी बुरी जीवन-धाराओं को अपनाता है। अगर स्त्री अपने इसी एक कर्तव्य का वास्तविक रूप में पालन कर सके तो वह समाज का इतना बड़ा कार्य सिद्ध करती है, जिसका बदला किसी प्रकार नहीं दिया जा सकता। इसी को महर्षि व्यास ने 'पति की हितकारणी' बनने का नाम दिया है, क्योंकि भावी सन्तान का सत्पात्र (सपूत) होना मनुष्य का सबसे बड़ा सौभाग्य है। पर इसके लिये स्त्री को सुयोग होना आवश्यक है। मूर्खा और अविकसित स्त्री तो सन्तान का निर्माण करने के बजाय उसका सत्यानाश कर देती है, जिसमें अनेक बार तो यही कहना पड़ता है कि ऐसे 'पुत्रवान' होने से तो 'निपुत्री' रहना ही अच्छा। विष्णु पुराण के मतानुसार स्त्रियां धन्य अवश्य हैं क्यों कि वे समाज के लिये परम उपकारी है। यदि वे अपने कर्तव्य का समुचित पालन करें तो मानव समाज उन्नत और सुसंस्कृत बन ही नहीं सकता।

मानव जन्म की सार्थकता—

'विष्णु पुराण' के अन्तिम तीन अध्यायों में आध्यात्मिक चर्चा करते हुए मनुष्य को प्राप्त होने वाले त्रिविधि ताप, परमार्थ-विद्या और ब्रह्मयोग का परिचय कराया गया है, जिससे मनुष्य संसार-चक्र और भव बन्धनों से छुटकारा पाकर अपने सत्य स्वरूप में अवस्थित हो सकता है। मानव जीवन को सब वेद शास्त्र तथा ज्ञानी जनों ने बहुत बड़ा लाभ बतलाया है, एक ऐसा लाभ जिसके लिये देवगण भी लालायित रहते हैं।

पर यह लाभ प्राप्त तभी हो सकता है जब मनुष्य अपने स्वरूप और कर्तव्यों को समझे और माया-मोह के फन्दे से बचकर अपना वास्तविक कर्तव्य पालन करे। जो ऐसा नहीं करता, इसके विपरीत मार्ग पर चलता है,तो उसके लिए यह एक महान बन्धन, पतन का साधन भी बन सकता है। इस प्रकार इस मानव जीवन को स्वर्गीय या नारकीय बनाना हमारे अपने ही हाथ में है। जो व्यक्ति इस तत्व को जाने बिना अन्धे की तरह जीवन-क्षेत्र में प्रवेश करता है वह शारीरिक, मानसिक आध्यात्मिक तीनों तरह के तापों में ग्रसित होकर सुख की तुलना में कष्ट ही अधिक उठाता है। इन तीनों तरह के तापों का वर्णन करते हुए पुराणकार कहते हैं—

"शारीरिक ताप के कितने ही भेद वे, वह सुनो। शिरोरोग, प्रतिश्याय (पीनस) ज्वर, शूल, भगंदर गुल्म, अर्श (ववासीर), शोथ, श्वास, नेत्ररोग, अतिसार, कुष्ठ आदि शारीरिक कष्ट भेद से दैहिक ताप कितने ही प्रकार के हैं। अब मानसिक तापों को सुनो—काम, क्रोध, भय द्वेष, लोभ, मोह, विषाद, शोक, असूया, अपमान, ईर्ष्या, और मात्सर्य आदि भेदों से मानसिक ताप के अनेक भेद हैं। आध्यात्मिक तापों के भी इसी प्रकार कितने ही भेद हैं। मनुष्यों को जो कष्ट जंगली पशु, पक्षी, पिशाच, सर्प बिच्छू राक्षस आदि से प्राप्त होता है, वस आधिभौतिक कहा जाता है। और शीत, उष्ण, वायु वर्षा बाढ़, विद्युतपात आदि से प्राप्त दुःख आधिदैविक कहे जाते हैं।

"इस प्रकार जन्म से मृत्यु तक जीव अनेकों दुःखों को भोगता है। अज्ञान रूप के अन्धकार से आवृत्त होकर मूढ़हृदय पुरुष यह नहीं जाता मैं कहाँ से आया हूँ? कौन हूँ! कहाँ जाऊँगा? मेरा स्वरूप क्या है? मैं किस बन्धन से बँधा हुआ हूँ? इस बन्धन का क्या कारण है? अथवा यह अकारण ही हुआ है? मुझे क्या करना चाहिए और क्या न करना चाहिए? क्या कहना चाहिए और क्या न कहना चाहिए? धर्म क्या है अधर्म क्या है? किस अवस्था में मुझे किस प्रकार रहना चाहिए? मेरा क्या कर्तव्य है? अथवा क्या गुण और क्या दोष है? इस

प्रकार पशु के समान, विवेक-शून्य, उदर और इन्द्रिय के भोगों में आसक्त पुरुष अज्ञान-जनित महान दुःख भोगते हैं ।" (वि० पु० ६-५)

इस प्रकार केवल स्वार्थ-परायण जीवन व्यतीत करने वाला इस लोक और परलोक में दुःख ही पाता है। यदि वह कभी सुख का भी अनुभव करता है तो वह क्षणिक और भ्रमयुक्त होता है। जैसे शराब के नशे में मनुष्य बड़ा 'मजा' समझता है और आरम्भ में बड़ी प्रसन्नता भी प्रकट करता है, पर इसका परिणाम बदहवास होकर इधर-उधर गिरना और अपमानित होना ही होता है। परलोक में भी ऐसे पाप-परायण व्यक्तियों की अत्यन्त दुर्गति होती है क्योंकि दूषित मनोवृत्तियों के कारण उनकी आत्मा और सूक्ष्म देह वहाँ भी वैसे ही कष्ट अनुभव करती रहती है। इस प्रकार बार-बार मरना और गर्भावस्था, जरावस्था तथा मरणकाल के कष्ट सहना कभी मानव जन्म की सार्थकता नहीं मानी जा सकती।

निष्काम कर्म और ज्ञान-मार्ग—

इसलिये शास्त्रों का उपदेश यही है कि इस संसार के पदार्थों में अधिक ममता रखने और स्त्री, पुत्र, सम्पत्ति, पर, भूमि आदि की प्राप्ति और रक्षा में ही संलग्न रहने से मनुष्य को कभी सच्चा सुख नहीं मिल सकता। ये पदार्थ जितना सुख देते हैं उससे अधिक दुःख का कारण होते हैं। इस कारण आत्म कल्याण चाहने वाले व्यक्ति को इनमें आसक्त नहीं होना चाहिए, वरन् इनका सम्बन्ध कर्तव्य रूप ही मानना चाहिए। इसके लिए पुराणकार ने दो मार्ग ही हितकारी बतलाये हैं, एक निष्काम कर्म-योग और दूसरा ज्ञान-योग, इसकी विवेचना करते हुये उन्होंने कहा है—

"ज्ञान दो प्रकार का है—शास्त्रजन्य और विवेकजन्य। शब्दब्रह्म का ज्ञान शास्त्रजन्य है और परब्रह्म का बोध विवेकजन्य। अज्ञान घोर अन्धकार के समान है। उसको नष्ट करने के लिये इन्द्रियोद्भवज्ञान दीपकवत् और विवेकजन्य-ज्ञान सूर्य के समान है।इस विषय में भगवान मनु ने कहा है कि शब्दब्रह्म (शास्त्र-जन्य ज्ञान) में निपुण हो जाने पर जिज्ञासु विवेकजन्य ज्ञान के द्वारा परब्रह्म की प्राप्ति कर लेता है। अथर्ववेद के

अनुसार भी विद्या दो प्रकार की है—परा और अपरा। परा से अक्षर (सच्चिदानन्द) ब्रह्म की प्राप्ति होती है और अपरा वेदत्रयी रूपा है। जो अव्यक्त, अजर, अचिन्त्य, अज, अव्यय, अनिर्देश्य, अरूप, सर्वगत, नित्य, भूतों का आदिकारण, स्वयं कारणहीन है, जिससे सम्पूर्ण व्याप्त और व्यापक प्रकट हुआ है, जिसे पंडित-जन ज्ञान नेत्रों से देखते हैं, वह परम धाम ही अक्षर ब्रह्म है। मुमुक्ष जनों को उसी का ध्यान रखना चाहिये। वही वेद वचनों से प्रतिपादित भगवान विष्णु का अति सूक्ष्म परम पद है। इनका ज्ञान और सान्निध्य प्राप्त करके दो साधन स्वाध्याय और योग हैं। स्वाध्याय से योग का और योग से स्वाध्याय का आश्रय करे, क्योंकि एक दूसरे के सहायक होने से ये दोनों परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। इस प्रकार स्वाध्याय और योग रूप सम्पत्ति से परमात्मा जाने जाते हैं।" (वि० पु० ६-५)

उपरोक्त उद्धरण में कर्म और ज्ञान का जो समन्वय किया है, वही अधिकांश बुद्धिवादी विद्वानों का अभिमत है। जो लोग इन दोनों मार्गों में भेद उत्पन्न करने की चेष्टा करते हैं और इस सम्बन्ध में 'शास्त्रार्थ' करने को उद्यत रहते हैं, उनकी विद्या को तोते के समान रटी हुई और पेट को भरने के साधन स्वरूप ही समझना चाहिए। मनुष्य का काम न तो कोरे ज्ञान से चल सकता है और न विवेक शून्य कर्म से। पहली प्रकार के मनुष्य यदि ढोंगी, ठग और समाज पर भारतस्वरूप होते हैं तो दूसरी श्रेणी के पशु-स्तर का जीवन बिताकर विकास और उत्थान के अयोग्य बन जाते हैं। इसलिये लेखक का यह मत बिल्कुल ठीक है कि मनुष्य को अपने जीवन की सफलता के लिये कर्म और ज्ञान परा और अपरा विद्या का समन्वय बनाये रखना अनिवार्य है। एक तरफ जहाँ साँसारिक कर्तव्यों का पालन करके, समस्त सम्बन्धियों, इष्ट-मित्रों के साथ यथायोग्य व्यवहार करके सुख, सफलता प्राप्त करना प्रशंसनीय है, वहां दूसरी ओर आत्म-कल्याण का ध्यान रखकर शास्त्रों का चिन्तन, मनन, उपासना, त्याग तप, सेवा के मार्ग में भी अग्रसर होते रहना आवश्यक है।

ऐसे धर्म-पालन के लिए यह आवश्यक नहीं कि मनुष्य सर्वस्व त्यागी बनकर और जङ्गलों में जाकर रहने लगे अथवा छापा-तिलक लगा कर, भभूत रमाकर, वस्त्रत्याग कर 'साधू' या 'जोगी' बन जाय। यह मार्ग तो इस समय घोर पतनकारी सिद्ध हो रहा है। ऐसे 'त्यागी' बाबा' और 'तपसी महाराज' तो प्रायः साधारण गृहस्थी-जन के अपेक्षा भी कहीं अधिक प्रपंच में फँसे और निष्कृष्ट कर्म करते दिखलाई पड़ते हैं। वे संसार का उपकार करने के बजाय अपकार ही अधिक करते हैं और इस प्रकार निष्पक्ष लोगों की निगाह में 'धर्म' और 'ज्ञान' को उपहास तथा निन्दा का विषय बनाते हैं। इसलिये परमार्थ और मोक्ष का मार्ग भी लौकिक कर्तव्यों का पालन करते हुए ही अधिक सुगमता और निश्चित रूप से प्राप्त किया जा सकता है। पुराणकार ने आगे चलकर खाण्डिक्य और केशिध्वज की कथा में यह स्पष्ट भी कर दिया है कि श्रेष्ठता अपने-अपने कर्तव्यों को पालन करते रहने और सत्य-व्यवहार की ही है। ऐसा व्यक्ति चाहे घर में रहे या वन में, उसको भगवान की प्राप्ति निश्चित ही है। इसी तथ्य को दृष्टिगोचर रखकर इस पुराण में भारतवर्ष को स्वर्ग से भी बढ़कर बतलाया है, क्योंकि यह ऐसी कर्म-भूमि है जहाँ मनुष्य निष्काम भाव से कर्तव्य पालन करके स्वर्ग और अपवर्ग, स्वार्थ और परमार्थ दोनों की सिद्धि कर सकता है। पुराण लेखक अपनी ललित भाषा में कहते हैं—

गायन्ति देवाः किलगीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमि भागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूत भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात ॥
कर्माण्यसंकल्पिततत्फलानि संनस्य विष्णौ परमात्मभूते।
अवाप्य तां कर्म महीमनन्ते तास्मिल्लँयं ये त्वमलाः प्रयान्ति ॥

(वि० पु० २।३।२४-२५

भारतभूमि की महिमा पर मुग्ध होकर कवि कहता है कि 'यही एक ऐसा देश है जहां पर मनुष्य कर्म करते हुए भी 'अपनत्व' का अहंकार नहीं करते बरन् उसके फल को ईश्वरार्पित करके स्वयं निर्लेप बने रहते हैं। यही कारण है कि स्वर्ग के देवता भी यही गाते रहते हैं कि

भारतभूमि बड़ी सौभाग्य शालिनी है जहां स्वर्ग और अपवर्ग दोनों का समन्वय किया जा सकता है। निस्संदेह उसमें जन्म लेने वाले धन्य हैं।"

'विष्णु-पुराण' वास्तव में पुराण-साहित्य का एक अमूल्य रत्न है। विषय-निर्वाचन, तथ्यों का निरूपण वर्णन शैली का संयत और स्वाभाविक होना, भाषा का सौष्ठव और लालित्य आदि जितने गुण इस अपेक्षाकृत अल्प विस्तार वाले पुराण में भर दिये गये हैं, उन्हें देखकर 'गागर में सागर' की उक्ति ही स्मरण हो आती है। हमारा विश्वास है कि इस पुराण को पढ़कर पाठकों के मनमें से उन बहुत सी धारणाओं का अन्त हो जायगा जिनको बहुत से स्वयम्भू आलोचक, जिन्होंने अभी एक भी पूरा पुराण न पढ़ा होगा समय-समय पर उनके विरुद्ध प्रकट किया करते हैं।

हम यह नहीं कहते कि सब पुराण या पुराण या उनमें दिये गये सब विषय उच्चकोटि के उपयोगी और निर्दोष हैं। सभी प्राचीन ग्रन्थों की तरह पुराणों में भी समय-समय काफी मिलावट की गई है। विदेशी आक्रमणों के समय उनमें से अनेक नष्ट हो गये और फिर उसको इधर-उधर से सामग्री संग्रह करके प्रस्तुत किया गया। इससे अनेक परिवर्तन, परिवर्द्धन उनमें होते ही रहे अनेक स्वार्थीजनों ने उनमें अपने लाभ की दृष्टि से तीर्थ, दान आदि की महिमा अप्रासंगिक रूपसे भर दी। कहीं श्राद्धों का विधि विशाल विधान ही शामिल कर दिया गया। इस प्रकार बहु-संख्यक अनावश्यक, अनुपयोगी और अनेक दूषित विषय भी पुराणों में शामिल कर दिये गये हैं। पर इस आधार पर उनका सर्वथा बहिष्कार करना बुद्धिमानी की बात नहीं है। अनेकों काम की, महत्व की बातें भी हैं, अनेक प्राचीन तथ्यों का पता उनके द्वारा लगाया जा सकता है। इसलिए उनका संशोधन, परिमार्जन करके उनकी उपयोगी बातों का संग्रह करना और उससे लाभान्वित होना ही सर्वथा उचित है।

'विष्णु पुराण' का कलेवर पहले से ही अल्प था और लोकप्रिय होने के कारण उसका सर्वोपयोगी रूप भी विकृत होने से बच गया, इसलिए उसे पूर्ण रूप में यथातथ्य प्रकाशित किया गया है।

—श्रीराम शर्मा, आचार्य

201/H
22.11.73

ॐ

श्रीविष्णु पुराण

(प्रथम खण्ड)

—****—



पहला अंश

—★—

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जय मुदीरयेत् ॥

पहला अध्याय

ॐ पाराशरं मुनिवर कृतपौर्वाह्निकक्रियम् ।
मैत्रेयः परिपप्रच्छ प्रणिपत्याभिवाद्य च ॥१॥
त्वत्तो हि वेदाध्ययनमधीतमखिलं गुरो ।
धर्मशास्त्राणि सर्वाणि तथाङ्गानि यथाक्रमम् ॥२॥
त्वत्प्रसादान्मुनिश्रेष्ठ मामन्ये नाकृतश्रमम् ।
वक्ष्यन्ति सर्वशास्त्रेषु प्रायशो येऽपि विद्विषः ॥३॥
सोऽहमिच्छामि धर्मज्ञ श्रोतुं त्वत्तोयथा जगत् ।
बभूव भूयश्च यथा महाभाग भविष्यति ॥४॥
दुन्मयं च जगद्ब्रह्मन्यतश्चेतच्चराचरम् ।
लीनमासीद्यथा यत्र लयमेष्यति यत्र च ॥५॥

श्री सूतजी ने कहा—जब मुनि श्रेष्ठ पाराशरजी पूर्वाह्निक क्रियाओं को करके अपने आसन पर विराजमान हुए तो मैत्रेय ऋषि

ने उनको प्रणाम अभिवादन करके पूछा—हे गुरुदेव आपके समीप रहकर मैंने समस्त वेद-वेदाङ्ग एवं धर्मशास्त्रों का अध्ययन किया है ।१-२। आपके अनुग्रह से पण्डितजन भी यह नहीं कह सकते कि 'मैंने शास्त्राध्ययन में श्रम नहीं किया है ।' मेरे विरोधी भी ऐसा नहीं कह सकते हैं ।।३।। हे धर्मज्ञ अब मैं आपके मुख से यह सुनना चाहता हूँ कि यह जगत जिससे उत्पन्न हुआ है, यह समस्त चराचर जिसमें लीन था, जिससे प्रकट हुआ है, जिस में लय होगा, उसका मूल स्वरूप क्या है ? ।।४-५।।

यत्प्रमाणानि भूतानि देवादीनां च सम्भवम् ।
समुद्रपर्वतानां च संस्थान च यथा भुवः ।।६।।
सूर्यादीनाँ च संस्थानं प्रमाण मुनिसत्तम ।
देवादीनां तथा वशान्मनून्मन्वन्तराणि च ।।७।।
कल्पान् कल्पविभागांश्च चातुर्युगविकल्पितान् ।
कल्पान्तस्य स्वरूपञ्च युग धर्माश्च कृत्स्नशः ।।८।।
देवर्षिपार्थिवानां च चरितं यन्महामुने ।
वेदशाखाप्रणयनं यथावद्व्यासकर्तृकम् ।।९।।
धर्माश्च ब्राह्मणादीनां तथा चाश्रमवासिनाम् ।
श्रोतुमिच्छाम्यहं सर्वं त्वत्तो वसिष्ठनन्दन ।।१०।।
ब्रह्मन्प्रसादप्रवण कुरुष्व मयि मानसम् ।
येनाहमेतज्जानीयां त्वत्प्रसादान्महामुने ।।११।।
साधु मैत्रेय धर्मज्ञ स्मारितोऽस्मि पुरातनम् ।
पितुः पिता मे भगवान् वसिष्ठो यदुवाच ह ।।१२।।
विश्वा मित्रप्रयुक्तेन रक्षसा भक्षितः पुरा ।
श्रुतस्तातस्ततः क्रोधो मैत्रेयाभून्ममातुलः ।।१३।।
ततोऽहं रक्षसा सत्रं विनाशाय समारभम् ।
भस्मीभूताश्च शतशस्तस्मिन्सत्रे निशाचराः ।।१४।।

आकाश आदि पञ्च महाभूतों की स्थिति, देवताओं की उत्पत्ति, समुद्र, पर्वत और पृथ्वी की दशा, सूर्य, आदि ग्रहों का संस्थान और परिमाण, देवताओं का वंश, मनु और मन्वन्तरों का वर्णन, कल्पों और युगों का स्वरूप, कल्पांतर, सम्पूर्ण युगों के धर्म, देवर्षि और राजाओं के चरित्र, व्यासजी द्वारा वेदों की विभिन्न शाखाओं का प्रणयन आदि का वर्णन भी मैं सुनना चाहता हूँ ।।६-९।।

हे शक्तितनय ! ब्राह्मण आदि चारों वर्णों और ब्रह्मचर्य आदि चारों आश्रमों के धर्म में आपसे जानना चाहता हूँ । हे ब्रह्मन् ! आप मुझ पर ऐसी कृपा करें जिससे मैं इन समस्त विषयों का ज्ञान प्राप्त कर सकूँ ।।१०-११।। पाराशर जी बोले-हे धर्मज्ञ मैत्रेय ! तुमने पुराने विषयों की अच्छी याद दिलाई । पितामह वसिष्ठ ने जो कुछ कहा था वह सब अब मुझे स्मरण हो रहा है ।। १२ ।। हे मैत्रेय ! जब मैंने यह सुना था कि विश्वामित्र द्वारा प्रेरित राक्षस ने पिता जी को भक्षण कर लिया, तो मुझे अत्यन्त क्रोध हुआ था और मैंने राक्षसों के विनाशार्थ यज्ञ आरम्भ कर दिया जिसमें सैकड़ों-हजारों राक्षस प्रतिदिन भस्म होने लगे ।।१३-१४।।

ततः सङ्क्षीयमाणेषु तेषु रक्षास्स्वशेषतः ।
मामुवाच महाभागो वसिष्ठो मत्पितामहः ।।१५।।
अलमत्यन्तकोपेन तात मन्युमिमं जहि ।
राक्षसा नापराध्यन्ति पितुस्ते विहितं हि तत् ।।१६।।
मूढानामेव भवति क्रोधो ज्ञानवतां कुतः ।
हन्यते तात कः केन यतः स्वकृतभुक्पुमान् ।।१७।।
सञ्चितस्यापि महता वत्स क्लेशेन मानवैः ।
यशसस्तपश्चैव क्रोधो नाशकरः परः ।।१८।।
स्वर्गापवर्गव्यासेधकारणं परमर्षयः ।
वर्जयन्ति सदा क्रोधं तात मा तद्वशो भव ।।१९।।

अलं निशाचरैर्दग्धैर्दीनैरनपकारिभिः ।
सत्रं ये विरमत्येतत्क्षमासारा हि साधवः ॥२०॥
एवं तातेन तेनाहमनुनीतो महात्मना ।
उपसंहृतवान्सत्रं सद्यस्तद्वाक्यगौरवात् ॥२१॥

जब इस प्रकार असंख्यों राक्षस नष्ट हो गए तब मेरे पितामह महाराज वसिष्ठ जी ने आकर कहा—वत्स ! अत्यन्त क्रोध करना ठीक नहीं होता, अतः उसको शान्त करो। राक्षसों का कोई दोष नहीं है, तुम्हारे पिता का प्रारब्ध ऐसा ही था ॥ १५–१६ ॥ मूर्ख व्यक्ति ही क्रोध किया करते हैं, ज्ञानीजन ऐसा नहीं करते। हे प्रिय ! कोई किसी का बध नहीं करता है, क्योंकि सब अपने-अपने कृतकर्मों का फल भोग किया करते हैं ॥ २७ ॥ यह भी समझो कि मनुष्य अत्यन्त परिश्रम करके यश और तपस्या का सञ्चय करता है, पर क्रोध से वह सहज ही में नष्ट हो जाते हैं। इसलिए ज्ञान के भण्डार ऋषिगण स्वर्ग और मोक्ष में बाधा स्वरूप क्रोध का परित्याग कर देते हैं। इसलिए हे तात ! तुम भी क्रोध के वशीभूत मत हो ॥१८-१९॥ बिना किसी दोष के समस्त निशाचरों को भस्म करना निरर्थक है, इसलिए अब अपने इस यज्ञ से निवृत्त हो, क्योंकि साधुओं का भूषण क्षमा ही है ॥ २० ॥ पितामह महोदय के इस प्रकार उपदेश करने पर मैंने उनका आदेश शिरोधार्य करके उसी समय यज्ञ का उपसंहार कर दिया।

ततः प्रीतः स भगवान्वसिष्ठो मुनिसत्तमः ।
सम्प्राप्तश्च तदा तत्र पुलस्त्यो ब्रह्मणः सुतः ॥२२॥
पितामहेन दत्तार्घ्यः कृतासनपरिग्रह ।
मामवाच महाभागो मैत्रेय पुलहाग्रजः ॥२३॥
वैरे महति यद्वाक्याद् गुरोरद्याश्रिता क्षमा ।
त्वयातस्मात्समस्तानिभवाञ्च्छास्त्राणि वेत्स्यति ॥२४॥
सन्ततेर्न ममोच्छेदः क्रुद्धेनापि यतः कृतः ।
त्वयः तस्मान्महाभाग ददम्यन्यं महावरम् ॥२५॥

पुराणसंहिताकर्ता भवान्वत्स भविष्यति ।
देवतापारमार्थ्यं च यथाद्वत्स्यते भवान् ॥२६॥
प्रवृत्तो च निवृत्तो च कर्मण्यस्तमला मति ।
मत्प्रसादादसन्दिग्धा यव वत्स भविष्यति ॥२७॥
ततश्च प्राह भगवान्वसिष्ठो मे पितामहः ।
पुलस्त्येन यदुक्तं ते सर्वमेतद्भविष्यति ॥२८॥

इस पर महामुनि वशिष्ठ मुझ पर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उसी बीच में ब्रह्मा जी के पुत्र पुलस्त्य जी वहाँ आ पहुँचे ॥ २२ ॥ पितामह ने उनको अर्घ्यदान किया और पुलस्त्य जी आसन पर बैठकर मुझ से कहने लगे—"अत्यन्त वैरभाव होने पर भी तुमने जो गुरुजनों के कथन को स्वीकार करके क्षमा कर दिया इससे तुमको समस्त शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त हो जायगा ।।२३-२४।। पुलस्त्य जी आगे कहने लगे-"क्रोध करने पर भी तुमने जो मेरे वंश का मूलोच्छेद नहीं किया उसके लिए मैं तुमको यह विशेष वर प्रदान करता हूँ कि तुम पुराण-संहिताओं के रचयिता होगे, देवता और परमार्थ तत्व को यथावत् जान सकोगे और मेरे प्रसाद से प्रवृत्ति और निवृत्ति मूलक धर्म में तुम्हारी बुद्धि निर्मल और असंदिग्ध रहेगी" ।।२५-२६-२७।। तत्पश्चात् मेरे पितामह भगवान वसिष्ठ ने कहा-"पुलस्त्य जी ने तुम से जो कहा है वह समस्त सत्य होगा।" ।२८।

इति पूर्वं वसिष्ठेन पुलस्त्येन च धीमता ।
यदुक्तं तत्स्मृतिं याति त्वत्प्रश्नादखिलं मम ॥२९॥
सोऽहं वदाम्यशेषं ते मैत्रेय परिपृच्छते ।
पुराणसंहितां सम्यक्तां निबोध यथातथम् ॥३०॥
विष्णोः सकशादुद्भूतं जगत्तत्रैव च स्थितम् ।
स्थितिसंयमकर्तासौ जगतोऽस्य जगच्च सः ॥३१॥

हे मैत्रेय ! पूर्वकाल में वशिष्ठ जी और बुद्धिमान पुलस्त्य जी ने इस प्रकार जो कहा था वह सब इस समय तुम्हारे प्रश्न करने से मुझे स्मरण हो आया ॥१९॥ अतएव अब मैं तुम्हारे द्वारा जिज्ञासित पुराण-

संहित पूर्ण रूप से बतलाता हूँ, तुम सम्यकतया उसे श्रवण करो ॥३०॥ यह समस्त जगत विष्णु से ही उत्पन्न हुआ है और उन्हीं में स्थित है। इसकी स्थिति और संयम के कर्ता वही हैं और वस्तुत: वे ही जगत रूप हैं ॥ ३१ ॥

दूसरा अध्याय

अविकाराय शुद्धाय नित्याय परमात्मने ।
सदैकरूपरूपाय विष्णवे सर्वजिष्णवे ॥१॥
नमो हिरण्यगर्भाय हरये शङ्कराय च ।
वासुदेवाय ताराय सर्गस्थित्यन्तकारिणे ॥२॥
एकानेकरूपाय स्थूलसूक्ष्मात्मने नमः ।
अव्यक्तव्यक्तरूपाय विष्णवे मुक्तिहेतवे ॥३॥
सर्गस्थिविनाशानां जगतो यो जगन्मय ।
मूलभूतो नमस्तमै विष्णवे परमात्मने ॥४॥
आधारभूतं विश्वस्याप्यणीयांसमणीयसाम् ।
प्रणम्य सर्वभूतस्थमच्युतं पुरुषोत्तमम् ॥५॥
ज्ञानस्वरूपमत्यन्तनिर्मलं परमार्थत: ।
तमेवार्थस्वरूपेण भ्रांतिदर्शनत: स्थितम् ॥६॥
विष्णुं ग्रसिष्णुं विश्वस्य स्थितो सर्गं तथा प्रभुम् ।
प्रणम्य जगतामीशमज क्षयमव्ययम् ॥७॥
कथयामि यथापूर्व दक्षाद्यैर्मुनिसत्तमैः ।
पृष्टः प्रोवाच भगवान्नब्जयोनिः पितामहः ॥८॥

पाराशर जी कहने लगे—अविकार, शुद्ध तीनों काल में अविनाशी परमात्मा, सर्वदा एक रूप, सर्वविजयी विष्णु ही हरि, हिरण्यगर्भ और शङ्कर के नाम से प्रसिद्ध हैं, उन सृष्टि-स्थिति-विनाश करने वाले वासुदेव को नमस्कार है ॥१-२॥ एकानेक स्वरूप स्थूल-सूक्ष्ममय,

कार्यकारणभूत, मुक्तिदाता विष्णु को नमस्कार है। इस जगत की उत्पति, स्थिति और लय के मूलभूत, जगतमय परमात्मा विष्णु को नमस्कार है ॥१-४॥ विश्वाधार, सूक्ष्मातिसूक्ष्म, सब प्राणियों में स्थिति, अक्षर, पुरुषोत्तम, ज्ञान स्वरूप, वास्तव में अत्यन्त निर्मल किन्तु भ्रांतिवश स्थूल रूप में दृश्यमान, कालस्वरूप, जन्मशून्य, अच्यात जगदीश्वर विष्णु को प्रणाम करके मैं उस समस्त कथानक को चाहता हूँ जिसको पद्मयोनि भगवान ब्रह्मा जी ने दक्षादि महानुभावों के प्रश्न करने पर कहा था ॥५-८॥

तैश्चोक्तं पुरुकुत्साय भूभुजे नर्मदातटे ।
सारस्वताय तेनापि मह्यं सारस्वतेन च ॥९॥
परः पराणां परमः परमात्मात्मसंस्थितः ।
रूपवर्णादिनिर्देशविशेषणविवर्जितः ॥१०॥
अपक्षयविनाषाभ्या परिणामर्धिजन्मभि ।
वर्जितः शक्यते वक्तुं यः सदास्तोति केवलम् ॥११॥
सर्वत्रासौ समस्तं च वसत्यत्रेति वै यतः ।
ततः स वासुदेवेति विद्विद्भिः परिपठ्यषे ॥१२॥
तद्ब्रह्म परम नित्यमजमक्षयमव्ययम् ।
एकस्वरूपं तु सदा हेयाभावाच्च निर्मलम् ॥१३॥
तदे सर्वमेवंतद्व्यक्ताव्यक्तस्वरूपवत् ।
तथा पुरुषरूपेण कालरूपेण च स्थितम् ॥१४॥

दक्ष आदि मुनियों ने नर्मदा के तट पर पितामह का कथन राजा पुरुकुत्स को सुनाया था, पुरुकुत्स ने उसे सारास्वत से कहा और सारस्वत से मैंने सुना ॥९॥ परात्पर आत्मसंस्थित परमात्मा जो कि रूप, वर्ण निर्देश से रहित है, अपक्षय विनाश-परिणाम-वृद्धि-जन्म से रहित है, और जिसके सम्बन्ध में इतना ही कहा जा सकता है कि वह "सदा है" वही इस जगत् में सर्वत्र व्याप्त है और समस्त जगत् उसमें वास करता है, इसलिये वासुदेव कहा जाता है ॥ १०-१२ ॥ वह ब्रह्म जन्मशून्य,

नित्य स्वरूप, अक्षय, अव्यय, सर्वदा एक रूप, माया तथा उसके गुणों से रहित और निर्मल है ॥ १३ ॥ व्यक्त (महदादि), अव्यक्त (माया), पुरुष और काल इन चारों रूपों में वही स्थित है ॥१४॥

परस्य ब्रह्मणो रूप पुरुषः प्रथमं द्विज ।
व्यक्ताव्यक्ते तथैवान्ये रूपे कालस्तथा परम् ॥१५॥
प्रधानपुरुषव्यक्तकालानां परमं हि यत् ।
पश्यन्ति सूरयः शुद्धं तद्विष्णो परम पदम् ॥१६॥
प्रधानपुरुषव्यक्तकालास्तु प्रविभागशः ।
रूपाणि स्थितिसर्गान्तव्यक्ति सद्भावहेतवः ॥१७॥
व्यक्तं विष्णुस्तथैवऽव्यक्तं पुरुषः काल एव च ।
क्रीडतो बालकस्येव चेष्ठां तस्य निशामय ॥१८॥
अव्यक्तं कारण यत्तत्प्रधानमृषिसत्तमैः ।
प्रोच्यते प्रकृतिः सूक्ष्मा नित्य सदसदात्मकम् ॥१९॥
अक्षय्यं नान्यदाधारममेयमजरं ध्रुवम् ।
शब्दस्पर्शहीनं तद्रूपादिभिरसंहितम् ॥२०॥
त्रिगु तज्जगद्योनिरनादिप्रभवाप्ययम् ।
तेनाग्रे सवमेवासीद्व्याप्तं वै प्रलयादनु ॥२१॥

हे द्विज ! परब्रह्म का प्रथम रूप पुरुष होता है, दूसरा तथा तीसरा व्यक्त और अव्यक्त है और चौथा रूप काल है । ज्ञानी जन इन चारों में जो शुद्ध और परम-सार वस्तु है उसी का अनुभव करते हैं और वही विष्णु का परम पद अथवा परम रूप है ॥ १५–१६ ॥ पूर्वोक्त प्रधान आदि रूप ही विभागानुसार समस्त सृष्टि-स्थिति-प्रलय के उद्भाव और प्रकट होने के कारण हैं ॥ १७ ॥ विष्णु भगवान जो पुरुष आदि रूपों में प्रकट होते हैं, उनको बालकों के खेल की तरह ही समझना चाहिए ॥१८॥ ऋषिगण अव्यक्त कारण रूप प्रधान को ही सूक्ष्म प्रकृति के नाम से पुकारते हैं । वही अव्यक्त, अक्षय, अनन्याश्रय अनन्त, अजर, निश्चल, शब्द स्पर्श विहीन, रूप रहित त्रिगुणमय ही

जगत का कारण है। यह स्वयं अनादि है। सृष्टि के पहले और प्रलय के पश्चात् सर्वत्र वही एक ही तत्व व्याप्त रहता है ॥१९—२१॥

वेदवादविदो विद्वन्नियता ब्रह्मवादिनः ।
पठन्ति चैतमेवार्थं प्रधानप्रतिपादकम् ॥२२॥
नाहो न रात्रिर्न नभो न भूमि-
र्नासीत्तमोज्योतिरभूच्च नान्यत् ।
श्रोत्रादिबुद्धयानुपलभ्यमेकं
प्राधानिकं ब्रह्म पुमांस्तदासीत् ॥२३॥
विष्णोः स्वरूपात्परतो हि ते द्वे
रूपे प्रधानं पुरुषश्च विप्र ।
तस्यैव तेऽन्येन धृते वियुक्ते
रूपान्तरं तद्द्विज कालसंज्ञम् ॥२४॥
प्रकृतौ संस्थितं व्यक्तमतीतप्रलये तु यत् ।
तस्मात्प्राकृतसंज्ञोऽयमुच्यते प्रतिसञ्चरः ॥२५॥
अनादिभगवान्कालो नान्तोऽस्य द्विज विद्यते ।
अव्युच्छिन्नास्ततस्त्वेते सर्गस्थित्यन्तसंयमाः ॥२६॥
गुणसाम्ये ततस्तस्मिन्पृथक्पुंसि व्यवस्थिते ।
कालस्वरूपं तद्विष्णोर्मैत्रेय परिवर्त्तते ॥२७॥
ततस्तु तत्परं ब्रह्म परमात्मा जगन्मयः ।
सर्वगः सर्वभूतेशः सर्वात्मा परमेश्वरः ॥२८॥
प्रधानपुरुषौ चापि प्रविश्यात्मेच्छया हरिः ।
क्षोभयामास सम्प्राप्ते सर्गकाले व्ययाव्ययौ ॥२९॥

हे विद्वान्! वेदों के ज्ञाता ब्रह्मज्ञानी व्यक्ति इस प्रधान को ही लक्ष्य करके निम्नलिखित श्लोक द्वारा उसका वर्णन किया करते हैं। "प्रलय काल में दिन—रात्रि, आकाश--भूमि, अंधकार-प्रकाश कुछ भी न था। उस समय केवल प्रधान, ब्रह्म और पुरुष मात्र ही था" ॥२२-२३॥ हे द्विज! प्रधान और पुरुष ये दोनों रूप उपाधि

रहित विष्णु के स्वरूप से पृथक हैं। ये दोनों सृष्टि आरम्भ होने के समय पृथक हो जाते हैं और प्रलय काल में एक अव्यक्त रूप में लय हो जाते हैं ॥२४॥ महाप्रलय के समय समस्त विश्व प्रकृति में अन्तर्निहित रहता है इसलिए उसे प्राकृत-प्रलय कहते हैं ॥२५॥ कालरूप भगवान अनादि हैं, इनका कोई अन्त नहीं है। इसलिए सृष्टि-स्थिति और प्रलय के क्रम का भी कभी अन्त नहीं होता, ये प्रवाह रूप से बराबर होते हैं ॥२६॥ हे मैत्रेय ! प्रलय कालमें सत्व-रज-तम की निष्क्रय अवस्था होकर गुण-साम्य हो जाता है और पुरुष प्रकृति से पृथक अवस्था में रहने लगता है, तब भी भगवान विष्णु का वह काल स्वरूप बना रहता है ॥२७॥ तदनन्तर सृष्टि काल के आजाने पर ब्रह्म परमात्मा, जगत्मय सर्वगामी, सर्वभूतेश्वर, सर्वात्मा परमेश्वर ने स्वयं की इच्छानुसार परिणामी पुरुष में प्रविष्ट होकर उनको सृष्टिकार्य के लिए क्षोभित और प्रेरित किया ॥२८-२९॥

यथा सन्निधिमात्रेण गंधः क्षोभाय जायते ।
मनसो नोपकर्तृत्वात्तथासौ परमेश्वरः ॥३०॥

स एव क्षोभ्यको ब्रह्मन् क्षोभश्च पुरुषोत्तमः ।
स संकोचविकासाभ्यां प्रधानत्वेऽपि च स्थितः ॥३१॥

विकासाणुस्वरूपश्च ब्रह्मरूपादिभिस्तथा ।
व्यक्तस्वरूपश्च तथा विष्णुः सर्वेश्वरेश्वरः ॥३२॥

गुणसाम्यात्ततस्तस्मात्क्षेत्रज्ञाधिष्टितान्मुने ।
गुणव्यञ्जनसम्भूतिः सर्गकाले द्विजोतम ॥३३॥

प्रधानत्त्वमुद्भूत महान्तं तत्समावृणोत् ।
सात्विको राजचंसश्व तामसश्च त्रिधा महान् ॥३४॥

प्रधानतत्वेन समं त्वचा बीजमिवावृतम् ।
वैकारिकस्तंजसश्च भूतादिश्चैव तामसः ॥३५॥

पर इस कार्य में परमेश्वर की कोई क्रियाशीलता नहीं होती। जैसे गन्ध के समीप होने से मन में चञ्चलता उत्पन्न होती है, परमेश्वर

का यह क्षोभ (जनकत्व) उसी प्रकार का होता है। वास्तव में वे परमेश्वर ही सङ्कोच और विकास द्वारा क्षुभित होने वाले और क्षोभ करने वाले हैं और वे ही प्रधान प्रकृति के रूप में रहते हैं ॥३०–३१॥ आकाश आदि पञ्चभूत, ब्रह्मा आदि समस्त जीव और व्यक्त सृष्टि के रूप में भी वे परमेश्वर ही रहते हैं ॥३२॥ हे द्विजोत्तम ! सृष्टिकाल उपस्थित होने पर पुरुष द्वारा अधिष्ठित उस गुण साम्य से गुणव्यञ्जन अर्थात् महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ। महत्तत्त्व तीन प्रकार का होता है—सात्विक, राजस और तामस। जिस प्रकार बीज छिलके से ढका रहता है उसी प्रकार यह महत्तत्त्व भी प्रधान तत्व से सर्वत्र व्याप्त रहता है ॥ ३३ ३५ ॥

त्रिविधोऽयमहङ्कारो महत्तत्वादजयात ।
भूतेन्द्रिाणां हेतुः स त्रिगुणत्वान्महामुने ॥३६॥
यथा प्रधानेन महान्महता स तथावृतः ।
भूतादिस्तु विकुर्वाणः शब्दतन्मात्रक ततः ॥३७॥
ससर्ज शब्दतन्मात्रादाकाश शब्दलक्षणम् ।
शब्दमात्रं तथाकाशं भूतादिः स समावृणत् ॥३८॥
आकाशस्तु विकुर्वाणः स्पर्शमात्रं ससर्ज ह ।
बलवानभवद्वायुस्तस्य स्पर्शो गुणो मतः ॥३९॥
आकाशं शब्दमात्र तु स्पशमात्र समावृणोत् ।
ततो वायुर्विकुर्वाणो रूपमात्र ससज ह ॥४०॥
ज्योतिरुत्पद्यते वायोस्तद्रूपगुणमुच्यते ।
स्पशमात्रं तु वंवायूरूपमात्र समावृणोत् ॥४१॥
ज्योतिश्चापि विकुर्वाण रसमात्रं ससर्ज ह ।
सम्भवन्ति ततोऽम्भांसि रसाधाराणि तानिच ॥४२॥
रसामात्राणि चाम्भांसि रूपमात्रं समावृणोत् ।
विकुर्वाणानि चाम्भांसि गंधमात्रं ससर्जिरे ॥४३॥

महत्तत्व से वैकारिक अर्थात् सात्विक, तेजस (राजस) और भूतादि (तामस) इन तीन प्रकार के अहंकार तत्व की उत्पत्ति हुई। अहंकार त्रिगुणात्मक होने के कारण ही भूत, इंद्रिय और देवताओं के उद्‌भव का कारण होता है ।। ३६ ।। जिस प्रकार प्रधान तत्व द्वारा महत्तत्व आवृत्त होता है, उसी प्रकार अहंकार महत्तत्व से आवृत्त रहता है। तामस अहंकार ने क्षुभित--कार्योन्मुख होकर शब्द तन्मात्रा और शब्द तन्मात्रा से शब्द गुणों वाले आकाश को सृष्टि की और दोनों को आवृत कर लिया। आकाश ने क्षुभित होकर स्पर्श तन्मात्रा की सृष्टि की और उससे स्पर्श गुण विशिष्ट बलवान वायु की उत्पत्ति हुई और आकाश ने वायु को आवृत्त कर लिया ।।३७-३९।। इस पश्चात् वायु क्षुभित होने पर उसमें से रूप मात्र और ज्योति उत्पन्न हुई ज्योति का गुण रूप है ज्योति वायु द्वारा आवृत्त हुई। ज्योति के क्षुभित होने पर रस मात्र उत्पन्न हुआ। उससे रस विशिष्ट जल का जन्म हुआ और वह ज्योति द्वारा आवृत्त हुआ। जल के क्षुभित होने पर गंध मात्र की सृष्टि हुई, उससे पृथ्वी की उत्पत्ति हुई जिसका विशेष गुण गन्ध है ।।४०–४३।।

संघातो जायते तस्मात्तस्य गन्धो गुणो मतः ।
तस्मिंस्तस्मिंस्तुतन्मात्र तेनतन्मात्रतास्मृता ।। ४४ ।।
तन्मात्राण्यविशेषाणि अविशेषास्ततो हि ते ।
न शांता नापि घोरास्ते न मूढाश्चाविशेषण ।। ४५ ।।
भूततन्मात्रसर्गोऽयमहङ्कारात्तु तामसत् ।
तैजसानीन्द्रियण्याहुर्देवा वैकारिक दश ।। ४६ ।।
एकादशं मनश्चात्र देवा वैकारिकाः स्मृताः ।
त्वक् चक्षुर्नासिका जिह्वा श्रोत्रमत्र च पचमम् ।। ४७ ।।
शब्दादीनामवाप्त्ययं बुद्धियुक्तानि वै द्विज ।
पायूपस्थौ करौ पादौ वाक् च मैत्रेय पंचमी ।। ४८ ।।

विसर्गशिल्पगन्युक्ति कर्म तेषाँ च कथ्यते ।
आकाशवायुतेजाँसि सलिलं पृथिवी यथा ॥ ४६ ॥

इन आकाश आदि भूतों में शब्द आदि की मात्रा होती है, जिससे उसे तन्मात्रा कहा जाता है। सब तन्मात्राओं को 'अविशेष' माना जाता है। उनको शान्त, घोर या मूढ़ आदि विशेषण नहीं लगाये जाते। यह केवल तामस अहङ्कार से समस्त भूतों की सृष्टि होती है। दश इन्द्रियों को तैजस अथवा राजस अहंकार से उत्पन्न कहा जाता है। और इन्द्रियों के दश देवताओं को वैकारिक अर्थात् सात्विक अहंकार से उत्पन्न माना गया है ॥४४–४५। ग्यारहवीं इन्द्रिय मन है, जिसके देवता चन्द्र ब्रह्म, रुद्र आदि को कहा गया है। हे द्विज ! श्रोत्र चर्म, चक्षु, जिह्वा, और नासिका से पांच ज्ञानेन्द्रियाँ ही शब्दादि को ग्रहण करने की शक्ति और बुद्धि रखती है। गुदा, उपस्थ, हाथ, पैर और जिह्वा पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं जिनका कार्य मल-मूत्र विसर्जन, शिल्प, गति और बोलना है ॥४७—४६॥

शब्दादिभिर्गुणब्रह्मन्संयुक्तान्युत्तरोत्तरैः ।
शान्ता घोराश्च मूढाश्च विशेषास्तेन ते स्मृतः ॥ ५०
नानावीर्याः पृथग्भूतास्ततस्ते सहंति बिना ।
नाशक्नुवन्प्रजाः स्रष्टुमसमागम्य कृत्स्नशः ॥ ५१ ॥
समेत्यान्योऽन्यसंयोगं परस्परसमाश्रयाः ।
एकसंघातलक्ष्याश्च सम्प्रप्यैक्यमशेषतः ॥ ५२ ॥
पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च प्रधानानुग्रहेण च ।
महदाद्या विशेषान्ता ह्यण्डऽमुत्पादयन्ति ते ॥ ५३ ॥
तत्क्रमेण विवृद्धं सज्जलबुद्बुदवत्समम् ।
भूतेभ्योऽण्डं महाबुद्धे महत्तदुदकेशयम् ॥ ५४ ॥
प्राकृतं ब्रह्मरूपस्य विष्णोः स्थानमनुत्तमम् ॥ ५५ ॥
तत्राव्यक्तस्वरूपाऽसौ व्यक्तरूपो जगत्पतिः ।
विष्णुब्रह्मस्वरूपेण स्वयमेव व्यवस्थितः ॥ ५६ ॥

हे ब्रह्मन् ! आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी एक से एक अधिक संख्या में शब्दादि गुणों से युक्त हैं। इनको शान्त घोर. मूढ़ होने के कारण 'विशेष' कहा जाता है। इन पंच तत्वों में विभिन्न प्रकार की शक्तियाँ हैं, इसलिए वे परस्पर में बिना मिले हुए ससार की रचना नहीं कर सकते, इसलिए एक दूसरे, एक ही लक्ष्य वाले महत्तत्त्व से लेकर विशेष पर्यन्त प्रकृति के सभी रूपों ने 'पुरुष' से अधिष्ठित होकर प्रधान (प्रकृति) के अनुग्रह से ब्रह्माण्ड की उत्पति की ॥५०-५३॥ हे महाबुद्धिमान ! वह अण्ड जल के बुलबुले के समान गोलाकार तथा महान प्राकृत पंचभूतों की सहायता से क्रमशः बढ़ता गया। अव्यक्त रूप जगत्पति भगवान विष्णु व्यक्त रूप होकर इस अण्ड में निवास करने लगे ॥ ५४-५६ ॥

मेरुल्बमभूत्तस्य जरायुश्च महीधराः ।
गर्भोदकं समुद्राश्च तस्यासन्सुमहात्मनः ॥५७॥
साद्रिद्वीपसमुद्राश्च सज्योतिर्लोकसंग्रहः ।
तस्मिन्नण्डेऽभवद्विप्र सदेवासुरमानुषः ॥५८॥
वारिवह्नयनिलाकाशैस्ततो भूतादिना बहिः ।
वृतं दशगुणैरण्ड भूतादिमहता तथा ॥५९॥
अव्यक्तेनावृतो ब्रह्मंस्तैः सर्वैः सहितो महान् ।
एभिरावरणैरण्डं सप्तभिः प्राकृतैर्वृतम् ।
नारिकेलफलस्यान्तर्बीज बाह्यदलैरिव ॥६०॥
जुषन् रजोगुणं तत्र स्वयं विश्वेश्वरो हरिः ।
ब्रह्मा भूत्वास्य जगतो विसृष्टा सम्प्रवर्त्तते ॥६१॥
सृष्टं च पात्यनुयुगं यावत्कल्पविकल्पना ।
सवभृद्भगवानविष्णुरप्रमेयपराक्रमः ॥६२॥
तमोद्रेको च अल्पन्ति रुद्ररूपा जनार्दनः ।
मत्रेयाखिलभूतानि भक्षयत्यतिदारुणः ॥६३॥

सुमेरु पर्वत इस गर्भ रूप अण्ड की उल्ब (गर्भ-वेष्ठन), अन्यान्य पर्वत जरायु और समस्त समुद्र उसके गर्भोदक हुए। हे विप्र ! इसीं अण्ड से पर्वतों सहित समस्त द्वीप, समस्त समुद्र और देव, असुर मनुष्य तथा समस्त प्राणी उत्पन्न हुए ।।५७-५८।। उस अण्ड में जल अग्नि, आकाश भूतादि (तामस अहंकार पूर्व-पूर्व की अपेक्षा दश गुणा बाहर से आवृत्त किये हुए था। ये सब भूतादि महत्तत्व से आवृत्त थे और सबके सहित महत्तत्व अव्यक्त से आवृत था। जैसे नारियल के भीतर की गिरी बाहर के खोल और छिलके से घिरी हुई होती है उसी प्रकार यह ब्रह्मांड सात प्राकृत आवरणों से आवृत रहता है ।।५९-६०।। विश्वेश्वर भगवान रजोगुण का अवलम्बन करके स्वयं ब्रह्मा होकर सृष्टि कार्य में प्रवृत्त हुये। अतुलित पराक्रम से भगवान विष्णु सत्वगुण का अवलम्बन करके कल्प-काल तक युग-युग में सकल सृष्टि का पालन करते हैं। तत्पश्चात जब कल्प का अन्त होता है तब ही भगवान तमोगुण सम्पन्न होकर अति भीषण रूप में समस्त भूतों को भक्षण कर लेते हैं ।।६१-६३।।

भक्षयित्वाच भूतानि जगत्येकार्णवीकृते ।
नागपयङ्कशयने शेते च परमेश्वरः ।।६४।।
प्रबुद्धश्च पुनः सृष्टिं करोति ब्रह्मरूपधृक ।।६५।।
सृष्टिस्थित्यन्तकरणीं ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम् ।
स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः ।।६६।।
स्रष्टा सृजति चात्मानं विष्णुः पाल्यं च पाति च ।
उपसंह्रियते चान्ते संहर्ता च स्व यंप्रभुः ।।६७।।
पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाश एव च ।
सर्वेन्द्रियान्तः करणं पुरुषाख्य हि यज्जगत् ।।६८।।
स एव सर्वभूतात्मा विश्वरूपो यतोव्ययः ।
सर्गादिकंतु तस्यैव भूतस्थमुपकारकम् ।।६९।।
स एव सृज्यः स च सर्गकर्ता स एव पाल्यत्ति च पाल्यते च ।
ब्रह्माद्यवस्था भिरशेषमूर्तिर्विष्णुर्वरिष्ठो वरदो वरेण्यः ।।७०।।

जब सब भूतों को उदरस्थ कर लेते हैं और जगत एकार्णव हो जाता है तब वे भगवान शेषशैया पर शयन करने लगते हैं। फिर जगने पर ब्रह्मा का रूप धर कर नई सृष्टि करते हैं। ये एक मात्र भगवान जनार्दन ही सृष्टि—स्थिति और प्रलय में ब्रह्मा, विष्णु और शिव के नामों को ग्रहण करते हैं ॥६४—६६॥ भगवान ब्रह्मा होकर स्वयं की सृष्टि करते हैं, विष्णु होकर अपना पालन करते हैं और अन्त में रुद्र होकर अपना ही संहार करते हैं। क्योंकि पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश समस्त इन्द्रियों और अन्तःकरण युक्त जगत उस भगवान का ही विस्तृत रूप है, तब सृष्टि रचना आदि सब कुछ उन्हीं के लिये है। वे ही सृजन किये जाते हैं, वे ही सृष्टिकर्ता हैं, वे ही पालन और भक्षण करते हैं, वे ही पाले जाते हैं और वे ही ब्रह्मा आदि की अवस्था में सब रूपों में व्याप्त होते हैं। अतएव भगवान विष्णु ही वरिष्ठ, वरद और वरेण्य हैं ॥ ६७—७० ॥

तीसरा अध्याय

निर्गुणस्याप्रमेयस्य शुद्धस्याप्यमलात्मनः।
कथं सर्गादिकर्तृत्वं ब्रह्मणोऽभ्युपगम्यते ।१।
शक्तयः सर्वभावानामचिन्त्यज्ञानगोचराः।
यतोऽतो ब्रह्मणस्तास्तु सर्गाद्या भावशक्तयः।२।
भवन्ति तपतां श्रेष्ठ पावकस्य यथोष्णता।
तन्निबोध यथा सर्गे भगवान्सम्प्रवर्त्तते।३।
नारायणाख्यो भगवान्ब्रह्मा लोकपितामहः।
उत्पन्नः प्रोच्यते विद्वन्नित्यमेवोपचारतः।४।
निजेन तस्य मानेन आयुर्वर्षशतं स्मृतम्।
तत्पराख्यं तदर्द्धं च परार्द्धमभिधीयते।५।

कालस्वरूपं विष्णोश्च यन्मयोक्तं तवानघ ।
तेन तस्य निबोध त्वं परिमाणोपपादनम् ॥६॥
अन्येषां चैव जन्तूनां चराणामचराश्च ये ।
भूभूभृत्सागरादीनामशेषाणां च सतम ॥७॥
काष्ठा पञ्चदशाख्याता निमेषा मुनिसत्तम ।
काष्टत्रिंशत्तकला त्रिंशत्कला मौहूर्तिको विधिः ॥८॥
तावत्संख्यैरहोरात्रं मुहूर्त्तैर्मानुषं स्मृतम् ।
अहोरात्राणि तावन्ति मासः पक्षद्वयात्मकः ॥९॥

मैत्रेय ने पूछा कि जो परमात्मा निर्गुण, अप्रमेय, शुद्ध और अमल है उसको सृष्टि का कर्त्ता कैसे माना जाय ॥१॥ पाराशर जी ने उत्तर दिया कि जिस प्रकार समस्त भाव रूप पदार्थों की शक्ति बिना तर्क के मानली जाती है, जिस प्रकार अग्नि में उष्णता होना उसका स्वभाव सिद्ध गुण है, उसी प्रकार भगवान का सृष्टिकार्य से सम्बन्ध है उसे मैं भली प्रकार समझता हूँ ॥२—३॥ जैसे यह कहा जाता है कि नारायण नाम वाले लोक पितामह ब्रह्मा उत्पन्न हुए—यह एक उपचार रूप से है। ब्रह्मा की आयु ब्राह्म वर्ष के हिसाब से सौ वर्ष की बतलाई गई है। इन सौ वर्षों का नाम 'पर' होता है और इसके दूसरे अर्द्धांश का नाम 'परार्द्ध' कहा जाता है ॥४—५॥ हे निष्पाप, मैंने तुमको विष्णु का जो काल रूप बतलाया है उसके द्वारा ब्रह्मा, अन्य प्राणी पृथ्वी तथा अन्य भूतों सागर आदि का परिमाण श्रवण करो ॥६॥ पन्द्रह निमेष की एक काष्ठा होती है, तीस काष्ठा की एक कला होती है, तीस कला की एक घड़ी होती है और दो घड़ी का एक मुहूर्त होता है। तीस मुहूर्त का मनुष्यों का एक दिन-रात्रि होता है। तीस दिन-रात्रि का एक महीना होता है जिसमें दो पखवारे होते हैं ॥७—९॥

तैः षड्भिरयनं वर्षं द्वेऽयने दक्षिणोत्तरे ।
अयनं दक्षिणं रात्रिर्देवाना मुत्तरं दिनम् ॥१०॥

दिव्यैर्वर्षसहस्रैस्तु कृतत्रेतादिसंज्ञितम् ।
चतुर्युगं द्वादशभिस्तद्विभागं निबोध मे ॥११॥
चत्वारित्रीणि द्वे चैकं कृतादिषु यथाक्रमम् ।
दिव्याब्दानां सहस्राणि युगेष्वाहुः पुराविदः ॥१२॥
तत्प्रमाणैः शतैः सन्ध्या पूर्वा तत्राभिधीयते ।
सन्ध्यांशश्चैव तत्तुल्यो युगस्यानन्तरो हि सः ॥१३॥
सन्ध्यासन्ध्यांशयोरन्तयः कालोमुनिसत्तम ।
युगाख्यः स तु विज्ञेयः कृतत्रेतादिसंज्ञितः ॥१४॥
कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिश्चैव चतुर्युगम् ।
प्रोच्यते तत्सहस्रं च ब्रह्मणो दिवसं मुने ॥१५॥

छः महीनों का एक अयन और दो अयन का एक वर्ष होता है। इसमें से दक्षिण अयन में देवताओं की रात्रि और उत्तर अयन में उनका दिन होता है। देवताओं के परिमाण से बारह हजार वर्षों के सतयुग, त्रेता आदि चारों युग होते हैं। उनके विभागों का हिसाब इस प्रकार है ॥१०-११॥ प्राचीन तत्व के ज्ञाता इन चार युगों के परिमाण को क्रमशः चार, तीन, दो और एक सहस्र वर्षों का बतलाते हैं। प्रत्येक युग की सन्ध्या का परिमाण क्रम से चार, तीन, दो और एक सौ वर्ष का होता है और सन्ध्यांश (युग की समाप्ति का समय) भी इतना ही होता है ॥१२-१३॥ सन्ध्या से लेकर सन्ध्यांश के बीच तक जितना समय व्यतीत होता है, उसी को सतयुग, त्रेता आदि कहा जाता है ; हे मुनिवर सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग इन चारों युगों के एक हजार बार बीत जाने अर्थात चार हजार युगों का जितना समय होता है उसे ब्रह्मा का एक दिन कहा जाता है ॥१४-१५॥

ब्रह्मणो दिवसे ब्रह्मन्मनवस्तु चतुर्दश ।
भवति परिमाणं च तेषां कालकृतं शृणु ॥१६॥

सप्तर्षयः सुराः शक्रो मनुस्तत्सूनवो नृपाः ।
एकाकाले हि सृज्यन्ते संह्रियन्ते च पूर्ववत् ॥१७॥
चतुर्युगाणां संख्याया साधिका ह्येकसप्ततिः ।
मन्वन्तरं मनोः कालः सुरादीनां च सत्तम ॥१८॥
अष्टौशतसहस्राणिदिव्यया संख्यया स्मृतम् ।
द्विपाञ्चाशतथान्यानि सहस्राण्यधिकानि तु ॥१९॥
त्रिंशत्कोट्यस्तु सम्पूर्णाः संख्याताः संख्यया द्विज ।
सप्तषष्टिस्तथान्यानि नियुतानि महामुने ॥२०॥
विंशतिस्तु सहस्राणि कालोऽयमधिकं बिना ।
मन्वन्तरस्य सङ्ख्येयं मानुषैर्वत्सरैर्द्विज ॥२१॥
चतुर्दशगुणो ह्येष कालो ब्राह्ममहः स्मृतम् ।
ब्राह्मो नैमित्तिको नाम तस्यान्ते प्रतिसञ्चरः ॥२२॥
तदा हि दह्यते सर्वं त्रैलोक्यं भूर्भुवादिकम् ।
जनं प्रयान्ति तापार्ता महर्लोकनिवासिनः ॥२३॥

ब्रह्मा के एक दिन में चौदह मनु होते हैं, उनका भी काल विभाग श्रवण कर लो। सप्तर्षि, देवता, इन्द्र, मनु और उनके पुत्र समस्त राजा आदि सब प्रत्येक मन्वन्तर के पृथक होते हैं, वे उसी काल में उत्पन्न होते हैं और उसी में समाप्त हो जाते हैं ॥१६–१७॥ हे मुने ! इस प्रकार दो सौ पिच्यासी से कुछ अधिक समय तक एक मनु और देवता आदि का समय होता है, इसी का मन्वन्तर हैं ॥१७—१८॥ दिव्य-संख्या के परिमाण से मन्वन्तर का परिणाम आठ लाख दो सौ पचास वर्ष होता है ॥१९॥ मनुष्यों की गिनती के अनुसार यह समय तीस करोड़ सड़सठ लाख बीस हजार वर्ष होता है। इस संख्या को चौदह से गुणा कर देने से जितना समय होता है वही ब्रह्मा का एक दिन कहा जाता है और उसके पश्चात् ब्रह्मा की रात्रि (निद्रा का समय) आ जाता है और ब्रह्म प्रलय हो जाती है ॥२१—२२॥ उस समय भूः भुवः आदि तीनों लोक दग्ध हो जाते हैं और महर्लोक के निवासी

ताप से व्यथित होकर जनलोक में चले जाते हैं ।।२३।।

एकार्णवे तु त्रैलोक्ये ब्रह्मा नारायणात्मकः ।
भोगिशय्यां गतः शेते त्रैलोक्यग्रासबृंहितः ।।२४।।
जनस्थैर्योगिभिर्देवश्चिन्त्यमानोऽब्जसम्भवः ।
तत्प्रमाणां हि तां रात्रिं तदन्ते सृजते पुनः ।।२५।।
एवं तु ब्राह्मणो वर्षमेव वर्षशतं च यत् ।
शतं हि तस्य वर्षाणां परमायुर्महात्मनः ।।२६।।
एकमस्य व्यतीतं तु परार्द्धं ब्रह्मणोऽनघ ।
तायान्तेऽभून्महाकल्पः पाद्म इत्यभिविश्रुतः ।।२७।।
द्वितीलस्य परार्द्धस्य वर्तमानस्य वै द्विज ।
वाराह इति कल्पोऽयं प्रथमः परिकीर्तितः ।।२८।।

इसके पश्चात् तीनों लोकों का एक रूप हो जाता है, नारायण स्वरूप ब्रह्मा तीनों लोकों को ग्रसित कर शेषशैया पर शयन करने लग जाते हैं ।।४।। तब जन लोक निवासी योगियों द्वारा चिन्तमान ब्रह्माजी ब्रह्मदिन के बराबर वर्षों तक ही रात व्यतीत करते हैं । इसके पश्चात फिर सृष्टि होती है ।।२५।। इसी प्रकार दिन-रात्रि के परिमाण से पक्ष, मास आदि की गिनती से ब्रह्मा का एक वर्ष होता है । ऐसे सौ वर्षों की ब्रह्मा की परमायु होती है । हे निष्पाप द्विज ! इस समय तक ब्रह्मा का एक परार्द्ध व्यतीत हो चुका है और उसके अन्त में पद्म नामक महाकल्प पूर्ण हो चुका है । द्वितीय परार्द्ध का यह प्रथम कल्प वराह के नाम से कहा जाता है ।।२६—२८।।

—★—

चौथा अध्याय

ब्रह्मा नारायणाख्योऽसौ कल्पादौ भगवान्यथा ।
ससर्ज सर्व भूतानि तदाचक्ष्व महामुने ॥१॥
प्रजाः ससज भगवान्ब्रह्मा नारायणात्मकः ।
प्रजापतिपतिर्देवो यथा तन्मे निगामय ॥२॥
अतीतकल्पावसाने निशासुप्तोत्थितः प्रभुः ।
सत्वोद्रिक्तस्तथा ब्रह्मा शून्यं लोकमवक्षत ॥३॥
नारायणः परोऽचिन्त्यः परेषामपि स प्रभुः ।
ब्रह्मस्वरूपी भगवाननादिः सर्व सम्भवः ॥४।
इम चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति ।
ब्रह्मस्वरूपिणं देव जगतः प्रभवाप्ययम् ॥५॥
आपो नारा एति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।
अयनं तस्य तः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥६॥
तोयान्तः स्थां महीं ज्ञात्वा जग येकार्णवीकृते ।
अनुमानात्तदुद्धारं कतु कामः प्रजापतिः ॥७॥

मैत्रेय ने कहा हे महामुने ! इन नारायण नामधारी ब्रह्मा ने कल्प के आदि में जिस प्रकार सब भूतों की सृष्टि की उसका विवरण सुनाइये ॥ १ ॥ पाराशर ने कहा, प्रजापतियों के पति भगवान नारायण ने जिस प्रकार प्रजा जी सृष्टि की उसका वर्णन सुनो-प्राचीन कल्प के व्यतीत हो जाने पर रात्रि में शयन के पश्चात उठने पर सत् से युक्त होकर प्रभु ब्रह्मलोक को शून्य अवस्था में देखते हैं ॥२-६॥ वे ही नारायण, पर, अचिन्त्य, श्रेष्ठ सबके प्रभु ब्रह्मा अनादि और सर्व सम्भव कहे जाते हैं । जगत की उत्पत्ति और लय करने वाले प्रभु ब्रह्मा के सम्बन्ध में पंडितगण यह बतलाते हैं कि 'अप' (जल तत्व) को 'नार' कहा जाता है, इसलिये अप (जल) नर पुरुषोत्तम से उत्पन्न हैं । यही 'नार' उनका

पूर्व अयन (निवासस्थान) होता है । वे नारायण के नाम से प्रसिद्ध हैं । ।।४-५-६।। जगत को जलमय देखकर उन प्रभु ने पृथ्वी के जलान्तर्गत होने का अनुमान किया और उसके उद्धार की कामना की ।।७।।

अकरोत्स्वतनूमन्यां कल्पादिषु यथा पुरा ।
मत्स्यकूर्मादिकां तद्वद्वारा वपुरास्थितः ।।८।।
वेदयज्ञमयं रूपमशेषजगतः स्थितौ ।
स्थितः स्थिरात्मा सर्वात्मा परमात्मा प्रजापतिः ।।९।।
जनलोकगतैस्सिद्धैनकद्यै रभिष्टतः ।
प्रविवेश तदा तोयमात्माधारो धराधरः ।।१०।।
निरीक्ष्य तं तद देवो पातालतलमागतम् ।
तुष्टाव प्रणता भूत्वा भक्तिनम्रा वसुन्धर ।।११।।
नमस्ते पुण्रीकाक्ष शङ्खचक्रगदाधर ।
मामुद्धरास्मादद्य त्व त्वत्तोऽहं पूवमुत्थता । १२।।
वताहमुद्घृता पूर्वं त्वन्मयाहं जनादन ।
तथान्यानि च भूतानि गगनादीन्यशेषतः ।।१३।।
नमस्ते परमात्मात्मन्पुरुषात्मन्नमोऽस्तु ते ।
प्रधान व्यक्त भूताय कालभूताय ते नमः ।।१४।।

तब उन अशेष जगत के मूलभूत, स्थिरात्मा, सर्वात्मा, परमात्मा, आत्माधार, धराधर, प्रजापति ने जिस प्रकार पूर्व कल्पों में मत्स्य, कूर्म, आदि का रूप धारण किया था उसी प्रकार वेद-यज्ञमय वाराह का शरीर अवलम्बन करके जन लोक स्थित सिद्ध गणों द्वारा प्रस्तुत होते हुए जल के भीतर प्रवेश किया ।। १८-१६ ।। उस समय बसुन्धरा देवी ने उनको पाताल में आया हुआ देखकर भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और उनकी स्तुति करने लगी ।।११।। पृथ्वी ने कहा हे सब भूत ! तुमको नमस्कार । हे शंख-गदाधर ! तुमको नमस्कार । आपने पहले भी मेरा उद्धार किया था आज भी इस पाताल तल से मुझे निकालिये । आप तो पृथ्वी से आकाश तक समस्त भूतों के रचियता हैं । हे परमात्मन् ! आपको नमस्कार । हे

पुरुषात्मन ! आपको नमस्कार। आप प्रधान, व्यक्त रूप एवं काल स्वरूप को नमस्कार ॥११—१४॥

त्वं कर्ता सर्वभूतानां त्वं पाता त्वं विनाशकृत्म् ।
सर्गादिषु प्रभो ब्रह्माविष्णुरुद्रात्मरूपधृक् ॥१५॥
सम्भक्षयित्वा सकलं जगत्येकार्णवीकृते ।
शेषेत्वमेव गोविन्द चिन्त्यमानो मनीषिभिः ॥१६॥
भवतो यत्परं तत्वं तन्न जानाति कश्चन ।
अवतारेषु यद्रूपं तदर्चन्ति दिवौकसः ॥१७॥
त्वामाराध्य पर ब्रह्म याता मुक्ति मुमुक्षवः ।
वासुदेवमानाराध्य को मोक्षं समवाप्स्यति ॥१८॥
यत्किञ्चिन्मनसा ग्राह्यं यद्ग्राह्यं चक्षुरादिभिः ।
बुद्धया च यत्परिच्छेद्यं तद्रूपमखिलं तव ॥१९॥
त्वन्मयाहं त्वदाधारा त्वत्सृष्टा त्वत्समाश्रया ।
माधवीमिति लोकोऽयमभिधत्ते ततोहिमाम् ॥२०॥

हे प्रभो ! सृष्टि आदि के लिए आप ही ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र का स्वरूप धारण करते हो, तुम ही सर्वभूतों के कर्ता हो, तुम ही रचने वाले और तुम ही विनाश करने वाले हो ॥५॥ हे गोविन्द ! जगत के जलमय होने पर सबको भक्षण करके तुमही मनीषियों द्वारा चिन्त्यमान होकर शयन करने लगते हो ॥१६॥ आपके परम तत्व को तो कोई जान नहीं सकता, अतः अवतार में जैसा प्रकट होता है उसी की देव-गण अर्चना करते हैं ॥१७॥ हे परब्रह्म ! तुम्हारी ही आराधना करके मोक्षकामी व्यक्ति मुक्ति प्राप्त करते हैं वासुदेव की आराधना के बिना कौन मोक्ष हो सकता है ? ॥१८॥ जो कुछ मन से ग्रहण किया जा सकता है, जो कुछ नेत्रों से ग्रहण किया जा सकता है और जो कुछ बुद्धि से जाना जा सकता है वह सब आपका ही स्वरूप है ॥१९॥ मैं भी आप ही से प्रकट हूँ, आपके ही आधार पर हूँ, आपकी ही बनाई हूँ, आपकी ही आश्रित हूँ, इसलिये मुझे लोग 'माधवी' कहते हैं ॥२०॥

जयाखिलज्ञानमय जय स्थूलमयाव्यय ।
जयानन्त जयाव्यक्त जय व्यक्तमय प्रभो ॥२१॥
परापरात्मन्विश्वात्मञ्जय यज्ञपतेऽनघ ।
त्व यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोङ्कारस्त्वमग्नयः ॥२२॥
त्व वेदास्त्व तदङ्गानि त्व यज्ञपुरुषो हरे ।
सूर्यादयो ग्रहास्तारा नक्षत्राण्यखिलं जगत् ॥२३॥
मूर्तामूतमदृश्य च दृश्यं च पुरुषोत्तम ।
यच्चोक्त यच्च नैवोक्तं मयात्र परमेश्वर ।
तत्सर्व त्वं नमस्तुभ्यं भूयो भूयो नमो नमः ।.२४॥
एवं संस्तूमयानस्तु पृथिव्या धरणीधरः ।
सामस्वरध्वनिः श्रीमाञ्जगर्ज परिघर्घरम् ॥२५॥
ततः समुत्क्षिप्य धरां स्वदंष्ट्रया महावराहः स्फुटपद्मलोचनः ।
रसातलादुत्पलपत्रसन्निभः समुत्थितो नील इवाचलो महान ।२६।
उत्तिष्ठता तेन मुखानिलाहृतं तत्सम्भवाम्भो जनलोकसंश्रयन् ।
प्रक्षालयामास हि तान्महाद्युतीन् सनंदनादीनपकल्मषान् मुनीन्२७
प्रयान्ति तोयानि खुराग्रविक्षत रसातलेऽधः कृतशब्दसन्तति ।
श्वासानिलास्ताः परितः प्रयान्ति सिद्धा जने ये नियता वसति।२८

हे अखिल ज्ञानमय ! आपकी जय हो, हे स्थूलमय अव्यय ! आपकी जय हो, जय अनन्त, जय अव्यक्त-जय व्यक्तमय ! प्रभो परमात्मन ! विश्वात्मन ! आप जय युक्त हों। हे अनघ यज्ञपते ! आप ही यज्ञ हैं, आप ही वषटकार हैं, आप ही ओंकार है आप ही अग्नि स्वरूप हैं ।२१-२२॥ हे हरे ! आप ही वेद हैं, आप ही वेदाङ्ग हैं, आप ही यज्ञ पुरुष हैं। हे पुरषोत्तम ! इस समय मैंने मूर्त-अमूत, अवश्य कठिन जो कुछ कहा है अथवा, नहीं कहा है, वह सब तुम ही हो, तुमको नमस्कार। ये परमेश्वर हे भूयो भूयो आपको नमस्कार ॥२४॥ पाराशर जी कहने लगे पृथ्वी द्वारा इस प्रकार स्तुति की जाने पर साम स्वर ध्वनि वाले महाप्रभु

धरणीधर घर्घर शब्द करके गर्जने लगे। तत्पश्चात कमल पत्र के समान स्निग्ध-श्याम प्रफुल्ल पद्मलोचन महा वाराह पृथ्वी को दांत पर उठाकर महान नीलाचल के समान रसातल से ऊपर आये। २५-२६॥ ऊपर उठते समय उनके मुँह से जो वायु निकली उससे ताड़ित होकर जल-राशि जनलोक स्थित निष्पाप सनन्दन आदि मुनियों तक पहुँची और उनको प्रक्षालित कर दिया। नीचे की ओर उस जलराशि ने छुरा से काटने की तरह रसातल में प्रवेश किया। उग्र वायु के वेग से जनलोक में निवास करने वाले सिद्धगण इधर-उधर क्षिप्त होकर विचलित हो गये ॥ २८ ॥

उत्तिष्ठतस्तस्य जलार्द्र कुक्षेर्महावराहस्य महीं विगृह्य।
विधुन्वतो वेदमयं शरीरं रोमान्ततरस्था मुनयः स्तुवन्ति ॥२९॥
तं तुष्टुवुस्तोषपरीतचेतसो लोके जने ये निवसन्ति योगिनः।
सनन्दनाद्या ह्यतिनम्रकन्धरा धराधरं धीरतरोद्धतेक्षणम् ॥३०॥
जयेश्वराणां परमेश केशव प्रभो गदाशंखधरासिचक्रधृक्।
प्रसूतिनाशस्थितिहेतुरीश्वर स्त्वमेव नान्यत्परमं च यत्पदम् ॥३१॥
पादेषु वेदास्तव यूपदंष्ट्र दन्तेषु यज्ञाश्चितयश्च वक्त्रे।
हुताशजिह्वोऽसि तनूरुहाणि दर्भाः प्रभो यज्ञपुमांस्त्वमेव ॥३२॥
विलोचने रात्र्यहनी महात्मन्सर्वाश्रय ब्रह्म पर शिरस्ते।
सूक्तान्यशेषाणि सटाकलापो घ्राण समस्तानि हवींषि देव ॥३३॥
स्रुक्तुण्ड सामस्वरधीरनाद प्राग्वंशकायाखिलसत्रसन्धे।
पूर्तेष्टधर्मश्रवणोऽसि देव सनातनात्मन्भगवन्प्रसीद ॥३४॥
पदक्रमाक्रान्तभुवंभवंत मादिस्थितं चाक्षर विश्वमूर्ते।
विश्वस्य विद्मः परमेश्वरोऽसि प्रसीद नाथोऽसि परावरस्य ॥३५॥

पृथ्वी को धारण करके जल से भीगे हुये और कम्पित काय उन महावराह के वेदमय शरीर में मुनियों ने आश्रय ग्रहण किया। तब वे जनलोक निवासी सनन्दादि मुनिगण आनन्द पूर्वक अन्तःकरण से अत्यन्त नम्रता से झुक कर उन उदार लोचन धरणीधर की स्तुति करने लगे।

।।२९-३०।। हे ब्रह्मा आदि ईश्वरों के परमेश ! गदा-शंख-असि-चक्र के धारण करने वाले प्रभु ! केशव ! आपकी जय हो। आप सृष्टि, स्थिति और प्रलय के कर्त्ता ईश्वर हो, परम पद आपसे भिन्न नहीं है ।।३१।। हे यूप-देष्ट्र यज्ञःपुरुष ! आपके चारों पैर ही वेद स्वरूप हैं, दाँत यज्ञ हैं, मुख अग्नि कुण्ड है, आपकी जिह्वा हुताशन है, समस्त रोम दर्भ (कुश) हैं, महात्मन ! आपके दोनों नेत्र ही दिन-रात्रि हैं, मस्तक सर्वाश्रय ब्रह्म-पद है, गर्दन पर की केशर अशेष सूक्त (पुरुष-सूक्त आदि) और घ्राण हवि है। हे स्रुकतुण्ड ! हे सामस्वर धीरनाद ! यज्ञाग्नि ! अखिल सत्र-संधि ! आप के दोनों कर्ण इष्टापूर्त कर्म हैं ! सनातन भगवान प्रसन्न हों ! ।।३२-३३-३४।। हे अक्षर विश्व भूति ! आपके चरणों से पृथ्वी व्याप्त है हम आपको विश्व का आदि और स्थिति के रूप में जानते हैं ।।३५।।

दंष्ट्राग्रविन्यस्तमशेषमेतद्भू मण्डलं नाथ विभाव्यते ते ।
विगाहतः पद्मवन विलग्न सरोजिनीपत्रमिवोढपङ्कम् ।३६।
द्यावापृथिव्योरतुलप्रभाव यदन्तरं तद्वपुषा तवैव ।
व्याप्तं जगद्व्याप्तिसमर्थदीप्ते हिताय विश्वस्य विभो भवत्वम्।३७।

परमार्थस्यत्वमे वैको नान्योऽस्ति जगतः पते ।
तवैष महिमा येन व्याप्तमेतच्चराचरम् ।३८।
यदेतद् दृश्यते मर्त्तमेतज्ज्ञानात्मनस्तव ।
भ्रान्तिज्ञानेन पश्यन्ति जगद्रूपमयोगिनः ।।३९।।
ज्ञानस्वरूपमखिलं जगदेतदबुद्धयः ।
अर्थस्वरूप पश्यन्तो भ्राम्यन्ते म्मोहसप्लवे ।।४०।।
ये तु ज्ञानविदः शुद्धचेस्तेऽखिलं जगत् ।
ज्ञानात्मकं प्रपश्यन्ति त्वद्रूप परमेश्वर ।।४१।।
प्रसीद सर्व सर्वात्मन्वासाय जगतामिमाम् ।
उद्धरोर्वीममेयात्मञ्छन्नो देह्यब्जलोचन ।।४२।।

हे नाथ ! आपके दाँत के अग्रभाय पर रखा हुआ यह भूमण्डल पद्मवन के विलोडन करने वाले महागजराज के दाँत से चिपटे हुए पंक

युक्त कमलपत्र की तरह दिखाई दे रहा है ॥३६॥ हे अतुल प्रभाव ! पृथ्वी और आकाश के बीच अन्तरिक्ष में तुम्हारा शरीर ही व्याप्त है हे जगद् व्याप्ति समर्थ दीप्त ! आप विश्व के हित में निमित्त हो । हे जगत्-पते ! आप ही एक मात्र परमार्थ हो और कोई नहीं है । यह चराचर जिस के द्वारा व्याप्त हो रहा है वह आपकी ही महिमा है । ३७—३८ । आप ज्ञानात्मक हैं और जो आपकी मूर्ति दृष्टिगोचर होती है वह आपका ही ज्ञानमय रूप है । पर ज्ञानरहित व्यक्ति जगत को भौतिक दृष्टि से ही देखते हैं । जिसकी बुद्धि कच्ची है वे ही उस ज्ञानस्वरूप अखिल जगत को स्थूल रूप में देखते हैं और संसार सागर में डूबते उतराते रहते हैं ॥३९—४०॥ हे परमेश्वर ! जो ज्ञानवित् शुद्ध-चेता हैं वे समस्त जगत का तुम्हारा ज्ञानात्मक रूप ही मानते हैं ॥४१॥ हे सर्वात्मन ! हे जग-तात्मन ! जगत के निवास के लिये पृथ्वी का उद्धार करके हम सबको सुखी करो ॥४२॥

सत्वोद्रिक्तोऽसि भगवन् गोविन्द पृथ्वीमिमाम् ।
समुद्धर भवायेश शन्नो देह्यब्जलोचन ॥४३॥
सर्गप्रवृत्तिर्भवतो जगतामुपकारिणी ।
भवत्वेषा नमस्तेऽस्तु शन्नो देह्यब्जलोचन ॥४४॥
एवं संस्तूयमानस्तु परमात्मा महीधरः ।
उज्जहार क्षितिं क्षिप्रं न्यस्तवांश्च महाम्भसि ॥४५॥
तस्योपरि जलौघस्य महती नौरिव स्थिता ।
विततत्वात्तु देहाय न मही याति सम्प्लवम् ॥४६॥
ततः क्षितिं समां कृत्वा पृथिव्यां सोऽचिनोग्दरीन् ।
यथा विभाग भगवाननादिः परमेश्वरः ॥४७॥
प्राक्सर्गदग्धानखिलान्पर्वतान्पृथ्वीतले ।
अमोघेन प्रभावेण ससर्जामोघवाञ्छितः ॥४८॥
भूविभागं ततः कृत्वा सप्तद्वीपान्यथातथम् ।
भूराद्यांश्चतुरो लोकान्पूर्ववत्समकल्पयेत् ॥४९॥

हे भगवान गोविन्द ! आप सत्वयुक्त हुए हो, उद्भव के लिए पृथ्वी का उद्धार करो। हे अजलोचन ईश्वर ! हमारा कल्याण करो। आपकी सृष्टि रचना जगत के लिए उपकारिणी हो ॥४३-४४॥ पाराशर जी ने कहा—परमात्मा धरणीधर ने इस प्रकार की स्तुति सुन कर शीघ्रतापूर्वक भूमि को ऊँचा उठाया और महासमुद्र को हटाया ॥४५॥ अपने वृहत आकार को लेकर पृथ्वी जल के ऊपर एक बड़ी नाव के समान तैरने लगी ॥४६॥ तत्पश्चात अनादि परमेश्वर ने पृथ्वी को समतल करके पर्वतों को यथास्थान स्थापित किया ॥ ४७ ॥ उन्होंने अपने अमोघ प्रभाव से पूर्व काल में दग्ध हुए पर्वतों की पृथ्वी तल पर फिर से सृष्टि की ॥ ४८ ॥ फिर सातों द्वीपों के रूप में पृथ्वी को यथा-तथा विभाजित करके समस्त लोकों की कल्पना की ॥४९॥-

ब्रह्मरूपधरो देवस्ततोऽसौ रजसा वृतः ।
चकार सृष्टिं भगवांश्चतुर्ववत्रधरो हरिः ॥५०॥
निमित्तमात्रमेवासौ सृज्यानां सर्गकर्मणि ।
प्रधानकारणीभूता यतो वै सृज्यशक्तयः ॥५१॥
निमित्तमात्रं सुक्तवैवं नान्यत्किञ्चिदपेक्षते ।
नीयते तपतां श्रेष्ठ स्वशक्त्या वस्तु वस्तुताम् ॥५२॥

तत्पश्चात रजोगुण से आवृत भगवान चतुर्मुख ब्रह्माजी ने सृष्टि-रचना प्रारम्भ की ॥५०॥ वे इस सृष्टि कार्य में निमित्त मात्र ही हुए क्योंकि समस्त वस्तुओं की रचना में उनकी निजी शक्ति ही मुख्य कारण होती है ॥५१॥ हे तपस्वी श्रेष्ठ ! सृजन कार्य के लिये और किसी कार्य की अपेक्षा नहीं जान पड़ती। समस्त वस्तुएँ अपनी शक्ति से उद्भव को प्राप्त होती हैं ॥ ५२ ॥

—*—

पाँचवाँ अध्याय

यथा ससर्ज देवोऽसौ देवर्षिपितृदानवान् ।
मनुष्यतिर्यग्वृक्षादीन्भूव्योमसलिलौकसः ॥१॥
यद्गुणं यत्स्वभावं च यद्रूपं च जगद् द्विज ।
सर्गासौ सृष्टवान्ब्रह्मा तन्ममाचक्ष्व कृत्स्नशः ॥२॥
मैत्रेय कथाम्येतच्छृणुष्व सुसमाहितः ।
यथा ससर्ज देवोऽसौ देवदानखिलान्विभुः ॥३॥
सृष्टि चिन्तयतस्तस्य कल्पादिषु यथा पुरा ।
अबुद्धिपूर्वकः सर्गः प्रादुर्भूतस्तमोमयः ॥४॥
तमो मोहो महामोहस्तमिस्रो ह्यन्धसंज्ञितः ।
अविद्या पञ्चपर्वैषा प्रादुर्भूता महात्मनः ॥५॥
पङ्चधावस्थितः सर्गो ध्यायतोऽप्रतिबोधवान् ।
बहिरन्तोऽप्रकाशश्च सवृतात्मा नगात्मकः ॥६॥
मुख्या नगा यतः प्रोक्ता मुख्यसर्गस्ततस्त्वयम् ॥७॥
त दृष्ट्वासाधकं सर्गममन्यदपरं पुनः ॥८॥

मैत्रेय ने प्रश्न किया–"हे द्विज श्रेष्ठ ! ब्रह्माजी ने जिस प्रकार देवर्षि, पितृ, दानव, मनुष्य, तिर्यक, वृक्ष आदि तथा पृथ्वी आकाश तथा जल में रहने वाले प्राणियों की रचना की और आरम्भ में जगत को जैसे गुण का, जिस स्वरूप का जिस स्वभाव का बनाया उसको समझा कर कहिये" ॥१—२॥ पराशर ने कहा–'प्रभु ने जिस प्रकार देवादि समस्त सृष्टि रचना की, मैं उसका वर्णन करता हूँ, तुम सावधान होकर सुनो ॥३॥ पूर्वकाल के कल्पों में जिस प्रकार सृष्टि बनी थी उसके विषय में सोचते-सोचते ब्रह्माजी ने अबुद्धि से तमोमयसर्ग को प्रादुर्भूत किया ॥४॥ अर्थात उससे तमः, मोह, महामोह, तामिश्र और अन्धतामिश्र इस पञ्च पर्वा अविद्या का प्रादुर्भाव हुआ । इस सृष्टि अप्रतिरोध्र बहिरन्तः प्रकाश का सवृतात्मा (मूढ़ स्वभाव) और नगात्मक

पाँच प्रकार की सृष्टि प्रकट हुई। ब्रह्मा की सृष्टि सबसे प्रथम नग (स्थावर) रचना ही हुई, जिससे उसका नाम मुख्य-सर्ग पड़ गया।५-६। पर उसे कार्य-साधन में असमर्थ देख कर उन्होंने अन्य प्रकार की रचना का ध्यान किया ॥७-८।

तस्याभिध्याय: सर्गस्तिर्यक्सोताभ्सवर्त्तत ।
यस्मात्तिर्यकप्रवृत्तिस्म तिर्यक्स्रोतास्त: स्मृत: ॥९॥
पश्चादयस्ते विख्यातास्तम: प्राया ह्यवेदिन: ।
उत्पथग्राहिणश्चैच तेऽज्ञाने ज्ञानमानिन: ॥१०॥
अहङ्कृता अहम्माना अष्टाबिंशद्वधात्मका: ।
अन्त: प्रकाशास्ते सर्वे आवृताश्च परस्परम् ॥११॥
तमप्यसाधकं मत्वा ध्यायतोऽन्यस्ततोऽभवत् ।
ऊर्ध्वस्रोतास्तृतीयस्तु सात्विकोर्ध्वमवर्तत ॥१२॥
ते सुखप्रीतिबहुला बहिरन्तस्त्वनावृता: ।
प्रकाश बहिरन्तश्च ऊर्ध्वस्रोतोद्भवा: स्मृता: ॥१३॥
तुष्टात्मनस्तृतीयस्त देवसर्गस्तु स स्मृत: ।
तस्मिन्सर्गेऽभवत्प्रीतिर्निष्पन्ने ब्रह्मणस्तदा ॥१४॥
ततोऽन्यं स तदा दध्यौ साधकं सर्गमुत्तमम् ।
असाधकाँस्तु ताञ्ज्ञात्वा मुख्यसर्गादिसम्भवान् ॥१५॥
तथाभिध्यायतस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्तत: ।
प्रादुर्वभूव चाव्यक्तादर्वाक्स्रोतास्तु साधक: ॥१६॥

तब उन्होंने तिर्यक जीवों की रचना की। इस रचना में प्राणी आहार संग्रह द्वारा जीवित रहते थे। इसलिए इनका नाम तिर्यक नाम 'तिर्यक स्रोता' पड़ा।९। ये सब अधिकांश में तमोमय, अनुसंधान, शून्य उत्पथ ग्राही, अज्ञान को ही ज्ञान समझने वाले, अहंकृत, अहम्मान, अष्टाविंशवधात्म, अन्त: प्रकाश और परस्पर में आवृत थे।१०—११। इस रचना को भी कार्यक्षम न देख कर तीसरी रचना की जो ऊर्द्धवासी, ऊर्द्ध स्रोता और सात्विक थे। ब्रह्मा जी का यह

तीसरा सर्ग देव-सर्ग के नाम से पुकारा गया। इससे ब्रह्मा जी को संतोष हुआ और इसे उन्होंने पसन्द भी किया। फिर उन्होंने पहली रचनाओं को कार्यक्षम न देखकर, कार्य करने योग्य रचना का ध्यान किया और अव्यक्त (माया) से अर्वाक्स्रोता (मनुष्यों) को प्रादुर्भूत किया। जिसका आशय यह है कि ये नीचे की ओर जाने वाले आहार से जीवित रहते थे ॥१२–१३॥

यस्मादर्वाख्यवर्त्तन्त ततोऽर्वाक्स्रतसस्तु ते।
ते च प्रकाशबहुला स्तमोद्रिक्ता रजोऽधिकाः ॥१७॥
तस्मात्ते दुःखबहुला भूयोभूयश्च कारिणः।
प्रकाशा वहिरन्तश्च मनुष्याः साधकास्तु ते ॥१८॥
इत्येते कथिताः सर्गाः षडत्र मुनिसत्तम।
प्रथमो महतः सर्गो विज्ञेयो ब्रह्मणस्तु सः ॥१९॥
तन्मत्राणां द्वितीयश्च भूतसर्गो हि स स्मृतः।
वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्ग ऐन्द्रियकः स्मृतः ॥२०॥
इत्येषः प्राकृतः सर्गः सम्भूतो बुद्धिपूर्वकः।
मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः ॥२१॥
तिर्यक्स्रोतास्तु यः प्रोक्तस्तैर्यग्योन्य स उच्यते।
तदूर्ध्वस्रोतसां पष्टो देवसर्गस्तु संस्मृतः ॥२२॥

यह सृष्टि अधिक प्रकाश वाले, तमोद्रिक्त और रजोधिक थे। इसी कारण मनुष्य विशेष दुःख अनुभव करने वाले, विशेष कार्य करने वाले. वहिरन्तः प्रकाशक और कार्य साधक हुए ।१७-१८। हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार यह छः प्रकार की सृष्टि कही गई। महत्तत्व ब्रह्मा की प्रथम सृष्टि कही जाती है। दूसरी सृष्टि तन्मात्राओं की है जिसको भूत-सर्ग कहा जाता है। तीसरी सर्ग वैकारिक है जिसको एन्द्रियिकभी कहा जाता है। ।१९–२०। ये तीनों सर्ग अविद्या नाम वाली प्रकृति से उत्पन्न होते हैं। मुख्य स्थावर सर्ग चौथा है तिर्यक योनि वाला पाँचवा और उर्द्धस्रोता अथवा देवसर्ग छटा है ॥२१—२२॥

ततोऽर्वाक्स्रोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः ॥२३॥
अष्टमोऽनुग्रहः सर्ग सात्त्विकस्तामसश्च सः ।
पञ्चैते वैकृताः सर्गाः प्राकृतास्तु त्रयः स्मृताः ॥२४॥
प्राकृतो वैकृतश्चैव कौमारो नवमः स्मृतः ।
इत्येते वै समाख्याता नव सर्गा प्रजापतेः ॥२५॥
प्राकृता वैकृताश्चैव जगतो मूलहेतवः ।
सृजतो जगदीशस्य किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥२६॥
संक्षेपात्कथितः सर्गो देवादीनां मुने त्वया ।
विस्तराच्छ्रोतुमिच्छामि त्वत्तो मुनिवरोत्तम ॥२७॥
कर्मभिर्भाविताः पूर्वैः कुशलाकुशलैस्तु ताः ।
ख्यात्या तथा ह्यनिर्मुक्ताः सहारे ह्युपसंहृताः ॥२८॥
स्थावरान्ताः सुराद्यास्तु प्रजा ब्रह्मंश्चतुर्विधाः ।
ब्रह्मणः कुर्वतः सृष्टि जज्ञिरे मानसास्तु ताः ॥२९॥
ततो देवासुरपितृन्मनुष्यांश्च चतुष्टयम् ।
सिसृक्षुरम्भांस्येतानि स्वमात्मानमयूयुजत् ॥३०॥

तदनन्तर अर्वाक्स्रोता नामक मनुष्य–सर्ग सातवाँ है। आठवें सर्ग का नाम अनुग्रह है जो सात्विक और तामस होता है। ये पाँच सर्ग वैकृत तथा पहले तीन प्राकृत कहे जाते हैं। इस प्रकार प्राकृत तथा वैकृत सर्ग आठ प्रकार के होते हैं और सनत्कुमार आदि का सर्ग नवम है ॥ २३—२४ ॥ ये समस्त सर्ग जगत के मूल हेतु है। प्रजापति की रचना के इन नौ सर्गों का विवरण तुमको सुना दिया गया, अब जगदीश्वर की सृष्टि के विषय में तुम क्या सुनना चाहते हो? मैत्रेय ने कहा—'हे मुनिवर! आपने संक्षेप में देवादि की सृष्टि के विषय में बतलाया। मैं इस विषय को विस्तार पूर्वक आपसे सुनना चाहता हूँ ॥ २५ ॥ पराशर ने कहा—"प्रलय के समय जब प्रजा का संहार होता है तब भी उसमें भली-बुरी बुद्धि का सञ्चार बना रहता है, उनकी कर्मानुसारिणी बुद्धि उनको एक दम नहीं त्याग देती है।

हे ब्रह्मन ! ब्रह्म द्वारा नवीन सृष्टि किये जाने के समय देवता आदि और स्थावर आदि चारों तरह की प्रजा बुद्धि के संस्कार सहित उत्पन्न होती है। यह सब मानस प्रजा होती है, क्योंकि ब्रह्मा के ध्यान से ही उसकी उत्पत्ति होती है तत्पश्चात् वह देव, असुर, पितृ और मनुष्य–इन चार प्रकार की अन्त: संज्ञक प्रजा की रचना के लिए अपने शरीर की योजना करते हैं ॥२९–३०॥

युक्तात्मनस्तमोमात्राह्यु द्रिक्ताभूत्प्रजापतेः ।
सिसृक्षोजघनात्पूर्वममुरा जज्ञिरे ततः ॥३१॥
उत्ससर्ज ततस्तां तु तमोमात्रात्मिकां तनुम् ।
सा तु त्यक्ता तनुस्तेन मैत्रेयाभूद्विभावरी ॥३२॥
सिसृक्षुरन्यदेहस्थः प्रीतिमाप ततः सुराः ।
सत्वोद्रिक्ताः समुद्भूता मुखतो ब्रह्मणो द्विज ॥३३॥
त्यक्ता सापि तनुस्तेन सत्वप्रायमभूद्दिनम् ।
ततो हि बलिनो रात्रावसुरा देवता दिवा ॥३४॥
सत्वमात्रात्मिकामेव ततोऽन्यां जगृहे तनम् ।
पितृवन्मन्यमानस्य पितरस्तस्य जज्ञिरे ॥३५॥
उत्ससर्ज ततस्तां तु पितृन्सृष्ट्वापि स प्रभुः ।
सा चोत्मृष्टाभवत्सन्ध्या दिननक्तन्तरस्थिता ॥३६॥

इस प्रकार सृष्टि किये जाने वालों के अदृष्ट, से मिलकर प्रजापति युक्तात्मा हो गया उसमें से तमोगुण की मात्रा बढ़ने से जाँघों में से सर्व-प्रथम असुर गणों की उत्पत्ति हुई ।३१। तब उसने तमोमात्रात्मक तनु (तमोमय भाव) को त्याग दिया और उस त्यागे हुए तमोगुण सेरात्रि बन गई ।३२। तत्पश्चात् ब्रह्मा अन्य देह (सात्विक भाव) में स्थित हो अपने मुख से सत्व-गुण युक्त देवों की सृष्टि की । ३३ । जब उसने उस देह का त्याग कर दिया तो उसका दिन बन गया । इसी लिए असुर गण रात्रि में और देवता दिन में बलवान होते हैं ॥३४॥ फिर उसने सत्वमात्रात्मक अन्य देह धारण करके बगल में से

पितृों को उत्पन्न किया तब उसने उस देह को भी त्याग दिया और उससे दिन तथा रात्रि के मध्य संध्या का आविर्भाव हुआ ॥३५–३६॥

रजामात्रात्मिकामन्यां जगृहे स तनुं ततः ।
रजोमात्रोत्कटा जाता मनुष्या द्विजसत्तम ॥३७॥
तामप्याशु स तत्याज तनुं सद्यः प्रजापतिः ।
ज्योत्स्ना समभवत्सापि प्राक्सन्ध्या याभिधीयते ॥३८॥
ज्योत्स्नाने तु बलिनो मनुष्या पितरस्तथा ।
मैत्रेय सन्ध्यासमये तस्मादेते भवन्ति वं ॥३९॥
ज्योत्स्ना रात्र्यहनी सन्ध्या चत्वार्येतानि वै प्रभोः ।
ब्रह्मणस्तु शरीराणि त्रिगुणोपाश्रयाणि तु ॥४०॥
रजोमात्राणात्मिकामेव ततोऽन्यां जगृहे तनुम् ।
ततः क्षुद् ब्रह्मणो जाता जज्ञे कामस्तया ततः ॥४१॥
क्षुत्क्षामानन्धकारेऽथ सोऽसृजद्भगर्वास्ततः ।
विरूपाःश्मश्रुलाजातास्तेऽभ्यधावंस्ततः प्रभुम् ॥४२॥
मंवं भी रक्ष्यतामेष यैरुक्तं राक्षसास्तु ते ।
ऊचुः खादाम इत्यन्ये ये ते यक्षास्तु जक्षणात् ॥४३॥
अप्रियेण तु तान्दृष्ट्वा केशाः शीर्यन्त वेधसः ।
हीनाश्च शिरसो भूतः समारोहन्त तच्छिरः ॥४४॥

हे द्विज सत्तम ! तब उसने रजोगुण युक्त अन्य देह ग्रहण की और उससे रजोगुण की अधिकता वाले मनुष्यों का आविर्भाव हुआ जब प्रजापति ने उस देह का त्याग किया तो उसको चाँदनी बन गई और उसका नाम प्रातः काल हो गया ॥ ३७–३८ ॥ हे मैत्रेय ! इस लिए तमाम मनुष्य प्रातःकाल में और पितृगण संध्याकाल में बलशाली रहते हैं ॥ ३९ ॥ तीन गुणों में अश्रित ज्योत्स्ना, रात्रि, दिवस और संध्या ये चारों प्रभु—ब्रह्मा के शरीर हैं ॥ ४० ॥ फिर रजोगुण समन्वित अन्य देह ग्रहण करके ब्रह्मा से भूख और क्रोध की उत्पत्ति हुई ॥ ४१ ॥ जब भगवान ने विरूप, बढ़े हुये दाढ़ी केश

वाले भूखे प्राणियों को सृष्टि की तो वे प्रभु को ही खाने को दौड़े। उनमें से जिसने कहा कि' 'अरे ऐसा मत करना, इसकी रक्षा करो'— उनका नाम राक्षस हुआ और जिन्होंने कहा—"खाते हैं" उनका नाम यक्ष हुआ। ४२—४३। इन अप्रिय जीवों से असन्तुष्ट होकर विधाता के शिर के सब बाल गिर कर फिर से मस्तक पर चढ़ गये। ३४।

सर्पणात्तेऽभवन् सर्पा हीनत्वादहयः स्मृताः।
ततः क्रुद्धो जगत्स्रष्टा क्रोधात्मनो विनिर्ममे ॥४५॥
वर्णेन कपिशेनोग्रभतान्ते पिशिताशनाः।
गायतोऽङ्गात्समुत्पन्ना गन्धर्वास्तस्य तत्क्षणात् ॥४६॥
पिबन्तो जज्ञिरे वाच गन्धर्वास्ते न ते द्विज।
एतानि सृष्ट्वा भगवान्ब्रह्मा तच्छक्तिचादितः ॥४७॥
ततः स्वच्छन्दतोऽन्यानि वयांसि वयसोऽसृजत।
अवयो वक्षसश्चक्रे मुखतोऽजाः स सृष्टवान् ॥४८॥
सृष्टवानुदराद्गश्च पार्श्वाभ्यां च प्रजापतिः।
पद्भ्यां चाश्वाद्रन्समातंगान्नासभान्गवयान्मृगान् ॥४९॥
उष्ट्रानश्वतरांश्चंव न्यङ्क कूनन्याश्च जातयः।
ओषध्यः फलमूलिन्यो रोमभ्यस्तस्य जज्ञिरे ॥५०॥
त्रेतायुगमुखे ब्रह्मा कल्पस्यादौ द्विजोत्तम।
सृष्ट्वा पश्वोषधीः सम्यग्युयोज स तदाध्वरे ॥५१॥

इस प्रकार 'सर्पण' (शिर पर चढ़ने) की क्रिया से सर्प उत्पन्न हुए और हीनता के कारण उनका नाम अहि भी पड़ा और जगत् सृष्टा ने क्रोधित होकर उनका स्वभाव भी क्रोधयुक्त बना दिया ॥४४॥ वे भूरे रङ्ग के, उग्र स्वभाव के और माँस खाने वाले थे। फिर उसी समय उनके शरीर से गन्धर्वों की उत्पत्ति हुई। ४६। ये प्राणी 'गो' (वाक्य और गीत) तथा 'धयन' (उच्चारण व गान) करते-करते पैदा हुये इसलिए गन्धर्व कहलाये। ४७। तब भगवान ब्रह्मा ने इस शक्ति से प्रेरित होकर स्वच्छन्दता पूर्वक 'वय' अङ्ग से क्या (पक्षी)

वक्ष से भेड़ और मुख से बकरे को उत्पन्न किया। प्रजापति ने पेट और दोनों बगलों से गौ जाति, दोनों पैरों से घोड़ा, हाथी, शरभ, गवय हिरन, ऊँट, अश्वतर आदि अनेक प्राणियों की सृष्टि की। उनके रोमों से फल मूल वाली वनस्पतियाँ बन गईं। ४८—५०। हे द्विज! उन्होंने कल्प के आदि में 'पशु औषधि' की उत्पत्ति करके त्रेता के आरम्भ में यज्ञ में उसकी योजना की ॥५१॥

गौरजः पुरुषो मेषश्चाश्वतरगर्दभाः ।
एतान्ग्राम्यान्पशूनाहुरारण्यांश्च निबोध मे ॥५२॥
श्वापदा द्विखुरा हस्ती वानराः पक्षिपञ्चमाः ।
औदकाः पशवः षष्ठाः सप्तमास्तु सरीसृपाः ॥५३॥
गायत्रं च ऋचश्चैव त्रिवृत्सोमं रथन्तरम् ।
अग्निष्टोमं च यज्ञानां निर्ममे प्रथमान्मुखात् ॥५४॥
यजूंषि त्रष्टुभं छंदः स्तोमं पञ्चदशं तथा ।
वृहत्साम तथोक्थं च दक्षिणादसृजन्मुखात् ॥५५॥
सामानि जगतीछन्दः स्तोमं सप्तदश तथा ।
वैरूपमतिरात्रं च पश्चमादसृजन्मुखात् ॥५६॥
एकविंशमथर्वाणमाप्तोर्यामाणमेवच ।
अनुष्टुभं च वैराजमुत्तरादसृजन्मुखात् ॥५७॥

गाय, बकरा, भेड़ घोड़ा, खच्चर, गधा ये सब ग्राम्य पशु कहलाते हैं और श्वापद (सिंह आदि), दो खुर वाले, हाथी, बन्दर, पक्षी उदक (कछुआ आदि) और रेंगने वाले (सर्प आदि) जङ्गली प्राणी कहे जाते हैं। ५२—५३। ब्रह्माजी ने अपने प्रथम मुख से गायत्री, ऋग्वेद, त्रिवत्तस्तोम, रथन्तर और अग्निष्टोम का निर्माण किया। दक्षिण मुख से यजुर्वेद, पञ्चदश, त्रिष्टुप छन्दस्तोम, बृहत्साम और उक्थ की सृष्टि की। पश्चिम मुख से समस्त सामदेव सत्तह जगती छन्दस्तोम, वैरूप और अतिरात्र को रचा। उत्तर मुख से

इक्कीस अनुष्टुभ छन्दस्तोम, अथर्ववेद सोम संख्या और वैराज की सृष्टि की ॥५४-५७॥

उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे ।
देवासुरपितृन् सृष्ट्वा मनुष्यांश्च प्रजापतिः ॥५८॥
ततः पुनः ससर्जादौ सङ्कल्पस्य पितामहः ।
यक्षान् पिशाचान्गन्धर्वान् तथैवाप्सरसां गणान् ॥५९॥
नरकिन्नर रक्षांसि वयःपशुमृगोरगान् ।
अव्ययं च व्ययं चैव यदिदं स्थाणुजंगमम् ॥६०॥
तत्ससर्ज तदा ब्रह्मा भगवानादिकृत्प्रभुः ।
तेषां ये यानि कर्माणि प्राकसृष्टयां प्रतिपेदिरे ।
तान्येव ते प्रपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः ॥६१॥
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते ।
तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात्ततस्य रोचते ॥६२॥
इन्द्रियार्थेषु भूतेषु शरीरेषु च स प्रभुः ।
नानात्वं विनियोगं च धातैवं व्यसृजत्स्वयम् ॥६३॥
नाम रूपं च भूतानां कृत्यानां च प्रपञ्चनम् ।
वेदशब्देभ्य एवादौ देवादीनां चकार सः ॥६४॥
ऋषीणां नामधेयानि यथा वेदश्रुतानि वै ।
तथा नियोगयोग्यानि ह्यन्येषामपि सोऽकरोत् ॥६५॥
यथर्तुष्वृतुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्यये ।
दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा भावा युगादिषु ॥६६॥
करोत्येवंविधां सृष्टिं कल्पादौ स पुनः पुनः ।
सिसृक्षाशक्तियुक्तोऽसौ सृज्यशक्तिप्रचोदितः । ६७॥

आदिकृत भगवान प्रजापति देव ने इस प्रकार अपने शरीर से ही समस्त छोटे-बड़े जीवों की सृष्टि की। उन्होंने देव, असुर, पितृ और मनुष्यों की रचना करके कल्प के आदि में ही यक्ष, पिशाच, गन्धर्व, अप्सरा, नर, किन्नर, राक्षस, पशु, पक्षी, मृग, उरग आदि से

युक्त प्रवाह रूप, नित्य तथा अनित्य, स्थावर–जङ्गममय इस समस्त जगत की रचना की ! इनमें से जिनके कर्म पुरानी सृष्टि में जिस प्रकार के थे, फिर से उत्पन्न किये जाने पर भी वे उसी को प्राप्त होने लगे। ।५८-६१। उन जीवों को हिंसा-अहिंसा, कोमल-कठोर, धर्म-अधर्म, सत्य-असत्य आदि के भाव प्राप्त होने लगे और उन्हीं में उनकी अभिरुचि होने लगी ।६३। इस प्रकार उस विधाता ने ही इन्द्रियार्थ (आहार सम्बन्धी) भूत (जीव) और शरीर सम्बन्धी विभिन्न प्रकार की व्यवस्थायें पैदा कर दीं । ६४ । उन्होंने वेदानुकूल देवादि प्राणियों के नाम और कार्य वभाग का निरूपण किया, समस्त ऋषियों को नियोग और वेदों के निर्देशानुसार नाम दिया । जिस प्रकार ऋतुओं के बदलने पर पहले के समान ही ऋतुओं के चिन्ह दिखलाई देते हैं, उसी प्रकार युग के आदि में देव आदि की उत्पत्ति पूर्ववत् हुआ करती है । कल्प के आदि में ब्रह्मा जी सर्जन शक्ति से युक्त होकर इसी तरह जगत की रचना किया करते हैं ।।६५—६७।।

—:※※:—

छटवाँ अध्याय

अर्वाक्स्रोतास्तु कथितो भवता यस्तु मानुषाः ।
ब्रह्मन्विस्तरतो ब्रूहि ब्रह्मा तमसृजद्यथा ।। १ ।।
यथा च वर्णानसृजद्यद्गुणांश्च प्रजापतिः ।
यच्च तेषांस्मृतं कर्म विप्रादीनां तदुच्यताम् ।। २ ।।
सत्याभिध्यायिनः पूर्वं सिसृक्षोर्ब्रह्मणो जगत् ।
अजायन्त द्विजश्रेष्ठ सत्वोद्रिक्ता मुखात्प्रजाः ।। ३ ।।
वक्षसो रजसोद्रिक्तास्तथा वै ब्रह्मणोऽभवन् ।
रजसा तमसा चैव समुद्रिक्तास्तथोरुतः ।। ४ ।।

पङ्क्त्यामन्याः प्रजा ब्रह्मा ससर्ज द्विजसत्तम् ।
तमःप्रधानास्ताः सर्वाश्चातुर्वर्ण्यमिदं ततः ॥ ५ ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च द्विजसत्तम् ।
पादोरुवक्षःस्थलतो मुखतश्च समुद्गताः ॥ ६ ॥
यज्ञनिष्पत्तये सर्वमेतद् ब्रह्मा चकार वै ।
चातुर्वर्ण्यं महाभाग यज्ञसाधनमुत्तमम् ॥ ७ ॥
यज्ञैराप्यायिता देवावृष्टयुत्सर्गेण वै प्रजाः ।
आप्यायन्ते धर्मज्ञ यज्ञाः कल्याणहेतवः ॥ ८ ॥

मैत्रेय ने पूछा—हे महामुने ! आपने ब्रह्माजी द्वारा अर्वाक् स्रोत मनुष्यों की उत्पत्ति की बात कही, उसे विस्तार पूर्वक कहिये । उनको किन गुणों से युक्त करके समस्त वर्णों की रचना की ? उन वर्णों के जो कर्तव्य कर्म हैं उनका भी वर्णन कीजिये ।१-२। पाराशरजी ने कहा, हे द्विजश्रेष्ठ ! सत्ययुक्त जगकर्ता ब्रह्माजी के मुख से प्रथम सत्व गुणयुक्त प्राणियों ने जन्म ग्रहण किया । छाती से रजोगुणयुक्त प्रजा उत्पन्न हुई और उससे रज तथा तम से युक्त प्राणी उत्पन्न हुए ।३-४। इसके साथ ही पैरों से तम प्रधान लोगों की उत्पत्ति हुई । ये ही सब मिलाकर चारों वर्ण बन गये । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र क्रमशः मुख,वक्षस्थल, उरु,पैरों से उत्पन्न हुए ।५-६। हे महाभाग ! ब्रह्माजी ने यज्ञ के भली प्रकार साधित होनेके उद्देश्य से ही इन चारों वर्णों की रचना की । देवगण यज्ञ से संतुष्ट समस्त प्रजा का कल्याण करते हैं, इससे यज्ञ कल्याण का मूल है ।७-८।

निष्पाद्यन्ते नरैस्तस्त स्वधर्माभिरतैस्सदा ।
विशुद्धाचरणोपेतैः सद्भिः सन्मार्गगामिभिः ॥ ९ ॥
स्वर्गापवर्गौ मानुष्यात्प्राप्नुवन्ति नरा मुने ।
यच्चाभिरुचित स्थानं तद्यान्ति मनुजा द्विज ॥१०॥
प्रजास्ता ब्रह्मणा सृष्टाश्चातुर्वर्ण्यव्यवस्थिताः ।
सम्यक्छ्रद्धासमाचारप्रवणा मुनिसतम ॥११॥
यथेच्छावासनिरताः सर्वबाधाविवर्जिताः ।

शुद्धान्तः करणाः शुद्धाः कर्मानुष्ठाननिर्मलाः ॥१२॥
शुद्धे च तासां मनसि शुद्धेऽन्तः संस्थिते हरौ ।
शुद्धज्ञानं प्रपश्यन्ति विष्णवाख्य येन तत्पदम् ॥१३॥
ततः कालात्मको योऽसौ स चाँशः कथितो हरे ।
स पातयत्यघं घोरमल्पमल्पाल्पसारवत् ॥१४॥
अधर्मबीजमुद्भूतं तमोलोभसमुद्भवम् ।
प्रजासु तासु मैत्रेय रागादिकमसाधकम् ॥१५॥

अपने-अपने धर्म में संलग्न विशुद्धाचरण वाले और सन्मार्गगामी मनुष्यों द्वारा वास्तव में यज्ञ-साधन होता है । यज्ञ से मनुष्य स्वर्ग अपवर्ग प्राप्त करते हैं और अभिलाषित स्थित को पासकते हैं ।९-१०। ब्रह्मा ने चतुर्वर्ण की व्यवस्था के निमित्त ही शुद्धाचार संपन्न, स्वेच्छापूर्वक कार्य करने वाली और बाधाओं से रहित प्रजा की सृष्टि की ।११-१२। क्योंकि मन के शुद्ध होने और शुद्ध अन्तःकरण में भगवान के स्थित होने पर शुद्ध ज्ञान पैदा होता है और उसके द्वारा वे विष्णु के पद को देखने में समर्थ होते हैं ।१३। हे मैत्रेय ! इसके पश्चात् जो भगवान के कलात्मक अंश की बात कही गई है, तदनुसार इस प्रजा में अधर्म से तमोमय लोभ थोड़ा-थोड़ा करके घोर पाप का संचार कर देता है ॥१४-१५॥

ततः सा सहजा सिद्धस्तासां नातीव जायते ।
रसोल्लासादयश्चान्याः सिद्धयोऽष्टौ भवंति याः ॥१६॥
तासु क्षीणास्वशेषासु वर्द्धमाने पातके ।
द्वन्द्वाभिभवदूःखार्तास्ता भवन्ति ततः प्रजाः ॥१७॥
ततो दुर्गाणि ताश्चक्रुर्धान्व पावतमौदकम् ।
कृत्रिम ग तथा दुर्गं पुरखर्वटकादिकम् ॥१८॥
गृहाणि च यथान्यायं तेषु चक्रुः पुरादिषु ।
शीतातपादिबाधानां प्रशमाय महामते ॥१९॥
प्रतीकारमिमं कृत्वा शीतादेस्ताः प्रजाःपुनः ।
वार्तोपायं ततश्चक्रुहस्तसिद्धिं च कर्मजाम् ॥२०॥

व्रीहयश्च यवाश्चैव गोधूमाश्चाणवस्तिला: ।
प्रियंगवो ह्युदाराश्च कोरदूषा: सतीनका: ॥२१॥
माषा मुद्गा मसूराश्च निष्पावा: सकुलत्थका: ।
आढक्यश्चणकाश्चैव शणा: सप्तदश स्मृता: ॥२२॥

इसके फलस्वरूप उनमें कार्य की सहज सिद्धि और रसोल्लास आदि अष्ट सिद्धि उचित रूप में उत्पन्न नहीं होती है। इन सिद्धियों के क्षीण होने तथा पापों के बढ़ने से समस्त प्रजा तरह-तरह के दुखों से व्यथित होती हैं।१६-१७। तब उन्होंने वृक्षों में, पर्वतोंमें, और जल के समीप स्वाभाविक रक्षा स्थान अथवा कृत्रिम दुर्ग, पुर, खर्वटक स्थापित किये और शीत ताप आदि की बाधा से बचने के लिये वहाँ पर घर अ दि बनाये।१८-१९। जब लोगों ने इस प्रकार शीत आदि से अपनी रक्षा की व्यवस्था करली तो उन्होंने खेती, हस्तकला की विधियाँ निकालीं जिससे जीवन निर्वाह हो सके।२०। हे मुने ! धान, जौ, गेहूँ, तिल, प्रियंगु उदार, कोरदुष, चीनक उर्द, मूँग, मसूर निष्पाव कुलथी आढक्य चना और सन ये १७ औषधि हैं २१-२२

इत्येता ओषधीनां तु ग्राम्यानां जातयो मुने ।
ओषध्यो यज्ञियाश्चैव ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ॥२३॥
व्रीहयस्सयवा माषा गोधूमाश्चाणवस्तिला: ।
प्रीयंगुसप्तमा ह्येते अष्टमास्तु कुलत्थका: ॥२४॥
श्यामाकास्त्वथ नीवारा जर्तिला: सगवेधुका: ।
तथा वेणुयवा: प्रोक्तास्तथा मर्कटका मुने ॥२५॥
ग्राम्यारण्या: स्मृता ह्येता ओषध्यस्तु चतुर्दश ।
यज्ञनिष्पत्तये यज्ञस्तथासां हेतुरुत्तम: ॥२६॥
एताश्च सह यज्ञेन प्रजानां कारणं परम् ।
परावरविद: प्राज्ञास्ततो यज्ञान्वितन्वते ॥२७॥
अहन्यहन्यनुष्ठानं यज्ञानां मुनिसत्तम ।
उपकारकरं पुंसाँ क्रियमाणाघशान्तिदम् ॥२८॥

यज्ञ ओषधि भी चौदह प्रकार की होती हैं जैसे धान, जौ, उर्द, गेहूँ,

अनु, तिल, प्रियंगु, कुलत्क, श्यामाक, नीवरा जतिल गवेधूक, वेनुयव और मर्कटक इनका उपयोग यज्ञ में आहुति देने के लिये होता है ।२३ से २६ ये सब यज्ञ द्वारा समस्त प्रजा की उन्नति का परम साधन सिद्ध होती है, इसलिए लोक-परलोक के ज्ञाता यज्ञों का प्रचार करने को कहते हैं । यज्ञ प्रत्येक व्यक्ति द्वारा नित्य किया जाने योग्य अनुष्ठान है, मनुष्यों का उपकार करने वाला है, और नित्य होने वाले पंचसूना पापों को दूर करने वाला है ॥२७—२८॥

येषाँ तु कालसृष्टोऽसौ पापबिन्दुर्महामुने ।
चेतःसु ववृधे चक्रुस्ते न यज्ञ षु मानसम् ॥२९॥
वेदवादांस्तथा वेदान्यज्ञकर्मादिकं च यत् ।
तत्सर्वं निन्दयामासुर्यज्ञव्यासेधकारिणः ॥३०॥
प्रवृत्तिमार्गव्युच्छित्तिकारिणो वेदननिन्दकाः ।
दुरात्मनो दुराचारा बभूवुः कुटिलाशयाः ॥३१॥
ससिद्धायां तु वार्तायाँ प्रजाः सृष्ट्वा प्रजापतिः ।
मर्यादां स्थापयामास यथास्थानं यथागुणम् ॥३२॥
वर्णानामाश्रमाणाँ च धर्मान्धर्मभृतां वर ।
लोकांश्च सर्ववर्णानां सम्यग्धर्मानुपालिनाम् ॥३३॥
प्रजापत्यं ब्राह्मणानाँ स्मृतं स्थान क्रियावताम् ।
स्थानमैन्द्रं: क्षत्रियाणाँ संग्रामेष्वनिवर्तिनाम् ॥३४॥
वैश्यानां मारुत स्णानं स्वधर्ममनुवर्तिनाम् ।
गान्धर्वं शूद्रजातोनाँ परिचर्यानुवर्तिनाम् ॥३५॥

हे महामते जिनके अन्तःकरण में इस कालरूप पाप बिन्दुओं की वृद्धि होती है वे यज्ञ की तरफ रुचि नहीं रखते ।२९। जो कोई वेदों, वैदिक सिद्धान्तों और यज्ञों की पूर्ति करने वाले अन्यान्य कर्मों की निंदा करते हैं वे सब यज्ञों में व्याघात डालने वाले प्रवृत्ति मार्ग के उपदेशक, वेदनिंदक दुरात्मा, दुराचारी और कुटिलाशय माने जाते हैं । ३०-३१ । प्रजा के उत्पन्न हो जाने और जीविका की व्यवस्था हो जाने पर प्रजापति ने सब को यथास्थान और यथामर्यादा स्थापित किया ।३२। उन्होंने समस्त वर्णों और

आश्रमों के धर्मों का सम्यक रूप से पालन करने वाले लोगों का उचित स्थान निरूपण किया ।३३। क्रियावान ब्राह्मणोंके लिये प्रजापात्यलोक संग्राम में टिकने वाले क्षत्रियोंके लिए इन्द्र-लोक, स्वधर्मानुवर्ती वैश्योंके लिए देव लोक और परिचर्या परायण शूद्रोंके लिए गंधर्वलोक निश्चित किया ।२४-३५

अष्टाशीतिसहस्राणि मुनीनामूध्वरेतसाम् ।
स्मृतं तेषाँ तु यत्स्थान तदेव गुरुवासिनाम् ।।३६।।
सप्तर्षीणां तु यत्स्थान स्मृतं तद्वै वनौकसाम् ।
प्राजापत्यं गृहस्थानां न्यासिनां ब्रह्मसंज्ञितम् ।।३७।।
योगिनाममृतं स्थानं स्वात्मसन्तोषकारिणाम् ।।३८।।
एकान्तिनः सदाब्रह्मध्यायिनो योगिनश्च ये ।
तेषां तु परमं स्थानं यत्तत्पश्यन्ति सूरयः ।।३९।।
गत्वा गत्वा निर्वत्तन्ते चन्द्रसूर्यादयो ग्रहाः ।
अद्यापि न निवर्त्तन्ते द्वादशाक्षरचिन्तकाः ।४०।
तामिस्रमन्धतामिस्रं महारौरवरौरवौ ।
असिपत्रवनं घोरं कालसूत्रमवीचिकम् ।।४१।।
विनिन्दकानां वेदस्य यज्ञव्याघातकारिणाम ।
स्थानमेतत्समाख्यातं स्वधर्मत्यागिनश्च ये ।।४२।।

अट्ठासी सहस्र ऊर्द्धरेता मुनियों के लिए मरुत स्थान (जनलोक) बतलाया । गुरु के निकट रहने वाले ब्रह्मचारियों का भी यही स्थान है ।३६ सप्तर्षिमंडल में जो तपोलोक है वह वानप्रस्थ वालों का और प्राजापत्य लोक गृहस्थों का स्थान कहा गया । न्ययासियों के स्थान का नाम 'ब्रह्म' है ।३७ योगियों का स्थान 'अमृत' है जोकि विष्णु का परम पद है जो एकांत में रहने वाले सदा ब्रह्म का ही ध्यान रखने वाले योगी हैं, इनका यही स्थान है, ज्ञानीजन इसीका अवलोकन करते हैं । फिर भी इनका आवागमन होता रहता है । पर जो द्वादशाक्षर मंत्र (ॐनमो भगवते वासुदेवाय) का चिन्तन करते रहते हैं वे कभी लौटकर नहीं आते ।३८-३९। तामिस्र, अन्धतामिस्र महारौरव, रौरव, असिपत्रवन, घोर, काल सूत्र अवीचिक-ये सब नरकलोक

है । वेदों की निंदा करने वाले, यज्ञों में बाधा डालने वाले और अपने धर्म को त्याग का आचरण करने वालों का यही स्थान कहा गया है ।४०-४२।

सातवाँ अध्याय

ततोऽभिध्यायतस्तस्य जज्ञिरे मानसाः प्रजाः ।
तच्छरीरसमुत्पन्नै कार्यैस्तैः करणैः सहः ।। १ ।।
क्षेत्रज्ञाः समवर्त्तन्त गात्रेभ्यस्तस्य धीमतः ।
ते सर्वे समवर्त्तन्त ये मया प्रागुदाहृताः ।। २ ।।
देवाद्याः स्थावरान्ताश्च त्रैगुण्यविषये स्थिताः ।
एवंभूतानि सृष्टानि चराणि स्थावराणि च ।। ३ ।।
यदास्य ताः प्रजाः सर्वा न व्यवर्धन्त धीमतः ।
अथान्यन्मानसान्पुत्रान्सदृशानात्मनोऽसृजत् ।। ४ ।।
भृगुं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुमंगिरस तथा ।
मरीचिं दक्षमत्रिं च वसिष्ठं चैव मानसान् ।। ५ ।।
नव ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः ।
ख्यातिं भूतिं च सम्भूतिं क्षमा प्रीतिं तथैव च ।। ६ ।।
सन्नतिं च तथैवोर्ज्जामनसूयाँ तथैव च ।
प्रसुतिं च तत सृष्टवा ददौ तेषां महात्मनाम् ।। ७ ।।

श्री पराशरजी ने कहा-इसके पश्चात् प्रजापति ने ध्यान किया जिससे उनके देह रूपी भूतों से उद्भूत शरीर और इन्द्रियों युक्त मानसी प्रजा की उत्पत्ति हुई ।१। उस समय उन मेधावी ब्रह्माजी के द्वारा चेतन प्राणी उत्पन्न हुए । पूर्व में मैंने देवताओं से स्थावर तक जिस त्रिगुणात्मिका चराचर सृष्टि का वर्णन किया है, वह इसी प्रकार प्रादुर्भूत हुई ।२-३। जब महामति प्रजापति की प्रजा पुत्र-पौत्रादिक के क्रमसे वृद्धि को प्राप्त नहीं हुई, तब उन्होंने अपने समान भृगु,पुलस्त्य,पुलह,क्रतु,अंगिरा, मरीचि दक्ष अत्रि

और वशिष्ठ नामक मानस पुत्रों को उत्पन्न किया ।४-५। पुराणों में इन नौओं को ब्रह्मा कहा गया है। फिर उन्होंने ख्याति, भूति, सम्भूति, क्षमा, प्रीति, ऊर्ज्जा, अनसूया तथा प्रसूति नामक नौ कन्याएँ उत्पन्न की और उन्हें इन महात्माओं को दे दिया ।६-७।

पत्न्यो भवध्वमित्युक्त्वा तेषामेव तु दत्तवान् ।
सनन्दनादयो ये पूर्वसृष्टास्तु वेधसा ॥ ८ ॥
न ते लोकेष्वसज्जन्त निरपेक्षाः प्रजासु ते ।
सर्वे तेऽभ्यागतज्ञाना वीतरागा विमत्सराः ॥ ९ ॥
तेष्वेव निरपेक्षेषु लोकसृष्टौ महात्मना ।
ब्रह्मणोऽभून्महान् क्रोधस्त्रैलोक्यदहनक्षमः ॥१०॥
तस्य क्रोधात्समुद्भूतज्वालामालातिदीपितम् ।
ब्रह्मणोऽभूत्तदा सर्वं त्रैलोक्यमखिलं मुने ॥११॥
भ्रुकुटीकुटिलात्तस्य ललाटात्क्रोधदीपितात् ।
समुत्पन्नस्तदा रुद्रो मध्याह्नार्कसमप्रभः ॥१२॥
अर्धनारीनरवपुः प्रचण्डोतिशरीरवान् ।
विभजात्मानमित्युक्त्वा तं ब्रह्मान्तर्दधे ततः ।
तथोक्तोऽसौ द्विधा स्त्रीत्वं पुरुषत्वं तथाकरोत् ।
बिभेद पुरुषत्वं च दशधा चैकधा पुनः ॥१४॥

उस समय ब्रह्माजी ने उनसे कहा कि तुम इन महात्माओं की भार्या हो जाओ ब्रह्माजी ने पहिले जिन सनन्दन आदि का प्रादुर्भाव किया था, वे निरपेक्ष रहकर सन्तानोत्पादन और संसार कार्यों से उदासीन रहे, क्योंकि वे सभी ज्ञानी, मत्सरादि से रहित तथा वीतराग थे ।८-९। उन्हें सृष्टि-कार्य से विरक्त देखकर ब्रह्माजी को तीन लोकों के भस्म करने में समर्थ क्रोध की उत्पत्ति हुई ।१०। हे मुने ! ब्रह्माजी के उस क्रोध से उत्पन्न हुई ज्वाल मालाओं में यह सम्पूर्ण विश्व अत्यन्त प्रकाशमान हो उठा। उसी समय उनकी टेढ़ी भृकुटि और क्रोध से युक्त ललाट से मध्याह्न काल के सूर्य के समान तेजस्वी रुद्र का अविर्भाव हुआ ॥१२॥ उसका देह प्रचण्ड था और आधा नर तथा नारी रूप

था। उससे ब्रह्मा जी ने कहा कि अपने शरीर को विभक्त कर डाल। यह कहकर वह वहीं अन्तर्ध्यान हो गये।११। ब्रह्माजी का आदेश सुनकर रुद्र ने अपने देहगत स्त्री-पुरुष को पृथक-पृथक विभक्त किया और फिर उस पुरुष के भी ग्यारह भाग कर डाले।१३।

सौम्यासौम्यैस्तदा शान्ताशान्तैः स्त्रीत्वं च स प्रभुः।
विभेद बहुधा देवः स्वरूपरसितः सितैः ॥१५॥
ततो ब्रह्मात्मसम्भूतं पूर्वं स्वायम्भुव प्रभुः।
आत्मानमेव कृतवान्प्रजापाल्ये मनुं द्विज ॥१६॥
शतरूपाँ च ताँ नारीं तपोनिर्धूतकल्मषाम्।
स्वायम्भुवो मनुर्देवः पत्नीत्वे जगृहे प्रभुः ॥१७॥
तस्मात्तु पुरुषाद्देवी शतरूपा व्यजायत।
प्रियव्रतोत्तानपादौ प्रसूत्याकूतिसंज्ञितम् ॥१८॥
कन्याद्वयंच धर्मज्ञ रूपौदार्यगुणान्वितम्।
ददौ प्रसूतिं दक्षाय आकूतिं रुचये पुरा ॥१९॥
प्रजापतिः स जग्राह तयोर्जज्ञे सदक्षिणाः।
पुत्रो यज्ञो महाभाग दम्पत्योर्मिथुनं ततः ॥२०॥
यज्ञस्य दक्षिणायाँ तु पुत्रा द्वादस जज्ञिरे।
यामा इति समाख्याता देवाः स्वायम्भुवे मनौ ॥२१॥

स्त्री-देह के भी उसने सौम्य, क्रूर, शान्त अशान्त, श्याम, गौर आदि के भेद से अनेक विभाग किये।१५। फिर ब्रह्माजी ने अपने ही द्वारा उत्पन्न किये गये, अपने ही जैसे रूप वाले स्वायभुव को प्रथम मनु बना कर उन्हें प्रजा-पालन के कार्य में प्रयुक्त किया। १६। उन स्वायंभुव के साथ ही शतरूपा नाम की नारी उत्पन्न हुई थी, उसे अपनी भार्या के रूप में ग्रहण किया।१७। उस शतरूपा ने स्वायंभुव मनु से दो पुत्र उत्पन्न किये जिसके नाम प्रियव्रत और उत्तानपाद हुए। इसी प्रकार प्रसूति और आकूति नाम की रूप, गुण सम्पन्न दो कन्याएँ भी उत्पन्न कीं। उनमें से प्रसूति का विवाह दक्ष प्रजापति तथा आकूति का रुचि प्रजापति के साथ किया गया। १८-१९। हे महाभाग ! रुचि प्रजापति

द्वारा आकूति के ग्रहण कर लेने पर उनके यज्ञ और दक्षिणा नामक दो जुड़वाँ सन्तान हुई।२०। यज्ञ और दक्षिणा में परस्पर विवाह हो गया, इनके १२ पुत्र हुए जो स्वायभुव मंवंतर में याम नामक प्रसिद्ध देवता हुए२

प्रसूत्यां च तथा दक्षश्चतस्रो विंशतिस्तथा ।
ससर्ज कन्यास्तासां च सम्यङ् नामानि मे शृणु ॥२२॥
श्रद्धा लक्ष्मी धृतिस्तुष्टिर्मेधा पुष्टिस्तथा क्रिया ।
बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिः सिद्धः कीर्तिस्त्रयोदशी ॥२३॥
पत्न्यर्थं प्रतिजग्राह धर्मो दाक्षियणीः प्रभुः ।
ताभ्यः शिष्टाःयवीयस्य एकादश सुलोचनाः ॥२४॥
ख्यातिः सत्यथासम्भूतिः स्मृतिः प्रीतिः क्षमा तथा ।
सन्ततिञ्चानसूया च ऊर्ज्जा स्वाहा स्वधा तथा ॥२५॥
भृगुर्भवा मरीचिश्च तथा चैवाङ्गिराः मुनिः ।
पुलस्त्यः पुलहश्चैव क्रतुहश्चर्षिवरस्तथा ॥२६॥
अत्रिर्वसिष्ठो वह्निश्च प्रितनश्च यथाक्रमम् ।
ख्यात्याद्या जगृहुः कन्या मुनियो मुनिसत्ताम ॥२७॥
श्रद्धा कामंचला दर्पं नियमं धृतिरात्मजम् ।
सन्तोष च तथा तुष्टर्लोभं पृष्टिरसूयत ॥२८॥

दक्ष प्रजापति के प्रसूति से चौबीस कन्याएँ उत्पन्न हुईं अब तुम से उनके नाम कहता हूँ, श्रवण करो।२२। श्रद्धा, लक्ष्मी, धृतितुष्टि, मेधा, पुष्टि, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु शान्ति, सिद्धि और कीर्ति ये १३ कन्याएँ भार्या रूप में धर्म ने ग्रहण कीं। उनसे छोटी ११ कन्याएँ थीं। जिनके नाम ख्याति सती, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, सन्तति, अनसूया, ऊर्ज्जा स्वाहा, स्वधा, थे।२३-२५। उन कन्याओं को भृगु, शिव, मरीचि, अंगिरा पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अत्रि वशिष्ठ अग्नि और पितरगण ने ग्रहण किया था।२६-२७। उनमें से श्रद्धा ने काम, लक्ष्मी ने दर्प, धृति ने नियम, तुष्टि ने सन्तोष, पुष्टि ने लोभ नामक पुत्र को जन्म दिया।२८।

बोधं बुद्धिस्तथा लज्जा विनयं वपुरात्मजम् ।
व्यवसायं प्रजज्ञे वै क्षेमं शान्तिरसूयत ॥३०॥
सुखं सिद्धर्यशः कीर्तिरित्येते धर्मसूनवः ।
कामाद्रतिः सुतं हर्षं धर्म पौत्रमसूयत ॥३१॥
हिंसा भार्या त्वधर्मस्य ततो जज्ञे तथानृतम् ।
कन्या च निकृतिस्ताभ्या भयं नरकमेव च ॥३२॥
माया च वेदना चैव मिथुनं त्विदमेतयोः ।
तयोजज्ञेऽथ वै माया मृत्युं भूयापहारिणम् ॥३३॥
वेदना स्वसुतं चापि दुःख जज्ञेऽथ रौरवात् ।
मृत्योर्व्याधिराजरापोकतृष्णक्रोधाश्च जज्ञिरे ॥३४॥
दुःखोत्तराः स्मृता ह्येते सव चाधर्म लक्षणाः ।
नेषा पुत्रोऽस्ति वै भार्या ते सर्वे ह्यूर्ध्वरेतसः ॥३५॥

इसी प्रकार मेधा ने श्रुत, क्रिया ने दण्ड नय और विनय, बुद्धि ने बोध, लज्जा ने विनय, वपु ने व्यवसाय, शान्ति ने क्षेम, सिद्धने सुख और कीर्ति ने यश उत्पन्न किया, धर्म के यही पुत्र हैं। धर्म पुत्र काम ने रति से हर्ष को प्रकट किया।२९-३१। अधर्म की भार्या हिंसा हुई, अनृत पुत्र को और निकृति नाम की कन्या को जन्म दिया। उन दोनोंके संयोग से भय और नरक नामक पुत्र तथा माया और वेदना नामकी कन्याएँ पैदा हुई, यह क्रमशः भय और नरक की भार्या हुईं। उनमें से मायाने जीवोंका नाश करने में समर्थ मृत्यु नामक पुत्र का प्रसव किया।३२-३३। रौरव के द्वारा वेदना ने दुःख नामक एक पुत्र उत्पन्न किया तथा मृत्यु से व्याधि, जरा, शोक तृष्णा और क्रोध उत्पन्न हुए।३४। यह सभी अधर्म स्वरूप तथा दुःखोत्तर नाम से विख्यात हैं,इनके ऊर्ध्वरेता होने के कारण कोई सन्तान अथवा पत्नी आदि नहीं हैं ॥३५॥

रौद्राण्येतानि रूपाणि विष्णोर्मुनिवरात्मज ।
नित्यप्रलयहेतुत्व जगतोऽस्य प्रयान्ति वै ॥३६॥
दक्षो मरीचिरग्निश्च भृग्वाद्याश्च प्रजेश्वराः ।
जगत्यत्र महाभाग नित्यसर्गस्य हेतवः ॥३७॥

मनवो मनुपुत्राश्च भूपा वीर्यधराश्च ये ।
सनमार्गनिरताः शूरास्ते सर्वे स्थितिकारिणः ॥३८॥
येयं नित्या स्थितिर्ब्रह्मान्नित्यसर्गस्तथेरितः ।
नित्याभावश्च तेषां वै स्वरूपं मम कथ्यताम् ॥३९॥
सर्गस्थितिविनाशांश्च भगवान्मधुसूदनः ।
तैस्तै रूपैरचिन्त्यात्मा करोत्यव्याहता विभुः ॥४०॥
नैमित्तिकः प्राकृतिकस्तथैवात्यन्तिको द्विज ।
नित्यश्च सर्वमानां प्रलयोऽय चतुर्विधः ॥४१॥
ब्राह्मो नैमित्तिकस्तत्र शेतेऽयं जगतीपतिः ।
प्रयाति प्राकृते चैव ब्रह्माण्ड प्रकृतौ लयम् ॥४२॥

हे मुनिवरात्मज ! भगवान् विष्णु के यह अत्यन्त भयङ्कर स्वरूप हैं, क्योंकि विश्व की नित्य प्रलय के कारण रूप भी यही हैं।३६। दक्ष,मरीचि अत्रि और भृगु आदि जो प्रजापति हैं, उन्हें इस विश्व के सृष्टि-कारण समझो।३७। तनु तथा उनके श्रेष्ठ मार्ग पर चलने वाले पराक्रमी और वीर पुत्र जो राजा हैं, वे सब इस जगत की नित्य-स्थित के कारण रूप हैं।३८। यह सुनकर मैत्रेयजी ने कहा-हे ब्रह्मन् ! आपने जिस नित्य स्थिति, नित्य सर्ग और नित्य प्रलय का मेरे प्रति वर्णन किया है, उनका स्वरूप अब मुझे बताने की कृपा करें।३९। श्री पराशरजी ने कहा-जिन अचिन्त्यामा एवं सर्वव्याप्त भगवान् मधूसूदन की गति कहीं भी नहीं रुक पाती, वही मनु आदि रूपों से इस जगत्की सृष्टि स्थिति तथा संहार करते रहते हैं।३०। हे द्विज ! समस्त प्राणियों का प्रलय नैमित्तिक, प्राकृतिक आत्यन्तिक और नित्य के भेदसे चार प्रकार का है।३१। उनमें नैमित्तिक प्रलय ब्राह्म प्रलय कही गई है, जिसमें ब्रह्माजी कल्पान्त में शयन करते हैं और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड प्राकृतिक प्रलय में, प्रकृति में लीन हो जाता है।४२।

ज्ञानादात्यन्तिकः प्रोक्तो योगिनः परमात्मनि ।
नित्यः सदैव भूतानां यो विनाशो दिवानिशम् ॥४३॥
प्रसूतिः प्रकृतेर्या तुषा सृष्टिः प्राकृता स्मृता ।
दैनन्दिनी तथा प्रोक्ता यान्तरप्रलयादनु ॥४४॥

भूतान्यनुदिनं यत्र जायन्ते मुनिसत्तम ।
नित्यसर्गो हि स प्रोक्तः पुराणार्थविचक्षणैः ॥४५॥
एवं सर्वशरीरेषु भगवान्भूतभावनः ।
सस्थितः कुरुते विष्णुरुत्पत्तिस्थितिसंयमान् ।.४६॥
सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तयः सर्वदेहिषु ।
वैष्णव्यः परिवर्त्तन्ते मैत्रेयाहर्निशं समाः ॥४७॥
गुणत्रयमयं ह्येतद्ब्रह्मन् शक्तित्रयं महत् ।
योऽतियाति स यात्येव परं नावर्त्तते पुनः ॥४८॥

आत्यन्तिक प्रलय वह है जिसमें ज्ञान बल से योगी परमात्मा में लीन हो जाता है तथा दिन-रात प्राणियोंका क्षय ही नित्य प्रलय है ।४। महत्तत्वादि के क्रम से प्रकृति के द्वारा जो सृष्टि होती है, वही प्राकृतिक सृष्टि है तथा अवान्तर प्रलयके पश्चात् होनेवाली चराचर विश्वकी रचना ही दैनन्दिनी सृष्टि है ।४४। हे मुनिबर ! प्रतिदिन प्राणियों की जिसमें उत्पत्ति होती रहती है वह पुराण पारङ्गतों द्वारा नित्य सृष्टि कही गयी है ।४५। इस प्रकार सभी प्राणियों में स्थित भगवान् विष्णु इस संसार की सृष्टि, स्थिति और प्रलय करते रहते हैं ।४६। मैत्रेयजी ! सृष्टि, स्थित और संहार की इन वैष्णवी शक्तियों का सभी देहों में समान रूप से रात-दिन सञ्चार होता रहता है ।४। हे ब्रह्मन् ! यह तीनों शक्तियाँ त्रिगुणात्मिका हैं और जो मनुष्य इनका अतिक्रमण करता है वह परम-पद को प्राप्त होकर जन्म मरणादि से मुक्त हो जाता है ॥४८॥

—:※※:—

आठवाँ अध्याय

कथितस्तामसः सर्गो ब्रह्मणस्ते महामुने ।
रूद्रसर्गं प्रवक्ष्यामि तन्मे निगदत शृणु ॥ १ ॥
कल्पादावात्मनस्तुल्यं सुतं प्रध्यायतस्ततः ।
प्रादुरासीत्प्रभोरङ्के कुमारो नीललोहितः ॥ २ ॥

रुरोद सुस्वरं सोऽथ प्राद्रवद् द्विजसत्तम ।
किं त्वं रोदिषि तं ब्रह्मा रुदन्तं प्रत्युवाचह ॥ ३ ॥
नाम देहीति तं सोऽथ प्रत्युवाच प्रजापतिः ।
रुद्रस्त्वं देव नाम्नासि मा रादीर्धैर्यमावह ॥ ४ ॥
एवमुक्तः पुनः सोऽथ सप्तकृत्वा रुरोद वै ।
ततोऽन्यानि ददौ तस्मै सप्त नामानि वै प्रभुः ॥ ५ ॥
स्थानानि चैषामष्टानाँ पत्नीः पुत्राश्च स प्रभुः ।
भव शर्वमथेशानं तथा पशुपतिं द्विज ॥ ६ ॥
भीममुग्र महादेवमुवाच स पितामहः ।
चक्रे नामान्यथैतानि स्थानान्येषां चकार सः ॥ ७ ॥

श्री पराशरजी ने कहा-हे महामुने ! ब्रह्माजी का तामस सर्ग मैंने तुम्हारे प्रति कहा है, अब रुद्र-सर्ग के वर्णन को सुनो ।१। कल्प के आरम्भ में ब्रह्माजी ने अपने समान पुत्रों को उत्पन्न करने की इच्छा से चिंतन किया तब उनकी गोद में ही एक नीललोहित वर्ण का पुत्र प्रकट हो गया ।२। हे द्विजश्रेष्ठ ! जन्म होते ही वह उच्च स्वर में रोने और इधर-उधर दौड़ने लगा । यह देखकर ब्रह्माजी ने उससे उसके रोने का कारण पूछा तो उसने कहा कि मेरा नामकरण करिये । तब ब्रह्मा जी ने कहा-तेरा नाम रुद्र हुआ, अब तू रुदन मत कर, धीरज रख ।३-४। यह सुनकर भी वह सात बार और रोता रहा तब ब्रह्माजी ने उसके ७ नाम और निर्दिष्ट किये तथा उन आठों के स्त्री और पुत्रोंकी कल्पना की । प्रजापति ने उसके नाम जो रखे वह यह थे-भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र महादेव ! इस प्रकार नामकरण करके उनके स्थान निश्चित किये ।५-७।

सुर्यो जलं मही वायुर्वह्निराकाशमेव च ।
दीक्षितो ब्राह्मणः सोम इत्येतास्तनवः क्रमात् ॥ ८ ॥
सुवचला यथवोषा विकेशी चापरा शिवा ।
स्वाहा दिशस्तथा दीक्षा रोहिणो च यथाक्रमम् ॥ ९ ॥
सूर्यादानां द्विजश्रेष्ठ रुद्राद्यैर्नामभिः सह ।
पत्न्यः स्मृता महाभाग तदपत्यानि मे श्रृणु ॥१०॥

एषां सूतिप्रसूतिभ्यामिदमापूरितं जगत् ।
शनैश्चरस्तथा शुक्रो लोहिताङ्गो मनोजवः ॥११॥
स्कन्दः सर्गोऽथ सन्तानो बुधाश्चनुक्रमात्सुताः ।
एवं प्रकारो रुद्राऽसौ सतीं भार्यामनिन्दिताम् ॥१२॥
उपयेमे दुहितरं दक्षस्यैव प्रजापतेः ।
दक्षकोपाच्च तत्याज सा सती स्वकलेवरम् ॥१३॥
हिमवद् दुहिता साभून्मेनायां द्विजसत्तमः ।
उपमेये पुनश्चोमामनन्याँ भगनान्हरः ॥१४॥

हे द्विजोत्तम ! सूर्य, जल, पृथ्वी, वायु, अग्नि, आकाश, दीक्षित ब्राह्मण और चन्द्रमा यह सब उनके रूप हैं, रुद्र आदि नामों के सहित उन सूर्य आदि रूपों की सुवर्चला, ऊषा, विकेशी, अपरा, शिवा, स्वाहा दिशा दीक्षा और रोहिणी नाम की भार्याएँ हुईं । अब तुम उनके पुत्रों के नामों को श्रवण करो ।८-१०' उनके ही पुत्र, पौत्रादि से यह सम्पूर्ण विश्व परिपूर्ण हो रहा है । उनके पुत्र शनैश्चर, शुक्र, लोहितांग, मजोवन स्कन्द सर्ग सन्तान और बुध नामक हुए । भगवान् रुद्र प्रजापति का निंदा रहित कन्या सती को अपनी पत्नी बनाया, जिसने दक्ष से रुष्ट होकर उसी के यज्ञ में अपने देह का त्याग कर दिया था । वही दक्ष-सुता सती मेना के उदर से उत्पन्न हिमाचल की कन्या पार्वती हुई । उन अनन्य-परायण पार्वती जी ने शिवजी का पुनः पाणिग्रहण किया ।११-१४।

देवौ धातृविधातारौ भृगोः ख्यातिरसूयत ।
श्रियः च देवदेवस्य पत्नी नारायणस्य या ॥१५॥
क्षीराब्धौ श्रीः समुत्पन्ना श्रूयतेऽमृतमन्थने ।
भृगोः ख्यात्यां समुत्पन्नेत्येतदाह कथं भवान् ॥१६॥
नित्यैवेषा जगन्माता विष्णोः श्रीरनपायिनी ।
यथा सर्वगतो विष्णुस्तथैवेयं द्विजोत्तम ॥१७॥
अर्थो विष्णुरियं वाणी नीतिरेषा नयो हरिः ।
बोधो विष्णुरियं बुद्धिर्धर्मोऽसौ सत्क्रिया त्वियम् ॥१८॥

स्रष्टा विष्णुरियं सृष्टिः श्री र्भूमिर्भूधरो हरिः ।
सन्तोषो भगवाँल्लक्ष्मीस्तुष्टिर्मैत्रेय शाश्वती ॥१९॥
इच्छा श्रीर्भगवान्कामो यज्ञोऽसौ दक्षिणा त्वियम् ।
आज्याहुतिरसौ देवी पुरोडाशो जनार्दनः ॥२०॥
पत्नीशाला मुने लक्ष्मीः प्राग्वंशो मधुसूदनः ।
चितिर्लक्ष्मीर्हरिर्यूप इध्मा श्रीर्भगवान्कुशः ॥२१॥

दक्ष-पुत्री ख्याति ने धाता और विधाता नामक दो देवताओं को उत्पन्न किया और लक्ष्मी नामक एक पुत्री को भी जन्म दिया । यही लक्ष्मीजी भगवान् विष्णु की भार्या हुई । १५ । मैत्रेयजी ने कहा-प्रभो ! लक्ष्मीजी की उत्पत्ति तो अमृत मन्थन के समय क्षीरसागर से हुई बताई जाती है, परन्तु आप उन्हें भृगु के द्वारा ख्याति के गर्भ से उत्पन्न हुई कसे कहते हैं ? श्रीपाराशरजी बोले-हे द्विजश्रेष्ठ ! जिन जगन्माता लक्ष्मी जी का कभी तिरोभाव नहीं होता, वे तो नित्य ही हैं । भगवान् विष्णुके समान ही यह भी सर्वव्यापक हैं । १७ । विष्णु अर्थ है तो इन्हें वाणी समझो, विष्णु न्याय हैं तो इन्हें नीति मानो, विष्णु बोध है तो इन्हें बुद्धि जानो, इसीप्रकार यदि विष्णुबुद्धि हैं तों यह धर्म हैं । हे मैत्रेयजी ! विष्णु इस विश्वके सृष्टा हैं, तो लक्ष्मीजो सृष्टि हैं । विष्णु भूधर हैं, तो यह भूमि हैं, यदि वह सन्तोष हैं तो यह नित्य-तुष्टि है ।१८-१९ यदि विष्णु कामदेव हैं तो लक्ष्मीजी इच्छा हैं, विष्णु यज्ञ हैं, वह पुरोडाश हैं तो यह घृताहुति है ।२०। हे मुने ! भगवान् मधुसूदन यदि यजमानशाला हैं तो लक्ष्मीजी पत्नीशाला हैं, विष्णु यूप हैं, तो लक्ष्मी चिति हैं, यदि वह कुश है तो यह इध्मा ।२१।

सामस्वरूपी भगवानन्दीतिः कमलालया ।
स्वाहा लक्ष्मीजगन्नाथो वासुदेवो हुताशनः ॥२२॥
शङ्करो भगवाञ्छौरि गौरो लक्ष्मीर्द्विजोत्तम ।
मैत्रेय केशवः सूर्यस्तत्प्रभा कमलालया ॥२३॥
विष्णुःपितृगणः पद्म स्वधा शाश्वतपुष्टिदा ।
द्यौःश्रीः सर्वात्मको विष्णुरवकाऽतिविस्तरः ॥२४॥

शशाङ्कःश्रीधरः कान्तिः श्रीस्तथैवानपायिनी ।
धृतिर्लक्ष्मीर्जगच्चेष्टा वायुः सर्वत्रगो हरिः ॥२५॥
जलधिर्द्विज गोविन्दस्तद्वेला श्रीर्महामुने ।
लक्ष्मीस्वरूपमिन्द्राणी देवेन्द्रो मधुसूदनः ॥२६॥
यमश्चक्रभरः साक्षाद्धूमोर्णा कमलालया ।
ऋद्धिःश्रीःश्रीधरो देवः स्वयमेव धनेश्वरः ॥२७॥
गौरी लक्ष्मीर्महाभागा केशवो वरुणः स्वयम् ।
श्रीर्देवसेना विप्रेन्द्र देवसेनापतिर्हरिः ॥२८॥

भगवान् विष्णु साम हैं तो लक्ष्मी उद्गीति हैं, वह हुताशन हैं तो लक्ष्मी स्वाहा हैं । हे द्विजवर ! यदि विष्णु शिव हैं तो लक्ष्मी पार्वती हैं, वह सूर्य हैं तो यह उनकी प्रभा हैं ।२२-२३। यदि विष्णु पितरगण हैं तो लक्ष्मीजी नित्य पुष्टि प्रदान करने वाली स्वधा हैं, यदि वह अत्यन्त विस्तृत सर्वात्मक अवकाश हैं तो यह स्वर्गलोक हैं ।२४। यदि भगवान् चन्द्रमा हैं तो लक्ष्मीजी उनकी अक्षयकांति हैं, यदि विष्णु सर्वत्र गमन में समर्थ वायु हैं तो लक्ष्मीजी संसार की गति एवं उसकी आश्रय रूपा हैं ।२५। हे महामुने ! यदि गोविन्द समुद्र है तो लक्ष्मी उनकी तरङ्ग हैं, यदि भगवान् इन्द्र हैं तो लक्ष्मी इन्द्राणी हैं । यदि विष्णु यम हैं तो लक्ष्मी यम-भार्या धूमोर्णा हैं, यदि वह कुवेर हैं तो लक्ष्मी साक्षात् ऋद्धि हैं । भगवान केशव वरुण हैं तो लक्ष्मी गौरी हैं। हे विप्रेन्द्र ! श्रीविष्णु देव-सेना के अधिनायक स्वामी कीर्तिकेय हैं तो लक्ष्मीजी देवसेना हैं ।२८।

अवष्टम्भो गदापाणिः शक्तिर्लक्ष्मीर्द्विजोत्तम ।
काष्ठा लक्ष्मीर्निमेषोऽसौ मुहूर्तोऽसौ कलात्वियम् ॥२९॥
ज्योत्स्ना लक्ष्मीः प्रदीपोऽसौ सर्वः सर्वेश्वरो हरिः ।
लताभूता जगन्माता श्रीविष्णुर्द्रुमसञ्ज्ञितः ॥३०॥
विभावरी श्रीर्दिवसो देवश्चक्रगदाधरः ।
वरप्रदो वरो विष्णुर्वधूः पद्मवनालया ॥३१॥
नदस्वरूपी भगवाञ्छ्रीर्नदीरूपसंस्थिता ।

ध्वजश्च पुण्डरीकाक्षः पताका कमलालया ॥३२॥
तृष्णा लक्ष्मीर्जगन्नाथो लोभो नारायणः परः ।
रती रागश्च मैत्रेय लक्ष्मीर्गोविन्द एव च ॥३३॥
किं चातिबहुनोक्तेन संक्षेपेणेदमुच्चते ॥३४॥
देवतिर्यङ्मनुष्यादौ पुन्नामा भगवान्हरिः ।
स्त्रीनाम्नी श्रीश्च विज्ञेया नानयोर्विद्यते परम् ॥३५॥

हे द्विजश्रेष्ठ ! भगवान् गदाधारी विष्णु आश्रय हैं तो लक्ष्मीजी शक्ति हैं, भगवान् निमेष हैं तो यह काष्ठा हैं, वह मुहुर्त्त तो यह कला हैं ।२०। यदि सर्वेश्वर विष्णु दीपक हैं तो लक्ष्मी ज्योति हैं, विष्णु वृक्ष हैं तो लक्ष्मीजी उसकी लता हैं ।३०। यदि चक्रगदाधारी भगवान् दिवस हैं तो लक्ष्मीजी निशा हैं । यदि वर देने वाले भगवान् विष्णु वर हैं तो लक्ष्मीजी की उनकी वधू हैं ।३१। भगवान् विष्णु नद हैं तो लक्ष्मीजी नदी हैं,कमल लोचन विष्णु ध्वजा हैं तो कमल पताका हैं।३२।यदि जगत के स्वामी विष्णु लोभ हैं तो लक्ष्मी तृष्णा हैं और हे मैत्रेय ! रति लक्ष्मी हैं तो राग गोविन्द हैं ।३३। अधिक क्या कहूँ, इतना ही ठीक है कि देवता, तिर्यक् योनि जीव तथा मनुष्यादि में जितने भी पुरुष सज्ञक प्राणी हैं, वह सभी भगवान् विष्णु के रूप हैं तथा सभी स्त्री कहाने वाले जीव लक्ष्मीजी के स्वरूप हैं । इस प्रकार विष्णु और लक्ष्मी से परे कोई भी नहीं है ।३४—३५।

—※—

नवाँ अध्याय

इ च शृणु मैत्रेय यत्पृष्टोऽहमिह त्वया ।
श्री सम्बन्धं मयाप्येतच्छ्रुतमासीन्मरीचितः ॥ १ ॥
दुर्वासाः शङ्करस्यांशश्चचार पृथ्वीमिमाम् ।
स ददर्श स्रजं दिवयामृषिर्विद्याधरीकरे ॥ २ ॥
सन्तानकानामखिलं यस्या गन्धेन वासितम् ।

अतिसेव्यमभूद्ब्रह्मन् तद्वनं वनचारिणाम् ॥ ३ ॥
उन्मत्तव्रतधृग्विप्रस्तां दृष्ट्वा शोभनां स्रजम् ।
तां ययाचे वारारोहाँ विद्याधरवधूं ततः ॥ ४ ॥
याचिता तेन तन्वंगी मालां विद्याधराँगना ।
ददौ तस्मै विशालाक्षी सादरं प्रणिपत्य तम् ॥ ५ ॥
तामादायात्मनो मूर्ध्नि स्रजमुन्मत्तरूपधृक् ।
कृत्वा स विप्रो मैत्रेय परिबभ्राम मेदिनीम् ॥ ६ ॥
स ददर्श तमायान्तमुन्मत्तैरावते स्थितम् ।
त्रैलोक्याधिपतिं देव सह देवैः शचीपतिम् ॥ ७ ॥

श्री पराशरजी ने कहा-हे मैत्रेय ! तुमने जो प्रश्न मुझ से किया, उस लक्ष्मीजी विषयक इतिहास को मैंने महर्षि मरीचि से सुना था, वह मैं तुम्हारे प्रति कहता हूँ, तुम उसे श्रवण करो ।१। एक समय की बात है कि भगवान् शिवजी के अंशावतार महर्षि दुर्वासाजी भूतल पर विचरण कर रहे थे तभी उन्हें एक विद्याधरी के हाथ सन्तानक पुष्पों की एक दिव्य माला दिखाई दी उसकी श्रेष्ठ गन्ध से सुरभित हुआ वह वन वहाँके रहने वालों के लिए अत्यन्त सेवनीय हो रहा था ।२-३। उस समय उन उन्मत वृत्ति वाले ऋषि श्रेष्ठ ने उस सुन्दर माला को देखकर विद्याधारी से उस की याचना की ।३। उनकी याचना स्वीकार करके उस विशालाक्षी विद्याधरी ने उन ऋषि को सादर प्रणाम किया और वह माला उन्हें दे दी ।५। हे मैत्रेय ! उन्मत्त वेश वाले उन ब्राह्मण श्रेष्ठ ने उस माला को लेकर अपने मस्तक पर धारण किया और पृथिवी पर विचरण करने लगे ।६। इसी बीच उन्होंने मत्त ऐरावत पर आरूढ़ हुए तीनों लोकों के स्वामी शचिपति इन्द्र को देवताओं के सहित उधर आते हुए देखा ।७।

तामात्मनः स शिरसः स्रजमुन्मत्तषट्पदाम् ।
आदायामरराजाय चिक्षेपोन्मत्तवन्मुनिः ॥ ८ ॥
गृहीत्वामरराजेन स्रगैरावत मूर्द्धनि ।
न्यस्ता रराज कैलासशिखरे जान्हवी यथा ॥ ९ ॥

मदान्धकारिताक्षोऽसौ गन्धाकृष्टेन वारणः ।
करेणाघ्राय चिक्षेप तां स्रजं धरणीतले ॥१०॥
ततश्चुक्रोध भगवान्दुर्वासा मुनिसत्तमः ।
मैत्रेय देवराजं तं क्रुद्धश्चैतदुवाच ह ॥११॥
एश्वर्यमददुष्टात्मन्नतिस्तब्धोऽसि वासव ।
श्रियो धाम स्रज यस्त्वं मद्दत नाभिनन्दसि ॥१२॥
प्रसाद इति नोक्तं ते प्रणिपातपुरःसरम् ।
हर्षोत्फुल्लकपोलेनन चापि शिरसा धृता ॥१३॥
मया दत्तामिमां मालां यस्मान्न बहु मन्यसे ।
त्रैलोक्यश्रीरतो मूढ़ विनाशमुपयास्यति ॥१४॥

मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा ने जब उन्हें देखा तो मदमत्त भौंरोंकी गुंजारसे युक्त उस माला को अपने मस्तक से उतारकर उन्होंने देवाधिपति इन्द्रके ऊपर फेंकी ।८। इन्द्रने उस माला को अपने हाथी ऐरावत के मस्तक पर धारण कर दी, उस समय ऐसी शोभा हुई जैसे कैलाश-शिखर पर पतित पावनी गंगाजी विराजमान हों ।९। परन्तु वह मदोन्मत हाथी उसकी सुगधि से और भी उन्मत्त होगया और उसने उसे अपने मस्तकसे उतारकर सूंघा तथा पृथ्वी पर फेंक दिया।१०।हे मैत्रेयजी ! जब मुनिवर दुर्वासाजी ने उस मालाकी ऐसी दुर्दशा देखी तो वह अत्यन्त क्रोधसे भरकर इन्द्रसे कहने लगे ११। दुर्वासा बोले-अरे, एश्वर्यमद से दूषित हृदय वाले इन्द्र ! तू अत्यन्त ढीठ है, तूने मेरे द्वारा प्रदत्त इस अत्यंत शोभाधाम माला का किंचित् भी आदर नही किया ।१२। तूने न प्रणाम ही किया और न यही कहा कि बड़ी कृपा की और न तूने हर्षित मुखसे उस माला को ही अपने मस्तकपर धारण किया । तूने मेरे द्वारा दी गई माला का कुछ भी मूल्य नहीं समझा इस कारण तेरा तीनों लोकों का ऐश्वर्य नष्ट हो जायगा ।१३-१४।

मां मन्यसे त्वं सदृश नूनं शक्र तरद्विजैः ।
अतोऽवमानमस्मासु मानिना भवता कृतम् ॥१५॥
मद्दत्ता भवता यस्मात्क्षिप्ता माला महीतले ॥

तस्मात्प्रणष्टलक्ष्मीकं त्रैलोक्यं ते भविष्यति ।१६।।
यस्य सञ्जातकोपस्य भयमेति चराचरम् ।
तं त्वं मामतिगर्वेण देवराजावमन्यसे ।।१७।।
महेन्द्रो वारणस्कन्धादवतीर्य त्वरान्वितः ।
प्रसादयामास मुनि दुर्वाससमकल्पषम् ।।१८।।
प्रसाद्यमानः स तदा प्रणिपातपुरःसरम् ।
इत्युवाच सहस्राक्ष दुर्वासा मुनिसत्तमः ।।१६।।
नाह कृपलुहृदयो न च मां भजते क्षमा ।
अन्ये ते मुनयः शक्र दुर्वाससमवेहि माम् ।।२०।।
गौतमादिभिरन्यैस्त्वं गर्वमारोपितो मुधा ।
अक्षान्तिसारसर्वस्व दुर्वाससमवेहि माम् ।।२१।।

अरे इन्द्र ! तू अवश्य ही मुझे अन्य विप्रों जैसा ही समझता है, सभी तो तूने हमारा इस प्रकार निरादर किया है ।१५। तूने मेरे द्वारा दी हुई माला को भूमि पर फेंक दिया इसलिए तेरा यह त्रिभुवन भी अब शीघ्र ही श्रीहीनता को प्राप्त होगा ।१६। अरे देवराज ! जिसके क्रोध से भयभीत हुआ यह सम्पूर्ण चराचरात्मक विश्व कम्पायमान होने लगता है, उसी का तूने अत्यन्त अहंकार पूर्वक इस प्रकार तिरस्कार किया है । ।१७। श्री पराशरजी बोले—यह सुनकर इन्द्र तुरन्त ही ऐरावत से उतर पड़े और अनुनय विनय पूर्वक उन पाप-रहित मुनि को प्रसन्न करने लगे ।१८। इन्द्र द्वारा इस प्रकार प्रणामादि किये जाने पर महर्षि दुर्वासा ने उनसे इस प्रकार कहा ।१६। दुर्वासाजी बोले—हे इन्द्र ! मैं कृपालु चित्त वाला नहीं हूँ, मेरे अंतःकरण में क्षमा किंचित् भी नहीं ठहर सकती । वह मुनि तो दूसरे ही हैं, मेरा नाम तो दुर्वासा है ।२०। अरे गौतम आदि ऋषियों ने तुझे अकारण ही इतना मुख लगा लिया है, परन्तु याद रखना कि मैं तो सदा ही अक्षमाशील दुर्वासा हूँ ।२१।

वसिष्ठाद्यैर्दयासारैस्स्तोत्रं कुर्वद्भिरूच्चकैः ।
गर्वं गतोऽसि येनैवं मापयद्यावमन्यसे ।।२ ।।

ज्वलज्जटाकलापस्य भृकुटीकुटिलं मुखम् ।
निरीक्ष्य कस्त्रिभुवने मम यो न गतो भयम् ॥२३॥
नाहं क्षमिष्ये बहुना किमुक्तेन शतक्रतो ।
विडम्बनामिमो भूयः करोष्यनुनयात्मिकाम् ॥२४॥
इत्युक्त्वा प्रययौ विप्रो देवाराजोऽपि तं पुनः ।
आरूह्यैरावतं ब्रह्मन् प्रययावमरावतीम् । २५॥
ततः प्रभृति निःश्रोक सशक्रं भुवनत्रयम् ।
मैत्रेयासीदपध्वस्तं सक्षीणौषधिवीरुधम् ॥२६॥
न यज्ञाः समवर्त्तन्त न तपस्यन्ति तापसाः ।
न च दानाधिर्मेषु मनश्चक्रे तदा जनः ॥२७॥
निःसत्वाः सकला लोका लोभाद्युपहतेन्द्रियाः ।
स्वल्पेऽपि हि बभूवुस्ते साभिलाषा द्विजोत्तम ॥२८॥

दयावतार वसिष्ठजी आदि ने तेरी बहुत बहुत प्रशंसा की है, इस लिए तू घोर अहंकारी हो गया है, इसी कारण तूने मेरा इस प्रकार से अपमान किया है ।२२। इस संसार में ऐसा कौन है जो मेरी टेढ़ी भृकुटि और प्रज्ज्वलित जटा कलाप को देख कर मुझसे न डरता हो ।२३। हे शतक्रतो ! अब तू बारम्बार अनुनय विनय करने का ढोंग करने चला है, परन्तु मुझ पर उसका कोई प्रभाव नहीं है, मैं तुझे कदापि क्षमा नहीं करूँगा ।२४। श्री पराशरजी ने कहा—हे विप्र ! वह ब्रह्मर्षि ऐसा कहकर चले गये और इन्द्र भी अपने ऐरावत पर बैठकर अमरावती को गये ।२५ हे मैत्रेयजी ! उसी समय से इन्द्र सहित तीनों लोक वृक्ष लतादि के क्षीण हो जाने के कारण श्रीहीन तथा ध्वस्त होने लगे ।२६। तभी से यज्ञों का अनुष्ठान रुक गया, तपस्वियों ने तप और दानियों ने दान करना छोड़ दिया ।२७। हे विप्रवर ! सभी लोक लोभादि के वश में पड़ कर सत्वहीन हो गए तथा तुच्छ पदार्थों की भी कामना करने लगे ।१८।

यतः सत्वं ततो लक्ष्मीः सत्वं भूत्यनुसारि च ।
निःश्रीकाणांकुतः सत्वं विना तेन गुणाः कुतः ॥२९।

बलशौर्याद्यभावश्च पुरुषाणां गुणैर्विना ।
लङ्घनीयः समस्तस्य बलशौर्यविवर्जितः ॥३०॥
भवत्यपध्वस्तमतिर्लङ्घितः पृथितः पुमान् ॥३१॥
एवमत्यन्तनिःश्रीके त्रैलोक्ये सत्ववर्जिते ।
देवान् प्रति बलोद्योगं चक्रुर्दैतेयदानवाः ॥३२॥
लोभाभिभूता निःश्रीकादत्याः सत्वविवर्जिताः ।
श्रिया विहीनैर्निःसत्वैर्देवैश्चक्रुस्ततो रणम् ॥३३॥
विजितास्त्रिदशा दैत्यैरिन्द्राद्याः शरणं ययुः ।
पितामह महाभाग हुताशनपुरोगमाः ॥३४॥
यथावत्कथितो देवैर्ब्रह्मा प्राह ततः सुरान् ।
परावरेशं शरक्ष व्रजध्वमसुरार्दनम् ॥३५॥
उत्पत्तिस्थितिनाशानामहेतुं हेतुमीश्वरम् ।
प्रजापतिपतिं विष्णुमनन्तमपराजितम् ॥३६॥
प्रधानपुंसोरजयो कारण कायभूतयोः ।
प्रणतार्त्तिहरं विष्णुं स वः श्रेयो विधास्यति ॥३७॥

सत्व लक्ष्मीजी का ही साथी है, इसलिये जहाँ वह होता है, वहाँ लक्ष्मीजी का भी निवास रहता है । श्रीहीनों में सत्व नहीं होता इसलिए गुण की स्थिति भी कैसे होगी ? जब गुण नहीं तो पुरुष में बल शौर्यादि भी नहीं रहता और जिसमें बल शौर्यादि नहीं, उसे कहींभी आदर प्राप्त नहीं होता ।३१। इस प्रकार जब तीनों लोक श्रीहीन हो गये तब उन श्रीहत देवताओं पर दैत्यों और दानवों ने आक्रमण कर दिया । ३३। सत्व और वैभव रहित होने पर भी दैत्यों ने लोभ के वशीभूत होकर सत्वहीन और श्रीहीन देवताओं से संग्राम छेड़ दिया । ३२ । अन्त में देवताओं की पराजय हुई, तब इन्द्रादि सब देवताओं ने अग्नि के नेतृत्व में पितामह ब्रह्माजी की शरण ली ।३४। तब देवताओं की बात सुनकर पितामह ने उनसे कहा-हे देवताओ ! तुम दैत्यों का संहार करने वाले भगवान् विष्णु की शरण में जाओ, जो विश्व की सृष्टि, स्थिति और प्रलय के कारण हैं,

किन्तु कारण ही नहीं चराचर के स्वामी, प्रजापतियों के अधिपति, सभी प्राणियों में व्याप्त, अन्त-रहित और कभी पराजित न होने वाले हैं एवं अजन्मा होकर कार्य-रूप में परिवर्तित प्रकृति और पुरुष के भी कारण हैं इसलिए वहीं शरणागत वत्सल तुम्हारा अवश्यही कल्याण करेंगे।३५-३७

एवमुक्त्वा सुरान्सर्वान् ब्रह्मा लोकपितामहः।
क्षीरोदस्योत्तरं तीरं तैरेव सहितो ययौ॥३८॥
स गत्वा त्रिदशैः सर्वैः समवेतः पितामहः।
तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभि परावरपतिं हरिम्॥३९॥
नमामि सर्वं सर्वेशमनन्तभजमव्ययम्।
लोकधाम धराधारमप्रकाशमभेदिनम्॥४०॥
नारायणमणीयासमशेषाणामणीयसाम्।
समस्तानां गरिष्ठं च भूरादीनां गरीयसाम्॥४१॥
यत्र सर्वं यतः सर्वमुत्पन्नंः मत्तुरःसरम्।
सर्वभूतश्च यो देवः पराणामपि यः परः॥३२॥
परः परस्मात्पुरुषात्परमात्मस्वरूपधृक।
योगिभिश्चिन्त्यते योऽसौमुक्तिहेतोमु मक्षुभिः॥४३॥
सत्त्वादयो न सन्तीशे यत्र च प्राकृता गुणाः।
स शुद्धः सर्वशुद्धेभ्यःपुमानाद्यः प्रसीदतु॥४४॥

श्री पराशरजी ने कहा–हे मैत्रेयजी! सब देवताओं से ऐसा कहते ब्रह्माजी उनके साथ उस क्षीर सागर के उत्तरीय किनारे पर पहुँचे, जहाँ भगवान् विष्णु का धाम है। वहाँ जाकर सभी देवताओं के साथ उन्होंने उन भगवान्की अत्यन्त मंगलमय वाणी में स्तुति की।३८-३९। ब्रह्माजी ने कहा–जो समस्त अणुओं से सूक्ष्म तथा पृथ्वी आदि समस्त गुरु पदार्थों से भी भरी हैं, उन अखिल लोक के आश्रय, पृथ्वी के आधार, अप्रकट अभेद्य, सर्वरूप, सर्वेश्वर, अन्त-रहित, अजन्मा तथा अव्यय भगवान् नारायणको नमस्कार करताहूँ।४०। जिस परब्रह्म में मेरे सहित यह संपूर्ण बिश्व स्थित है तथा जिससे उत्पन्न हुआ है, जो सर्व भूतमय औरपरे से भी

परे है, जो पुरुष से परे होने के कारण मुमुक्षुओं के द्वारा ध्यान में ही दृष्टि गोचर होते हैं, जिसमें सत्वादि गुणों का अभाव है वह शुद्ध से भी शुद्ध परमात्म–रूप आदि-पुरुष भगवान् श्रीहरि हमारे ऊपर प्रसन्नहों ।३२-४४।

कलाकाष्ठामुहूर्त्तादिकालसूत्रस्य गोचरे ।
यस्य शक्तिन शुद्धस्य स नो विष्णुः प्रसीदतु ॥४५॥
प्रोच्यते परमेशो हि यः शुद्धोऽप्युपचारतः ।
प्रसीदतु स नो विष्णुरात्मा यः सवदेहिनाम् ॥४६॥
यः कारणं च कार्यं कारणस्यापि कारणम् ।
कार्यस्यापि च यः कार्यं प्रसीदतु स नो हरिः ॥४७॥
कार्यं कार्यस्य यत्कार्यं तत्कार्यस्यापि यः स्वयम् ।
तत्कार्यकार्यभूतो यस्ततश्च प्रणताःस्मतम् ॥४८॥
कारणं कारणस्यापि तस्य कारणकारणम् ।
तत्कारणानां हेतुः तं प्रणताः स्म परमेश्वरम् ॥४९॥
भोक्तारं भोग्यभूतं स्रष्टारं सृज्यमेव च ।
कार्यकर्तृस्वरूप तं प्रणताः स्म परं पदम् ॥५०॥

जिस शुद्ध स्वरूप परमात्मा की शक्ति काष्ठा, मुहूर्त और काल-क्रम की परिधि से परे है, वे परब्रह्म भगवान् विष्णु हम पर प्रसन्न हों ३५।जो शुद्ध स्वरूप होते हुए भी उपचार से परमेश्वर कहे जाते हैं और जो सभी शरीरधारियों में आत्म रूप से स्थित हैं, वे भगवान विष्णु हम पर प्रसन्न हों ।४६। जो कारण और कार्य रूप तथा कारण के कारण और कार्य के भी कार्य हैं, वे भगवान् श्रीहरि हम पर प्रसन्न हों ।४७। जो कार्य के कार्य का भी कार्य हैं तथा जो उसके कार्य का भी कार्यभूत हैं, उन भगवान श्री हरि को नमस्कार करते हैं ।४८। जो विश्व के कारण और उसके भी कारण के कारणों का भी कारण हैं, उन श्री परमात्मा देव को हम प्रणाम करते हैं ।३९। जो स्वयं ही भोक्ता, योग्य, स्रष्टा और सृज्य, कर्त्ता और कार्य हैं, उन परमपद प्रभु को हम प्रणाम करते हैं ।५०।

विशुद्धबोधवन्नित्यमजमक्षयमव्ययम् ।
अव्यक्तमविकारं यत्तद्विष्णोः परमं पदम् ॥५१॥
न स्थूलनं च सूक्ष्मंयन्न विशेषणगोचरम् ।
तत्पदं परम विष्णोः प्रणमामः सदामलम् ॥५२॥
यस्यायुतायुतांशांशे विश्वशक्तिरियं स्थिता ।
परब्रह्मस्वरूपंयत्प्रणमामस्तमव्ययम् ॥५३॥
यद्योगिनः सदोद्युक्ताः पुण्यपापक्षयेऽक्षयम् ।
पश्यन्ति प्रणवे चिन्त्यं तद्विष्णोः परमं पदम् ॥५४॥
यन्न देवा न मुनयो न चाहं न च शङ्करः ।
जानन्ति परमेशस्य तद्विष्णोः परमं पदम् ॥५५॥
शक्तयो यस्य देवस्य ब्रह्मविष्णुशिवात्मिका ।
भवन्त्यभूतपूर्वस्य तद्विष्णोः परम पदम् ॥५६॥
सर्वेश सर्वभूतात्मन्सर्व सर्वाश्रयाच्युत ।
प्रसीद विष्णो भक्तानांव्रज नो दृष्टिगोचरम् ॥५७।

जो विशुद्ध, बोध रूप, नित्य, जन्म-रहित, मृत्यु-रहित, अव्यय, अव्यक्त एवं विकार रहित है, वही भगवान विष्णु का परम पद है ।५१। जो न स्थूल है, न सूक्ष्म ही हैं, न किसी विशेषण का विषय है, विष्णु भगवान के उसी परम पद को हम प्रणाम करते हैं ।५२। जिसके अयुतांश के भी अयुतांश में जगत की सृष्टि करने की सामर्थ्य है तथा जो परब्रह्म स्वरूप हैं, हम उन्हीं अव्यय परमेश्वर को प्रणाम करते हैं।२३। नित्य युक्त योगीजन अपने पुण्य-पापादि के क्षीण होने पर प्रणव के द्वारा चिन्तन योग्य. जिस अविनाशी पद का दर्शन करते हैं, भगवान श्रीहरि का परमपद वही है।५३। जिसे देवता, ऋषि, शिवजी और मैं सभी जानने में असमर्थ हैं, वह भगवान श्रीहरि का परमपद है ।५५। ब्रह्मा, विष्णु और शिव रूप में जिन अभूतपूर्व देवकी शक्तियाँ है, वहीं भगवान श्रीहरि का परमपद है ।५६। हे सर्वेश्वर हे सर्व भूतात्मन् । हे सर्वस्वरूप ! हे सर्वाश्रय ! हे अच्युत ! हे भगवान विष्णो ! आप हम भक्तों पर प्रसन्न होकर हमें अपना दर्शन देने की कृपा करिये ।५७।

इत्युदीरितमाकर्ण्य ब्रह्मणस्त्रिदशास्ततः ।
प्रणम्योचुः प्रसीदेति व्रज नो दृष्टिगोचरम् ॥५८॥
यन्नायं भगवान् ब्रह्मा जानाति परमं पदम् ।
तन्नताः स्म जगद्धाम तव सर्वगताच्युत ॥५९॥
इत्यन्ते वचसस्तेषां देवानां ब्रह्मणस्तथा ।
ऊचुर्देवर्षयस्सर्वे बृहस्पतिपुरोगमाः ॥६०॥
आद्या यज्ञपुमानीड्यः पूर्वेषां यश्च पूर्वजः ।
तन्नताः स्म जगत्स्रष्टुः स्रष्टारमविमेषणम् ॥६१॥
भगवन्भूतभव्येश यज्ञमूर्त्तिधराव्यय ।
प्रसीद प्रणतानां त्वं सर्वेषां देहि दर्शनम् ॥६२॥
एष ब्रह्मा सहास्माभिः सहरुद्रै स्त्रिलोचनः ।
सर्वादित्यैः समं पूषा पावकोऽयं सहाग्निभिः ॥६३॥
अश्विनौ वसवश्चेमे सर्वे चैते मरुद्गणाः ।
साध्या विश्वे तथा देया देवेद्रन्श्चायमीश्चरः ॥६४॥
प्रणमप्रवणा नाथ दैत्यसैन्यैः पराजिताः ।
शरणं त्वामनुप्राप्ताःसमस्ता देवतागणः ॥६५॥

श्री पराशरजी ने कहा-ब्रह्माजी द्वारा की गई स्तुति को सुनकर देवताओं ने भी भगवान को प्रणाम किया और इस प्रकार कहने लगे-हे प्रभो आप हम पर प्रसन्न होकर हमें दर्शन दें । हे विश्व के आश्रय स्वरूप ! हे अच्युत ! आपके जिस परमपदको यह पितामह ब्रह्माजी भी नहीं जानते,उसे हम नमस्कार करते हैं ।५९। जब ब्रह्माजी और देवगण स्तुति कर चुके तब बृहस्पति आदि देवर्षियों ने इस प्रकार स्तवन किया-जो परम स्तुतियों से योग्य आद्य यज्ञ पुरुष तथा पूर्वजों के भी पूर्व पुरुष हैं, उन विश्वके रचने वाले परम पिता परमात्मा को हम नमस्कार करते हैं ।६०-६१ हे भूत भव्येश यज्ञ स्वरूप प्रभो ! हे अव्यय ! हम शरणागतों पर प्रसन्न होकर हमें दर्शन दीजिये ।६२। हे स्वामिन् ! हम सबके सहित यह ब्रह्माजी सब रुद्रों के सहित शिवजी, द्वादश आदित्यों के सहित पूषा, अग्नियों के सहित

पावक, दोनों अश्विनीकुमार, अष्टावसु, मरुद्गण, साध्यगण, विश्वेदेवता और देवराज इन्द्र यह समस्त देवगण दैत्य सेना से हारकर अत्यन्त प्रणत होते हुए आपकी शरण को प्राप्त हुए हैं ।६३-६५।

एवं संस्तूयमानस्तु भगवाञ्छङ्खचक्रधृक ।
जगाम दर्शनं तेषां मैत्रेय परमेश्वरः ॥६६॥
तं दृष्ट्वा ते तदा देवाः शङ्खचक्रगदाधरम् ।
अपूर्वरूपसंस्थानं तेजसां राशिमूर्जितम् ॥६७॥
प्रणम्य प्रणताः सर्वे संक्षोभस्तिमितेक्षणाः ।
तुष्टुवुः पुण्डरीकाक्षं पितामहपुरोगमाः ॥६८॥
नमो नमोऽविशेषस्त्वं त्वं ब्रह्मा त्व पिनाकधृकः ।
इन्द्रस्त्वमग्निः पवनो वरुणः सविता यमः ॥६९॥
वसवो मरुतः साध्या विश्वेदेवगणाः भवान् ।
योऽय तवाग्रतो देव समीपं देवतागणः ।
स त्वमेव जगत्स्रष्टा यतः सर्वगतो भवान् ॥७०॥
त्वं यज्ञस्त्वं वषटकारस्त्वमोङ्कारः प्रजापतिः ।
विद्या वेद्यं च सर्वात्मस्त्वन्मय चाखिलं जगत् ॥७१॥
त्वामार्त्ताः शरणं विष्णो प्रयाता दैत्यनिर्जिताः ।
वयं प्रसीद सर्वात्मस्तेजसाप्यायययस्व नः ॥७२॥

श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! इस प्रकार की स्तुतियों से प्रसन्न होकर शंख-चक्र धारण करने वाले भगवान विष्णु उसी समय उनके सामने प्रकट हो गये।६६।उस शंख,चक्र और गदाधारी उत्कृष्ट तेजपुंज युक्त अपूर्व एवं दिव्य स्वरूप के दर्शनकर ब्रह्माजी आदि सब देवता अत्यंत विनयपूर्वक प्रणाम कर विस्फारित नेत्रों से देखते हुए, उन पद्मलोचन भगवान श्री हरि की स्तुति करने लगे ।६७-६८। देवताओं ने कहा-हे नाथ आपको नमस्कार है, नमस्कार है । आप ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, अग्नि, पवन, वरुण, सूर्य, यमराज होते हुए भी निर्विशेष हैं ।६९। हे प्रभो ! वसुगण मरुद्-गण, साध्यगण, और विश्वेदेवता भी आप ही हैं और यह सम्पूर्ण देव

समाज आप ही जगत् के रचयिता की मूर्ति हैं, क्योंकि आप सर्वगत एवं परिपूर्ण हैं ।७०। आप ही यज्ञ, वषट्कार, ओंकार एवं प्रजापति हैं। हे सर्वात्मन् ! विद्या, वेद्य और सम्पूर्ण विश्व भी आपका ही स्वरूप है ।७१ हे विष्णो ! हे प्रभो ! हम दैत्यों से हारकर आतुरतापूर्वक अपनी शरण आये हैं, आप हम पर प्रसन्न होकर अपने तेज से हमें शक्ति सम्पन्न कर दीजिये ।।७२।।

तावदार्त्तिस्तथा वाञ्छा तावन्मोहस्तथासुखम् ।
यावन्न यात्ति शरण त्वामशेषाघनाशनम् ।।७३।।
त्वंप्रसाद प्रसन्नात्मन् प्रपन्नानाँ कुरुष्व नः
तेजसाँ नाथ सर्वेषां स्वशक्त्याप्यायनं कुरु ।।७४।।
एवं संस्तूममानस्तु प्रणतैरमरैर्हरिः ।
प्रसन्नदृष्टिर्भगवानिदमाह स विश्वकृत् ।।७५।।
तेजसो भवतां देवा: करिष्याभ्युपवृंहरणाम् ।
वदाम्यहं यत्क्रियतां भवद्भिस्तदिदं सुराः ।।७६।।
आनीय सहिता दैत्यै क्षीराब्धौ सकलौषधीः ।
प्रक्षिप्यात्रामृतार्थं ताः सकला दैत्यदानवैः ।।७७।।
मन्थान मन्दर कृत्वा नेत्रं कृत्वा च वासुकिम् ।
मथ्यतामममृतं देवाः सहाये मय्यवस्थिते ।।७८।।
सामपूव च दैतेयास्तन्न सहाय्यकर्मणि ।
सामान्यफलभोक्तारो यूयं वाच्या भविष्यथ ।।७९।।
मथ्यमाने च तत्राब्धौ यत्समुत्पत्स्यतेऽमृतम् ।
तत्पानाद्बलिनो यूयममराश्च भविष्यथ ।।८०।।
तथा चाह करिष्यामि ते यथा त्रिदशद्विषः ।
न प्राप्स्यन्त्यमृतं देवाः केवलं क्लेशभागिनः ।।८१।।

हे नाथ ! आपका जो आश्रय सभी प्राणियों के पापों को नष्टकर देने में समर्थ है, उसको यह प्राणी जब तक प्राप्त नहीं करता, तब तक वह दीनता, इच्छा, मोह और दुःखादि से मुक्त नहीं होता ।७३। हे प्रसन्नात्मन्

हम शरणागतों पर प्रसन्न होकर हमारे नष्ट हुए तेज को अपनी शक्ति से पुनः प्रबुद्ध कीजिए ॥७४॥

श्री पराशरजी ने कहा-विनम्र हुए देवगण द्वारा इस प्रकार स्तुत होकर जगत्स्रष्टा भगवान विष्णु ने प्रसन्न होकर कहा ।७४। हे देवताओ ! मैं तुम्हारे तेज की पुनः वृद्धि करूँगा, अब मैं जो कुछ कहूँ वही तुम करो ।७६। तुम दैत्यों से मिलकर सभी औषधियाँ लाकर अमृत प्राप्ति के निमित्त उन्हें क्षीर सागर में डाल दो, मन्दराचल की रईं और वासुकि नाग की नेती बनाओ फिर दैत्यों और दानवों के सहयोग से समुद्र मंथन करो और उस से अमृत निकालो ।७७-७८। इस समय तुम साम नीति के अवलम्बन पूर्वक दैत्यों के पास जाकर उनसे कहो कि इस कार्य में हमारी सहायता करने के कारण इसके समानांश पर आप लोगों का भी अधिकार होगा ।७९। हे देवगण ! समुद्र मन्थन से जिस अमृत की प्राप्ति होगी, उसे पीकर तुम बलवान एवं अमर हो जाओगे ।८०। हे देवताओ ! उस समय मैं ऐसी युक्ति निकालूँगा, जिससे तुम्हारे वैरी दैत्यगण अमृत प्राप्त न कर सकेंगे और उनके भाग में केवल समुद्र मन्थन के परिश्रम से प्राप्त क्लेश ही रहेगा ॥८१॥

इत्युक्ता देवदेवेन सर्व एव तदा सुराः
सन्धानमसुरैः कृत्वा यत्नवन्तोऽमृतेऽभवन् ॥८२॥
नानौषधीः समानीय देवदैतेयदानवाः ।
क्षिप्त्वा क्षीराब्धिपयसि शरदभ्रामलत्विषि ॥८३॥
मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा च वासुकिम् ।
ततो मथितमारपब्धा मैत्रेय तरसामृतम् ॥८४॥
विबुधाः सहिताः सर्वे यतः पुच्छ ततः कृताः ।
कृष्णेन वासुकेर्दैत्याः पूर्वकाये निवेशिताः ॥८५॥
ते तस्य मुखनिःश्वासवह्नितापहतत्विषः ।
निस्तेजसोऽसुराः सर्वे बभूवुरमितोजसः ॥८६॥
तेनैव मुखनिःश्वासवायुनास्तबलाहकैः
पुच्छप्रदेशे वर्षद्भिस्तदा चाप्यायिताः सुराः ॥८७॥

श्री पराशरजी ने कहा-देव देव भगवान् के ऐसे वचन सुनकर सभी देवताओं ने दैत्यों के पास जाकर संधि करली और अमृत-प्राप्ति में प्रयत्न-वान हुए ।८२। हे मैत्रेयजी ! देवताओं दानवों और दत्यों ने नाना प्रकार की औषधियाँ ला-लाकर एकत्र कीं और शरदाकाश जैसी स्वच्छ कांति वाले क्षीर सागर के जल में डाल दिया । फिर मंदराचल की रई और वासुकि नाग की नेती बनाकर अत्यन्त वेगपूर्वक समुद्र में अमृत का मंथन करने लगे ।८३-८४। जिस ओर वासुकि की पूँछ थी, उसी ओर भगवान ने देवताओं को तथा मुख की ओर दैत्यों को खड़ा किया ।८५। अत्यन्त तेजस्वी वासुकि नाग के मुख से निकलती हुई श्वास-ज्वाला में जलते हुए दैत्यगण तेजहीन हो गये तथा उसी श्वासोच्छवास से क्षत-विक्षत हुए मेघों के पूँछ की ओर बरसते रहने से देवताओं की शक्ति में वृद्धि होती गई ।८७

क्षीरादमध्ये भगवान्कूर्मरूपी स्वयं हरिः ।
मन्थनाद्ररधिष्ठानं भ्रमतोऽभून्महामुने ॥८८॥
रूपेणान्येन देवानां मध्ये चक्रगदाधरः ।
चकर्ष नागराजान दैत्यमध्येऽपरेण च ॥८६॥
उपर्याक्रान्तवाञ्च्छैलं वृहद्रूपेण केशवः ।
तथापरेण मैत्रेययन्न दृष्टं सुरासुरैः ॥६०॥
तेजसा नागराजानं तथाप्यायितवान्हरिः ।
अन्येन तेजसा देवानपबृंहितवान्प्रभुः ॥६१॥
मध्यमाने ततस्तस्मिन्क्षीराब्धौ देवदानवैः ।
हविर्धामाभवत्पूर्वं सुरभिः सुरपूजिता ॥६२॥
जग्मुर्मुदं ततो देवा दानवाश्चमहामुने ।
व्याक्षिप्तचेतसश्चैव बभूवुः स्तिनितेक्षणाः ॥६३॥
किमेतदिति सिद्धनां दिवि चिन्तयतां ततः ।
बभूव वारुणी देवी मदाघूर्णितलोचना ॥६४॥

हे महामुने! भगवान् ने कूर्म रूप धारण कर क्षीरसागर में घूमते हुए मन्दराचल को आश्रय रूप हो अपने ऊपर धारण किया ।८८। वही चक्र,

गदा के धारण करने वाले भगवान एक अन्य रूप से देवताओं में तथा एक और रूप से दैत्यों में मिलकर वासुकि रूप नेती को खींचने लगे एक अन्य अत्यन्त विशाल रूप से जो देवता या दैत्य किसी को दिखाई नहीं दे रहा था, उस रई रूपी मंदराचल को ऊपर से दाब लिया था ।८९-९०। अपने ही तेज से उन्होंने वासुकि में बल संचार किया और अपने ही तेज से देवताओं में बल की वृद्धि की ।९१। इसप्रकार देवताओं और दैत्यों के क्षीर सागर का मन्थन किये जाने पर सर्व प्रथम हवि की आश्रय रूपा कामधेनु निकली ।९२। उस समय देवता और दैत्य सभी अत्यन्त आनन्दित हुए और उसकी ओर चित्त के आकर्षित होने के कारण वे उसे एक टक देखने लगे ।९३। फिर यह क्या है ? इसे जानने के इच्छुक सिद्धों के सामने मद से फिरते हुए नेत्रों वाली वारुणी देवी उत्पन्न हुई ।९४।

कृतावर्त्तात्ततस्तस्मात्क्षीरोदाद्वासयञ्जगत् ।
गन्धेन पारिजातोऽभूद्देवस्त्रीनन्दनस्तरुः ।।९५।।
रूपौदार्यगुणोपेतस्तथा चाप्सरसां गणः ।
क्षीरोदधेः समुत्पन्नो मैत्रेय परमादभुतः ।।९६।।
ततः शीतांशुरभवञ्जगृहे त महेश्वरः ।
जगृहुश्च विषं नागाःक्षीरोदाब्धिसमुत्थितम् ।।९७।।
ततो धन्वन्तरिर्देवः श्वेताम्बरधरास्वयम् ।
बिभ्रत्कमण्डलुं पूर्णममृतस्य समुत्थितः ।।९८।।
ततः स्वस्थमनस्कास्ते सवतेयदानवाः ।
बभूवुर्मुदिताः सर्वे मैत्रेय मुनिभि सह ।।९९।।
ततः स्फुरत्कान्ति विकक्कसिमिले स्थिता ।
श्रीर्देवी पयसस्तस्मादुद्भुता धृतपङ्कजा ।।१००।।
तां तुष्टुवुर्मुदा युक्ताः श्रीसूक्तेन महर्षयः ।
विश्वावसुमुखास्तस्या गन्धर्वाः पुरतो जगुः ।।१०१।।
धृताचीप्रमुखास्तत्र ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
गङ्गाद्याः सरितस्तोयैः स्नानार्थमुपतस्थिरे ।।१०२।

इसके पश्चात् पुनः मंथन आरम्भ हुआ और अपनी गन्ध से त्रैलोक्य को सुगन्धित करने वाला और देवनारियों के आनन्द को बढ़ाने वाला कल्प-वृक्ष उससे प्रकट हुआ।९५। फिर रूप एवं उदारता आदि गुणों से परिपूर्ण अत्यन्त अद्भुत अप्सरायें उस क्षीरसागर से निकलीं।९६। तत्पश्चात् चन्द्रमा उत्पन्न हुआ जिसे शिवजी ने ले लिया और फिर जो विष निकले उन्हें नागों ने ग्रहण किया ९७। इसके पश्चात् श्वेत वस्त्र धारण किये हुए भगवान धन्वन्तरजी प्रकट हुए, उनके हाथ में अमृत से परिपूर्ण कमण्डलु था।९८। हे मैत्रेयजी ! उस समय मुनियों के सहित सभी दैत्य-दानव अत्यन्त स्वस्थ चित्त और हर्षित हो उठे।९९। फिर लिले हुए कमल पर बैठी हुई अत्यन्त कान्तिमयी लक्ष्मीजी हाथों में कमल का पुष्प लिए हुए क्षीर सागर से निकलीं।१००। उसके समय महर्षियों ने श्रीसूक्त से उनकी स्तुति आरम्भकी और विश्वावसु आदि गन्धर्व उनके सामने गाने लगे १०१ और घृताची आदि अप्सरायें नाचने लगीं तथा लक्ष्मीजी का अपने जलसे अभिषेक करानेके लिए गंगा आदि सरिताएँ स्वयं वहाँ उपस्थित हुईं।१०२

दिग्गजा हेमपात्रस्थमादाय विमलं जलम्
स्नापयाञ्चक्रिरे देवीं सर्वलोकमहेश्वरीम् ॥१०३॥
क्षीरोदो रूपधृक्तस्यं मालामम्लानपङ्कजाम् ।
ददौ विभूषणान्यङ्गे विश्वकर्मा चकार ह ॥१०४॥
दिव्यमाल्याम्बरधरा स्नाता भूषणभूषिता ।
पश्यतां सर्वदेवानां ययौ वक्षःस्थल हरेः ॥१०५॥
तया विलोकिता देवा हरिवक्षःस्थलस्थया ।
लक्ष्म्या मैत्रेय सहसा परां निर्वृतिमागताः ॥१०६॥
उद्वेगं परम जग्मुर्दैत्या विष्णुपराङ्मुखाः ।
त्यक्ता लक्ष्म्या महाभाग विप्रचित्तिपुरोगमाः ॥१०७॥
ततस्ते जगृहुर्दैत्या धन्वन्तरिकरस्थितम् ।
कमण्डलुं महावीर्या यत्रास्तेऽमृतमुत्तमम् ॥१०८॥
मायया मोहयित्वा तान्विष्णुःस्त्रीरूपसंस्थितः ।
दानवेभ्यस्तदादाय देवेभ्यः प्रददौ प्रभुः ॥१०९॥

स्वर्ण कलशों में भरे हुए उन गंगादि के पवित्र जल से दिग्गजों ने लक्ष्मीजी को स्नान कराया और क्षीर सागर ने मूर्तिमान् होकर कमल-पुष्पों की माला उन्हें भेंट की तथा स्वयं विश्वकर्मा ने उनके अंगों में आभूषण धारण कराये।१०३-१०४। इस प्रकार दिव्य वस्त्राभूषण धारण करके श्री लक्ष्मीजी देवगण के सामने ही भगवान् विष्णु के वक्षस्थल में प्रतिष्ठित हो गईं।१०५। हे मैत्रेयजी ! भगवान् के वक्षस्थल में विराजमान लक्ष्मीजी के दृष्टिपात से देवगण परम प्रसन्न हुये।१०६। उस समय श्री लक्ष्मीजी के परित्यक्त होने से विप्रचित आदि दैत्यों को अत्यन्त उद्विग्नता हुई।१०७। तब उन अत्यन्त बली दैत्यों ने धन्वन्तरिजी के हाथ से अमृत से भरे हुये कमण्डलु को छीन लिया। इसलिये स्त्री रूप धारण कर भगवान् विष्णु ने दानवों को अपनी माया से मोहित कर उनसे कमण्डलु लेकर देवताओं को दे दिया।१०८-१०९।

ततः पपुः सुरगणाः शक्राद्यास्ततदामृतम् ।
उद्यतायुधनिस्त्रिंशा दैत्यास्तांश्च समभ्ययः ॥११०॥
पीतेऽमृते च बलभिर्देवैर्दैत्यचमूस्तदा ।
वध्यमाना दिशो भेजे पातालं च विवेश वै ॥१११॥
ततो देवा मुदा युक्ताः शङ्खचक्रगदाभृतम् ।
प्रणिपत्य यथापूर्वमाशासत्तत्त्रिविष्टपम् ॥११२॥
ततः प्रसन्नभाः सूर्यः प्रययो स्वेन वर्त्मना ।
ज्योतींषि च यथामार्गं प्रययुर्मुनिसत्तम ।११३।
जज्वाल भगवाँश्चोच्चैश्चारुदीप्तिर्विभावसुः ।
धर्मे च सर्वभूतानां तदा मतिरजायत ॥११४॥
त्रैलोक्यं च श्रिया जुष्टं बभूव द्विजसत्तम ।
शक्रश्च त्रिदिशश्रेष्ठः पुनः श्रीमानजायत ॥११५॥
सिंहासनगतः शक्रस्सम्प्राप्य त्रिदिवं पुनः ।
देवराज्ये स्थितो देवीं तुष्टावाब्जकरां ततः ॥११६॥

तब इन्द्रादि देवताओंने उस अमृत का पानकर लिया, इससे क्रोधित हुये दैत्यगणने तीक्ष्ण खड्गादि शस्त्र लेकर देवताओं पर आक्रमण किया।

।११०। परन्तु, अमृत पीकर बलवान होने के कारण दैत्यों की सब सेना देवताओं द्वारा परास्त होगई और मरती-कटती हुई इधर-उधर भाग गई। उनमें से कुछ दैत्य पाताल लोक में चले गये।१११। इसके पश्चात् शंख चक्र गदाधारी भगवान् विष्णु को प्रणाम कर सब देवगण वहाँ से प्रसन्न होते हुए चल दिए और पूर्ववत् स्वर्ग का शासन करने लगे।११२। हे मुनिसत्तम ! उसी समय से अत्यन्त तेजोमय भगवान भास्कर ने अपने मार्ग पर तथा तारागण ने अपने मार्ग पर चलना आरम्भ किया।११३। श्रेष्ठ दीप्तिमय अग्नि देवता अत्यन्त प्रज्वलित होने लगे और प्राणियों में धर्म की भी 'प्रवृति होने लगी।११४। हे द्विज श्रेष्ठ ! त्रैलोक्य श्री सम्पन्न हो गया और देवश्रेष्ठ इन्द्र भी श्री से युक्त हो गये।११५। इन्द्रने स्वर्ग में पहुँचकर पुन: वहाँ का राज्य प्राप्त किया और राज्य-पद पर अभिषिक्त होकर पद्महस्ता श्री लक्ष्मीजी की स्तुति करने लगे।११६।

नमस्ये सर्वलोकानां जननीमब्जसम्भवाम्।
श्रियमुन्निद्रपद्माक्षीं विष्णुवक्ष:स्थलस्थिताम् ।।११७।।
पद्मालयां पद्मकरां पद्मपत्रनिभेक्षणाम्।
वन्दे पद्ममुखीं देवीं पद्मनाभप्रियामहम् ।।११८।।
त्वं सिद्धिस्त्वं स्वधा स्वाहा सुधा त्वं लोकपावनी।
सन्ध्या रात्रि:प्रभा भूतिर्मेधा श्रद्धा सरस्वती ।।११९।।
यज्ञविद्या महाविद्या गुह्यविद्या च शोभने।
आत्मविद्या च देवि त्व विमुक्तिफलदायिनी ।।१२०।।
आन्वीक्षिकी त्रयीवार्त्ता दण्डनीतिस्त्वमेव च।
सौम्यासौम्यैर्जगद्रूपैस्त्व यतदेवि पूरितम् ।।१२१।।
का त्वन्या त्वामृते देवि सर्वज्ञमयं वपु:।
अध्यास्ते देवदेवस्य योगचिन्त्यं गदाभृत: ।।१२२।।
त्वया देवि परित्यक्तं सकलं भुवनत्रयम्।
विनष्टप्रायमभवत्त्वयेदानीं समेधितम् ।।१२३।।

इन्द्र ने कहा—सम्पूर्ण लोकों की माता, खिले हुए कमल जैसे नेत्र वाली, भगवान श्रीहरि के वक्ष:स्थल में प्रतिष्ठित, कमल से अविर्भूत हुई

श्री लक्ष्मीजी को नमस्कार है ।११७। कमल ही जिसका आश्रम स्थान है तथा कमल ही जिनके हाथों में सुशोभित है और कमल दल के समान ही जिनके लोचन हैं, उन पद्ममुखी और पद्मनाभ प्रिया श्री लक्ष्मीजी का मैं वन्दन करता हूँ ।११८। हे देवि ! तुम सिद्धि, स्वधा, स्वाहा, श्वधा रूप तथा तीनों लोकों को पवित्र करने वाली हो, तुम हो सन्ध्या, रात्रि, प्रभा, विभूति, श्रद्धा एवं सरस्वती हो । शोभने ! तुम ही यज्ञ विद्या और महाविद्या हो तथा तुम ही मुक्ति फल के देने वाली आत्मविद्या हो ।१२०। हे देवि ! तुम ही तर्क विद्या, वेदत्रयी, वार्ता एवं दण्ड नीति हो, तुम ही ने इस समस्त संसार को अपने शान्त और उग्र रूपों से व्याप्त कर रखा है ।१२१। हे देवि ! तुम्हारे अतिरिक्त ऐसी कोई अन्य नारी नहीं हैं जो देवाधिदेव भगवान् विष्णु के योगीजनों द्वारा चिन्तनीय सर्वयज्ञमय देह का आश्रय प्राप्त कर सके ।१२२। हे देवि ! तुम्हारे द्वारा त्यागी जाने पर यह त्रिलोकी नष्ट प्रायः हो चली थी, अब तुमने ही उसे पुनर्जीवन प्रदान किया है ।१२३।

दाराः पुत्रास्तथागारसुहृद्धान्यधनादिकम् ।
भवत्येतन्महाभागे नित्यं त्वद्वीक्षणान्नृणाम् ।
शरीरारोग्यमैश्वयमरिपक्षक्षयः सुखम् ।
देवित्वद्दृष्टिदृष्टानां पुरुषाणां न दुलभम् ।।१२५।।
त्वं माता सवलोकानां देवदेवो हरिः पिता ।
त्वयैतद्विष्णुना चाम्ब जगद्व्याप्तं चराचरम् ।१२६।।
मा नः कोशं तथा गोष्ठं मा गृहं मा परिच्छदम् ।
मा शरीरं कलत्रं च त्यजेथाः सर्वपावनि ।।१२७।।
मा पुत्रान्मा सुहृद्वर्गं मा पशून्मा विभूषणम् ।
त्यजेथा मम देवस्य विष्णोर्वक्षःस्थलालये ।।१२८।।
सत्वेन सत्यशौचाभ्याँ शीलादिभिर्गुणैः ।
त्यज्यन्त ते नराः सद्यः सन्त्यक्ता ये त्वयामले ।।१२९।।
त्वया विलोकिताः सद्यः शीलाद्यैरखिलैर्गुणैः ।
कुलैश्वर्यैश्च युज्यन्ते पुरुषा निर्गुणा अपि ।।१३०।।

हे महाभागे ! स्त्री, पुत्र, घर, धन, धान्य और सुहृदों की प्राप्ति भी तुम्हारी कृपा दृष्टि से ही होती है। हे देवि ! जो पुरुष आपके कृपापात्र हैं, उन्हें सदैव शारीरिक आरोग्य, ऐश्वर्य, शत्रुओं का नाश तथा सुखादि कुछ भी अलभ्य नहीं हैं ।१२४-१२५। तुम सर्वलोकों की जननी हो और दवदेव भगवान् विष्णु जगत्पिता हैं। तुम दोनों से ही यह चराचरत्मक सम्पूर्ण विश्व व्याप्त है ।१२६। हे सर्व पावनि ! हे जननी ! हमारे कोश, गोष्ठ, घर, भोग्य वस्तु, देह तथा स्त्री आदि का तुम कभी भी त्याग न करना ।१२७। हे विष्णु भगवान् के वक्षस्थल में निवास करने वाली मातेश्वरी ! हमारे पुत्र, सुहृद, पशु और अलङ्कारादि भी कभी आपसे रहित न हों ।१२८। हे अमले ! तुम जिनका त्याग कर देते हो, उनको सत्य शौच और शीलादि गुण भी शीघ्र ही त्याग कर देते हैं ।१२९। किन्तु तुम्हारे कृपा दृष्टि प्राप्त होने पर गुणहीन भी शीलादि गुणों से शीघ्र ही सम्पन्न होकर कुलीनता और ऐश्वर्यादि से परिपूर्ण हो जाता है ।१२९-१३०।

स श्लाध्यः स गुणी धन्यः स कुलीनः बुद्धिमान् ।
स शूरः स च विक्रन्तो यस्त्वयी देवि वीक्षितः ।।१३१।।
सद्या वे गुण्यमायान्ति शीलाद्याः सकला गुणाः ।
पराङ्मुखी जगद्धात्री यस्य त्वं विष्णु वल्लभे ।।१३२।।
न ते वर्णयितुं शक्ता गुणान्जह्वापि वेधसः :
प्रसीद देवि पद्माक्षि मास्मास्त्याक्षाः कदाचन ।१३३।।
एव श्रीः संस्तुता सम्यक् प्राह देवी शतक्रतुम् ।
श्रृण्वतां सर्वदेवानां सर्वभूतस्थिता द्विः ।।१३४।।
परितुष्टास्मि देवेश स्तोत्रेणानेन ते हरे ।
वरं वृणीष्व यस्त्वष्टी वरदाह तवागता ।१३५।।
वरदा यदि मे देवि वरार्हों यदि वाप्यहम् ।
त्रैलोक्यं न त्वया त्याज्यमेष मेऽस्तु वरःपरः ।।१३६।।
स्तोत्रेण यस्तथंतेन त्वां स्तोष्यत्यब्धियम्भवे ।
स त्वया न परित्याज्यो द्वितीयोऽस्तु वरो मम ।।१३७।।

हे देवि ! जिसपर तुम्हारी कृपा-दृष्टि रहती है, वह मनुष्य जरूर ही

प्रशंसा के योग्य है, व गुणी, कुलीन, शूर, पराक्रमी, बुद्धिमान, एव धन्य भाग्य है ।१३१। हे विष्णु वल्लभे ! हे जगद्धात्री जिससे तुम विमुख होती हो, उसके शील आदि सभी गुण-अवगुण बन जाते हैं ।१३२। हे देवि तुम्हारे गुणों के वर्णन में ब्रह्मा जी की जिह्वा भी असमर्थ हैं। इसलिए हे पद्मलोचने ! अब तुम मुझ पर प्रसन्न होओ और कभी भी मेरा त्याग न करो ।१३३। श्री पराशरजी ने कहा-हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार स्तुत होती हुई सर्वभूतस्थिता श्रीलक्ष्मी जी सब देवताओं की उपस्थिति में इन्द्र से बोलीं ।१३४। श्री लक्ष्मीजी ने कहा-हे देवेश ! मैं तेरे स्तोत्र से अत्यन्त प्रसन्न हुई हूँ, तुम्हें जिस वस्तु की कामना हो वही मुझसे माँगो, तुम्हें वर प्रदान करने के लिए मैं यहाँ आई हूँ ।१३५। इस पर इन्द्र ने कहा-हे देवि ! यदि तुम मुझे वर-प्राप्ति के योग्य समझ कर देना ही चाहती हो तो प्रथम मुझे यह वर दो कि तुम कभी त्रिलोकी का त्याग न करोगी ।१३६। हे समुद्रोद्भूते ! मुझे द्वितीय वर यह दो कि मेरे इस स्तोत्र से जो मनुष्य तुम्हारी स्तुति करे, उसका तुम कभी त्याग न करोगी ।१३७।

त्रैलोक्यं त्रिदश श्रेष्ठ न सन्त्यक्ष्यामि वासव ।
दत्तो वरो मया यस्ते स्तोत्राराधनतुष्टया ॥१३८॥
यश्च सायं तथा प्रातः स्तोत्रेणानेन मानवः ।
माँ स्तोष्यति न तस्याहं भविष्यामि पराङ्मुखी ।१३९।
एवं ददौ वरं देवो देवराजाय वै पुरा ।
मैत्रेय श्रीर्महाभागा स्तोत्राराधनतोषिता ॥१४०॥
भृगोः ख्यात्यां समुत्पन्ना श्रीः पूर्वमुदधेः पुनः ।
देवदानवयत्नेन प्रसूतामृतमन्थने ॥१४१॥
एवं यदा जगत्स्वामी देवदेवो जनार्दनः ।
अवतारं करोत्येषा तदा श्रीस्तत्सहायिनी ॥१४२॥
पुनश्च पद्मादुत्पन्ना आदित्योऽभूद्यदा हरिः ।
यदा तु भार्गवो रामस्तदाभूद्धरणी त्वियम् ॥१४३॥
राघवत्वेऽभवत्सीता रुक्मिणी कृष्णजन्मनि ।
अन्येषु चावतारेषु विष्णोरेषानपायिनी ।।१४४

श्री लक्ष्मीजी ने कहा-हे देवताओं में श्रेष्ठ इन्द्र ! मैं अब इस त्रैलोक्य का कभी त्याग न करूँगी, मैं तेरे स्तोत्र में प्रसन्न होकर तुझे यह वर प्रदान करती हूँ ।१३८। जो मनुष्य प्रात: सायं तेरे इस स्तोत्र से मेरा स्तव करेगा । मैं उससे विमुख कभी न हूँगी ।१३९। श्री पराशरजी ने कहा-हे मैत्रेयजी ! पूर्वकाल में इस प्रकार देवराज इन्द्र की स्तुति से सन्तुष्ट हुई श्रीलक्ष्मीजी ने उन्हें उक्त वर प्रदान किये ।१४०। पहिले वे लक्ष्मीजी भृगु के द्वारा उनकी ख्याति नामक स्त्री के गर्भ से उद्भूत हुई थी, फिर वह समुद्र मन्थन के समय देवताओं और दानवों के प्रयत्न से क्षीर-सागर से प्रकट हुईं थीं ।१४१। इस प्रकार जगत्पति देवाधिदेव भगवान श्रीहरि जब-२ अवतार लेते हैं, तब तब लक्ष्मीजी भी उनके साथ इस भूतल पर आती हैं ।१४२। जब भगवान् विष्णु आदित्य रूप हुए तब ने कमल से उत्पन्न हुईं और जब उन्होंने परशुराम का अवतार धारण किया तब लक्ष्मीजी ही पृथ्वी हुईं ।१४३। जब उन्होंने रामवतार लिया तब यह सीताजी हुईं और कृष्णावतार में रुक्मिणी हुईं । इसी प्रकार भगवान ने जो अन्य अनेक अवतार धारण किये, उनमें से किसी में भी भगवान् से अलग नहीं रहतीं ।१४४।

देवत्वे देवदेहेऽयं मनुष्यत्वे च मानुषी ।
विष्णोर्देहानुरूपां वै करोत्येषात्मनस्तनुम् ॥१४५॥
यश्चैतच्छृणुयाज्जन्म लक्ष्म्या यश्च पठेन्नर: ।
श्रियो न विच्युतिस्तस्य गृहे यावत्कुलत्रयम् ॥१४६॥
पाठ्यते येषु चवेयं गृहेषु श्रीस्तुतिर्मने ।
अलक्ष्मी: कलहाधारा न तष्वास्ते कदाचन ॥१४७॥
एतत्ते कथित ब्रह्मन्यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
क्षीराब्धौ श्रीयथा जाता पूव भृगुसुता सती ॥१४८॥
इति सकलविभूत्यवाप्तिहेतु:
स्तुतिरियमिन्द्रमुखाद्गता हि लक्ष्म्या: ।
अनुदिनमिह पठ्यते नृभिर्यै-
वसति न तेषु कदाचिदप्यलक्ष्मी: ॥१४९॥

जब भगवान् देवरूप होते हैं, तब लक्ष्मीजी दिव्यरूप धारण करती और जब वह मनुष्य रूप में अवतार लेते हैं तब यह भी मानवी हो जाती हैं। भगवान् के देहानुरूप ही यह भी अपना देह धारण करती हैं। ।१४५। श्रीलक्ष्मीजी के जन्म की इस कथा को जो कोई पढ़ेगा या श्रवण करेगा उसके गृह के तीनों कुलों में लक्ष्मी का कभी भी नाश नहीं होगा ।१४६। हे मुने ! लक्ष्मीजी के इस स्तोत्र का जिन घरों में पाठ होता है, उनमें कलह-स्वरूपा दरिद्रता कभी भी नहीं टिकती। १४७। हे ब्रह्मन तुमने यह प्रश्न किया था कि जब लक्ष्मीजी भृगुजी की पुत्री थीं तो फिर उनकी उत्पत्ति क्षीर सागर में किस प्रकार हुई, उसका समाधान मैंने इस वृत्तान्त के द्वारा कर दिया है।१४८। इस प्रकार इन्द्र-मुख से उत्पन्न हुई यह स्तुति सभी विभूतियों को प्राप्त कराने वाली है, इसका जो नित्य नियमित रूप से पाठ करेंगे उनके यहाँ निर्धनता कभी न रहेगी।१४९।

—:*:—

दशवाँ अध्याय

कथितं मे त्वया सर्वं यत्पृष्टोऽसि मया मुने।
भृगुसर्गात्प्रभृत्येष सर्गो मे कथ्यतां पुनः ॥ १ ॥
भृगोः ख्यात्यां समुत्पन्ना लक्ष्मीर्विष्णुपरिग्रहः।
तथा धातृविधातारौ ख्यात्यां जातौ सुतौ भृगोः ॥ २ ॥
आयतिर्नियतिश्चध मेरोः कन्ये महात्मनः।
भार्ये धातृविधात्रोस्ते तयोर्जातौ सुताभुवो ॥ ३ ॥
प्राणश्चैव मृकण्डुश्च मार्कण्डेयो मृकण्डुतः।
ततो वेदशिरा जज्ञे प्राणस्यापि सुत श्रृणु ॥ ४ ॥
प्राणस्य द्युतिमान्पुत्रो राजावांश्च ततोऽभवत्।
ततो वंशो महाभाग विस्तरं भार्गवो गतः ॥ ५ ॥
पत्नी मरीचः सम्भूतिः पौर्णमासमसूयत।
विरजाः पर्वतश्चैव तस्य पुत्रो महात्मनः ॥ ६ ॥

श्री मैत्रेयजी ने कहा-हे मुने ! आपसे मैंने जो प्रश्न किया था, वह सब कुछ आपने बता दिया, आप कृपा करके भृगु-संसति से लेकर, सम्पूर्ण सृष्टि का मुझसे बर्णन करिये ।१। श्री पराशरजी बोले-भृगुजी द्वारा ख्याति के गर्भ से विष्णु भार्या लक्ष्मीजी तथा धाता और विधाता नामक दो पुत्रों की उत्पत्ति हुई ।२। उन धाता, विधाता का विवाह महात्मा मेरु की आयति और नियति नाम की पुत्रियों से सम्पन्न हुआ, जिनसे प्राण और भृकण्डु नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए । मृकण्डु के पुत्र मार्कण्डेय हुए, जिनसे वेदशिरा का जन्म हुआ । अब प्राण की सन्तति कहता हूँ, उसे सुनो ।३-४ प्राण का पुत्र राजवान् और और उस राजवान से ही भृगुवंश का अत्यन्त विस्तार हुआ ।५। मरीचि की पत्नी संभूति से पौर्णमास हुआ, उसके विरजा और पर्वत नाम के दो पुत्र हुए ।६।

वंशसंकीर्तने पुत्राम्वदिष्येऽहं ततो द्विज ।
स्मृतिश्चांगिरसः पत्नी प्रसूता कन्यकास्तथा ॥ ७ ॥
सिनीवाली कुहूश्चैव राका चानुमतिस्यथा ।
अनसूया तथैवात्रेर्जज्ञे निष्कलमषान सुतान् ॥ ८ ॥
सोम दुर्वाससं चैवं च योगिनम् ।
प्रीत्यां पुलस्त्यभार्यायां दत्तोलिस्तत्सुतोऽभवत् ॥ ९ ॥
पूर्वजन्मानि योऽगस्त्यः स्मृतः स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
कर्द मश्चोर्वरीयांश्च ससिष्णश्च सुतास्त्रयः ॥१०॥
क्षमा तु सुषुत्रे भार्या पुलहस्य प्रजापतेः ।
क्रतोश्च सन्ततिभार्या वालखिल्यानसूयत ॥११॥
षष्टिपुत्रसहस्राणि मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ।
अङ्गुष्ठपर्वमात्राणां ज्वलद्भास्करतेजसाम् ॥१२॥
ऊर्जायां तु वसिष्ठस्य सप्ताजायन्त वै सुताः ।
रजो गोत्रोदूर्ध्व बाहुश्च सवनश्चानघस्तथा ॥१३॥
सुतपाः शुक्र इत्येते सर्वे सप्तर्षयोऽमलाः ।
योऽसावग्न्यभिमानी स्याद् ब्रह्मणस्तनयोऽग्रजः ॥१४॥

तस्मात्स्वाहा सुतांल्लेभे त्रीनुदारौजसो द्विज ।
पावक पवमान तु शुचिं चापि जलाशिनम् ॥१५॥

हे द्विज ! जब उनकी वंशावलि कहूँगा तब उन दोनों सन्तति को बताऊँगा । अङ्गिरा की भार्या स्मृति से सिनीवाली कुहू, राका और अनुमति नाम की कन्याओं ने जन्म लिया । अत्रि-पत्नी अनसूया ने चन्द्रमा, दुर्वासा और दत्तात्रेय को उत्पन्न किया । पुलस्त्य की पत्नी प्रीति से दत्तोलि की उत्पत्ति हुई जो स्वायम्भुव मन्वन्तर में हुए अपने जन्म में अगस्त्य नाम प्रसिद्ध था । प्रजापति पुलह की भार्या क्षमा से कर्दम, उर्वरीयान् तथा सहिष्णु नाम के तीन पुत्र उत्पन्न हुए । क्रतु की सन्तति नाम की पत्नी ने अंगूठे के पोरुओं के समान देह वाले तथा प्रखर सूर्य के समान अत्यन्त तेज वाले वालखिल्यादि साठ सहस्र ऊर्ध्वरेता पुत्र उत्पन्न किये ।१०-११। वशिष्ठजी की ऊर्जा नाम की पत्नी से रज, गोत्र, ऊर्ध्वबाहु, सवन, अनघ, सुतपा, और शुक्र नाम के सात हुए, यह, सभी स्वच्छ स्वभाव वाले सप्तर्षि हुए । ब्रह्माजी का ज्येष्ठ पुत्र जो अग्नि का अभिमानी देवता है, उसकी स्वाहा नामकी भार्या ने अत्यन्त तेजस्वी पावक: पवमान और जल भक्षक शुचि, इन तीन पुत्रों को जन्म दिया ।१३-१५।

तेषां नु सन्ततावन्ये चत्वारिंशच्च पञ्च च ।
कथ्यन्ते वह्नयश्चैते पिता पुत्रत्रयं य यत् ॥१६॥
एवमेकोनपञ्चाशद्वह्नयः परिकीर्तिताः ।
पितरो ब्रह्मणा सृष्टा व्याख्याता ये मया द्विज ॥१७॥
अग्निष्वात्ता बर्हिषदोऽनग्नयः साग्नयश्च ये ।
तेभ्यः स्वधा सुते जज्ञे मेनां वै धारिणी तथा ॥१८॥
ते उभे ब्रह्मवादिन्यौ योगिन्यावप्युभे द्विज ।
उत्तमज्ञानसम्पन्ने सर्वैः समुदितैर्गुणैः ॥१९॥
इत्येषा दक्षकन्यानां कथितापत्यसन्ततिः ।
श्रद्धावान्संस्मरन्नेतामनपत्यो न जायते ॥२०॥

उन तीनों के पैंतालीस पुत्र हुए। अग्नि और उसके तीन पुत्रों को मिल कर यह सब उनचास अग्नि कहे जाते हैं। हे द्विज ! ब्रह्माजी द्वारा रचित जिन

अनग्निक अग्निष्वात्ता और साग्निक बर्हिषद आदि पितरों के विषय में जो तुम्हें बताया था, उनके द्वारा स्वधा के गर्भ से मेना और धारिणी नाम्नी दो पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं ।१६-१८। वह दोनों ही श्रेष्ठ ज्ञान वालीं सर्वगुण सम्पन्न तथा योगिनी थीं ।१९। इस प्रकार यह दक्ष-सुताओं को वंश परम्परा कही गई, इसे जो व्यक्ति श्रद्धा पूर्वक स्मरण करता है, वह पुत्रवान होता है ।२०।

—:※:—

ग्यारहवां अध्याय

प्रियव्रतोत्तायपादी मनोः स्वायंभुवस्य तु ।
द्वौ पुत्रौ तु महावार्यौ धर्मज्ञौ कथितौ तव ॥ १ ॥
तयोरुत्तानपादस्य सुरुच्यामुत्तमः सुतः ।
अभीष्टायामभूद्ब्रह्मन्पितुरत्यन्तवल्लभः ॥ २ ॥
सुनोतिर्नाम या राज्ञस्तस्यासीन्महिषी द्विज ।
सनातिप्रीतिमास्तस्यामभूद्यस्वा ध्रुवः सुतः ॥ ३ ॥
राजासनस्थितस्यांक पितुर्भ्रातरमाश्रितम् ।
दृष्ट्वोत्तमं ध्रुवश्चक्रे तमारोढु मनोरथम् ॥ ४ ॥
प्रत्यक्ष भूपतिस्तस्या सुरुच्या नाभ्यनन्दत ।
प्रणयेनागतं पुत्रमुत्सङ्गारोहणोत्सुकम् ॥ ५ ॥
सपत्नीतनयं दृष्ट्वा तमंकारोहणोत्सुकम् ।
स्वपुत्रं च तथारूढ़ सुरुचिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ ६ ॥
क्रियते कि वृथा वत्स महानेष मनोरथः ।
अन्यस्त्रीगर्भजातेन ह्यसम्भूय ममोदरे ॥ ७ ॥

श्री पराशरजी ने कहा-हे मैत्रेयजी ! मैं तुम्हें स्वायंभुव मनु ने प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो अत्यन्त बली और धर्मज्ञ पुत्रों के विषय में कह चुका हूँ। उत्तानपाद की पत्नी सुरुचि ने उत्तम नामक एक पुत्र पैदा किया और उसकी सुनीति नाम की राजमहिषी ने ध्रुव नामक पुत्रको जन्म

दिया इस राज महिषी में राजा का विशेष प्रेम नहीं था ।१-३। एक दिन जब राज्यासन पर आरूढ़ पिता की गोद में उत्तम बैठा था, उस समय ध्रुव की इच्छा भी राजा की गोद में बैठने की हुई । परन्तु अपनी प्रेयसी सुरुचि के सामने राजा ने अपने उस पुत्र को गोद में न लिया और सुरुचि ने अपनी सौत के पुत्र को गोद चढ़ने को उत्सुक और अपने पुत्र को गोद में बैठा देख कर उससे कहा कि तू मेरे उदर के अतिरिक्त किसी अन्य स्त्री का पुत्र होकर भी ऐसी महान् इच्छा कर रहा है ।४-७।

उत्तमोत्तमप्राप्यमविवेको हि वाञ्छसि ।
सत्यं सुतस्त्वमप्यस्य किन्तु न त्वं मया धृतः ॥ ८ ॥
एतद्राजासन सर्वभूभृत्संश्रयकेतनम् ।
योग्यं ममैव पुत्रस्व किमात्मा विलश्यते त्वया ॥ ९ ॥
उच्चैर्मनोरथस्तेऽयं मत्पुत्रस्येव किं वृथा ।
सुनीत्यामात्मनो जन्म किं त्वया नावगम्यते ॥१०॥
उत्सृज्य पितरं बालस्तच्छ्रुत्वा मातृभाषित ।
जागम कुपितो मातुर्निजाया द्विज मन्दिरम् ॥११॥
तं दृष्ट्वा कुपितं पुत्रमीषत्प्रस्फुरिताधरम् ।
सुनीतिरङ्कमारोप्य मैत्रेयेदमभाषत ॥१२॥
वत्स कः कोपहेतुस्के कश्च त्वां नाभिनन्दति ।
कोऽवजानाति पितरं वत्स यस्तेऽपराध्यति ॥१३॥
इत्युक्तः सकलं मात्रे कथयामास तद्यथा ।
सुरुचिः प्राह भूपाल प्रत्यक्षमतिगर्विता ॥१४॥
विनिःश्वस्येति कथिते तस्मिन्पत्रेण दमंनाः ।
श्वासक्षामेक्षणा दीना सुनितिर्वेक्यिमब्रवीत् ॥१५॥

तू विवेक हीन है, इसीलिए अलभ्य और श्रेष्ठ वस्तु का मनोरथ करता है । यद्यपि तू भी इन्हीं महाराज से उत्पन्न है, परन्तु मेरे गर्भ से जन्म नहीं लिया है । सभी चक्रवर्ती नरेशों का आश्रय रूप यह राज्य सिंहासन मेरे ही पुत्रके बैठने योग्य है, इसकी इच्छा करके तू व्यर्थ ही क्यों अपने चित्तको

सन्तप्त करता है ? ।८-९। तू मेरे पुत्र के समान ही ऐसी उच्च आकांक्षा को क्यों धारण किये हैं ? क्या तुझे ज्ञात नहीं है कि तू सुनीति का पुत्र है ? ।१०। श्रीपराशरजी ने कहा हे ब्रह्मन् ! विमाता की बात सुनकर बालक ध्रुव को क्रोध आ गया और वह पिताके पास से हट कर अपनी माता के भवन में पहुँचा। उस समय उसके ओंठ काँप रहे थे। सुनीतिने अपने पुत्र को इस प्रकार आता हुआ देखा तो उसने उसे गोद में बिठाते हुए पूछा-हे बेटा ! तू क्रोधित क्यों हो रहा है, किसने तेरा अपमान किया है ? तेरा अपराध करके कौन तेरे पिताको अपमानित करने जा रहा है ।११-१३। श्री पराशरजी ने कहा-इस प्रकार का प्रश्न सुनकर ध्रुव ने पिता के सामने ही सुरुचि द्वारा कही गई सब बातें सुनाई। पुत्र जब सिसकते हुए इस बात को कह रहा था तब सुनते-सुनते राज महिषी सुनीति खिन्न चित्त से दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए कहने लगी।१४-१५

सुरुचिः सत्यमाहेदं मन्दभाग्योऽसि पुत्रक।
न हि पुण्यवतां वत्स सपत्नैरेवमुच्यते ॥१६॥
नोद्वेगस्तात कर्तव्यः कृत यद्भवता पुरा।
तत्कोऽपहर्त्तु शक्नोति दातु कश्चाकृतं त्वया ॥१७॥
तत्वया नात्र कर्त्तव्यं दुःख तद्वाक्यसम्भवम् ॥१८॥
राजासन राजच्छत्रं वराश्चवरवारणाः।
यस्य पुण्यानि तस्यैते मत्वैतच्छाम्य पुत्रक ॥१९॥
अन्यजन्मकृतैः पुण्यै सुरुच्यां सुरुचिर्नृपः।
भार्येति प्रोच्यते चान्या मद्विधा पुण्यवर्जिता ॥२०॥
पुण्योपचयसम्पन्न स्तस्यः पुत्रस्तथोत्तमः।
मम पुत्रस्तथा जातः स्वल्पपुण्यो ध्रुवो भवान् ॥२१॥
तथापि दुःखं न भगवान् कर्त्तुमर्हति पुत्रक।
यस्य यावत्स तेनैव स्वेन तुष्यति मानवः ॥२२॥

सुनीति बोली-हे पुत्र ! सुरुचि का कहना यथार्थ है, तू मन्द भाग्य है, इसीलिए उसने ऐसा कहा है, क्योंकि पुण्यवान के सामने ऐसा कहने का

दुःसाहस कोई नहीं करता है ।१६। परन्तु, तू उद्विग्न मत हो, पूर्व जन्म के कर्म का फल कोई नहीं मिटा सकता और तूने नहीं किया, उसे कोई दे नहीं सकता । इसलिए उसके वचनों पर दुःखित नहीं होना चाहिये ।१७-१८। हे पुत्र ! पुण्यवान् को राज्य सिंहासन, छत्र और अच्छे-अच्छे वाहन गज और अश्व आदि की प्राप्ति हो सकती है, यह समझकर शांत हो ।१९। पूर्व जन्मों के पुण्य से ही राजा की प्रीति सुरुचि में है, और पुण्य न होने के कारण ही मैं कहने भर को राजा की पत्नी हूँ ।२०। इसी प्रकार उसका पुत्र उत्तम भी अत्यन्त पुण्यवान् है और मुझसे उत्पन्न तू मेरे समान ही थोड़े पुण्य का भागी है ।२१। फिर भी हे पुत्र ! तू दुःखित मत हो, क्योंकि जिसे जो कुछ भी प्राप्त हो जाय उतनी पूँजी में उसे सन्तोष करना चाहिये ।।२२।।

यदि ते दुःखमत्यर्थं सुरुच्या वचसाभवत् ।
तत्पुन्योपचये यत्नं कुरु सर्वफलप्रदे ।।२३।।
सशालो भव धर्मात्मा मैत्रः प्राणहिते रतः ।
निम्नं यथापः प्रवणाः पात्रमायान्ति समपदः ।।२४।।
अम्ब यत्वमिदं प्रात्थ प्रशमाय वचो मम ।
नैतददुर्वचसा भिन्ने हृदये मम तिष्ठिति ।।२५।।
सोऽहं तथा यतिष्यामि यथा सर्वोत्तमोत्तमम् ।
स्थानं प्राप्स्याम्यशेषाणां जगतामभिपूजितम् ।।२६।।
सुरुचिर्दयिता राज्ञस्तस्या जातोऽस्मि नोदरात् ।
प्रभावं पश्य मेऽम्ब त्वं वृद्धस्यापि तावोदरे ।।२७।।
उत्तमः स मम भ्राता यो गर्भेण धृतस्तया ।
स राजासनमाप्नोतु पित्रा दत्तं तथास्तुतत् ।।२८।।
नान्यदत्तमभीप्सामि स्थानमम्ब स्वकर्मणा ।
इच्छामि तदहं स्थानं यन्न प्राप पिता मम ।।२९।।

यदि सुरुचि के वचनों से तेरा मन खिन्न ही हो गया है तो सब फलों के देने वाले पुण्य को संचित कर का उपाय तथा सब प्राणियों का हित साधक, सुशील, सर्व स्नेह और पुण्यात्मा बन, क्यों कि जिसे

जल नीची भूमि में स्वयं ढलता हुआ आजाता है, वैसे ही सत्पात्र पुरुषों के पास समस्त वैभव अपने आप ही आ पहुँचता है।२४। ध्रुव ने कहा-हे माता! मेरे चित्त की शांति के लिये तुमने जो कुछ कहा है, वह उसके कठोर वचनों से बिंधे हुए मेरे हृदय में ठहर नहीं पाता। इस लिये अब मैं वही करूँगा जिसके द्वारा सब लोकों में सम्मानित सर्व-श्रेष्ठ पद को प्राप्त हो सकूँ।१५। यद्यपि राजा की प्रेयसी सुरुचि अवश्य ही भाग्यवाली है और मैं उसके उदर से उत्पन्न नहीं हुआ हूँ, फिर भी अपने गर्भ द्वारा प्रवृद्ध किये गये इस बालक के प्रभाव को भी देख लेना। जिस उत्तम को सुरुचि ने जन्म दिया, वह भी मेरा भाई ही तो है। पिता का दिया हुआ राजपद उसको मिले। क्योंकि मैं किसी दूसरे के द्वारा दिये हुए पद को अभिलाषा नहीं करता, मैं तो अपने पुरुषार्थ से ही उस पद को पाना चाहता हूँ जिसे पिताजी भी न प्राप्त कर सके हैं।२७-२९।

नजगाम गृहान्मातुरित्युक्त्वा मातरं ध्रुवः।
पुराच्च निर्गम्य ततस्तदबाह्योपवन ययौ ॥३०॥
स ददर्श मुनींस्तत्र सप्त पूर्वागतान्ध्रुवः।
कृष्णाजिनोत्तरीयेषु विष्टरेपु समास्थितान् ॥३१॥
स राजपुत्रस्तान्सर्वान्प्रणिपत्याभ्यभाषत।
प्रश्रयावनतः सम्यगभिवादनपूर्वकम् ॥३२॥
गत्तानपादतनयं माँ निबोधत सत्तमाः।
जातं सुनीत्यां निर्वदास्त्रुष्माकं प्राप्तमन्तिकम् ॥३४॥
चतुःपञ्चाब्दसम्भूतो बालस्त्वं नृपनन्दन।
निर्वेदकारणं किञ्चित्तव नाद्यापि वर्त्तते ॥३४॥
न चिन्त्यं भवतः किञ्चद्ध्रियते भूपतिः पिताः।
न चैवेष्टवियोगादि तव पश्याम बालक ॥३५॥
शरीरे न च ते व्याधिरस्स्माभिरूपलक्ष्ते।
निर्वेदः किन्निमित्तस्ते कथ्ययतां यदि विद्यते ॥३६॥

श्री पराशरजी ने कहा-माता के प्रपि यह कहकर ध्रुव उसके भवन

से चल पड़ा और नगर के बाहर जाकर एक उपवन में ठहर गया ।३६। वहाँ पहिले से ही सन्त मुनीश्वर काली मृगछाला के आसनों पर विराजमान थे, उन्हें देखकर उसने सभी को प्रणाम किया और अत्यन्त विनीत शब्दों में उनसे बोला ।३१-३२। ध्रुव ने कहा–हे महात्मागण ! मैं सुनीति से उत्पन्न राजा उत्तानपाद का पुत्र हूँ और आत्म ग्लानि के कारण ही यहाँ आया हूँ ।३३। यह सुनकर ऋषियों ने कहा–हे राजपुत्र ! अभी तो तेरी आयु चार या पाँच वर्ष की ही है, अभी तेरे निर्वेद का समय प्रतीत नहीं होता ।३४। तेरे लिये चिन्ता भी किसी बात की है, अभी तो तेरा पिता जीवित है, फिर तेरी कोई अभीष्ट वस्तु खो गई हो, ऐसा भी हम नहीं देखते ।३५। तेरे देह में कोई रोग भी प्रतीत नहीं है, फिर हे बालक तेरी ग्लानि का क्या कारण है ? ।३६।

ततः स कथयामास सुरुच्या यदुदाहृतम् ।
तन्निशम्य ततः प्रोचुर्मुनस्यते परस्परम् ।।३७।।
अहो क्षात्रं परं तेजो बालस्यापि यदक्षमा ।
सत्न्या मातुरुक्तं यद्धृदयान्नापसर्वति ।।३८।।
भो भो क्षत्रियदाथाद निर्वेदाद्यत्वयाधुना ।
कर्तुं व्यविसत तन्नः कथ्यतां यदि रोचते ।।३९।।
यच्च कार्यं तवास्माभिः साहाय्यममितद्युते ।
तदुच्यतां विवक्षुस्त्वमस्माभिरुपलक्ष्यसे ।
नाहमर्थमभीप्सामि न राज्यं द्विजसत्तमाः ।।४०।।
तत्स्थान मेकमिच्छामि भुक्तं नान्येन यत्पुरा ।।४१।।
एतन्मे क्रियतां सम्यक्कथ्यतां प्राप्यते यथा ।
स्थानमग्रयं समस्तभ्यः स्थामेभ्यो मुनिसत्तमाः ।।४२।।

श्री पराशरजी ने कहा-तब राजकुमार ध्रुव ने सुरुचि की कही हुई बातें उन्हें सुनाई, इस पर वे ऋषिगण परस्पर इस प्रकार बोले-देखो ! क्षात्र तेज कितना बलवान है, जिससे इतने छोटे से बालक में भी क्षमा नहीं है, इसके हृदय से इसकी विमाता द्वारा कही बात नहीं हट पाती । ३७-३८। हे राजपुत्र ! इस निर्वेद के कारण तूने जिस कार्य का बिचार

किया है, उसे कहना चाहे तो हमसे कह दे और फिर यह भी बता कि हम तेरी क्या सहायता कर सकते हैं। हमें प्रतीत होता है कि तू हमसे कुछ कहने की इच्छा करता है।३९-४०। ध्रुव बोले-हे द्विजसत्तम ! मैं धन या राज्य नहीं चाहता, मैं तो केवल वही पद प्राप्त करना चाहता हूँ जिसका भोग पहिले कभी किसीने न किया हो। हे मुनिवर ! यदि आप यह बताने की कृपा करें कि मुझे सबसे अग्रगण्य वह स्थान किस कर्म से उपलब्ध हो सकता है तो यह बहुत बड़ी सहायता होगी।४१-४२।

अनाराधितगोविन्दैर्नरैः स्थानं नृपात्मज ।
न हि सम्प्राप्यते श्रेष्ठं तस्मादाराधयाच्युतम् ॥४३॥
परः पराणां पुरुषो यस्य तुष्टो जनार्दनः ।
स प्राप्नोत्यक्षयं स्थानमेतत्सत्यं मयोदितम् ॥४४॥
यस्यान्तः सर्वमेवेदमच्युतस्याव्ययात्मनः ।
तमाराधय गोविन्दं स्थानमग्र्यं यदीच्छसि ॥४५॥
परं ब्रह्म परं धाम योऽसौ ब्रह्म तथा परम् ।
तमाराध्य हरिं याति मुक्तिमप्यतिदुर्लभाम् ॥४६॥
ऐन्द्रमिन्द्रः परं स्थानं यमाराध्य जगत्पतिम् ।
प्राप यज्ञपतिं विष्णुं तमाराधय सुव्रत ॥४७॥
यो यज्ञपुरुषो यज्ञो योगेशः परमः पुमान् ।
तस्मिंस्तुष्टे यदप्राप्यं किं तदस्ति जनार्दने ॥४८॥
प्राप्नोष्याराधिते विष्णौ मनसा यद्यदिच्छसि ।
त्रैलोक्यान्तर्गतं स्थानं किमु वत्सोत्तमोत्तमम् ॥४९॥

मरीचि ने कहा-हे नृपात्मज ! भगवान गोविन्द की आराधना के बिना मनुष्य को वैसे स्थान की प्राप्ति नहीं हो सकती, इसलिए तू उन्हीं अच्युत नारायन की अराधना कर।४३। अत्रि ने कहा-जो परम पुरुष जनार्दन परा प्रकृति से भी परे हैं वह जिससे प्रसन्न होते हैं, वही उस अक्षयपद को प्राप्त होता है, मेरा यह वचन अक्षरशः सत्य है।४४। अङ्गिरा ने कहा-यदि तू अग्र-स्थान की कामना करता है तो अव्ययात्मा अच्युत जो इस सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त हैं, उन्हीं की आराधना कर।४५।

पुलस्त्य ने कहा-परस्वरूप, पर ब्रह्म और पमधाम रूप भगवान् श्रीहरि की उपासना से मनुष्य को अत्यन्त दुर्लभ मोक्ष भी प्राप्त हो जाती है ।४६। पुलह ने कहा-इन्द्र ने भी जिन जगन्नाथ विष्णु की अराधना करके इन्द्र पद को प्राप्त किया था, उन्ही यज्ञपति भगवान की आराधना तू भी कर ।४७। क्रतु ने कहा-जो भगवान् जनार्दन परम-पुरुष, यज्ञ पुरुष तथा योगेश्वर हैं, उनके प्रसन्न होने पर ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो अलभ्य हो ? ।४८। वशिष्ठ ने कहा भगवान् विष्णु की अराधना करके तू जो भी इच्छा करेगा उसी की तुझे प्राप्ति हो जायगी, त्रैलोक्य के श्रेष्ठ से श्रेष्ठ स्थान का तो कहना ही क्या है ।४९।

आराध्यः कथितो देवो भवद्भिः प्रणतस्य मे ।
मया तत्परितोषाय यज्जप्तव्यं तदुच्यताम् ।।५०।।
यथा चाराधनं तस्य मया कार्यं महात्मनः ।
प्रसादसुमुखास्तन्मे कथयन्तु महर्षयः ।।५१।।
राजपुत्र यथा विष्णोराराधनपरैर्नरैः ।
कार्यमाराधनं तन्नो यथावच्छ्रोतुमर्हसि ।।५२।।
बाह्यार्थादखिलाच्चित्तं त्यजेत्प्रथमं नरः ।
तस्मिन्नेव जगद्धाम्नि ततः कुर्वीत निश्चलम् ।।५३।
एवमेकाग्रचित्तेन तन्मयेन धृतात्मना ।
जप्तव्यं यन्निबोधैतत्तन्नः पार्थिवनन्दन ।।५४।।
हिरण्यगर्भपुरुषप्रधानाव्यक्तरूपिणे ।
ॐ नमो वासुदेवाय शुद्धज्ञानस्वरूपिणे ।।५५।।
एतज्जजाप भगवान् जप्यं स्वायम्भुवो मनुः ।
पितामहस्तव पुरा तस्य तुष्टो जनार्दनः ।।५६।।
ददौ यथाभिलषितां सिद्धिं त्रैलोक्यदुर्लभाम् ।
तथा त्वमपि गोविन्द तोषयैतत्सदा जपन् ।।५७।।

ध्रुव बोले-हे महर्षियों ! आपने मुझे अराध्य का उपदेश तो कर दिया, परन्तु अब मुझे यह भी बताने की कृपा करें कि उनको प्रसन्न करने के लिए किस प्रकार जपादि करना चाहिये उन महापुरुष

की आराधना की विधि मुझे सहर्ष बताइये ।५०-५१। ऋषियों ने कहा-हे राजपुत्र ! भगवान् विष्णु की आराधना में लगे हुए पुरुषों को जिस प्रकार उनकी उपासना करनी चाहिये, वह हमसे सुन ।५२। सर्व प्रथम सभी बाह्य विषयों से मन को हटा कर उन जगद्धाम में स्थिर करे । इस प्रकार एकाग्र चित्तसे तन्मयता पूर्वक जिस प्रकार जप विधान है, वह श्रवण कर ।५४। हिरण्यगर्भ पुरुष, प्रधान, अव्यक्त तथा शुद्ध ज्ञान रूप भगवान् वासुदेव को नमस्कार है ।५५। इस ॐ नमो भगवते वासुदेवाय मन्त्र का जाप पहिले तेरे पितामह स्वायंभुव मनु ने किया था, तब उन पर प्रसन्न होकर भगवान ने उन्हें अभिलाषित सिद्ध प्रदान की थीं । उन्हीं से समान तू भी इसका निरन्तर जप करके भगवान गोविन्द की प्रसन्नता प्राप्त कर सकेगा ।५६-५७।

बारहवाँ अध्याय

निशम्यैतदशेषेण मैत्रेय नृपतेः सुतः ।
निर्जगाम वनात्तस्मात्प्रणिपत्य स तानृषीन् ॥ १ ॥
कृतकृत्यमिवात्मानं मन्यमानस्ततो द्विज ।
मधुसंज्ञ महापुण्य जगाम यमुनातटम् ॥ २ ॥
पुनश्च मधुसंज्ञेन दैत्येनाधिष्ठितं यतः ।
ततो मधुवनं नाम्ना ख्यातमत्र महीतले ॥ ३ ॥
हत्वा च लवणं रक्षो मधुपुत्रं महाबलम् ।
शत्रुघ्नो मधुरां नाम पुरीं यत्र चकार वै ॥ ४ ॥
यत्र वै देवदेवस्य सान्निध्यं हरिमेधसः ।
सर्वपापहरे तस्मिंस्तपस्तीर्थे चकार सः ॥ ५ ॥
मरीचिमुख्यैर्मुनिभिर्यथा दृष्टमभूत्तथा ।
आत्मन्यशेषदेवेशं स्थितं विष्णुममन्यत ॥ ६ ॥
अनन्यचेतसस्तस्य ध्यायतो भगवान्हरिः ।
सर्वभूतगतो विप्र सर्वभावगतोऽभवत् ॥ ७ ॥

श्री पराशरजी ने कहा-हे मैत्रेयजी ! ऋषियों की बात सुनकर राजकुमार ध्रुवने उन्हें प्रणाम किया और वह उस उपवन से चल दिया।१ फिर वह अपने को अत्यन्त कृत-कृत्य मानता हुआ यमुना तट पर स्थित मधु नाम वन में आया । उस बन में मधु नामक दैत्य रहने लगा था, इस कारण उसका नाम मधुवन हुआ था।२-३। वहीं उस मधु के पुत्र लवण का बध करके शत्रुघ्न ने मथुरा नामक एक नगरकी स्थापना की।४। जिस मधुवनमें देवाधिदेव भगवान् विष्णु की सन्निधि रहती है, उसी में जाकर ध्रुव ने घोर तप किया।५। मरीचि आदि महर्षियों के उपदेशानुसार ही उसने अपने हृदय में निखिल देवेश्वर भगवान् श्रीहरि के ध्यान का अभ्यास किया और हे विप्र ! इस प्रकार अनन्य चित्त से ध्यान करते रहने से उसके हृदय में सब भूतोंमें निवास करने वाले भगवान्-विष्णु सर्व भावसे प्रकट हुए६-७

मनस्यवस्थिते तस्मिन्विष्णौ मैत्रेय योगिनः ।
न शशाक धराभारमुद्वोढुं भूतधारिणी ॥ ८ ॥
वामपादस्थिते तस्मिंन्नामार्द्धेन मेदिनी ।
द्वितीयं च न ननामार्द्धं क्षितेर्दक्षिणतः स्थिते ॥ ६ ॥
पादाङ्गुष्ठेन सम्पीडय यदा वसुधां स्थितः ।
तदा समस्ता वसुधा चचाल सह पर्वतः ।।१०॥
नद्यो नदाः समुद्राश्च सङ्क्षोभं परमं ययुः ।
तत्क्षोभादमराः क्षोभं परं जग्मुर्महामुने ॥११॥
यामा नाम तदा देवा मैत्रेय परमाकुलाः ।
इंद्रेण सह सम्मन्त्र्य ध्यानभङ्गं प्रचक्रमुः ॥१२॥
कूष्माण्डा विविधैं रूपैर्महेंद्रेण महामुने ।
समाधिभंगमत्यं तमारब्धाः कर्त्तुमातुराः ॥१३॥
सुनीतिर्नाम तन्माता सास्रा तत्पुरतः स्थिता ।
पुत्रेति करुणां वाचमाह मायामयी तदा ॥१४॥
पुत्रकास्मान्निवर्त्तस्व शरीरात्ययदारुणात् ।
निर्बन्धतो मया लब्धो बहुभिस्त्वं मनोरथः ॥१५॥

हे मैत्रेयजी ! जब योगी ध्रुव के चित्त में भगवान विष्णु स्थित हो गये, तब सब भूतों की धरित्री पृथ्वी उसका बोझ वहन करने में असमर्थ हो गई ।८। उसके बाँए चरण के बल खड़े होने के कारण पृथ्वी का भी बाँया आधा भाग नीचे को झुक गया तथा दाँऐं चरण से खड़े होने पर दाँया भाग झुक गया ।९। जब वह पाँव के अंगूठे से पृथ्वी को मध्य में से दबा कर स्थित हुआ तब पर्वतों सहित सम्पूर्ण भूमण्डल चलायमान हो उठा ।१०। हे महामुने ! उस समय नद, नदी और समुद्र आदि भी अत्यन्त क्षुब्ध प्रतीत होने लगे तथा देवताओं में भी इससे घोर हलचल होने लगी ।११। हे मैत्रेयजी ! उस समययाम नामक देवताओं ने इन्द्र के साथ मन्त्रणा की और ध्रुव का ध्यान भङ्ग करने का उपाय करने लगे ।१२। फिर इन्द्र के साथ मिलकर अत्यन्त आतुर कुष्माण्ड नामक देवगण विभिन्न रूप धारण करके उसकी समाधि भंग करने में तत्पर हुए ।१३। उस समय माया से निर्मित हुई उसकी माता सुनीति सजल नेत्र उसके समक्ष प्रकट होकर करुण स्वर में, हे पुत्र, हे पुत्र, ! पुकारने लगी और बोली कि देह को नष्ट करने वाले इस भयंकर तप को त्याग दे, क्योंकि मैंने बड़ी-बड़ी मनौतियाँ मनाकर तुझे प्राप्त किया था ।१४-१५।

दीनामेकां परित्यक्तुमनाथां न त्वमर्हसि ।
सपत्नीवचनाद्वत्स अगतेस्त्वं गतिर्मम ॥१६॥
क्व च त्वं पञ्चवर्षीयः क्व चैतद्दारुणं तपः ।
निवर्त्ततां मनः कष्टान्निर्बन्धात्फलवर्जितात् ॥१७॥
कालः क्रीडनकानान्ते तदन्तेऽध्ययनस्य ते ।
ततः समस्तभोगानां तदन्ते चेष्यते तपः ॥१८॥
कालःक्रीडनकानां यस्तव बालस्य पुत्रक ।
तस्मिस्त्वमिच्छसि तप किं नाशायात्मनो रतः ॥१९॥
मत्प्रीतिः परमो धर्मो वयोऽवस्थाक्रियाक्रमम् ।
अनुवर्त्तस्व मा मोहान्निवर्त्तास्मादधर्मतः ॥२०॥
परित्यजति वत्साद्य यद्येतन्न भवांस्तपः ।
त्यक्ष्याम्यहमिह प्राणांस्ततो वं पश्यतस्तव ॥२१॥

हे पुत्र ! सौत के कठोर वचनों के कारण मुझ दुखिया का भी त्याग कर देना तेरे लिए उचित नहीं है। मुझ आश्रयहीना का आश्रय तो एक मात्र तू ही है।१६। कहाँ तो तेरी पाँच वर्ष की अवस्था और कहाँ यह अत्युग्र तपस्या ? अरे बेटा ! निष्फल और क्लेशयुक्त आग्रह से विमुख हो।१७। क्योंकि अभी तो तेरी आयु खेलने कूदने की ही है, फिर अध्ययन करने योग्य होगी, उसके बाद भोगों को भोगने का समय होगा और अन्त में तप करने की अवस्था प्राप्त होगी।१८। हे पुत्र ! तुझ सुकुमार की जो बाल्यावस्था है, उस खेलने की अवस्था में तू तपस्या का अभिलाषी हुआ है, अरे तू क्यों इससे अपना सर्वनाश करने को तत्पर है ?।१९। मुझे प्रसन्न करना ही तेरा परम धर्म है, इसलिए तू अपनी आयु के अनुकूल ही कर्मों को कर, मोह का अनुवर्तन और इस तपस्या रूपी अधर्म से अब विमुख होजा।२०। हे पुत्र ! यदि आज तू अपने इस तप रूप हठ का त्याग न करेगा तो मैं तेरे ही समक्ष अपने प्राण विसर्जन कर दूँगी।२१।

तां प्रलापवतीमेवं बाष्पाकुलविलोचनाम् ।
समाहितमना विष्णौ पश्यन्नपि न दृष्टवान् ॥२२॥
वत्स वत्स सुघोराणि रक्षांस्येतानि भीषणे ।
वनेऽभ्युद्यतशस्त्राणि समायान्त्यपगम्यताम् ॥२३॥
इत्युक्त्वा प्रययौ साथ रक्षांस्याविर्बभुस्ततः ।
अभ्युद्यतोग्रशस्त्राणि ज्वालामालाकुलैर्मुखैः ॥२४॥
ततो नादानतीवोग्रान्राजपुत्रस्य ते पुरः ।
मुमुचुर्दीप्तशस्त्राणि भ्रामयन्तो निशाचराः ॥२५॥
शिवाश्च शतशो नेदुः सज्वालाकवलैर्मुखैः ।
त्रासाय तस्य बालस्य योगयुक्तस्य सर्वदा ॥२६॥
हन्यतां हन्यतामेष छिद्यतां छिद्यतामयम् ।
भक्ष्यतां भक्ष्यतां चायमित्यूचुस्ते निशाचराः ॥२७॥
ततो नानाविधान्नादान् सिंहोष्ट्रमकराननाः ।
त्रासाय राजपुत्रस्य नेदुस्ते रजनीचराः ॥२८॥

श्री पराशरजी ने कहा-हे मैत्रेयजी ! ध्रुव का चित्त भगवान् श्री हरि में तन्मयता पूर्वक लगा हुआ था, इसलिए उसने अपनी माता रूपिणी माया को अश्रुपात पूर्वक विलाप करते हुए देखकर भी नहीं देखा ।२२। यह देखकर वह माया, अरे पुत्र ! उठ, यहाँ से शीघ्र ही भाग निकल, देख इस अत्यन्त घोर वन में यह भयङ्कर राक्षस कैसे शस्त्रास्त्र ग्रहण किये हुए आ रहे हैं, ऐसा कहती हुई वहाँ से चल दी और तभी ऐसे अनेक राक्षस वहाँ प्रकट हो गये जिनके हाथों में शस्त्रास्त्र थे और मुख से अग्नि की लपटें निकल रही थीं ।२३-२४। उन राक्षसोंने अत्यन्त चमचमाते हुए शस्त्रों को उछाला और ध्रुव के सामने भीषण कोलाहल किया ।२५। उस नित्य योगयुक्त बालक ध्रुवको डराने के उद्देश्य से मुख से अग्नि की चिनगारियाँ छोड़ती हुई सैंकड़ों गीदड़ियाँ वहाँ घोर शब्द करने लगीं ।२६। और ये राक्षस भी मारो काटो, भक्षण करो इस प्रकार चीखने लगे तथा सिंह, ऊँट, मकर आदि जैसे मुख वाले भयङ्कर राक्षस उस राजकुमार को त्रस्त करने के लिए अनेक प्रकारसे गर्जना करने लगे ।२८।

रक्षांसि तानि ते नादाः शिवास्तान्यायुधानिच ।
गोविन्दासक्तचित्तस्य ययुर्नेन्द्रियगोचरम् ।।२९।।
एकाग्रचेताः सततं विष्णुमेवात्मसंश्रयम् ।
दृष्ट्वान्पृथिवीनाथपुत्रो नान्यं कथञ्चन ।।३०।।
ततः सर्वासु मायासु विलीनासु पुनः सुराः ।
संक्षोभं परमं जग्मुस्तत्पराभवशङ्किताः ।।३१।।
ते समेत्य जगद्यानिमनादिनिधनं हरिम् ।
शरण्य शरणं यातास्तपसा तस्य तापिताः ।।३२।।
देवदेव जगन्नाथ परेश पुरुषोत्तम ।
ध्रुवस्य तपसा तप्तास्त्वां वयं शरणं गताः ।।३३।।
दिने दिने कलालेशैः शशाङ्कः पूर्यते यथा ।
तथायं तपसा देव प्रयात्यृद्धिमहर्निशम् ।।३४।।

औत्तानपादितपसा वयमित्थं जनार्दन ।
भीतास्त्वां शरणं यातास्तपसस्तं निवर्तय ॥३५॥

परन्तु भगवान में असक्त चित्त वाले उस बालकको स्यारियाँ और उनके शब्द तथा राक्षस और उनको गर्जन तथा शस्त्रास्त्र कुछ भी दिखाई न पड़े। ।२९।वह राजकुमार एकाग्र चित्त से अपने आश्रय स्वरूप भगवान् विष्णु को ही देखता रहा, उसके अतिरिक्त उसने किसी अन्य को नहीं देखा ।३०। उस प्रकार उस सम्पूर्ण माया के विलीन होने से देवगण उससे हारने की आशंका करते गए अत्यन्त भयभीत हुए ।३१। इसलिये उसके तपसे व्याकुल हुए वे परस्पर मिलकर संसार के आदि कारण, शरणागत वत्सल, आदि-रहित तथा अत-विहीन भगवान् विष्णु की शरण में पहुँचे ।३२। देवताओं ने कहा–हे देव-देव ! हे जगन्नाथ ! हे परब्रह्म, हे पुरुषोत्तम ध्रुवके तप को देखकर हम व्याकुल हो रहे हैं; इसलिये आपकी शरण को प्राप्त हुए हैं ।३३। हे देव ! जैसे चन्द्रमा अपनी कलाओंके द्वारा नित्य वृद्धि को प्राप्त होता है, वैसे ही अपने तपके प्रभाव से वह दिन-रात्रि निरन्तर वृद्धि को प्राप्त हो रहा है ।३४। हे जनार्दन ! हम उत्तानपाद-सुत ध्रुव के तपसे डर कर आपकी शरणमें उपस्थित हुए हैं, आप उसे तपस्या से निवृत्त करिये ।३५।

न विद्मः किं स शक्रत्वं किमभीप्सति ।
वित्तापाम्बुपसोमानां साभिलाषः पदेषु किम् ॥३६॥
तदस्माकं प्रसीदेश हृदयाच्छल्यमुद्धर ।
उत्तानपादतनयं तपसः सन्निवर्त्तय ॥३७॥
नेन्द्रत्वं न च सूर्यत्वं नैवाम्बुपधनेशताम् ।
प्रार्थयत्येष यं कामं तं करोम्यखिलं सुराः ॥३८॥
यात देवा यथाकामं स्वस्थानं विगतज्वराः ।
निवर्त्तयाम्यहं बालं तवस्यासक्तमानसम् ॥३९॥
इत्युक्ता देवदेवेन प्रणम्य त्रिदशोस्ततः ।
प्रययुः स्वानिधिष्ण्यानि शतक्रतुपुरोगमाः ॥४०॥

भगवानपि सर्वात्मा तन्मयत्वेन तोषितः ।
गत्वा ध्रुवमुवाचेदं चतुर्भुजवपुर्हरिः ॥४१॥
औत्तानपादे भद्रं ते तपसा परितोषितः ।
वरदोऽहमनुप्राप्तो वरं वरय सुव्रतः ॥४२॥
बाह्यार्थनिरपेक्षं ते मयि चित्तं यदाहितम् ।
तुष्टोऽहं भवतस्तेन तद्वृणोष्व वरं परम् ॥४३॥

वह इन्द्रत्व की कामना करता है अथवा सूर्यत्व प्राप्त करना चाहता है या वह कुबेर, वरुण, चन्द्रमा में से किसी के पद की प्राप्ति-अभिलाषा करता है यह हमें ज्ञात नहीं है ।३६। हे प्रभो ! आप हम पर प्रसन्न हूजिये और उत्तनपाद सुत को तपस्या से निवृत्त करके हमारे हृदय-कंटक को दूर कीजिए ।३७। यह सुनकर श्री भगवान् ने कहा-हे देवगण ! तुम चिंता को त्याग कर अपने-अपने स्थान को जाओ । वह इन्द्र, वरुण या कुबेर आदि के पद की कामना नहीं करता, मैं उसकी अभिलाषा पूर्ण करूँगा और उसे तप से भी निवृत्त कर दूँगा ।३८-३९। श्री पराशरजी ने कहा-देवदेव भगवान् बिष्णु द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर सभी देवता उन्हें प्रणाम करके अपने-अपने धाम को गए और सर्वात्मा भगवान्ने भी ध्रुव के तप से संतुष्ट होकर उसे चतुर्भुज रूप में दर्शन देकर कहा ।४०-४१ भगवान् बोले-हे उत्तानपाद के पुत्र ! हे ध्रुव ! तेरा कल्याण हो। तेरे तप से प्रसन्न होकर तुझे वर देने के निमित्त मैं यहाँ आया हूँ, हे श्रेष्ठ व्रत वाले ध्रुव ! अब तू इच्छित वर माँगले ।४२। तूने सभी बाह्य विषयों को त्याग कर मुझ में ही अपने चित्त को लगाया है, इसलिये मैं तुझ पर अत्यन्त प्रसन्न हूँ । अब तू अपना अभिलाषित वर माँग ।४३।

श्रुत्वेत्थं गदितं तस्य देवदेवस्य बालकः ।
उन्मीलिताक्षो ददृशो ध्यानदृष्टं हरिं पुरः ॥४४॥
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्ग वरासिधरमच्युतम् ।
किरीटिनं समालोक्य जगाम शिरसा महीम् ॥४५॥
रोमाञ्चिताङ्ग सहसा साध्वस परमं गतः ।
स्तवाय देवदेवस्य स चक्रे मानसं ध्रुवः ॥४६॥

किं वदामि स्तुतावस्य केनोक्तेनास्य संस्तुतिः ।
इत्याकुलमतिर्देवं तमेव शरणं ययौ ॥४७॥
भगवन्यदि मे तोषं तपसा परमं गतः ।
स्तोतुं तदहमिच्छामि वरमेनं प्रयच्छ मे ॥४८॥
ब्रह्माद्यैर्यस्य वेदज्ञैर्ज्ञायते यस्य नो गतिः ।
तं त्वां कथमहं देव स्तोतुं शक्नोमि बालकः ॥४९॥
त्वद्भक्तिप्रवणं ह्येतत्परमेश्वर मे मनः ।
स्तोतुं प्रवृत्तं त्वत्पादौ तत्र प्रज्ञां प्रयच्छ मे ॥५०॥
शङ्खप्रान्तेन गोविन्दस्तं पस्पर्श कृताञ्जलिम् ।
उत्तानपादतनयं द्विजवर्य जगत्पतिः ॥५१॥
अथ प्रसन्नवदनः स क्षणान्नृपनन्दनः ।
तुष्टाव प्रणतो भूत्वा भूतधातारमच्युतम् ॥५२॥

श्री पराशरजी ने कहा-भगवान् विष्णु के वचन सुनकर बालक ध्रुव ने अपने नेत्र खोले और ध्यानवस्था में जिनके दर्शन किये थे, उन भगवान् को साक्षात् रूपमें अपने सामने खड़े पाया ।४४। वे भगवान् किरीट मुकुट, शंख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग धनु तथा खड्ग धारण किये हुए थे । उन्हें देख कर ध्रुवने पृथ्वी पर अपना मस्तक रख कर प्रणाम किया और सहसा रोमांचित होते हुए उसने भगवान् की स्तुति करनी चाही । परन्तु स्तुति मैं क्या कहूँ यह उसकी समझ में नहीं आया जिससे वह अत्यन्त ब्याकुल हुआ और अन्त में उसने भगवान् की ही शरण ली ।४५-४७। ध्रुव बोला-हे प्रभो ! यदि आप मेरे तप से प्रसन्न हुए हैं तो मैं आपकी स्तुति करने को इच्छुक हूँ प्रथम वर यही प्रदान करिये जिससे मैं आपका स्तव करने में समर्थ हो सकूँ ।४८। हे देव ! ब्रह्मा आदि वेदों के ज्ञाता भी जिनकी गति का ज्ञान नहीं रखते, उनका स्तवन मैं अबोध बालक किस प्रकार कर सकता हूँ ? ।४९। हे परमेश्वर ! आपकी भक्ति से द्रवित हुआ मेरा चित्त आपके चरणों की स्तुति करने को उत्कंठित है, इस लिये आप मुझे वैसीही बुद्धि दीजिये ।५०। श्री पराशरजी ने कहा-हे द्विज श्रेष्ठ ! भगवान श्रीगोविन्द ने अपने सामने करबद्ध खड़े हुए ध्रुव को अपने

शङ्ख के अग्र भाग से स्पर्श किया तभी वह राजपुत्र क्षण भर में ही हर्षित मुख से अत्यन्त विनीत होकर भगवान् की स्तुति में प्रवृत्त हुआ ।५१-५२।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
भूतादिरादिप्रकृतियस्य रूपं नतोऽस्मि तम् ।।५३।।
शुद्धः सूक्ष्मोऽखिलव्यापी प्रधानात्पतः पुमान् ।
यस्य रूप नमस्तस्मै पुरुषाय गुणाशिने ।।५४।।
भूरादीनां समस्तानां गन्धादीनां च शाश्वतः ।
बुध्यादीनां प्रधानस्य पुरुषस्य च यः परः ।।५५।।
तं ब्रह्मभूतमात्मानमशेषजगतः पतिम् ।
प्रपद्ये शरणं शुद्धं त्वद्रूप परमेश्वर ।।५६।।
वृहत्त्वाद् बृंहणत्वाच्च यद्रूप ब्रह्मसंज्ञितम् ।
तस्मै नमस्ते सर्वात्मन्योगिचिन्त्याविकारिणे ।।५७।।
सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
सर्वव्यापी भुवः स्पर्शादत्यतिष्ठद्दशांग लम् ।।५८।।
यद्भूतं यच्च वै भव्यं पुरुषोत्तम तद्भवान् ।
त्वत्तो विराट् स्वराट् सम्राट् त्वत्तश्चाप्यधिपुरुषः ।।५९।।

ध्रुव ने कहा-पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहंकार और मूल प्रकृति जिन भगवान् के स्वरूप हैं, मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ, ।५३। जो परमात्म देव अत्यन्त शुद्ध, सूक्ष्म, सर्वव्याप्त तथा प्रधान से भी परे हैं और वह पुरुष जिनका स्वरूप है, मैं उन गुणभोक्ता को नमस्कार करता हूँ ।५४। हे प्रभो ! पृथिव्यादि सब भूत और गन्धादि उनके गुण, बुद्धि आदि कारण एवं प्रधान और पुरुषसे भी परे सनातन पुरुष आपही हैं, मैं आप निखिल ब्रह्माण्ड नायकके ब्रह्मभूत स्वरूप की शरण में हूँ ।५५-५६। हे योगियों के लिए चिन्तन के योग्य ! हे सर्वात्मम् ! व्यापक और बढ़ने वाला होने से आपका जो रूप ब्रह्म कहा गया है, मैं उसी निर्विकार रूपको नमस्कार करता हूँ ।५७। हे नाथ आप सहस्र शिर, सहस्र नेत्र और सहस्र पद वाले परम् पुरुष हैं आप सर्वत्र व्याप्त हैं तथा संपूर्ण ब्रह्मांडको व्याप्त

करके दश अंगुल प्रमाण से स्थित रहते हैं।४८। भूत, भविष्यत् आदि आपही हैं और विराट्, सम्राट् एव अधिपुरुष आदि की उत्पत्ति भी आपसे हुई है।५६।

अत्यरिच्यत सोऽधश्च तिर्यगर्ध्वं च वै भुवः।
त्वत्तो विश्वमिदं जातं त्वत्तो भूतभविष्यती ॥६०॥
त्वद्रूपधारिणश्चान्तर्भूत सर्वमिद जगत्।
त्वत्तो यज्ञः सर्वहुपृय पशुर्द्विधा ॥६१॥
त्वत्वः ऋचोऽथ सामानि त्वत्तश्छन्दांसि जज्ञिरे।
त्वत्तो यजूंष्यजायष्त त्वत्तोऽश्वाश्चकतो दतः ॥६२॥
गावस्त्वत्तः समुद्भतास्त्वत्तोऽजा अवयो मृगाः।
त्वन्मुखाद्ब्रह्मणास्त्त्तो बाहोः क्षत्रमजायत ॥६३॥
वैश्यास्तवीरुजाः शुद्रास्तव पद्भ्यां समुन्दताः।
यक्षणाः सूर्योऽनिल प्राणाच्चन्द्रमा मनसन्तव ॥६४॥
प्राणऽन्तःसुषिराज्जातो मुखादग्निरजायत।
नाभितो गगनं द्यौश्च शिरसः समवर्तत।
दिशः श्रोत्रात्क्षितिः पद्भ्यांत्वत्तः सवमभूदिदम् ॥६५॥
न्यग्रोधः सुमहानल्पे यथा बीजे व्यवस्थितः।
संयमे विश्वमखिलं बीजभूते यथा त्वयि ॥६६॥

आप सभी दिशाओं में प्रवृद्ध हैं, यह संपूर्ण विश्व आपसे ही प्रकट हुआ है, तथा भूत-भविष्यत् भी आपसे हुए हैं। यह सम्पूर्ण विश्व आपके स्वरूप भूत ब्रह्माण्ड में है, सभी पुरोडाशों वाला यज्ञ पृषदाज्य और दो प्रकार के पशु यह सब आप से ही हुए हैं।६१। आपसे ऋक् यजुः साम और गायत्री आदि छदों की उत्पत्ति हुई है तथा आपसे ही अश्व और दाँत वाले भैंसा आदि जीव हुए हैं।६२। आपसे ही गौ, बकरी भेड़, मृग हुए हैं और आपके ही मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुए हैं। आपकी भुजाओं से क्षत्रिय, जाँघों से वैश्य और चरणों से शूद्रों की उत्पत्ति हुई है आपके ही नेत्रों से सूर्य, प्राण से वायु, मन से चन्द्रमा नासिरन्ध्र से प्राण, मुख से अग्नि, नाभि से आकाश मस्तक से स्वर्ग, श्रोत्र से

दिशाऐं तथा चरणों से पृथ्वी आदि की उत्पत्ति हुई है, इस प्रकार यह सम्पूर्ण विश्व ही आपसे उत्पन्न हुआ है ।६३-६५। जैसे छोटे से बीज में विशाल वट वृक्ष रहता है, वैसे ही आप बीज रूप में यह विश्व प्रलय काल में लीन रहता है ।६६।

बीजादंकुरसम्भूतो न्यग्रोधस्तु समुत्थितः ।
विस्तार च यथा याति त्वत्तः सृष्टौ तथा जगत् ।।६७।।
यथा हि कदली नान्या त्वक्पत्रादपि दृश्यते ।
एवं विश्वस्य नान्यस्त्व त्वत्स्थायीश्वर दृश्यते ।।६८।।
ह्लादिनी सन्धिनी संवित्वय्येका सर्वसंस्थितौ ।
ह्लादतापकापी मिश्रा त्वयि नो गुणवर्जिते ।।६९।।
पृथग्भूतैकभभूताय भूतभूताय ते नमः ।
प्रभूतभूतभूताय तुभ्यं भूतात्मने नमः ।।७०।।
व्यक्तं प्रधानपुरुषौ विराट् सम्राट् स्वराट् तथा ।
विभाव्यतेऽन्तःकरणे पुरुषेष्वक्षयो भवान् ।।७१।।
सर्वस्मिन्सर्वभूतस्त्वं सर्वः सर्वःसर्वस्वरूपपधृक् ।
सर्वंत्वत्तस्ततश्च त्वं नमः सर्वात्मनेऽस्तुते ।।७२।।
सर्वात्मकोऽसि सर्वेश सर्वभूतस्थितो यतः ।
कथयामि ततः किं ते सर्वं वेत्सि हृदि स्थितम् ।।७३।।

हे प्रभो ! जैसे बीज से अंकुर हुआ वट बृक्ष वृद्धि को प्राप्त होकर बहुत विस्तार वाला हो जाता है, वैसे ही यह विश्व सृष्टि काल में आप से उत्पन्न होकर अत्यन्त विस्तीर्ण हो जाता है ।६७। हे प्रभो ! कदली क्षुप छिलके और पत्ते से पृथक् प्रतीत कहीं होता, वैसे ही यह विश्व से पृथक् नहीं देखा जाता, क्योंकि वह आप में ही स्थित है ।३६। आपसर्वाश्रयमें ह्लादिनी और सन्धिनी विद्या अभिन्न रूपसे निवास करती हैं। आप निर्गुण हैं इसलिये कोई भी आह्लादिनी, संप्तत करने वाली या दोनों गुणों से मिलती हुई संवित् आपमें नहीं रहती ।६९। आपही पृथक् रूप तथा एक रूप भी हैं आप ही सूक्ष्म भूत तथा अनेक जीव हैं, आपही सब

भूतों के अन्तर में निवास करते हैं, ऐसे आपको मैं नमस्कार करता हूँ ।७०। आप ही अन्तःकरण में महत्तत्व, प्रधान, पुरुष, विराट्, सम्राट् और स्वराट आदि रूपों के ध्यान किये जाते हैं तथा पुरुष में आप नित्य एवं क्षय रहित है ।७१। सब में आप ही सर्व भूत हैं, सब रूपों के धारक होने से आप ही सब कुछ हैं, सम्पूर्ण पदार्थ आपसे ही हुए हैं, इसलिये आप सर्वात्मा को नमस्कार करता हूँ ।७२। हे सर्वेश्वर ! हे सर्वात्मक ! आप सब भूतों में व्याप्त हैं, मैं आपसे क्या निवेदन करूँ, क्योंकि आप तो घट-घट की जानते हैं ।।७३।

सर्वात्मन्सवभूतेश सर्वसत्वसमुद्भव ।
सर्वभूतो भवान्वेत्ति सर्वसत्वमनोरथम् ।।७४।।
यो मे मनोरथोनाथ सफलः स त्वया कृतः ।
तपश्छ तप्तं सफलं यद्दृष्टोऽसि जगत्पते ।।७५।।
तपसस्तत्फलं प्राप्तं यद्दृष्टोऽहं त्वया ध्रुव ।
मद्दर्शनं हि विफल राजपुत्र न जायते ।।७६।।
वरं वरय तस्मात्वं यथाभिमतमात्मनः ।
सर्वं सम्पद्यते पुंसां मयि दृष्टिपथं गते ।।७७।।
भगवन्भूतभव्येश सर्वस्यास्ते भवान् हृदि ।
किमज्ञातं तव ब्रह्मन्मनसा यन्मयेक्षितम् ।।७८।।
तथापि तुभ्यं देवेश कथयिष्यामि यन्मया ।
प्रार्थ्यते दुर्विनीतेन हृदयेनातिदुर्लभम् ।।७९।।
किं वा सर्वजगत्स्रष्टः प्रसन्ने त्वयि दुर्लभम् ।
त्वत्प्रसादफलं भुङ्क्ते त्रैलोक्यं मघवानपि ।।८०।।
नैतत्ताजासनं योग्यमजातस्य ममोदरात् ।
इतिगर्वादवोचन्मां सपत्नी मातुरुच्चकैः ।।८१।।
आधारभूतं जगतः सर्वेषामुत्तमोत्तमम् ।
प्रार्थयामि प्रभोस्थानं त्वत्प्रसादादतोऽव्ययम् ।।८२।।

हे भूतेश्वर ! हे सर्वात्मन् ! हे सर्व भूतों के आदि स्थान, आप सर्व भूत रूप में स्थित होने के कारण, सभी के मनोरथों के जानने वाले हैं ।७४। मेरी जो इच्छा थी, वह तो आपने पूर्ण कर दी और मेरा तप भी

हे भूतेश्वर ! हे सर्वात्मन् ! हे सर्व भूतों के आदि स्थान, आप सर्व सफल हो गया क्योंकि मैंने आपका साक्षात् दर्शन प्राप्तकर लिया है ।७४। श्री भगवान् ने कहा-हे ध्रुव ! तुझे मेरा दर्शन मिल गया, इससे तेरा तप तो सफल हो गया, परन्तु मेरा साक्षात्कार भी तो कभी फल-रहित नहीं होता ।७६। इसलिए अब तू अपना इच्छित वर माँग, क्योंकि मेरा दर्शन प्राप्त करने वाले को अप्राप्य कुछ भी नहीं रहता ।७७' ध्रुव ने कहा—हे भगवान् ! आप सब के अन्तःकरण में स्थित है, इसलिए मन की कोई भी इच्छा आप से छिपी हुई नहीं रह सकती ।७८। फिर भी हे प्रभो ! मैं जिस अत्यन्त दुर्लभ वस्तु की अभिलाषा करता हूँ, उसे आपकी आज्ञानुसार निवेदन करूँगा ।७९। हे विश्व रचयिता प्रभो ! आप प्रसन्न होगये हैं तो अब क्या दुर्लभ रह गया है । देवराज इन्द्र भी आपकी कृपा दृष्टि प्राप्त करके ही तीनों लोकों का भोग करते हैं ।८०। हे प्रभो ! मेरे विमाता ने अत्यन्त अहंकार पूर्वक कहा था कि जिसने मेरे उदर से जन्म नहीं लिया, वह इस राज्य सिंहासन के योग्य नहीं हो सकता ।८१। इस लिए, मैं आपकी कृपा से उस सर्वश्रेष्ठ अव्यय स्थान की इच्छा करता हूँ जो सम्पूर्ण जगत् का आश्रयभूत हो ।८२।

यत्त्वया प्रार्थ्यते स्थानमेतत्प्राप्स्यति वै भवान् ।
त्वयाहं तोषितः पूर्वमन्यजन्मनि बालक ॥८३॥
त्वमासीर्ब्राह्मणः पूर्वं मय्येकाग्रमतिः सदा ।
मातापित्रोश्च शुश्रूषुर्निजधर्मानुपालकः ॥८४॥
कालेन गच्छता मित्रं राजपुत्रस्तवाभवत् ।
योवनेऽखिलभोगाढ्यो दर्शनीयोज्ज्वलाकृतिः ॥८५॥
तत्सङ्गात्तस्य तामृद्धिमवलोक्यातिदुर्लभाम् ।
भवेय राजपुत्रोऽहमिति वाच्छा त्वया कृता ॥८६॥
ततो यथाभिलषिता प्राप्ता ते राजपुत्रता ।
उत्तानपादस्य गृहे जातोऽसि ध्रुव दुर्लभे ॥८७॥
अन्येषां दुर्लभं स्थानं कुले स्वायम्भुवस्य यत् ।
तस्यैतदपरं बाल येनाहं परितोषितः ॥८८॥

मामाराध्य नरो मुक्तिमवाप्नोत्यविलम्बिताम् ।
मय्यर्पितमना बाल किमु स्वर्गादिकं पदम् ॥८९॥

श्री भगवान् ने कहा–हे बालक ! तू ने अपने पूर्व जन्म में भी मुझे प्रसन्न किया था, इसलिए तेरे इच्छित स्थान की तुझे अवश्य प्राप्ति होगी ।८३। उस जन्म में तू ब्राह्मण कुल में उत्पन्न, माता-पिता की सेवा करने वाला, स्वधर्म परायण और मुझ में तन्मय भाव वाला था ।८४। कालान्तर में तेरी मित्रता एक राजकुमार से होगई, जो कि अपनी तरुणावस्था में सर्व भोग सम्पन्न और रूप लावण्य में भी देखने योग्य था ।८५। उसकी संगति में रहते हुए उसके दुर्लभ वैभव को देखकर राजपुत्र होने की तेरी भी इच्छा हुई ।८६। इसीलिए तुझे इस जन्म में राजपुत्रत्व की प्राप्ति हुई है और जिन स्वायंभुव मनु के कुल में किसी का जन्म लेना दुर्लभ है, उन्हीं के पुत्र उत्तानपाद के यहाँ तू उत्पन्न हुआ है, परन्तु हे बालक ! जिसने मुझे प्रसन्न किया है, उसके लिये तो यह स्थान नगण्य ही है ।७७-८८। मेरे आराधना से मोक्ष भी तुरन्त मिल जाता है, तो जिस का चित्त निरन्तर ही मुझ से तन्मय हुआ है, उसके लिये स्वर्गादि लोक तो तुच्छ ही हैं ।८९।

त्रैलोक्यादधिके स्थाने सर्वताराग्रहाश्रयः ।
भविष्यति न सन्देहो मत्प्रसादाद्भवान्ध्रुव ॥९०॥
सूर्यात्सोमात्तथा भौमात्सौमपुत्राद्बृहस्पतेः ।
सितार्कतनयादीनां सर्वक्षाणां तथा ध्रुव ॥९१॥
सप्तर्षीणामशेषाणां ये च वैमानिकाः सुराः ।
सर्वेषामुपरि स्थानं तव दत्तं मया ध्रुव ॥९२॥
केचिच्चतुर्युगं यावत्केचिन्मन्वन्तरं सुराः ।
तिष्ठन्ति भवतो दत्ता मया वै कल्पसंस्थितिः ॥९३॥
सुनीतिरपि ते माता त्वदासन्नातिनिर्मला ।
विमाने तारका भूत्वा तावत्काल निवत्स्यति ॥९४॥
ये च त्वां मानवाः प्रातः सायं च सुसमाहिताः ।
कीर्त्तयिष्यन्ति तेषां च महत्पुण्यं भविष्यति ॥९५॥

हे ध्रुव ! तू त्रिलोकी में सर्वोच्च स्थान को निश्चय ही प्राप्त करेगा। और सब ग्रहों तथा नक्षत्रों का आश्रय रूप होगा।९०। हे ध्रुव ! मैं तुझे वह ध्रुव स्थान प्रदान करता हूँ जो सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, और शनि ग्रहों नक्षत्रों, सप्तर्षियों और विमान में विचरण करने वाले सब देवताओं से भी उच्च है।९१-९२। कोई देवता चार युग तक और कोई एक मन्वन्तर तक ही स्थित रहते हैं परन्तु मैं एक कल्प तक के लिए स्थित करता हूँ।९३। तेरी माता सुनीति भी अत्यन्त उज्ज्वल तारिका रूप से एक विमान में स्थित रह कर उतने ही समय तक तेरे पास रहेगी।९४। जो मनुष्य तेरे इस चरित्र का प्रातः सायं कीर्तन करेंगे, उन्हें महान् पुण्य-फल की प्राप्ति होगी।९५।

एवं पूर्वं जगन्नाथाद्देवदेवाज्जनार्दनात् ।
वरं प्राप्य ध्रुवः स्थानमध्यास्ते स महामते ॥९६॥
स्वयं शुश्रूषणाद्धर्म्यान्मातापित्रोश्च वै तथा ।
द्वादशाक्षरमाहात्म्यत्तपसश्च प्रभावतः ॥९७॥
तस्याभिमानमृद्धिं च महिमानं निरीक्ष्य हि ।
देवासुराणामाचार्य श्लोकमत्रोशन जगौ ॥९८॥
अहोऽस्य तपसो वीर्यमहोऽस्य तपसः फलम् ।
यदेनं पुरतः कृत्वा ध्रुव सप्तर्षयः स्थिताः ॥९९॥
ध्रुवस्य जननी चेय सुनीतिनर्मि सूनृता ।
अस्याश्च महिमानं कः शक्तो वर्णयितुं भुवि ॥१००॥
त्रैलोक्याश्रयतां प्राप्तं परं स्थानं स्थिरायति ।
स्थान प्राप्ता परं धृत्वा या कुक्षिविवरे ध्रुवम् ।१०१॥
यश्चैतत्कोर्तयेन्नित्यं ध्रुवस्यारोहणं दिवि ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गलोके महीयते ॥१०२॥
स्थानभ्रंशं न चाप्नोति दिवि वा यदि वा भुवि ।
सर्व कल्याणसंयुक्तो दीर्घकाल स जीवति ॥१०३॥

श्री पराशरजी ने कहा-हे महामते ! देवदेव जनार्दन भगवान् से ऐसा वर प्राप्त कर ध्रुव उस अत्यन्त श्रेष्ठ स्थान में प्रतिष्ठित हो गये ।६६। धर्म परायणता पूर्वक अपने माता-पिताकी सेवा द्वादशाक्षर मंत्रके महात्म्य और तपस्या के प्रभाव से उनके मान वैभव और प्रभाव को बढ़ता हुआ देखकर देवताओं और असुरों के आचार्य श्री शुक्राचार्य ने उनकी प्रशस्ति में कहा है कि अहा, इस ध्रुव की तपस्या का कैसा प्रभाव और कितना अद्भुत फल है, जिससे सप्तर्षिगण इस ध्रुव को अग्रगण्य करके स्थित है ।६८-६६। इस की माता सुनीति भी सत्य और हितकारी वचन कहने वाली हुई है, उसकी महिमा के वर्णन की सामर्थ्य किस में है ? जिसने ध्रुव को अपने उदर में धारण करके ही तीनों लोकों का आश्रय भूत सर्वश्रेष्ठ स्थान को पा लिया, वह स्थान चिरस्थायी रहेगा ।१००-१०१। ध्रुव के इस दिव्य लोक प्राप्ति वाले प्रसंग का कीर्तन करने वाला मनुष्य सभी पापोंसे छूट कर स्वर्ग में पूजा जाता है ।१०२। फिर वह स्वर्ग अथवा पृथ्वी पर कहीं भी रहे अपने स्थान से नहीं गिरता तथा सभी मंगलों से सम्पन्न रहता हुआ दीर्घकाल तक जीवन धारण करता है ।१०३।

तेरहवाँ अध्याय

ध्रुवाच्छिष्टिं च भव्यं च भव्याच्छम्भुर्व्यजायत ।
शिष्टेराधत्त सुच्छाया पञ्चपुत्रानकल्मषान् ।। १ ।।
रिपुं रिपुञ्जयं विप्रं वृकलं वृकतेजसम् ।
रिपोराधत्त बृहती चाक्षुषं सर्वतेजसम् ।। २ ।।
अजीजनत्पुष्करिण्यां वारुण्यां चाक्षुषो मनुम् ।
प्रजापतेरात्मजायां वीरणस्य महात्मनः ।। ३ ।।
मनोरजायन्त दश नड्वलायां महौजसः ।
कन्यायां तपतां श्रेष्ठ वैराजस्य प्रजापतेः ।। ४ ।।
कुरुः पुरुः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्य वाञ्छुचिः ।
आग्निष्टोमोऽतिराश्च सुद्युम्नश्चेति ते नव ।। ५ ।।

अभिमन्युश्च दशमो नड्वलायां महौजसः ।
कुरोरजनयत्पुत्रान् षडाग्नेयी महाप्रभान् ॥ ६ ॥
अङ्गं सुमनसं ख्याति क्रतुमंगिरसं शिविम् ।
अंगात्सुनीथपत्यं वै वेनमेकमजायत ॥ ७ ॥

श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! ध्रुव से शिष्टि और भव्य का जन्म हुआ भव्य का पुत्र शम्भु हुआ और शिष्टि की भार्या ने रिपु, रिपुञ्जय, विप्र वृकल और वृकतेजा नामक पाँच पुत्रों को जन्म दिया। उनमें से रिपु ने अपनी भार्या बृहती नाम की भार्या से महातेजस्वी चक्षुष नामक पुत्र उत्पन्न किया।१-२। चाक्षुष का विवाह वरुण कुलोत्पन्न महात्मा वीरण प्रजापति की पुत्री से हुआ उनसे मनु की उत्पत्ति हुई।३। तपस्वीवर मनु ने वैराज प्रजापति की पुत्री नड्वाला से दश अत्यन्त तेजस्वी पुत्रों को उत्पन्न किया।४। उनके कुरु, पुरु, शतद्युम्न, तपस्वी, सत्यवान्, शुचि, अग्निष्टोम, अतिरात्र, सुद्युम्न, एवं अभिमन्यु नाम हुए। कुरु ने अपनी भार्या आग्नेयी से अङ्ग, सुमना, ख्याति, क्रतु, अंगिरा, और शिव नामक छः अत्यन्त प्रतापी पुत्र उत्पन्न किये। अंग ने सुनीथा के गर्भ से वेन नामक पुत्र उत्पन्न किया।५—७।

प्रजार्थमृषयस्तस्य ममन्थुर्दक्षिणं करम् ।
वेनस्य पाणौ मथिते सम्बभूव महामुने ॥ ८ ॥
वैन्यो नाम महीपालो यः पृथुः परिकीर्त्तितः ।
येन दुग्धा मही पूर्वं प्रजानां हितकारणात् ॥ ६ ॥
किमर्थं मथितः पाणिर्वेनस्य परमर्षिभिः ।
यत्र जज्ञे महावीर्यः स पृथुर्मुनिसत्तम ॥१०॥
सुनीथा नाम या कन्यामृत्योः प्रथमतोऽभवत् ।
अंगस्य भार्या सा दत्ता तस्यां वेनो व्यजायत ॥११॥
स मातामहदोषेण तेन मृत्योः सुतात्मजः ॥११॥
निसर्गादेष मैत्रेय दुष्ट एव व्यजायत ॥१२॥
अभिषिक्तो यदा राज्ये स वेनः परमर्षिभिः ।
घोषयामास स तदा पृथिव्यां पृथिवीपतिः ॥१३॥

न यष्टव्य न दातव्यं न होतव्यं कथश्चत ।
भोक्ता यज्ञस्य करत्वन्या ह्यहं यज्ञपतिः प्रभुः । १४।।
ततस्तमृषयः पूर्वं सम्पूज्य पृथिवीपतिम् ।
ऊचुः सामकाल वाक्यं मैत्रेय समुपस्थिताः ।।१५।।

उसी वेन के दक्षिण हाथ का ऋषियों ने सन्तान के निमित्त मन्थन किया था, जिससे वैन्य नामक एक पुत्र की उत्पत्ति हुई, यही राजा पृथु के नाम से प्रसिद्ध हुए, जिन्होंने प्रजा-पालन के निमित्त पृथ्वी का दोहन किया था ।८-९। श्री मैत्रेयजी ने कहा–हे मुनिसत्तम ! उन महर्षियों ने वेन के हाथ का मन्थन क्यों किया था तथा पराक्रमी पृथु का जन्म कैसे हुआ ? ।१०। श्री पराशरजी ने कहा-मृत्यु की सुनीथा नाम की प्रथम पुत्री अंग को व्याही गई थी । उसी से राजा वेन उत्पन्न हुए थे ।११। हे मैत्रेय जी ! मृत्युसुता का वह पुत्र अपने नाना के स्वभाव-दोष के कारण ही दूषित स्वभाव का हुआ ।१२। जब वह वेन राजपद पर अभिषिक्त हुआ था तभी उसने विश्व भर में यह घोषित कर दिया था कि मैं भगवान हूँ, यज्ञ पुरुष और यज्ञ का भोक्ता एवं स्वामी मैं ही हूँ, इसलिये अब कभी कोई भी मनुष्य दान और यज्ञादि न करे ।१३-१४। हे मैत्रेयजी ! उस समय वे महर्षिगण उस राजा वेन के समक्ष उपस्थित हुए और उन्होंने उसकी प्रशंसा करके सान्त्वनामयी मीठीवाणी से कहा ।१५।

भो भो राजन् शृणुष्व त्वं यद्वदाम महीपते ।
राज्यदेहोपकाराय प्रजानां च हित परम् ।।१६।।
दीर्घसत्रेण देवेशं सर्वयज्ञेश्वरं हरिम् ।
पूजयिष्याम भद्रं ते तस्यांशस्ते भविष्यति ।।१७।।
यज्ञेन यज्ञपुरुषो विष्णुः सम्प्रीणितो नृप ।
अस्माभिर्भवतः कामान्सर्वानेव प्रदास्यति ।।१८।।
यज्ञैर्यज्ञेश्वरो येषां राष्ट्रे सम्पूज्यते हरिः ।
तेषां सर्वेप्सितावाप्तिं ददाति नृप भूभृताम् ।।१९।।
मत्तः कोऽभ्यधिकोऽन्योऽस्तिकश्चराध्यो ममापरः ।
कोऽयं हरिरिति ख्यातो यो नो यज्ञेश्वरो मतः ।।२०।।

ब्रह्मा जनार्दनः शम्भुरिद्रो वायुर्यमो रविः ।
हुतभुग्वरुणो धाता पूषा भूमिर्निशाकरः ॥२१॥
एते चान्ये च ये देवाः शापानुग्रहकारिणः ।
नृपस्यंते शरीरस्थाः सर्वदेवमयो नृपः ॥२२॥

ऋषियों ने कहा-हे राजन् ! हे महीपते ! हम तुम्हारे राज्य, प्रजा तथा शरीर के हितार्थ जो कहते हैं, उसे श्रवण करो ।१६। तुम्हारा कल्याण हो, हम यज्ञेश्वर देवदेव भगवान् विष्णु का पूजन करेंगे, उसके फल के छठे अंश का भाग तुम्हें भी प्राप्त होगा ।१७। हे राजन् ! यज्ञों के द्वारा भगवान् यज्ञ पुरुष सन्तुष्ट होकर हमारे साथ ही तुम्हारी अभिलाषाएँ पूरी करेंगे ।१८। जिन राजाओं के राज्यकाल में यज्ञेश्वर भगवान् का यज्ञानुष्ठानों द्वारा पूजन होता है, उनकी सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं ।१९। यह सुन कर वेन ने कहा-मुझसे अधिक ऐसा कौन है जो मेरे द्वारा पूजा के योग्य हो । तुम जिसे यज्ञेश्वर एवं भगवान् कहते हो, वह कौन है ? ।२०। ब्रह्मा, विष्णु,शम्भु, इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, धाता, पूषा, पृथ्वी और चन्द्रमा अथवा अन्य जो भी देवता शाप, या वर देने में समर्थ हैं, उन सभी का निवास राजा में होने से राजा ही सर्व देवमय होता है ।२१—२२।

एवं ज्ञात्वा मय ज्ञप्तं यद्यथा क्रियतां तथा ।
न दतव्यं न यष्टव्य न होतव्यं च भो द्विजा ॥२३॥
भर्तृशुश्रूषणं धर्मो यथा स्त्रोणां परो मतः ।
ममाज्ञापलन धर्मो भवतां च तथा द्विजाः ॥२४॥
देह्यनुज्ञां महाराज मा धर्मो यातु संक्षयम् ।
हविषाँ परिणामोऽयं यदेतदखिल जगत् ॥२५॥
इति विज्ञाप्यमानोऽपि स वेन परमर्षिभिः ।
यदा ददाति नानज्ञां प्रोक्तःप्रोक्तः पुनः पुनः ॥२६॥
ततस्ते मुनयः सर्वे कोपामर्षसमन्विताः ।
हन्यतां हन्यतां पाप इत्युचुस्ते परस्परम् ॥२७॥
यो यज्ञपुरुष विष्णुमनादिनिधनं प्रभुम् ।
विनिन्दत्यधर्माचारो न स योग्यो भुवः पतिः ॥२८॥

इत्युक्त्वा मन्त्रपूतैस्तैः कुशैर्मुनिगणा नृपम् ।
निजघ्नुर्निहतं पूर्वं भगवन्निन्दनादिना ॥२९॥

हे द्विजगण ! यह जानकर मेरे आदेश का पालन करो, किसी को भी दान, यज्ञ, हवनादि नहीं करना चाहिये। हे ब्राह्मणो ! जैसे स्त्रीका परम धर्म पतिसेवा है, वैसे ही आपका परमधर्म मेरी आज्ञा का पालन है।२३-२४। ऋषियों ने कहा-हे राजन् ! आपका आदेश ऐसा होना चाहिए जिससे धर्म का नाश न हो देखिये, यह सम्पूर्ण विश्व हवि से ही उत्पन्न हुआ है।२५। श्री पराशरजी ने कहा-जब महर्षियों के बराबर समझाने पर भी वेन न माना तो वे अत्यन्त क्रोध पूर्वक परस्पर में कहने लगे कि इस परमात्मा को मार डालो, मार डालो।२६-२७। जो अनादि एवं अनन्त यज्ञेश्वर विष्णु का निन्दक है, वह आचरणहीन पुरुष राजा होने के योग्य नहीं है।२८। यह कह कर उन महर्षियों ने प्रभु-निन्दा करके पहले से ही मृत हुए उस राजा का मन्त्रपूत कुशों के आघात से वध कर दिया।२९।

यतश्च मुनयो रेणुं ददृशुः सर्वतो द्विज ।
किमेतदिति चासन्नान्पप्रच्छुस्ते जनांस्तदा ॥३०॥
आख्यातं च जनैस्तेषां चोरीभूतैरराजके ।
राष्ट्रे तु लोकैरारब्धं परस्वादानमातुरैः ॥३१॥
तेषामुदीर्णवेगानां चोराणां मुनिसत्तमाः ।
सुमहान् दृश्यते रेणुः परिवित्तापहारिणाम् ॥३२॥
ततः सम्मन्त्र्य ते सर्वे मुनयस्तस्य भूभृतः ।
ममन्थुरूरुं पुत्रार्थमनपत्यस्य यत्नतः ॥३३॥
मथ्यमानात्समुत्तस्थौ तस्योरोः पुरुषः किल ।
दग्धस्थूणाप्रतीकाशःखर्वटास्योऽतिह्रस्वकः ॥३४॥
किं करोमीति तान्सर्वान्स विप्रानाह चातुरः ।
निषीदेति तमूचुस्ते निषादस्तेन सोऽभवत् ॥३५॥
ततस्तत्सम्भवा जाता विन्ध्यशैलनिवासिनः ।
निषादा मुनिशार्दूल पापकर्मोपलक्षणाः ॥३६॥

तेन द्वारेण तत्पापं निष्क्रान्तं तस्य भूपतेः ।
निषादास्ते ततो जाता वेनकल्मषनाशनाः ॥३७॥

हे ब्रह्मन् ! फिर महर्षियों ने सर्वत्र बड़ी धूल उड़ती हुई देख कर अपने पास खड़े हुए लोगों से पूछा कि यह क्या है ? तब उन्होंने उत्तर दिया, कि इस समय राष्ट्र राजा रहित हो गया है, इसलिए दीन दुःखी मनुष्यों ने धनवानों को लूटना आरम्भ कर दिया है ।३०-३१। हे मुनिवरो ! उन अत्यन्त वेगवान लुटेरों के उत्पात से ही यह धूल उड़ रही है ।३२। तब उन महर्षियों ने परस्पर में परामर्श करके उस पुत्रहीन राजा वेन की जाँघ को पुत्र प्राप्ति के लिए मथा ।३३। उसके मथे जाने से उससे जले हुए ठूँठ के समान काले वर्ण का, अत्यन्त नाटा और छोटे मुख का एक पुरुष प्रकट हुआ ।३४। उसने अत्यन्त आतुरता पूर्वक उन ऋषियों से पूछा कि मैं क्या करूँ ? तब उन ऋषियों ने 'निषीद' अर्थात् बैठजा कहा, इसलिए वह आगे चल कर निषाद कहा गया ।३५। इसलिए हे मुने ! उसके वंशज विन्ध्याचल पर रहने वाले पाप कर्मों में रत निषाद हुए ।३६। उसी निषाद रूप द्वार के मार्ग से राजा वेन का सभी पाप निकल गया, इस प्रकार निषादगण राजा वेन के पापों नो नष्ट करने वाले हो गए ।३७।

तस्यैव दक्षिणं हस्तं ममन्थुस्ते ततो द्विजाः ॥३८॥
मथ्यमाने च तत्राभुत्पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् ।
दीप्यमानः स्ववपुषा साक्षादग्निरिव ज्वलन् ॥३९।
आद्यमाजगवं नाम खात्पपात ततो धनुः ।
शराश्च दिव्या नभसः कवच च पपात ह ॥४०॥
तस्मिन जाते तु भूतानि सम्प्रहृष्टानि सर्वशः ।
सत्पुत्रेणैव जातेन वेनोऽपि त्रिदिव ययौ ॥४१॥
पुन्नाम्नो नरकात् त्रातः सुतेन सुमहात्मना ।
तं समुद्राश्च नद्यश्च रत्नान्यादाय सर्वशः ॥४२॥
तोयानि चाभिषेकार्थं सर्वाण्येवोपतस्थिरे ।
पितामहश्च भगवान्देवैरांगिरसैः सहः ॥४३॥

स्थावराणि च भूतानि जंगमानि च सर्वशः ।
समागम्य तदा वैन्यमभ्यषिश्चन्नराधिपम् ॥४४॥

फिर उन ऋषियों ने वेन के दाँए हाथ को मथा, जिससे वेन पुत्र पृथु उत्पन्न हुए जिसका देह प्रज्वलित अग्नि के समान दैदीप्यमान् था ३८-३९। इसी अवसर पर आजगव नामक शिव धनुष दिव्य बाण और कवच आकाश से गिरने लगे ।४०। उनके प्रकट होने से सब प्राणियों को अत्यन्त प्रसन्नता हुई तथा उन सत्पुत्र की उत्पत्ति से वेन को भी स्वर्ग प्राप्त हुआ ।४१। इस प्रकार महात्मा पुत्र के जन्म लेने से वह नरक में जाने से बच गया । उन राजा पृथु का अभिषेक करने के लिए सब समुद्र और नदियाँ मूर्तिमान होकर सब प्रकार के रत्न और पवित्र जल लेकर वहाँ आये तब आँगिरस देवताओं के सहित सभी प्राणियों ने राजा वेन के राज्याभिषेक महोत्सव में भाग लिया ।४२—४४।

हस्ते तु दक्षिणे चक्रं दृष्ट्वा तस्य पितामहः ।
विष्णोरंशं पृथुं मत्वा परितोषं परं ययौ ॥४५॥
विष्णुचक्रं करे चिह्नं सर्वेषां चक्रवर्तिनाम् ।
भवत्यव्याहतो यस्य प्रभावस्त्रिदशैरपि ॥४६॥
महता राजराज्येन पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् ।
सोऽभिषिक्तो महातेजा विधिवद्धर्मकोविदैः ॥४७॥
पित्रापरञ्जितास्तस्य प्रजास्तेनानुरञ्जिताः ।
अनुरागात्ततस्तस्य नाम राजेत्यजायत ॥४८॥
आपस्तस्तम्भिरे चास्य समुद्रमभियास्यतः ।
पर्वताश्च ददुर्मार्गं ध्वजभंगश्च नाभवत् ॥४९॥
अकृष्टपच्या पृथिवी सिद्ध्यन्त्यन्नानि चिन्तया ।
सर्वकामदुघा गावः पुटके पुटके मधु ॥५०॥

उनके दाँए हाथको चक्रांति देखकर उन्हें भगवान् विष्णु, अंश समझते हुए ब्रह्माजी अत्यन्त प्रसन्नता को प्राप्त हुए ।४५। भगवान् के चक्र का यह चिह्न सभी राजाओं के हाथ में हड़ा होता है जिसके प्रभावको कुँठित

करना देवताओं के भी वश का नहीं है ।४६। इस प्रकार अत्यन्त तेजस्वी एवं प्रतापी वेनु पुत्र धर्मवान् व्यक्तियों द्वारा विधि पूर्वक राजाधिराजपद पर अभिषिक्त हुए ।४७। उनके पिता ने जिस प्रजा को अप्रसन्न किया था, उसी प्रजा को उन्होंने प्रसन्न किया, इस प्रकार प्रजा को प्रसन्न करने के कारण ही वह वास्तविक रूप से राजा हुए ।४८। उनके समुद्र में चलने पर जल स्थिर हो जाता और पर्वत भी उन्हें मार्ग देते थे, इससे उनकी ध्वजा का कभी पतन नहीं हुआ ।४९। पृथ्वी जोते-बोये बिना ही धान्य उत्पन्न करती और पकाती थी, चिन्तन मात्रसे ही अन्न पक जाता था, गौएँ कामधेनु के समान सर्व कामप्रद थीं तथा पुटके-पुटके में मधु भरा रहता था ।५०।

तस्य वै जातमात्रस्य यज्ञे पैतामहे शुभे ।
सूतःसूत्यां समुत्पन्नःसौत्येऽहनि महामतिः ।।५१।।
तस्मिन्नेध महायज्ञे जज्ञे प्राज्ञोऽथ मागधः ।
प्रोक्तौ तदा मुनिवरैस्तावुभौ सूयमागधौ ।।५२।।
स्तूयतामेष नृपतिः पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् ।
कर्मैतदनुरूपं वां पात्रं स्तोत्रस्य चापरम् ।।५३।।
ततस्तावुचतुर्विप्रान्सर्वानेव कृताञ्जली ।
अद्य जातस्य नो कर्म ज्ञायतेऽस्य महीपतेः ।।५४।।
गुणा न चास्य ज्ञायन्ते न चास्य प्रथित यशः ।
स्तोत्रं किमाश्रयं त्वस्य कार्यं मस्माभिरुच्यताम् ।।५५।।
करिष्यत्येष यत्कर्म चक्रवर्ती महाबलः ।
गुणा भविष्या ये चास्य तैरयं स्तूयतां नृपः ।।५६।।

उन राजाने उत्पन्न होते ही जो पितामह यज्ञ किया, उससे सोमाभिषव के दिन ही अभिषव वाली भूमि से सूतजी उत्पन्न हुए ।५१। उसी यज्ञ में मागध भी प्रकट हुए । उन सूत और मागध से ऋषियों ने कहा इन अत्यन्त प्रतापी वेन पुत्र पृथु की तुम स्तुति करो । राजा स्तुति के योग्य हैं और तुम भी स्तुति करने में योग्य ही हो ।५२-५३। तब उन सूतमागध ने उन ऋषियों से करबद्ध निवेदन किया कि हम इनके कर्मों को

नहीं जानते, क्योंकि यह आज ही उत्पन्न हुए हैं। अभी न तो इनके गुण ही कोई जानता है और न इनके यश का ही कुछ ज्ञान है, तो किस प्रकार इनकी स्तुति की जाय ।५५। इस पर ऋषियोंने उनसे कहा कि इनके भावी कर्म और गुण का विचार करके ही इनकी स्तुति करो ।५६।

ततः स नृपतिस्तोषं तच्छ्रुत्वा परमं ययौ ।
सद्गुणः श्लाघ्यतामेति तस्माल्लभ्या गुणा मम ।।५७।।
तस्माद्यदद्य स्तोत्रेण गुणनिर्वर्णनं त्विमौ ।
करिष्येते करिष्यामि तदेवाहं समाहितः ।।५८।।
यदिमौ वर्जनीयं च किञ्चिदत्र वदिष्यतिः ।
तदहं वर्जयिष्यामीत्येवं चक्रे मतिं नृपः ।।५९।।
अथ तौ चक्रतुः स्तोत्रं पृथोर्वैन्यस्य धीमतः ।
भविष्यैः कर्मभिः सम्यक्सुस्वरौ सूतमागधौ ।।६०।।
सत्यवाग्दानशीलोऽयं सत्यसन्धो नरेश्वरः ।
ह्रीमान्मैत्रः क्षमाशीलो विक्रान्तो दुष्टशासनः ।।६१।।

श्रीपराशरजी ने कहा-ऋषियों और सूत-मागध के मध्य हुई वार्ता को सुनकर राजा भी सन्तुष्ट हुए, उन्होंने सोचा कि सद्गुणों से ही मनुष्य प्रशंसित होता है, इसलिए मुझे भी गुणों का उपार्जन करना उचित हैं। इसलिये वह स्तुति में मेरे जिन गुणों का वर्णन करेंगे मैं उसी के अनुरूप कार्य करूँगा। यदि यह त्यागने योग्य अवगुण बतायेंगे तो उनका त्याग कर दूंगा। राजा ने अपने चित्त में इस प्रकार का निश्चय किया ।५७-५९। फिर उन दोनों सूत-मागध ने अत्यन्त मेधावी राजा पृथु की उनके भावी कार्यों के आधार पर सस्वर स्तुति की ।६०। यह राजा सत्यवादी, मर्यादा रक्षक, लज्जावान्, दानवान्, क्षमावान्, सुहृदय, पराक्रमी- और दुष्टों के संहारक है ।६१।

धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च दयावान् प्रियभाषकः ।
मान्यान्मानयिता यज्वा ब्रह्मण्यः साधुसमतः ।।६२।।
समः शत्रौ च मित्रे च व्यवहारस्थितौ नृपः ।
सूतेनोक्तान् गुणानित्थं स तदा मागधेन च ।।६३।।

चकार हृदि तादृक् च कर्मणा कृतवानसौ ।
ततस्तु पृथिवीपालः पालयन्पृथिवीमिमाम् ॥६४॥
इयाज विविधैर्यज्ञैर्महद्भिर्भूरिदक्षिणैः ।
तं प्रजाः पृथिवीनाथमुपतस्थुः क्षुधार्दिताः ॥६५॥
ओषधीषु प्रणष्टासु तस्मिन्काले ह्यराजके ।
तमूचुस्ते नताः पृष्टास्तत्रागमनकारणम् ॥६६॥
अराजके नृपश्रेष्ट धरित्र्या सकलौषधीः ।
ग्रस्तास्ततः क्षयं यान्ति प्रजाः सर्वाः प्रजेश्वर ॥६७॥
त्वन्नो वृत्तिप्रदो धात्रा प्रजापालो निरूपितः ।
देहि नः क्षुत्परीतानां प्रजानां जीवनौषधीः ॥६८॥

यह धर्मज्ञ, कृतज्ञ, दयालु, मिष्टभाषी, मान योग्य पुरुषों को मान देने वाले, यज्ञ और ब्रह्म परायण, सन्तजरों में संमानित और शत्रु-मित्र से समान व्यवहार करने वाले हैं । सूत-मागध द्वारा वर्णित इन गुणों को अपने चित्त में धारण करके उन्होंने उसी के अनुसार कर्म किये और पृथ्वी के पालनपूर्वक महती दक्षिणा वाले अनेक बड़े यज्ञों को उन्होंने किया । जब अराजकता फैली थी तब औषधादि के न रहने से क्षुधातुर हुई प्रजा पृथ्वीपति पृथु की शरणमें उपस्थिति हुई और राजा के पूछने पर उसने अपनी उपस्थिति का कारण उन्हें बताया ।६२-६३। प्रजा ने कहा-हे प्रजा-पालक महाराज ! अराजकता फैलने पर सब औषधियाँ पृथ्वी में समा गईं, इससे आपकी प्रजा क्षीण हो रही है ।६७। विधाता ने आपको हमारा जीवनदाता तथा प्रजापति किया है, इसलिए भूख रूपी महारोग से संतप्त हुए हम प्रजाजनों को आप जीवन रूपी औषधि प्रदान कीजिए ।६८।

ततस्ते नृपतिर्दिव्यमादायाजगवं धनुः ।
शरांश्च दिव्यान्कुपितः सोऽन्वधावद्वसुन्धराम् ॥६९॥
ततो ननाश त्वरिता गौर्भूत्वा च वसुन्धरा ।
सा लोकान्ब्रह्मलोकादीन्सन्त्रासादगमन्मही ॥७०॥

यत्र यत्र ययौ देवी सा तदा भूतधारिणी ।
तत्र तत्र तु सा वैन्यं ददृशेऽभ्युद्यतायुधम् ॥७१॥
ततस्तं प्राह वसुधा पृथु पराक्रमम् ।
प्रवेपमाना तद्बाणपरित्राणपरायणा ॥७२॥
स्त्रीवधे त्वं महापापं किं नरेन्द्र न पश्यसि ।
येन मां हन्तुमत्यर्थं प्रकरोषि नृपोद्यमम् ॥७३॥

श्री पराशरजी बोले-हे ब्रह्मन् ! प्रजा की पुकार सुन कर राजा पृथु ने अपना आजगव नामक दिव्य धनुष और दिव्य बाण ग्रहण किया तथा क्रोध पूर्वक पृथ्वी को मारने के लिये चले ।६०। तब अत्यन्त भयभीत हुई पृथ्वी गौ का रूप धारण करके वहाँ से भागती हुई ब्रह्मलोक आदि लोकों में गई ।७०। सभी भूतों को धारण करने वाली वह धरित्री जहाँ-भी गई, वहीं वहीं उसने राजा पृथु को शर-संधान किये हुए अपने पीछे-पीछे आते हुए देखा।७१।तब उन अत्यन्त पराक्रम वाले राजा पृथुसे उनके बाण-प्रहार के भय से कम्पित हुई पृथ्वी ने इस प्रकार कहा ।७२। पृथ्वी बोली-हे राजेन्द्र ! तुम मेरी हत्या करने को ऐसे उतावले क्यों हो रहे हो ? क्या आप इसमें स्त्री-हत्या का पाप नहीं हैं ? ।७३।

एकस्मिन् यत्र निधनं प्रापिते दुष्टकारिणि ।
बहूनां भवति क्षेमं तस्य पुण्यप्रदो वधः ॥७४॥
प्रजानानुपकाराय यदि मां त्वं हनिष्यसि ।
आधारः कः प्रजानां ते नृपश्रेष्ठ भविष्यति ॥७५॥
त्वां हत्वा वसुधे बाणैर्मच्छासनपराङ्मुखीम् ।
आत्मयोबलेनेमा धारयिष्याम्यहं प्रजाः ॥७६॥
ततः प्रणम्य वसुधा तं भूयः प्राह पार्थिवम् ।
प्रवेपिताङ्गी परमं साध्वसं समुपागता ॥७७॥
उपायतः सुमारब्धाः सर्वे सिद्ध्यन्त्युपक्रमाः ।
तस्माद्ददाम्युपायं ते तं कुरुष्व यदीच्छसि ॥७८॥

समस्ता या मया जीर्णा नरनाथ महौषधीः ।
यदीच्छसि प्रदास्यामि ताः क्षीरपरिणामिनीः ॥७९॥
तस्मात्प्रजाहितार्थाय मम धर्मभृतां वर ।
तं तु वत्सं कुरुष्व त्वं क्षरेयं येन वत्सला ॥८०॥
समां च कुरु सर्वत्र येन क्षीरं समन्ततः ।
वरौषधीबीजभूत वीजं सर्वत्र भावये ॥८१॥

राजा पृथु ने कहा-जहाँ एक अनर्थ करने वाले के वध से अनेक व्यक्तियों को सुख प्राप्त होता हो, वहाँ उसका बध ही श्रेयस्कार है ।७४। पृथिवी ने कहा-हे राजन् ! यदि आप मुझे प्रजा के हितार्थ ही मारने की इच्छा करते हैं तो मेरे मारने पर आपकी उस प्रजा का आधार क्या होगा ? ।७५। पृथु बोले-मैं अपनी आज्ञा को न मानने वाली तुझे मार कर अपने योग्य-बल से स्वयं ही आधार बन कर प्रजा को धारण करूँगा ।७६। इस पर श्री पराशरजी ने कहा-यह सुनकर भय से अत्यन्त काँपती हुई उस पृथ्वी ने राजा को प्रणाम करके कहा ।७७। पृथ्वी बोली-हे राजन् ! जो कार्य योजना बद्ध होते हैं, इसलिए मैं आपको एक उपाय बताना चाहती हूँ, आप चाहें तो उसके अनुसार करें ।७८। हे नरेन्द्र ! मैंने जिन औषधियों को अपने लीन कर लिया है, यदि आप चाहें तो मैं उन्हें दूध के रूप में पुनः दे सकती हूँ ।७९। इसलिये हे धर्मात्माओं में श्रेष्ठ ! आप अपनी प्रजा का हित करने के लिए कोई ऐसा बछड़ा कल्पित कीजिये, जिसके स्नेह वश मैं उन औषधियों को दूध रूप में निकाल दूँ ।८०। आप मुझे सब ओर समतल कर दीजिये, जिससे श्रेष्ठ औषधियों के बीज रूप दूध का उत्पादन सर्वत्र हो सके ।८१।

तत उत्सारयामास शैलान् शतसहस्रशः ।
धनुष्कोटचा तदा वैनस्तेन शैला विवर्द्धिताः ॥८२॥
न हि पूर्वविसर्गे वै विषमे पृथिवीतले ।
प्रविभागः पुराणां वा ग्रामाणां वा पुराभवत् ॥८३॥
न भस्यानि न गोरक्ष्यं न कृषिर्न वणिक्पथः ।
वैन्यात्प्रभृति मैत्रेय सर्वस्यैतस्य सम्भवः ॥८४॥

यत्रयत्र समं त्वस्या भूमेरासीद्द्विजोत्तम ।
तत्र तत्र प्रजाः सर्वा निवासं समरोचयन् ॥८५॥
आहारः फलमूलानि प्रजानामभवत्तदा ।
कृच्छ्रेण महता सोऽपि प्रणष्टास्वोषधीषु वै ॥८६॥
स कल्पयित्वा वत्सं तु मनुं स्वायम्भुवं प्रभुम् ।
स्वपाणौ पृथिवीनाथो दुदोह पृथिवीं पृथुः ॥८७॥
तेनान्नेन प्रजास्तात वर्तन्तेऽद्यापि नित्यशः ॥८८॥
सस्यजातानि सर्वाणि प्रजानां हितकाम्यया ।

श्री पराशरजी ने कहा-यह सुनकर राजा पृथु ने अपने धनुष की कोटि से हजारों पर्वतों को उखाड़-उखाड़ कर एक ही स्थान पर एकत्र कर दिया ।८२। इससे पहिले पृथिवी समतल नहीं थी तथा पुर, ग्राम आदि का विभाग भी नहीं था ।८३। हे मैत्रेयजी ! उस समय, कृषि व्यापार आदि का कोई नियमित क्रम नहीं था, इसका आरम्भ वेनपुत्र पृथु के शासन काल में ही हुआ ।८३। हे द्विज श्रेष्ठ ! जहाँ-जहाँ पृथ्वी समतल हुई, वहीं-वहीं प्रजा जा बसी, उस समय तक केवल फल-मूलादि का आहार किया जाता था, परन्तु औषधियों के नष्ट होने पर वह भी अत्यन्त दुर्लभ हो गया ।८६। उस समय राजा पृथु ने स्वयंभुमनु को बछड़ा बनाया और अपने हाथ से पृथिवी रूपी गौ से सब धान्यों का दोहन किया । उसी अन्न के आधार पर अब प्रजा जो बनयापन करती है ।८८।

प्राणप्रदाता स पृथुर्यस्माद्भूमेरभूत्पिता ।
ततस्तु पृथिवी संज्ञामवापाखिलधारिणी ॥८९॥
ततश्च देवैर्मुनिभिर्दैत्ये रक्षोभिरद्रिभिः ।
गन्धर्वैरुरगैर्यक्षैः पितृभिस्तरुभिस्तथा ॥९०॥
तत्तत्पात्रमुपादाय तत्तद्दुग्धं मुने पयः ।
वत्सदोग्धृविशेषाश्च तेषां तद्योनमोऽभवन् ॥९१॥
सैषा धात्री विधात्री च धारिणी पोषणी तथा ।
सर्वस्य तु ततः पृथ्वी विष्णुपादतलोद्भवा ॥९२॥

एवंप्रभावस्स पृथुः पुत्रो वेनस्य वीर्यवान् ।
यज्ञे महीपतिः पूर्वो राजाभूञ्जनरञ्जनात् ॥९३॥
य इद जन्म वेनस्य पृथोः संकीर्त्तयेन्नरः ।
न तस्य दुष्कृतं किञ्चत्फलदायि प्रजापते ॥९४॥
तस्स्वप्नोमशम नृणां शृण्वतामेतदुत्तमम् ।
पृथोर्जन्म प्रभावश्च करोति सततं नृणाम् ॥९५॥

पृथ्वी को प्राण दान करने के कारण राजा पृथु उसके पिता हुए, इसलिए उस धरित्री का नाम पृथ्वी हुआ ।८९। हे मुने ! इसके पश्चात् देवता, मुनि, दैत्य, राक्षस, पर्वत, सर्प, यक्ष और पितर आदि ने अपने-अपने पात्रों में दूध का दोहन किया और दोहनकर्ताओं के अनुसार ही दोग्धा और बछड़ा आदि नियुक्त हुए ।९०-९१। इसीलिए भगवान् विष्णु के चरणों से उद्भूत हुई यह पृथ्वी सबकी जन्म-दात्री, रचयित्री तथा धारणपोषण करने वाली है ।९२। इस प्रकार प्राचीन काल में वह वेन पुत्र राजा पृथु इतने प्रभाव और पराक्रम वाले हुए तथा राजा की रक्षा करने के कारण ही उन्हें राजा कहा गया ।९३। महाराज पृथु के चरित्र का जो कोई कीर्तन करता है उसके दुष्कर्म का फल नष्ट हो जाता है ।९४। राजा पृथु की उत्पत्ति का यह वृत्तान्त और उसका प्रभाव श्रोता के दुःस्वप्नों का शमन करता हैं ।९५।

—:※:—

चौदहवाँ अध्याय

पृथोः पुत्रो तु धर्मज्ञौ जज्ञातेऽन्तर्द्धिवादिनौ ।
शिखण्डिनी हविर्धानमन्तर्धानाद्व्यजायत ॥ १ ॥
हविर्धानात् षडाग्नेयो धिषणाजनयत्सुतान् ।
प्रचीनबर्हिष शुक्रं कृष्ण वृजाजिनौ ॥ २ ॥
प्राचीनबर्हिर्भगवान्महानासीत्प्रजापतिः ।
हविर्धानान्महाभाग येन सवाधताः प्रजाः ॥ ३ ॥

प्राचीनाग्राः कुशास्तस्य पृथिव्यां विश्रुता मुने ।
प्राचीनबर्हिरभवात्ख्यातो भुवि महाबलः ॥ ४ ॥
समुद्रतनयायां तु कृतदारो महीपतिः ।
महतत्तपसः पारे सवर्णायां महाभते ॥ ५ ॥
सयर्णाधत्त सामुद्री दश प्राचीनर्वाहिषः ।
सर्वे प्रचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगाः ॥ ६ ॥
अपृथग्धर्मंचरणास्तेऽतप्यन्त महत्तपः ।
दशवर्षं सहस्राणि समुद्रसलिलेशयाः ॥ ७ ॥

श्री पराशरजी ने कहा-हे मैत्रेयजी ! उस राजा पृथु के अन्तर्धान और वादी नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए । अन्तर्धान ने शिखण्डिनी नाम की अपनी पत्नी से हविर्धान नामक पुत्र उत्पन्न किया ।१। हविर्धान से धिषणा के प्राचीनबर्हि, शुक्र, गय, कृष्ण, वृज और अजिन नामक छः पुत्र उत्पन्न हुए।१। हविर्धान के पुत्र प्राचीनबर्हि एक महान् प्रजापति हुए और उन्होंने यज्ञ के द्वारा अपनी प्रजा की अत्यन्त वृद्धि की ।३। हे मुने ! उनके शासन काल में समस्त पृथ्वी में कुश ही कुश दिखाई देते थे, इसलिये वे प्राचीनबर्हि के नाम से प्रसिद्ध हुये,।४। हे महामते ! उन राजाने तप के पश्चात् समुद्र की पुत्री सवर्णा का पाणिग्रहण किया ।५। उस सवर्णा के गर्भ से प्राचीनर्वाहि ने दस पुत्र उत्पन्न किये । वे प्रचेता नामक सभी पुत्र धनुर्विद्या में पारङ्गत हुए ।६। उन्होंने समुद्र के जल नें दस हजार वर्ष तक रह कर समान धर्म के आचरणपूर्वक घोर तप किया था ।७।

यदर्थं ते महात्मानस्तपस्ते पुर्महामुने ।
प्रचेतसः समुद्राम्भस्येतदाख्यातुमर्हसि ॥ ८ ॥
पिता प्रचेतसः प्रोक्ताः प्रजार्थमतितात्मना ।
प्रजापतिनियुक्तेन बहुमानपुरस्सरम् ॥ ९ ॥
ब्रह्मणा देवदेवेन समादिष्टोऽस्म्यहं सुताः ।
प्रजाः संवर्द्धनीयास्ते मया चोक्तं तथेति तत् ॥१०॥
तन्मम प्रीतये पुत्राः प्रजावृद्धिमतन्द्रिताः ।
कुरुध्व माननीया वः सम्यगाज्ञा प्रजापतेः ॥११॥

ततस्ते तत्पितुः श्रुत्वा वचनं नृपनन्दनाः ।
तथेत्युक्त्वा च तं भूयः पप्रच्छुः पितरं मुने ॥१२॥
येन तात प्रजावृद्धौ सतर्थाः कर्मणा वयम् ।
भवेम तत् समस्तं नः कर्म व्याख्यातुमर्हसि ॥१३॥

श्री मैत्रेयजी ने कहा-हे महामुने ! उन महात्मा प्रचेतागण ने समुद्र में रहकर किसलिये ऐसा तप किया था, यह बताने की कृपा करिये ।८। श्री पराशरजी ने कहा-हे मैत्रेयजी ! एक समय उन प्रचेताओं के पिता महात्मा प्राचीनर्बाहि ने प्रजापति की प्रेरणा से उसने सन्तानोत्पत्ति के लिए कहा था ।९। प्राचीनर्बाहि बोले हे पुत्रो ! देवदेव ब्रह्माजी ने मुझे प्रजा की वृद्धि का आदेश दिया और मैंने भी उनसे स्वीकार कर लिया ।१। इसलिए हे पुत्रो ! मेरी प्रसन्नता के लिए प्रजा-वृद्धि का कार्य करो, क्योंकि प्रजापति की आज्ञा तो माननी होगी ।११। श्री पराशरजी ने कहा-हे मुने ! उन राजकुमारों ने पिता की आज्ञा स्वीकार करके उनसे पूछा ।१२। प्रचेता बोले-हे पिताजी ! हम जिस प्रकार प्रजावृद्धि कर सकें वह हमें भले प्रकार बताइये ।१३।

आराध्य वरदं विष्णमिष्टप्राप्तिमसंशयम् ।
समेति नान्यथा मर्त्यः किमन्यत्कथयामिवः ॥१४॥
तस्मात्प्रजाविवृद्धयर्थं सर्वभतप्रभुं हरिम् ।
आराध्ययत गोविन्दं यदि सिद्धिमभीप्सथ ॥१५॥
धर्ममर्थं च कामं च मोक्षं चान्विच्छतां सदा ।
आराधनीयो भगवाननादिपुरुषोत्तमः ॥१६॥
यस्मिन्नाराधिते सर्गं चकारादौ प्रजापतिः ।
तामाराध्याच्युतं वृद्धिः प्रजानां वो भविष्यति ॥१७॥
इत्येवमुक्तास्ते पित्रा पुत्राः प्रचेतसो दश ।
मग्नाः पयोधिसलिले तपस्तेपुः समाहिताः ॥१८॥
दशवर्षसहस्राणि न्यस्तचित्ता जगत्पतौ ।
नारायणे मुनिश्रेष्ठ सर्वलोकपरायणे ॥१९॥

तत्रैवावस्थिता देवमेकाग्रमनसो हरिम् ।
तुष्टुवुर्यस्स्तुतः कामान् स्तातुरिष्ठान्प्रयच्छिति ॥२०॥

पिता बोले-भगवान् विष्णु वर देने वाले हैं, उनकी आराधना करने से अवश्य ही इच्छित वस्तु प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त और क्या कहूँ ? ४१। यदि तुम सफलता की कामना करते हो तो प्रजा की वृद्धि के निमित्त सर्वभूतेश्वर श्रीगोविन्द की आराधना करो ।१५। धर्म, अर्थ, काम मोक्ष, की चाहना वाले पुरुषों को भगवान् विष्णु की सदैव आराधना करनी चाहिए ।१६। जिनकी कल्पारम्भ में उपासना करके प्रजापति ने इस विश्व की रचना की है, उन्हीं की आराधना करने से प्रजा की वृद्धि होगी ।१७। पराशरजी ने कहा-पिता की इस प्रकार आज्ञा पाकर दसों प्रचेता-गण समुद्र के जल में निमग्न रहकर यत्न पूर्वक तपस्या करने लगे ।१८। हे मुनिवर ! वे लोकाश्रय भगवान् विष्णु में ध्यान लगाए हुए वहाँ दस हजार वर्ष तक रहकर, उन्हीं की स्तुति करते रहे। वे भगवान् अपने स्तोता को सब अभिलाषित प्रदान करते हैं।१९-२०।

स्तवं प्रचेतसो विष्णोः समुद्राम्भसि संस्थिताः ।
चक्रुस्तन्मे मुनिश्रेष्ठ सुपुण्यं वक्तुमर्हसि ॥२१॥
शृणु मैत्रेय गोविन्दं यथापूर्वं प्रचेतसः ।
तुष्टुवुस्तन्मयोभूताः समुद्रसलिलेशयाः ॥२२॥
नताः स्म सर्ववचसां प्रतिष्ठा यत्र शाश्वती ।
तमाद्यन्तमशेषस्य जगतः परमं प्रभुम् ॥२३॥
ज्योतिराद्यमनौपम्यमण्वनन्तमपारवत् ।
योनिभूतमशेषस्व स्थावरस्य चरस्य च ॥२४॥
यस्याहः प्रथमं रूपमरूपस्य तथा निशा ।
सन्ध्याः च परमेशस्य तस्मै कालात्मने नमः ॥२५॥
भुज्यतेऽनुदिनं देवैः पितृभिश्च सुधात्मकः ।
जीवभूतं समस्तस्य तस्मै सोमात्मने नमः ॥२६॥
यस्तमांस्यत्ति तीव्रात्मा प्रभाभिर्भासयन्नभः ।

धर्मशीताम्भसाँ योनिस्तस्मै सूर्यात्मने नमः ॥२७॥
काठिन्यवान् यो विभर्त्ति जगदेतदशेषतः ।
शब्दादिसंश्रयो व्यापी तस्मै भूम्यात्मने नमः ॥२८॥

श्री मैत्रेयजी ने कहा-हे मुनिवर ! समुद्र के जल में स्थित रहकर प्रचेताओं ने जिस प्रकार भगवान् का स्तव किया, वह मुझे बताने की कृपा करिये ।२१। श्री पराशरजी ने कहा-हे मैत्रेयजी ! पूर्व काल में समुद्र स्थित प्रचेताओं ने भगवान् गोविन्द की जो स्तुति तन्मयता पूर्वक की थी, उसे सुनो ।२२।

प्रचेताओं ने कहा-सभी वाक्यों की जिनसे नित्य स्थित है और जो संसार की उत्पत्ति तथा प्रलय के कारण हैं, उन परम-प्रभु को हमारा नमस्कार है ।२३। जो ज्योति स्वरूप, उपमा रहित, अणु, अनन्त, अपार और चराचरात्मक विश्व के कारण हैं तथा जिन रूपहीन के दिवस, रात्रि और सन्ध्या ही प्रथम रूप हैं, उन कालरूप भगवान् को नमस्कार करते हैं ।२४-२५। जो सभी प्राणियों के जीवन स्वरूप हैं, तथा जिनके अमृत-मय रूप का पान देवता और पितर नित्य-प्रति करते हैं, उन सोम स्वरूप परमात्मा को नमस्कार है ।२६। जो अपने रूप से आकाश को प्रकाशित करते और अन्धकार का भक्षण कर लेते हैं, तथा जो धूप, शीत और जल के उद्गम स्थल हैं, उन भास्कर रूप भगवान् को नमस्कार है ।२७। जो इस विश्व के धारणकर्ता, शब्दादि विषयों के आश्रय रूप तथा सर्व व्यापक है, उन पृथ्वी रूप प्रभु को नमस्कार है ।२८।

यद्योनिभूतं जगतो बीज यत्सर्वदेहिनाम् ।
तत्तोयरूपमीशस्य नमामी हरिमेधसः ॥२९॥
यो मुखं सवदेवानाँ हव्यभुक्कव्यभुक् तथा ।
पितृणाँ च नमस्तस्मै विष्णवे पावकात्मने ॥३०॥
पञ्चधावस्थितो देहे यचेंष्टाँ कुरुतेऽनिशम् ।
आकाशयोनिर्भगवास्तस्मै वारवात्मने नमः ॥३१॥
अवकाशमशेषाणाँ भूतानाँ यः प्रयच्छति ।
अनन्तमूर्तिमाञ्छुद्धस्तस्मै व्योमात्मने नमः ॥३२॥

समस्तेन्द्रियसर्गस्य यः सदा स्थानमुत्तमम् ।
तस्मै शब्दादिरूपाय नमः कृष्णाय वेधसे ।३३।
गृह्णाति विषयान्नित्यमिन्द्रियात्मा क्षराक्षरः ।
यस्तस्मै ज्ञानमूलाय नताः स्म हरिमेधसे ।३४।
गृहीतानिन्द्रियैरर्थानात्मने यः प्रयच्छति ।
अन्तःकरणरूपाय तस्मै विश्वात्मने नमः ।३५।
यस्मिन्ननन्ते सकलं विश्वं यस्मात्तथोद्गतम् ।
लयस्थानं च यस्तस्मै नमः प्रकृतिधर्मिणे ।३६।

जो विश्व की योनि रूप तथा सब प्राणियों का बीज रूप है, उस जल रूप भगवान् को हम नमस्कार करते हैं २९ । जो सब देवताओं का हव्य और पितरों का कव्य भक्षण करने वाले हैं, उन अग्नि रूप ईश्वर को नमस्कार है ३० । जो प्राणापान आदि पंच वायु रूप में शरीर में स्थित होकर उसे चेष्टावान् करता रहता है तथा जो आकाश योनि हैं, उस वायु रूप परमेश्वर को नमस्कार है ३१ । जो भूतों को अवकाश प्रदान करता है, उन अनन्त मूर्ति एवं आकाश रूप भगवान को नमस्कार है ३२। जो सब इन्द्रिय-सृष्टि के श्रेष्ठ स्थान हैं, उन शब्दादि गुण रूप विधाता श्री कृष्ण को नमस्कार है ३३ । जो क्षर-अक्षर और इन्द्रिय रूप से विषयों को आत्मा के समक्ष प्रेरित करते हैं उन विश्वात्मा प्रभु को नमस्कार है ३५। जिनमें सम्पूर्ण संसार स्थित है, जिनमें उत्पन्न होकर वह उन्हीं में लीन हो जाता है उन प्रकृति स्वरूप परमेश्वर को नमस्कार हैं ३६॥

शुद्धः सँल्लक्ष्यते भ्रान्त्या गुणवानिवयोऽगुणः ।
तमात्मरूपिणं देवं नताः स्म पुरुषोत्तमम् ।३७।
अविकारमजं शुद्धं निर्गुणं यन्निरञ्जनम् ।
नताः स्म तत्परं ब्रह्म विष्णोर्यत्परमं पदम् ।३८।
अदीर्घह्रस्वमस्थूलमनण्वश्यामलोहितम् ।
अस्नेहच्छायमतनुमसक्तमशरीरिणम् ।३९।
अनाकाशमसंस्पर्शमगन्धमरसं च यत् ।

अचक्षु श्रोत्रमचलमवाक्पाणिममानसम् ॥४०
अनामगोत्रमसुखमतेजस्कमहेतुकम् ।
अभयं भ्रान्तिरहितमनिद्रमजरामरम् ॥४१
अरजोऽशब्दममृतमप्लुतं यदसंवृतम् ।
पूर्वापरे न वै यस्मिस्तद्विष्णोः परमं पदम् ॥४२
परमेशत्वगुणवत्सर्वभूतमसंश्रयम् ।
नताः स्म तत्पद विष्णोर्जिह्वादृग्गोचरं न यत् ॥४३

जो निर्गुण होते हुए आरोप से गुण युक्त दिखाई देते हैं, उन आत्मरूप पुरुषश्रेष्ठ को नमस्कार है ।३७। जो विकार रहित, जन्म रहित, गुण रहित शुद्ध, निर्मल और विष्णु का परमपद रूप है, उस ब्रह्म को नमस्कार है ।३८। जो लम्बा, स्थूल लघु, काला, लाल, स्नेह, कान्ति तथा देह वाला नहीं है तथा आसक्ति रहित और जीव से भिन्न है और अवकाश स्पर्श, गंध, रस से रहित, नेत्र, जिह्वा, हाथ और मत से भी हीन है ।३९। ।४०। जो नाम, गोत्र, सुख, तेजादि से रहित, कारण-हीन और भय, भ्रांति, निद्रा, जरा और मरण आदि अवस्थाओं से परे है ।४२। जो रजोगुण रहित, शब्द रहित, मृत्यु-रहित, गति-रहित तथा आच्छादन रहित है और जिसमें पूर्वापर व्यवहार भी नहीं है, वही भगवान् श्री हरि का परमपद है ।४२। जिसका परम गुण शासन है, जो सर्व रूप एवं आधार रहित है तथा जिह्वा और दृष्टि का भी विषय नहीं है, ऐसे भगवान् के उस परमपद को हमारा नमस्कार है ।४३।

एवं प्रचेतसो विष्णुं स्तूवन्तस्तत्समाधयः ।
दशवर्षसहस्राणि तपश्चेरुर्महार्णवे ॥४४
ततः प्रसन्नो भगास्तेषामन्तर्जले हरिः ।
ददौ दर्शनमुन्निद्रनीलीत्पलदलच्छविः ॥४५
पतत्त्रिराजमारूढवमलोक्य प्रचेतसः ।
प्रणिपेतुः शिरोभिस्त भक्तिभारावनामितैः ॥४६
ततस्तानाह भगवान्प्रियभीताप्सितो वरः ।

प्रसादसुमुखोऽहं वो वरदः समुपस्थितः ।।४७
ततस्तमूचुर्वरद प्रणिपत्य प्रचेतसः ।
यथा पित्रा समादिष्टं प्रजानां वृद्धिकारणम् ।।४८
स चापि देवस्त दत्वा यथाभिलषितं वरम् ।
अन्तर्धानं जगामाशु ते च निश्चक्रमुजलात् ।।४९

श्री पराशरजी ने कहा- इस प्रकार समुद्र में रहते हुए प्रचेताओं ने समाधिस्थ होकर भगवान् विष्णु की स्तुति पूर्वक दस हजार वर्ष तक तप किया ।४४। इससे भगवान् उन पर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्हें प्रफुल्लित नील कमल जैसे आभा वाले दिव्य स्वरूप से जल में ही दर्शन दिया ।४५। जब उन प्रचेताओं ने गरुड़ारूढ़ भगवान् के दर्शन किये तब उन्होंने भक्ति के भार से झुके हुए अपने शिरों को और भी झुकाकर भगवान् को प्रणाम किया ।४६। यह देखकर भगवान् उनके प्रति बोले—मैं तुम पर अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूँ और तुम्हें वर प्रदान करने के लिए यहां आया हूँ अपना इच्छित वर माँगो ।४७। यह सुनकर प्रचेताओं ने वरदाता भगवान् विष्णु को पुन प्रणाम किया और उनके पिता ने उन्हें प्रजा--वृद्धि की जो आज्ञा दी थी, वह सब वृतान्त उनसे निवेदन किया ।४८। इस पर भगवान ने उन्हें उनका इच्छित वर प्रदान किया और वहीं अन्तर्धान होगये और तब प्रचेतागण भी समुद्र के जलसे बाहर निकल आये४९।

पन्द्रहवाँ अध्याय

तपश्चरत्सु पृथिवीं प्रचेतःसु महीरुहाः ।
अरक्ष्यमाणामावव्रुर्बभूवाथ प्रजाक्षयः ।।१
नाशकन्मरुतो वातुं वृतं खमभवद्द्रुमैः ।
दशवर्षसहस्राणि न शेकुश्चेष्टितुं प्रजाः ।।२
तन्दृष्ट्वा जलनिष्क्रान्ता सर्वेक्रुद्धाः प्रचेतसः ।
मुखेभ्यो वायुनग्निं च तेऽसृजन जातमन्यवः ।।३
उन्मूलानथ तान्वृक्षाकृत्वा वान्युरशोषयत् ।
तानग्निरदहद्घोरस्तत्राभूद्द्रुमसक्षयः ।।४

द्रुमक्षयमथो दृष्ट्वा किञ्चच्छिष्टेषु शाखिषु ।
उपगम्याब्रवीदेतान्राजा सोमः प्रजापतीन् ।५।
कोपयच्छत राजानः शृणुध्वं च वचो मम !
सधान वः करिष्यामि सह क्षितिरुहैरहम् ।६।
रत्न भूता च कन्येयं वार्क्षेयी वरवर्णिनी ।
भविष्यञ्जानता पूर्वं मया गोभिर्विर्द्धिता ।७।

श्री पराशरजी ने कहा—जब प्रचेतागण तपस्या में लगे हुए थे, तब किसी प्रकार से पृथ्वी की रक्षा—व्यवस्था न होने के कारण वह वृक्षों से आच्छादित हो गई और बहुत सी प्रजा क्षीण हो गई १। आकाश तक ऊँचे उठे वृक्षों के कारण दश हजार वर्ष तक वायु का चलना ही रुका रहा और प्रजा चेष्टा-रहित हो गई २। जब प्रचेतागण जल से बाहर आये तो उन वृक्षों का ऐसा विस्तार देखकर उन्होंने क्रोध पूर्वक अपने मुख से वायु और अग्नि को छोड़ा ३। उस वायु ने वृक्षों को उखाड कर शुष्क किया और प्रचण्ड अग्नि ने उन्हें भस्म कर दिया। इस प्रकार वृक्ष नष्ट होने लगे ४। उस भयानक वृक्ष प्रलय के कारण चन्द्रमा ने प्रचेताओं के पास जाकर कहा ५। हे प्रचेतागण ! आप अपने क्रोध का शमन करके मेरी बात सुनिये । वृक्षों के साथ मैं आपकी संधि करा देना चाहता हूँ ६। यह रत्न रूपा एवं श्रेष्ठ वर्ण वाली कन्या वृक्षों से उत्पन्न हुई है, भविष्य की बात जानकर मैंने अपनी किरणों से इसका पोषण किया है ७।

मारिषानाम नम्नैषा बृक्षामिति नर्मिता ।
भार्या वोऽतु महाभागा ध्रुवं वंशविवर्द्धिनी ।८।
युष्माक तेजसोऽर्द्धेन मम चार्द्धेन तेजसः ।
अस्यात्पत्स्यते विद्वन्दक्षो नाम प्रजापति ।९।
मम चांशेन संयुक्तो युष्मत्तेजोमयेन वै ।
तेजसाग्निसमो भूयः प्रजा सवर्द्धयिष्ययि ।१०।
कण्डुर्नाम मुनिः पूर्वमासीद्वेदविदां वरः ।
सुरम्ये गोमतीतीरे स तेते परमं तपः ।११।

तत्क्षोभाय सुरेन्द्रेण प्रम्लोचाख्या वराप्सराः ।
प्रयुक्ता क्षोभयामास सा शुचिस्मिता ।१२।
क्षोभितः स सार्द्धं वर्षाणामधिकं शतम् ।
अतिष्ठन्मन्दरद्रौण्यां विषयासक्तमानसः ।१३।

वृक्षों की इस कन्या का नाम मारिषा है और यह तुम्हारे वंश की वृद्धि के लिये ही उत्पन्न हुई है ८। आधा मेरा और आधा तुम्हारा तेज मिलकर इससे तुम्हारे दक्ष नामक प्रजापति की उत्पत्ति होगी ९। वह तुम्हारे और मेरे संयुक्त हुए अपने तेज के कारण अग्नि के समान तेजस्वी होगा और प्रजा का विस्तार करेगा १०। प्राचीन काल में वेदज्ञ ऋषियों में श्रेष्ठ कण्डु नामक एक ऋषि हुए, जिन्होंने गोमती के सुरम्य तट पर घोर तपस्या की ११। तब इन्द्र ने उसका तप भंग करने के लिए प्रम्लोचा नामकी एक अत्यन्त सुन्दरी अप्सरा नियुक्त की, जिसने उन महर्षि का चित्त चंचल कर दिया १२। उसके मोह जाल में पड़कर वे महर्षि सौ वर्ष से भी अधिक काल तक मन्दराचल में भोगासक्त पड़े रहे १३।

तं सा प्राह महाभाग गन्तुमिच्छाम्यहं दिवम् ।
प्रसादसुमुखो ब्रह्मन्ननुज्ञां दातुमर्हसि ।१४।
तयैवमुक्तः स मुनिस्तस्यामासक्तमानसः ।
दिनानि कतिचिद्भद्रे स्थीयतामित्यभाषत ।१५।
एवमुक्ता ततस्तेन साग्रं पुनः ।
बुभुजे विषयांस्तन्वी तेन साकं महात्मना ।१६।
अनुज्ञां देहि भगवन् व्रजामि त्रिदशालयम् ।
उक्तस्तथेति स पुनः स्थीयतामित्यभाषत ।१७।
पुनर्गते वर्षशते साधिके सा शुभानना ।
यामीत्याह दिवं ब्रह्मन्प्रणयस्मितशोभनम् ।१८।
उक्तस्तयैवं स मुनिरुपगुह्यायतेक्षणाम् ।
इहास्यतां क्षणं सुभ्रु चिरकालं गमिष्यसि ।१९।
सा क्रीडमाना सुश्रोणी सह तेनर्षिणा पुनः ।
शतद्वयं किञ्चिदूनं वर्षाणामन्वतिष्ठत ।२०।

इसके पश्चात् एक दिन उस अप्सरा ने उन महर्षि से कहा-हे ब्रह्मन् ! अब मैं स्वर्ग लोक को प्रस्थान करूँगी, आप प्रसन्न होकर मुझे जाने की अनुमति दीजिये ।१४। उसकी बात सुन कर उसमें आसक्तिवान् ऋषि ने कहा कि अभी कुछ दिन ठहरो ।१५। उनके अनुरोध पर वह अप्सरा सौ वर्ष तक और उनके साथ रहती हुई विविध भोगों को भोगती रही । १६। तब उसने पुनः उनसे कहा कि अब मुझे स्वर्ग जाने की अनुमति दीजिये । इस पर ऋषि ने उससे कहा कि अभी कुछ दिन ठहरो ।१७। इस प्रकार फिर सौ वर्ष व्यतीत हो गये तब उसने मुसका कर मुनि से कहा-भगवन् अब मैं स्वर्ग लोक को जा रही हुँ ।१८। यह सुन कर मुनि ने उसे अपने हृदय से लगा लिया और बोले कि वहाँ तो तुम्हें बहुत समय लगेगा, इस लिए अभी क्षण भर तो रुको ।१९। तब वह श्रेष्ठ कटि वाली अप्सरा उन ऋषिके साथ दो सौ वर्षसे कुछ कम समय तकऔर क्रीड़ा करती रही ।२०।

गमनाय महाभाग देवराजनिवेशनम् ।
प्रोक्तःप्रोक्तस्तया तन्व्या स्थीयतामित्यभाषत ॥२१
तस्य शापभयाद्भीता दाक्षिण्येन च दक्षिणा ।
प्रोक्ता प्रणयभङ्गार्तिवेदिनी न जहौ मुनिम् ॥२२
तया च रमतस्तस्य परमर्षेरहर्निशम् ।
नवं नवमभूत्प्रेम मन्मथाविष्ट चेतसः ॥२३
एकदातु त्वरायुक्तो निश्चकामोटजान्मुनिः ।
निष्क्रामन्त च कुत्रेति गम्यते प्राह सा शुभा ॥२४
इत्युक्तः स तया प्राह परिवृतमहः शुभे ।
सन्ध्योपास्ति करिष्यामि क्रियालोपोऽन्यथा भवेत् ॥२५
ततः प्रहस्य सुदती तं सा प्राह महामुनिम् ।
किमद्य सर्वधर्मज्ञ परिवृत्तमहस्तव ॥२६
बहूनां विप्र वर्षाणां परिवृत्तमहस्तव ।
गतमेतन्न कुरुते विस्मयं कस्य कथ्यताम् ॥२७

हे महाभाग ! वह अप्सरा जब-जब ऋषि से स्वर्गलोक को जाने की

बात कहती, तब-तब कण्डु ऋषि उससे ठहरने का आग्रह करते।२२। उनके आग्रह क ने पर प्रणय टूटने से होने वाली पीड़ा को समझने वाली उस नायिका ने कुछ स्नेह और कुछ शाप के भय से उनका त्याग नहीं किया।२२। इधर इन महर्षि का चित्त भी आसक्ति पूर्वक नित्य निरन्तर सुख सहवास के कारण उसमें दिनों दिन स्नेह वृद्धि करने लगा। २३। परन्तु एक दिन सांयक.ल के समय वह महर्षि शीघ्रता पूर्वक अपनी कुटी से बाहर जाने लगे। यह देखकर उस अप्सरा ने पूछा कि आप कहाँ जा रहे हैं ? ।२४। इस पर मुनि ने कहा कि अब दिन छिप रहा है, इसलिए संध्योपासन करूँगा अन्यथा नित्य क्रिया लुप्त हो जायगी।२५। यह सुनकर उस सुन्दरी ने हँसते हुए कहा—क्या आपको दिन आज ही छिप रहा है ! हे ब्रह्मन् ! बहुत वर्षों के व्यतीत होने पर आपका दिन आज ही छिपा है, यह सुनकर किसे विस्मय न होगा ?।२७।

प्रातस्त्वमागता भद्रे नदीतीरमिद शुभम् !
मया दृष्टासि तन्वङ्गि प्रविष्टासि ममश्रामम् ॥२८
इय च वर्तते सन्ध्या पारिणाममहर्गतम् ।
उपहासःकिमर्थोऽयं सद्भावः कथ्यतां मम् ॥२९
प्रत्यूषस्यागता ब्रह्मन् सत्यमेतन्न तन्मृषा ।
नन्वस्य तस्य कालस्य गतान्यब्दशतानि ते ॥३०
ततःससाध्वसो विप्रस्तां पप्रच्छायतेक्षणाम् ।
कथ्यतां भीरुकः कालस्त्वया मे रमतः सह ॥३१
सप्तोत्तराण्यतीतानि नववर्षशतानि ते ।
मासाश्च षट्तथैवान्यत्समतीतं दिनत्रयम् ॥३२
सत्यं भीरु वदस्येतत्परिहाऽथ वा शजे ।
दिनमेकमहं मन्ये त्वया सार्द्धमिहासितम् ॥३३
वदिष्याम्यनृतं ब्रह्मन्कथमत्र तवान्तिके ।
विशेषेणाद्य भवता पृष्टा मार्गानुवर्तिना ॥३४

ऋषि ने कहा--हे भद्रा ! तुम यह क्या कह रही हो ? नदी के इस सुरम्य तटपर तुम आज प्रातःकाल ही तो आईहो। आजही तो मैंने तुम्हें

अपने आश्रम में घुसते हुए देखा है २८। अब दिन के छिपने पर यह संध्याकाल उपस्थित हुआ है, फिर तुम इस प्रकार से उपहास क्यों कर रही हो ? २९। प्रम्लोचा ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आपने मेरे प्रातः काल आने की जो बात कही, वह तो ठीक है, परन्तु उस प्रातः काल को आज सैकड़ों वर्ष व्यतीत हो चुके हैं ३०। चन्द्रमा बोले—यह सुन कर वह विप्र-श्रेष्ठ चिन्ता में पड़ गए और उन्होंने आतुरता पूर्वक उस विशाल नेत्र वाली सुन्दरी से पूछा—अरी भीरु ! सत्य बता कि तेरे साथ विषयासक्त रहते हुए तेरा कितना समय व्यतीत हो चुका है ? ३१। प्रम्लोचा ने कहा-अब तक नौ सौ वर्ष छः मास और तीन दिवस व्यतीत हो चुके हैं ३२। ऋषि ने कहा-क्या तू यह सत्य कह रही है या मेरा उपहास करती है ? मुझे तो लग रहा है कि यहाँ मैं तेरे साथ एक दिन ही रहा हूँ ३३। प्रम्लोचा ने कहा हे ब्रह्मन् ! मैं आपके समक्ष मिथ्या कैसे कह सकती हूँ ? इस पर भी आपने धर्म मार्ग में तत्पर होकर मुझसे पूछा है, तो असत्य कहने की बात नहीं है ३४।

निशम्य तद्वचः सत्यं स मुनिर्नृपनन्दनाः ।
धिग्धिङ् मामित्यतीवेत्थ निनिन्दात्मानमात्मना ।३५।
तपांसि मम नष्टानि हतं ब्रह्मविदां धनम् ।
हतो विवेकः केनापि योषिन्मोहाय निर्मिता ।३६।
ऊर्मिषट्कातिग ब्रह्म ज्ञेयमात्मजयेन मे ।
मतिरेषा हृता येन धिक् तं काम महाग्रहम् ।३७।
व्रतानि वेदवेद्याप्तिकारणान्यखिलानि च ।
नरकग्राममार्गेण सङ्गेनापहृतानि मे ।३८।
विनिन्द्येत्थं स धर्मज्ञः स्वयमात्मनमात्मना ।
तामप्सरसमासीनातिद वचनमब्रवीत् ।३९।
गच्छ पापे यथाकामं यत्कार्यं तत्कृतं त्वया ।
देवराजयस मत्क्षोभ कुर्वन्त्या भावचेष्टितैः ।४०।
न त्वां करोम्यहं भस्म क्रोधतीव्रेण वह्निना ।
सतां सप्तपदं मैत्रमुषितोऽहं त्वया सह ।४१।

चन्द्रमा बोले-हे राजपुत्रो ! प्रम्लोचा की सत्य वाणी सुनकर महर्षि अपने को धिक्कारने लगे। ऋषि ने कहा—अरे, मेरी तपस्या नष्ट हो गई, ब्रह्मवेत्ताओं का जो धन मेरे पास था वह अविवेक के कारण लुट गया। अहो ! स्त्री की रचना तो मोह जाल डालने के लिए हुई है।३५ ३६।मुझे अपने मन को वश में करके छओं ऊर्मियों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, बुद्धि को नष्ट कर देने वाले काम रूपी महाग्रह को बारम्बार धिक्कार है ३७। नरक ग्राम के मार्ग रूपी इस नारी के संसर्ग दोष से ब्रह्म प्राप्ति के कारण सभी तप व्रतों का नाश हो गया।३८। उन धर्मज्ञ मुनिने इस प्रकार अपनी ही निन्दा की और फिर उस अप्सरा से कहने लगे।३९। हे पापिनी अब तू जहाँ चाहे चली जा, तूने अपने रूप से मुझे मोहित करके इन्द्र का कार्य पूर्ण कर दिया है।४०। अपने क्रोध रूपी प्रज्ज्वलित अग्नि से मैं तुझे इसलिए भस्म नहीं करना चाहता कि सज्जन मनुष्य सात पग साथ रहने से ही मित्र बन जाते हैं, परन्तु मैं तो तेरे साथ इतने दीर्घ समय तक रहा हूँ।४१।

अथवा तव को दोषः किं वा कुप्याम्यहं तव।
ममैव दोषो नितरां येनाहमजितेन्द्रियः।४२।
यया शक्रप्रियार्थिन्या कृतो मे तपसो व्ययः।
त्वया धिक्तां महामोहमञ्जूषां सुजुगुप्सिताम्।४३।
यावदित्थं स विप्रर्षिस्ता ब्रवीति समध्यमाम्।
तावद्गलत्स्वेदजला सा बभूवातिवेपथुः।४४।
प्रवेपमानां सततं स्विन्नगात्रलतां सतीम्।
गच्छ गच्छेति सक्रोधमुवाच मुनिसत्तमः।४५।
सा तु निर्भर्त्सिता तेन विनिष्क्रम्य तदाश्रमात्।
आकाशगामिनी स्वेदं ममार्ज तरुपल्लवैः।४६।
निर्मार्जमाना गात्राणि गलत्स्वेतजलानि वै।
वृक्षाद्वृक्षं ययौ वाला तदग्रारुणपल्लवैः।४७।
ऋषिणा यस्तदा गर्भस्तस्या देहे समाहितः।
निर्जगाम स रोमाञ्चस्वेदरूपी मदङ्गतः।४८।

इसमें कुछ तेरा दोष भी नहीं है, जिससे मैं तुझसे रुष्ट हो जाऊँ। सभी दोष मेरा है, मैं अपनी इन्द्रियों को नहीं जीत सका ।४२। इन्द्रियों के स्वार्थ के लिए जिस तूने मुझे तप-भ्रष्ट कर दिया, ऐसी तुझे महामोह मंजूषा को अत्यन्त धिक्कार है ।४३। चंद्रमा बोले – जब तक यह ब्रह्मर्षि उससे इस प्रकार कहते रहे, तब तक वह घबराहट के कारण पसीने से लथपथ होकर काँपती रही ।४४। इस प्रकार पसीने से भीगी और भय से काँपती हुई उस अप्सरा से मुनि ने अत्यन्त क्रोधित होकर कहा – जा तू यहाँ से तुरन्त चली जा ।४५। इस प्रकार बारम्बार तिरस्कार करने पर वह आश्रम से निकली और आकाश मार्ग से गमन करते हुए उसने अपने पसीने को वृक्षों के पत्तों से पोंछ लिया और वह एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर चढ़ती हुई चलती चली गई ।४६ ४७। महर्षि कण्डु ने उसके जो गर्भ स्थापित किया था, वह भी रोमांच के कारण पसीने के रूप में उसके देह से निकल आया ।४८।

तं वृक्षा जगहुर्गर्भमेकं चक्रे तु मारुतः ।
मया चाप्यायितो गोभिः स तदा ववृधे शनैः ।।४९
वृक्षाग्रगर्भसम्भूता मारिषाषाख्या वरानना ।
तां प्रदस्यन्ति वो वृक्षा कोप एष प्रशास्यताम् ।।५०
कण्डोरपत्यमेवं सा वृक्षेभ्यश्च समुद्गता ।
ममापत्यं तथा वायोः प्रम्लोचातनया च सा ।।५१
स चापि भगवान् कण्डुः क्षीणे तपसि सत्तमः ।
पुरुषोत्तममाख्यातं विष्णोरायतनं ययौ ।।५२
तत्रैकाग्रमतिर्भूत्वा चकाराराधनं हरेः ।
ब्रह्मपारमयं कुर्वञ्जपमेकाग्रमानसः ।
ऊर्ध्वबाहुर्महायोगी स्थित्वासौ भूपनन्दनाः ।।५३
ब्रह्मपारं मुनेः श्रोतुमिच्छामः परमं स्तवम् ।
जपता कण्डुना देवो येनाराध्यत केशवः ।।५४

हे राजपुत्रो ! उस गर्भ को वृक्षों ने ग्रहण किया और वायु ने उसे यत्नपूर्वक इकठ्ठा कर दिया, तब मैं अपनी किरणों से उसको पोषण करने

लगा। उससे वह वृद्धि को प्राप्त हुआ।४९। इस प्रकार वह मरिषा नाम की कन्या वृक्षाग्र से उत्पन्न हुई, जिसे वृक्षगण तुम्हारे लिये समर्पित करेंगे इसलिये अपने क्रोध को अब शान्त कीजिये।५०। वृक्षों की वह कन्या उसी प्रम्लोचा की सुता है, इस प्रकार वह कण्डु ऋषि की, वायु की तथा मेरी भी पुत्री है।५१। फिर वह सन्त श्रेष्ठ कण्डु क्षीणतप हुए पुरुषोत्तम क्षेत्र नामक स्थान को गये, जो भगवान् विष्णु की निवास भूमि है। वहाँ उन्होंने एकाग्र चित्त से ब्रह्मपार मन्त्र का जप और ऊर्ध्वबाहु रहकर भगवान् विष्णु की उपासना की।५२-५३। यह सुन कर प्रचेताओं ने कहा—कण्डु मुनि का वह ब्रह्मपार नामक स्तोत्र हम सुनना चाहते हैं, जिसका जप करते हुए उन्होंने भगवान् की आराधना की थी।५४।

पारं पर विष्णुरपारपारः परः परेभ्यः परमार्थरूपी।
स ब्रह्मपारः परपारभूतः परः पराणामपि पारपारः ॥५५
सा कारणं कारणतस्ततोऽपि तस्यापि हेतुः परहेतुहेतुः।
कार्येषु चैवं सह कर्मकर्तृरूपैरशेषैरवतीह सर्वम् ॥५६
ब्रह्म प्रभुर्ब्रह्म स सर्वभूतो ब्रह्म प्रजानां पतिरच्युतोऽसौ।
ब्रह्माव्ययं नित्यमजं स विष्णुरपक्षयाद्यैरखिलैरसङ्गि ॥५७
ब्रह्माक्षरमजं नित्यं यथासौ पुरुषोत्तमः।
तथा रागादयो दोषाः प्रयान्तु प्रशमं मम ॥५८
एतद्ब्रह्मपराख्यं वै संस्तवं परमं जपन्।
अवाप परमां सिद्धिं स तमाराध्य केशवम् ॥५९
इमं स्तवं यः पठति शृणुयाद्वापि नित्यशः।
स कामदोषैरखिलैर्मुक्तः प्राप्नोति वाञ्छितम् ॥
इयं च मारिषा पूर्वमासीद्या तां ब्रवीमि वः।
कार्यगौरवमेतस्याः कथने फलदायि व ॥६०

चन्द्रमा ने कहा--भगवान् विष्णु विश्वपथ के अन्तिम अक्ष्य हैं, जिनका पार नहीं पाया जा सकता वह पर से भी परे और सत्य स्वरूप हैं। वह तपोनिष्ठों को ही प्राप्त होते हैं, क्योंकि वे पर से परे तथा इन्द्रियों के

अगोचर भक्तों के पालक और अभिष्ट पूरक हैं। ५५। कारण के कारण उसके भी कारण के कारण होने से परम कारण हैं इस प्रकार कर्म, कर्त्ता आदि के सहित सम्पूर्ण प्रपंच के पालक हैं।५६। वह ब्रह्म ही प्रभु, सर्वरूप और सम्पूर्ण प्रजा का स्वामी और अविनाशी हैं वही अव्यय, नित्य अजन्मा, तथा क्षयादि विकारों रहित विष्णु हैं।५७। उन पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु के अक्षर, अजर, अज तथा नित्य ब्रह्म होने से मेरे भी रागादि दोष शान्ति को प्राप्त हों ५८। इस ब्रह्मपार नामक स्तोत्र के जप पूर्वक भगवान् केशव की अराधना करने से उन महर्षि को परम सिद्धि की प्राप्ति हुई।५९। (इस स्तोत्र का जो नित्य पाठ या श्रवण करता है, वह कमादि विकारों से छूट कर इच्छित फल प्राप्त करता है) अब मैं उस मारिषा का पूर्व वृत्तान्त हूँ। वह पहले जन्म में क्या थी ? यह सुन लेने पर तुम्हारे गौरव की सफलता होगी।६०।

अपुत्रा प्रागियं विष्णुं मृते भर्त्तरि सत्तमाः।
भूपपत्नी महाभागा तोषयामास भक्तितः।६१।
आराधितस्तया विष्णुः प्राह प्रत्यक्षतां गतः।
वरं वृणीष्वेति शुभे सा च प्राहात्मवाञ्छितम्।६२।
भगवन्वालवैधव्याद् वृथाजन्माहमीदृशी।
मन्दभाग्या समुद्भूता विफला च जगत्पते।६३।
भवन्तु पतयःश्लाध्या मम जन्मनि जन्मनि।
त्वत्प्रसादात्तथा पुत्रः प्रजापतिसमोऽस्तु मे।६४।
कुल शीलं वयः सत्यं दाक्षिण्यं क्षिप्रकारिता।
अविसंवादिता सत्वं वृद्धसेवा कृतज्ञता।६५।
रूपसम्पत्समायुक्ता सर्वस्य प्रियदर्शना।
अयोनिजा च जायेयं त्वत्प्रसादादधोक्षज।६६।
तयैवमुक्तो देवेशो हृषीकेश उवाचताम्।
प्रणामनम्रामुत्थाप्य वरदः परमेश्वरः।६७।

यह अपने पूर्व जन्म में एक राज-महिषी थी। उसके पति पुत्रहीन अवस्था में ही मृत्यु को प्राप्त हो गये थे। तब इस महाभागा ने भगवान्

की भक्ति करके उन्हें प्रसन्न किया।६१। उसकी भक्ति से प्रसन्न हुए भगवान् ने प्रकट होकर उससे वर माँगने को कहा, तब उसने अपनी इच्छा इस प्रकार की प्रकट की।६२। हे प्रभो! बाल विधवा होने के कारण मेरा जीवन व्यर्थ हो गया है मैं इतनी अभागिनी रही कि संसार में फल हीना ही रह गई।६३। इसलिये अब अगले जन्म में मेरे जो पति हों, वह अत्यन्त प्रशंसनीय हों तथा प्रजापति के समान पुत्र भी हो।६४। हे नाथ! मैं आप की कृपा से कुल, शील, वय, सत्य, कौशल, शीघ्र कार्यत्व, अविसंवादत्व, सत्व, वृद्धजनसेवा, कृतज्ञता, श्रेष्ठ रूप और ऐश्वर्य से सम्पन्न होऊँ। मैं सबको प्रिय लगूँ तथा मेरा जन्म योनि-रहित हो।६५-६६। चन्द्रमा ने कहा—उसके द्वारा ऐसा वर माँगा जाने पर प्रणाम के लिए झुकी हुई उस स्त्री को उठाते हुए वरदायक भगवान् विष्णु ने उससे कहा।६७।

भविष्यन्ति महावीर्या एकस्मिन्नेव जन्मनि।
प्रख्यातोदारकर्माणो भवत्याः पतयो दश ॥६८
पुत्रश्च सुमहावीर्यं महाबलपराक्रमम्।
प्रजापतिगुणैर्युक्तं त्वमवाप्स्यसिशोभने ॥६९
वंशानां तस्य कर्तृत्वं जगत्यस्मिन्भविष्यति।
त्रैलोक्यमखिला सूतिस्तस्य वापूरयिष्यति ॥७०
त्वं चाप्ययोनिजा साध्वी रूपौदार्यगुणान्विता।
मनः प्रीतिकरी नृणां मत्प्रसादाद्भविष्यसि ॥७१
इत्युक्त्वान्तर्दधे देवस्तां विशालविलोचनाम्।
सा चेयं मारिषा जाता युष्मत्पत्नी नृपात्मजाः ॥७२

भगवान् बोले—तेरे एक जन्म में ही अत्यन्त पराक्रमी, कर्मवीर और प्रसिद्ध दस पति होंगे, तब तेरे प्रजापति के समान अत्यन्त, बल, वीर्य, विक्रम युक्त एक पुत्र भी होगा।६८-६९। वह पुत्र विश्व में अनेक वंशों को चलायेगा और उसकी सन्तान तीनों लोकों में जा बसेगी ॥७०॥ मेरी कृपा से भी तू उदारता रूप गुण, शील आदि से सम्पन्न, सब का चित्त प्रसन्न करने वाली तथा अयोनिजा होगी।७१। उस विशाल नेत्र

वाली को इस प्रकार वर देकर भगवान् अन्तर्धान हो गये। तुम्हारी पत्नी मारिषा के रूप में यह वही राज-महिषी है ।७२।

ततः सोमस्य वचनाज्जगृहस्ते प्रचेतसः।
संहृत्य कोपं वृक्षेभ्यः पत्नीधर्मेण मारिषाम् ।७३।
दशभ्यस्तु प्रचेतोभ्यो मारिषायां प्रजापतिः।
जज्ञे दक्षो महाभागोस्यः पर्वं ब्रह्मणोऽभवत् ।७४
स तु दक्षो महाभागस्सृष्ट्यर्थं सुमहामते।
पुत्रानत्पादयामास प्रजासृष्ट्यर्थमात्मनः ।७५।
अवरांश्च वरांश्चैव द्विपदोऽथ चतुष्पदान्।
आदेश ब्रह्मणः कुर्वन् सृष्ट्यर्थं समुपस्थितः ।७६।
स सृष्ट्वा मनसा दक्षः पश्चादसृजत स्त्रियः।
ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ।७७।
कालस्य नयने युक्ताः सप्तविंशतिमिन्दवे।
तासु देवास्तथा दैत्या नागा गावस्तथा खगाः ।७८।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव दानवाद्याश्च जज्ञिरे।
ततः प्रभृति मैत्रेय प्रजा मैथुनसम्भवाः ।५९।
सङ्कल्पाद्दर्शनात्स्पर्शात्पूर्वेषामभवन् प्रजाः।
तपोविशेषैः सिद्धानां तदात्यन्ततपस्विनाम् ।८०।

श्रीपराशरजी ने कहा—चन्द्रमा के इस प्रकार कहने से प्रचेतागण शान्त हुए और उन्होंने मारिषा को भार्या रूप में ग्रहण किया ।७३। उन दसों प्रचेताओं से उस मारिषा ने दक्ष प्रजापति को जन्म दिया, जो पूर्व काल में ब्रह्माजी से उत्पन्न हुए थे ।७४। हे महामते ! ब्रह्माजी की आज्ञा से उस दक्ष प्रजापति ने सर्ग रचना की इच्छा करके नीचे ऊँचे तथा विभिन्न प्रकार के देह धारियों को पुत्र रूप से उत्पन्न किया ।७५-७६। पहिले उन्होंने मानसी सृष्टि रचि, फिर स्त्रियाँ उत्पन्न करके मैथुनी सृष्टि की रचना की। उन्होंने अपनी दस कन्याएँ धर्म के और तेरह कश्यप के के साथ ब्याह दीं ।७७। फिर काल परिवर्तन में नियुक्त हुई अश्विनी आदि

सत्ताईस कन्याएँ चन्द्रमा को दीं। इनसे देवता, दैत्य, नाग, गौ, पक्षी, गन्धर्व, अप्सरा और दानवादि की उत्पत्ति हुई। हे मैत्रेयजी! मैथुनी सृष्टि का आरम्भ दक्ष-काल से हुआ है। इनसे पहिले तो सिद्ध पुरुषों के तपोबल से उनके संकल्प, दर्शन या स्पर्श से ही सन्तान उत्पन्न हो जाती थी।७७-८०।

अंगुष्टाद्दक्षिणाद्दक्षः पूर्वं जातो मया श्रुतः।
कथ प्राचेतसो भूयः समुत्पन्नो महामुने।८१।
एष मे संशयो ब्रह्मन्सुमसान्हृदि वर्त्तते।
तद्दौहित्रश्च सोमस्य पुनः श्वशुरतां गतः।८२।
उत्पत्तिश्च निरोधश्च नित्यो भूतेषु सर्वदा।
ऋषयोऽत्र न मुह्यन्ति ये चान्ये दिव्यचक्षुषः।८३।
युगे युगे भवन्त्येते दक्षाद्या मुनिसत्तम।
पुनश्चैव निरुद्धयत्ते विद्वांस्तत्र न मुहयति।८४।
कानिष्ट्य् ज्येष्ठ्यमप्येषां पूर्वं नाभूद्द्विजोत्तम।
तप एव गरीयोऽभूत्प्रभावश्चैव कारणम्।८५।
देवानां दानवानां गन्धर्वोरगरक्षसाम्।
उत्पत्तिं विस्तरेणेह मम ब्रह्मन्प्रकीर्त्तय।८६।

श्री मैत्रेयजी ने कहा--हे महामुने! दक्ष की उत्पत्ति तो ब्रह्माजी के दाँए अँगूठे से सुनी जाती है, फिर उनकी उत्पत्ति प्रचेताओं से किसप्रकार हुई।८१। हे ब्रह्मन्! वह चन्द्रमा के धेवते होकर उनके श्वसुर कैसे होगये यह शंका मेरे मन में उठी हुई है।८२। श्री पराशरजी ने कहा-हे मैत्रेय! जो प्राणियों के जन्म और मरण निरन्तर होते रहते हैं। इसलिए इस विषय में दिव्य द्रष्टा ज्ञानियों को मोह नहीं होता।८३। हे मुनिवर! यह दक्ष आदि युग में उत्पन्न होकर लीन हो जाते हैं, इसमें सन्देह का कोई कारण नहीं है।८४। पूर्वकाल में इनमें किसी प्रकार छोटे-बड़े का भेद नहीं था। उस समय तो तपस्या और प्रभाव से मनुष्य वरीयता प्राप्त करता था।८५। श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे ब्रह्मन्! अब आप देवता, दानव गन्धर्व, नाग, राक्षस आदि की उत्पत्ति का वृतान्त मुझे विस्तार पूर्वक बताइये।८६।

प्रजाः सृजेति व्यदिष्टः पूर्वं दक्षः स्वयम्भुवा ।
यथा समर्ज भूतानि तथा शृणु महामुने ॥८७
मानसान्येव भूतानि पूर्वं दक्षोऽसृजत्तदा ।
देवानृषीन्सगन्धर्वानसुरान्पन्नगांस्तथा ॥८८
यदास्य सृजमानस्य न व्यवर्धन्त ताः प्रजाः ।
ततः सञ्चिन्त्य स पुनः सृष्टि हेतोःप्रजापतिः ॥८९
मैथुनेनैव धर्मेण सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।
असिक्नीमावहत्कन्यां वीरणस्य प्रजापतेः ।
सुतां सुतपसा युक्तां महती लोकधारिणीम् ॥९०
अथ पुत्रसहस्राणि वैरुण्यां पञ्च वीर्यवान् ।
असिक्न्यां जनयामास सर्गहेतोः प्रजापतिः ॥९१
तन्दृष्ट्वा नारदो विप्र संविवर्द्धयिषून्प्रजाः ।
सङ्गम्य प्रियसवादो देवर्षिरिदमब्रवीत् ॥९२
हे हर्यश्वा महावीर्याः प्रजा यूयं करिष्यथ ।
ईदृशो दृश्यते यत्नो भवता श्रूयतामिदम् ॥९३
बालिशा गत यूयं वै नास्या जानीत वै भुवः ।
अन्तरूर्ध्वमधश्चैव कथं सृक्ष्यथ वै प्रजाः ॥९४
ऊर्ध्वं तिर्यगधश्चैव यदाप्रतिहता गतिः ।
तदा कस्माद्भुवो नान्तं सर्वे द्रक्ष्यथ बालिशाः ॥९५
ते तु तद्वचन श्रुत्वा प्रयाताः सर्वतो दिशम् ।
अद्यापि नो निवर्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगाः ॥९६

श्री पराशरजी ने कहा—हे महामुने ! स्वयंभू भगवान् ब्रह्माजी द्वारा प्रजा उत्पन्न करने की आज्ञा प्राप्त कर दक्ष ने पहिले जिस प्रकार प्राणियों को रचा, उसे सुनो ।८७। उस समय क्रम से ऋषि, गंधर्व, असुर, सर्प आदि मानसी सृष्टि की ही दक्ष ने रचना की ।८८। परन्तु जब इस प्रकार प्रजा की वृद्धि नहीं हुई तो उन्होंने मैथुनी सृष्टि के विचार से वीरण प्रजापति की अत्यत तपस्विनी कन्या असिक्नी पारिग्रहण किया ८९-९०। इसके बाद

उन्होंने अपनी भार्या असिक्नी के गर्भ से पाँच हजार पुत्र उत्पन्न किये ।९१ उन सब को प्रजोत्पत्ति की इच्छा वाला देखकर नारदजी ने उनके पास जाकर इस प्रकार कहा— हे हर्यश्वगण ! मुझे लगता है कि आप प्रजा उत्पन्न करने के इच्छुक है, इसलिए मेरी बात सुनो ।९२-९३। तुम अभी पृथिवी का मध्य, ऊर्ध्व और तल भाग को नहीं जानते तो प्रजोत्पत्ति किस प्रकार करोगे ? ।९४। जब तुम इस ब्रह्माण्ड में ऊपर, नीचे इधर, उधर सर्वत्र अबाध गति वाले हो, तो तुम्हें इन पृथिवी का अन्त क्यों नहीं दिखाई देता ? ।९५। नारदजी की बात सुनकर वे सब विभिन्न दिशाओं को चले गये तथा जैसे समुद्र मिली हुई नदियों का पुनरावर्तन नहीं होता वैसे ही वे सब कभी भी नहीं लौटे ।९६।

हर्यश्वेष्वथ नष्टेषु दक्षः प्राचेतसः पुनः ।
वैरुण्यामथ पुत्राणां सहस्रमसृजत्प्रभुः ।९७।
विवर्द्धयिषवस्ते तु शबलाश्वाः प्रजाः पुनः ।
पूर्वोक्तं वचनं ब्रह्मान्नारदेनैव नोदिताः ९८।
अन्योऽन्यमूचुस्ते सर्वे सम्यगाह महामुनिः ।
भ्रातृणां पदवी चैव गन्तव्या नात्र संशयः ।९९।
ज्ञात्वा प्रमाणं पृथ्व्याश्च प्रजास्स्रक्ष्यामहे ततः ।
तेऽपि तेनैव मार्गेण प्रयाताः सर्वतोमुखम् ।
अद्यापि न निवर्त्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगाः ।१००।
ततः प्रभृति वै भ्राता भ्रातुरन्वेषणे द्विज ।
प्रयातो नश्यति तथा तन्न कार्यं विजानता ।१०१।
तांश्चापि नष्टान् विज्ञाय पुत्रान् दक्षः प्रजापतिः ।
क्रोधं चक्रे महाभागो नारदं स शशाप च ।१०२।

जब हर्यश्व इस प्रकार जाकर नहीं लौटे तब दक्ष ने वीरणसुता के गर्भ से एक हजार पुत्र और उत्पन्न किये ।९७। उन शबलाश्वों ने प्रजा वृद्धि की इच्छा की, तब नारदजी ने उनसे भी वही बात कही, इस पर वे परस्पर में विचार करने लगे कि नारदजी का कथन सत्य ही तो है,

हमें निःसन्देह अपने भाइयों का अनुसरण करना चाहिये ।९८-९९। हम भी पृथिवी का परिमाण जान कर ही प्रजोत्पत्ति में लगेंगे । ऐसा विचार कर वह भी विभिन्न दिशाओं में जाकर हर्यश्वों के समान लोट कर नहीं आये ।१००। इसलिये, तभी से भाई की खोज में जाने वाला भाई नाश को प्राप्त हो जाता है और कोई ऐसा न करे, यह सिद्धान्त निश्चित हुआ ।१०१। जब दक्ष प्रजापतिको यह ज्ञात हुआ कि यह पुत्रभी नारदजी के उपदेश से चले गये तब उन्होंने अत्यन्त क्रोध पूर्वक नारदजी को शाप दे डाला ।१०२।

सर्गकामस्ततः विद्वान्स मैत्रेय प्रजापतिः ।
षष्टि दक्षाऽसृजत्कन्यां वैरुण्यामिति नः श्रुतम् ।१०४
ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ।
सप्तविंशति सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमिने ।१०४
द्वे चैव वहुपुत्राय द्वे चैवाङ्गिरसे तथा ।
द्वे कृशाश्वाय विदुषे तासां नामानि मे श्रृणु १०५
अरुन्धती वसुर्यामलम्वा भानुर्मरुत्वतो ।
सङ्कल्पा च मुहुर्ता च साध्याविश्वा च तादृशी ।१०६
धर्मपत्न्यो दश त्वेतास्तास्वपत्यानि मे श्रृणु ।
विश्वेदेवास्तु विश्वायाः साध्याः साध्यान जायत ।१०७
मरुत्वत्यां मरुत्वन्तो वसोश्च वसवः स्मृता ।
भानोस्तु भानवः पुत्राः मुहुर्ताया मुहतजाः ।१०८
लम्वायाश्चैव धोषोऽथ नागवीथी तु यामिजा ।
पृथिवीविषय सर्वमरुन्धत्यामजायत ।
सङ्कल्पायास्तु सर्वात्मा जज्ञे सङ्कल्प एव हि ।१०९

हे मैत्रेयजी ! सुना जाता हैकि फिर दक्ष प्रजापतिने साठ कन्याएँ उत्पन्न की, उनमें से दस धर्म को, तेरह कश्यप को, सत्ताईस चन्द्रमा को और चार अरिष्टनेमि को व्याह दी ।१०३-१०४। तथा दो कन्याओं का विवाह वहुपुत्र से, दो का अंगिरा से और दो का कृशाश्व के साथ हुआ, तब उनके नाम कहता हूँ ।१०५। अरुन्धती, वसु, यामि, लम्बा, भानु,

मरुवती, संकल्पा, मुहूर्त्ता, साध्या और विश्वा, यह दसों धर्म की भार्या, हुई। अब इनके पुत्रों के विषय में सुनो-विश्वा से विश्वेदेवा और साध्या से साध्यगण हुए।१०६-१०७। मरुत्वती से मरुत्वान्, वसु से वसुगण, भानु से भानु और मुहूर्ता से मुहूर्ताभिमानी देवता उत्पन्न हुए।१०८ लवा से घोष, यामि से नागवीथि, अरुन्धती से पृथ्वी विषयक सभी जीव तथा सकल्या से सब प्राणियों में रहने वाले सकल्प की उत्पत्ति हुई।१०९

ये त्वनेकवसुप्राणदेवा ज्योतिः पुरोगमाः।
वसवोऽष्टौ समाख्यातास्तेषां वक्ष्यामि विस्तरम् ॥११०
आपो ध्रुवश्च सोमश्च धर्मश्चैवानिलोऽनलः।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवो नामभिः स्मृताः ॥१११
आपस्य पुत्रो वैतण्डः श्रमः ध्वनिस्तथा।
ध्रुवस्य पुत्रो भगवान्कालो लोकप्रकालनः ॥११२
सोमस्य भगवान्तर्चा वर्चस्वो येन जायते।
धर्मस्य पुत्रो द्रविणो हुतहव्यवहस्तथा ॥११३
मनोहरायां शिशिरः प्राणोऽथ वरुणस्तथा।
अनिलस्य शिवा भार्या तस्याः पुत्रो मनोजवः ॥११४
अविज्ञातगतिश्चैव द्वौ पुत्रावनिलस्य तु।
अग्निपुत्रः कुमारस्तु शरस्तम्बे व्यजायत ॥११५
तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठजाः।।
अपत्यं कृत्तिकानां तु कार्तिकेय इति स्मृतः ॥११६
प्रत्यूपस्य विदुः पुत्रमृषिं नाम्नाथ देवलम्।
दौ पुत्रौ देवलस्यापि क्षमाधन्तौ मनीषिणौ ॥११७

विभिन्न प्रकार का वसु ही जिनका जीवन है, ऐसे ८ वसु प्रसिद्ध है, अब मैं उनकी वंशावलि कहता हूँ।११०। वे आप, ध्रुव, सोम, धर्म, अनिल, अनल प्रत्यूष और प्रभास नाम से विख्यात हैं।१११। आपके चार पुत्र हुए जिनके नाम वैतण्ड, श्रम, शाँत और ध्वनि थे। ध्रुवका पुत्र लोकों का संहार करने वाला काल हुआ।११२। सोम के पुत्र वर्चा हुए, जिनसे

वर्चस्व की प्राप्ति होती है। धर्म ने अपनी पत्नी मनोहरा से द्रविण, हुत, हव्यवह, शिशिर प्राण और वरुणा नामक पुत्र उत्पन्न किये। अनिल की पत्नी शिवा के मनोजव और अविज्ञातगति नामक दो पुत्र हुए। अग्नि का कुमार नामक पुत्र सरकण्डे से उत्पन्न हुआ ॥ ११३-११५ ॥ शाख, विशाख और नैगमेय उससे छोटे भ्राता हुए। कृत्तिकाओं का पुत्र कार्त्तिक हुआ ।११६। प्रत्यूषा के पुत्र देवल नामक ऋषि हुए जिनके दो क्षमाशील एवं विद्वान पुत्र उत्पन्न हुये थे ।११७।

बृहस्पतेस्तु भगिनी वरस्त्री ब्रह्मचारिणी ।
योगसिद्धा जगत्कृत्स्नमसक्ता विचरत्युत । ११८
प्रभासस्य तु सा भार्या वसूनामष्टमस्य तु ।
विश्वकर्मा महाभागस्तस्या जज्ञे प्रजापतिः ॥११९
कर्ता शिल्पसहस्राणां त्रिदशानां च वर्द्धकी ।
भूषणानां च सर्वेषां कर्ता शिल्पवतां वरः ॥१२०
यः सर्वेषां विमानानि देवतानां चकार ह ।
मनुष्याश्चोपजीवन्ति यस्य शिल्पं महात्मनः ॥१२१
तस्य पुत्रास्तु चत्वारस्तेषा नामानि शृणु ।
अजैकपादहिर्बुध्न्यस्त्वष्टा रुद्रश्च वीर्यवान् ॥१२२
त्वष्टुश्चाप्यात्मजः पुत्रो विश्वरूपो महातपाः
हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्चापराजितः ॥१२३
वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्दी रैवत स्मृतः ।
मृगाव्याधश्च शर्वश्च कपाली च महामुने ॥१२४
एकादशैते कथिता रुद्रास्त्रिभुवनेश्वराः ।
शतं त्वेकं समाख्यातं रुद्राणाममितौजसाम् ॥१२५

अष्टम वसु प्रभास का विवाह बृहस्पतिजी की ब्रह्मचारिणी और सिद्ध योगिनी बहिन वरस्त्री से हुआ, वह अनासक्त भाव से पृथ्वी पर भ्रमण करती फिरती थी। उसके द्वारा प्रभास वसु ने प्रजापति विश्वकर्मा को उत्पन्न किया जो सहस्रों शिल्पों के निर्माता, शिल्पियों में श्रेष्ठ देव-शिल्पी हुए ११८-११९। उन्हीं ने देवताओं के सब विमानों की रचना की

इनकी शिल्प विद्या के आश्रय से अनेक मनुष्य अपने जीवन का निर्वाह करते हैं ।१२१। उन विश्वकर्मा के अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य त्वष्टा और रुद्र नाम के चार पुत्र हुए ।१२२। उनमें से त्वष्टा के पुत्र का नाम विश्वरूप हुआ । हे महामुने ! हर, बहुरूप' त्र्यम्बक, अपराजित, वृषाकपि, शम्भु, कपर्दी, रैवत, मृगव्याध, शर्व और कपाली नामक यह ११ रुद्र तीनों लोकों के अधीश्वर हुए । ऐसे सैकड़ों ही अत्यत तेजस्वी एकादश रुद्र विख्यात हैं ।१२३-१२५।

कश्यपस्य तु भार्या यास्तासां नामानि मे शृणु ।
अदितिर्दितिर्दनुश्चैवारिष्टा च सुरसा खसा ॥१२६
सुरभिर्विनता चैव ताम्रा क्रोधवशा इरा ।
कद्रुर्मुनिश्च धर्मज्ञ तदपत्यानि मे शृणु ॥१२७
पूर्वमन्वन्तरे श्रेष्ठा द्वादशासन्सुरोत्तमाः ।
तुषिता नाम तेऽन्योऽन्यमूचुर्वैवस्वतेऽन्तरे ॥१२८
उपस्थितेऽतियशसश्चाक्षुषस्यान्तरे मनोः ।
समवायीकृताः सर्वे समागम्य परस्परम् ॥१२९
आगच्छत द्रुतं देवा अदितिं सम्प्रविश्य वै ।
मन्वन्तरे प्रसूयामस्तन्नः श्रेयो भवेदिति ॥१३०
एवमुक्त्वा तु ते सर्वे चाक्षुषस्यान्तरे मनोः ।
मारीचात्कश्यपाज्जाता अदित्या दक्षकन्यया ॥१३१
तत्र विष्णुश्च शक्रश्च जज्ञाते पुनरेव हि ।
अर्यमा चैव धाता च त्वष्टा पूषा तथैव च ॥१३२
विवस्वान्सविता चैव मित्रो वरुणा एव च ।
अंशुर्भगश्चातितेजा आदित्या द्वादश स्मृताः ॥१३३
चाक्षुषस्यान्तरे पूर्वमासन्ये तुषिताः सुराः ।
वैवस्वतेऽन्तरे तेव आदित्या द्वादश स्मृताः ॥१३४

अब कश्यपजी की जो भार्याएँ हुईं उनके नाम अदिति, दिति, दनु अरिष्टा, सुरसा, खसा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद्रु और मुनि थे। अब उनकी संतति सुनो ।१२६-१२७। चाक्षुष मन्वतंर में तुषित नामक

बारह देवता थे। वे उस मन्वंतर के समाप्त होने और वैवस्वत मन्वन्तर के आने पर परस्पर बोले।१२८-१२९। हे देवताओ! चलो, अदिति के गर्भ में प्रविष्ठ होकर हम शीघ्रही वैवस्वत मन्वन्तर में उत्पन्न हों, हमारे लिये यही हितकर होगा १३०। इस प्रकार निश्चय कर उन्होंने कश्यप पत्नी दक्षजा अदिति के उदर से जन्म लिया और तव वे विष्णु इंद्र, अर्यमा धाता त्वष्टा पूषा विवस्वान्, सविता, मैत्र, वरुण, अंशु और भग नामक द्वादश आदित्य हुए १३१-१३३। इस प्रकार चाक्षुप मन्वतंर में द्वादश आदित्य हो गये।१३४।

याः सप्तविंशतिः प्रोक्ताः सोमपत्न्योऽथ सुव्रताः।
सर्वा नक्षत्रयोगिन्यस्तन्नाम्न्यश्चैव ताः स्मृताः।१३५।
तासोमपत्यान्यभवन्दीप्तान्यमिततेजसाम्।
अरिष्टनेमिपत्नीमपत्यानीह षोडश। ३६।
बहुपुत्रस्य विदुषश्चतस्रो विद्युतः स्मृता।
प्रत्याङ्गिरसजाः श्रेष्ठा ऋचो ब्रह्मषिसत्कृताः।१३७।
कृशाश्वस्य तु देवर्षे र्देवप्रहरणाः स्मृताः।
एते युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव हि।१३८।
सर्वे देवगणास्तात त्रयस्त्रिंशत्तु छन्दजाः।
तेषामपीह सततं निरोधोत्पत्तिरुच्यते।१३९।
यथा सूर्यस्य मैत्रेय उदयास्तमनाविह।
एवं देवनिकायास्ते सम्भवन्ति युगे युगे।१४०।

चंद्रमा की जिन २७ भार्याओं के विषय में कहा जा चुका है, वे सव नक्षत्र योगिनियाँ अपने उन्हीं नामों से प्रसिद्ध हैं।१३५। उन अत्यन्त तेजस्विनियों ने अनेक पुत्र उत्पन्न किये। अरिष्टनेमि की पत्नियों के १६ पुत्र उत्पन्न हुए थे।१३६। बहुपुत्र की भार्या विद्युत चार रूप वाली है। ऋचाओं के अभिमानी देवता प्रत्यंगिरा से उत्पन हुए और देवप्रहरण नामक देवता देवर्षि कृशाश्व से उत्पन्न हुए। यह एक हजार युगों के बाद पुनः उत्पन्न होते हैं।१३७-१३८। यह तेंतीसों देवता स्वेच्छा से जन्म लेने में समर्थ हैं, कहा जाता है कि इनकी

समर्थ हैं, कहा जाता हैं कि इनकी उत्पत्ति-निरोध इस लोक में निरन्तर होती रहती हैं।१३९। हे मैत्रेयजी ! जैसे संसार में सूर्य का उदयास्त निरन्तर होता है वैसे ही इन देवताओं की उत्पत्ति युग-युग में होतीहै।१४०

दित्या पुत्रद्वयं जज्ञे कश्यपादिति नः श्रुतम् ॥
हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षश्च दुर्जयः ॥१४१
सिंहिका चाभवत्कन्या विप्रचित्तेः परिग्रहः ।
हिरण्यकशिपोः पुत्राश्चत्वारः प्रथितौजसः ॥१४२
अनुह्लादश्चैव ह्लादश्च प्रह्लादश्चै बुद्धिमान् ।
सङ्ह्लादश्च महावीर्या दैत्यशविवर्द्धनाः ॥१४३
तेषां मध्ये महाभाग सर्वत्र समदृग्वशी ।
प्रह्लादः परमां भक्ति य उवाच जनार्दने ॥१४४
दैत्येन्द्रदीपितो वह्निः सर्वाङ्गोपचिता द्विज ।
न ददाह च यं विप्र वासुदेवे हृदि स्थिते ॥१४५
महार्णवान्तःसलिले स्थितस्य चलतो मही ।
चचाल सकला यस्य पाशवद्धस्य धीमतः ॥१४६
न भिन्नं विविधैः शस्त्रैर्यस्य दैत्येन्द्रपातितैः ।
शरीरमद्रिकठिनं सर्वत्राच्युतचेतसः ॥१४७

सुना जाता है कि कश्यपजी ने दिती के गर्भ से अत्यन्त दुर्जय हिरण्य कशिपु और हिरण्याक्ष नामक दो पुत्र एवं सिंहिका नाम की एक पुत्री उत्पन्न की, जिसका विवाह विप्रचित्ति से हुआ। हिरण्युकशिपु के चार पुत्र अनुहलाद, हलाद प्रहलाद, और संहलाद नामक हुए, इन्हीं से दैत्य वंश की वृद्धि हुई।१४१-१४३। हे महाभाग उन चारों में प्रहलाद सबको समान भाव से देखने वाले और जितेन्द्रिय हुये, उन्होंने भगवान् की परम भक्ति का वर्णन किया ॥ १४४ ॥ जिन्हें दैत्यराज हिरण्कशिपु द्वारा जलाई गई अग्नि ने सब ओर से जलाना चाहा, परन्तु हृदय में भगवान का निवास होने के कारण उनको दग्ध नहीं किया जा सका। १४४। जो पाश में बँधकर समुद्र के जल में पड़े हुए इधर-उधर डोले तो संपूर्ण पृथ्वी काँपने लगी थी।१४५। जिनका शरीर पर्वत के समान कठोर

था और भगवान् में चित्त रहने के कारण दैत्यराज के शस्त्रास्त्र से भी वह छिन्न-भिन्न न हो सका।१४७।

विषानलोज्ज्वलमुखा यस्य दैत्यप्रचोदिताः।
नान्ताय सर्वपतयो बभूवुरुरुतेजसः ॥१४८
शैलैराक्रान्तदेहोऽपि यः स्मरन्पुरुषोत्तमम्।
तत्याज नात्मनः प्राणान् विष्णुस्मरणदर्शितः।१४९।
पतन्तमुच्चादवनिर्यमुपेत्य महामतिम्।
दधार दैत्यपतिना क्षिप्तं स्वर्गनिवासिना।१५०।
यस्य संशोषको वायुर्देहे दैत्येन्द्रयोजितः
अवाप सक्षय सद्यश्चित्तस्थे मधुसूदने।१५१।
विषाणभङ्गमुन्मत्ता मदहानिं च दिग्गजाः।
यस्य वक्षः स्थले प्राप्ता दैत्येन्द्रपरिणामिताः।१५२।
यस्य चोत्पादिता कृत्या दैत्यराजपुरोहितैः।
बभूव नान्ताय पुरा गोविन्दासक्तचेतसः।१५३।
शम्वरस्य च मायानां सहस्रमतिमायिनः।
यस्मिन्प्रयुक्त चक्रेण कृष्णस्य वितथीकृतम्।१५४।
दैत्येन्द्रसूदोपहृतं यस्य हालाहल विषम्।
जरयामास मतिमानर्विकारममत्सरी।१५५।
समतचेता जगत्यस्मिन्यः सर्वेष्वेव जन्तुषु।
यथात्मनि तथान्येषां परं मैत्रगुणान्वितः।१५६।
धर्मात्मा सत्यशौर्यादिगुणानामाकरः परः।
उपमानमशेषांणा साधूनां यः सदाभवत्।१५७।

दैत्यपति के द्वारा प्रेषित विषाग्नि छोड़ते हुए सर्प भी जिस भक्त का अन्त न कर सके। जिस भक्तराज के हृदय पर भगवत्स्मरण रूपी कवच स्थित था, जिससे पत्थरों की भीषण मार भी उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकी ।।१४८-१४९। दैत्यराज द्वारा जिसे स्वर्ग से नीचे गिराये जाने पर पृथ्वी ने ऊँचा उठकर मध्य में ही अपने अंक में ले लिया ।।१५०।।

: चित्त।

में स्थित रहने के कारण सर्व शोषक वायु भी जिनके शरीर का स्पर्श करते ही शांत हो गया।१५१। जिनके वक्षःस्थल में लगकर दिग्गजों के दाँत भी टूट गये और संपूर्ण मद नष्ट हो गया।१५२। दैत्य-पुरोहित द्वारा प्रेषित कृत्या भगवदासक्त भक्तराज का अन्त करने में समर्थ न हो सकी १३५। शम्बरासुर की हजारों मायाएँ भी जिनका कुछ न बिगाड़ सकी और भगवान् के चक्र से नष्ट हो गईं।१५४। जिन मत्सरहीन मतिमान् ने रसोइये द्वारा लाए हुए विष को भी विकार रहित भाव से पी लिया १५५। जो इस विश्व को सभी प्राणियों के प्रति समान भाव वाले तथा दूसरों से अपने समान ही वर्ताव वाले थे।१५६। तथा जो परम धर्मात्मा, सत्पथ और शौर्य आदि गुणों से परिपूर्ण और साधुजन के लिए उपमा रूप थे।१५७।



सोलहवां अध्याय

कथितो भवता वंशो मानवानां महात्मनाम् ।
कारणं चास्य जगतो विष्णुरेव सनातनः ।१।
यत्वेतद् भगवानाह प्रह्लादां दैत्यसत्तमम् ।
ददाह नाग्निर्नास्त्रैश्च क्षुण्णस्तत्याज जीवितम् ।२।
जगाम वसुधा क्षोमं यत्राब्धिसलिले स्थिते ।
पाशैर्बद्धे विचलति विक्षिप्ताङ्गैः समाहता ।३।
शैलैराक्रान्तदेहोऽपि न ममार च यः पुरा ।
त्वया चातीव माहात्म्य कथित यस्य धीमतः ॥४
तस्य प्रभावमतुल विष्णोर्भक्तिमतो मुने ।
श्रोतुमिच्छामि यस्यैतच्चरितं दीप्ततेजसः ॥५
किन्निमित्तमसौ शस्त्रैर्विक्षिप्तो दितिजैर्मुने ।
किमर्थं चाब्धिसलिले विक्षिप्तो धर्मतत्परः ॥६

आक्रान्तः पर्वतैः कस्माद्दष्टश्चैव महोरगैः ।
क्षिप्तः किमद्रिशिखरात्कि वा पावकसञ्चये ॥७
दिग्दन्तिनां दन्तभूमि स च कस्मान्निरूपितः ।
संशोषकोऽनिलश्चास्य प्रयुक्तः कि महासुरैः ॥८

श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे भगवन् ! आपने महात्मा मनुपुत्रों का वृतान्त कहा और इस जगत् के सनातन कारण भगवान् विष्णु को बताया ।१। परंतु अपने दैत्यवर प्रहलाद के अग्नि द्वारा भस्म न होने और शस्त्रास्त्रों के आघात से भी न मरने की जो बात कही ।२। तथा यह भी कहा कि उनके पास में बाँधकर समुद्र के जल में पड़े हुए हिलने डुलने से पृथ्वी भी हिलने लगी थी तथा पत्थरों की बौछार से भी उनका प्राणान्त नहीं हुआ इस प्रकार आपने उनकी बहुत ही महिमा का वर्णन किया ।३। जिन अत्यंत तेजस्वी के ऐसे अद्भुत चरित्र आपने कहे हैं, उन विष्णुभक्त महात्मा के प्रभाव को सुनने का इच्छुक हूँ ४ हे मुनिश्रेष्ठ ! ऐसे अत्यन्त धर्म परायण को दैत्यों ने शस्त्रास्त्र से क्यों संतप्त किया और समुद्र के जल में क्यों डाला ? ३। पर्वतों से किस लिए दबाया, सर्पों से क्यों डसवाया ? पर्वत शिखर से क्यों गिराया और अग्नि में क्यों जलाया ?७। दिग्गजों के दाँतों से क्यों रुँधवाया और सर्व शोषक वायु को भी उनके अहित के लिये क्यों नियुक्त किया ? ८।

कृत्यां च दैत्यगुरवो युयुजुस्तत्र किं मुने ।
शम्बरश्चापि मायानां सहस्रं कि प्रयुक्तवान् ॥९
हालाहलं विषमहो दैत्यसूदैर्महात्मनः ।
कस्माद्दत्तं विनाशाय यज्जीर्णं तेन धीमता ॥१०
एतत्सर्वं महाभाग प्रह्लादस्य महात्मनः ।
चरितं श्रोतुमिच्छामि महाताहात्म्यसूचकम् ॥११
न हि कौतूहलं तत्र यद्दैत्यैर्न हतो हि सः ।
अनन्यमनसो विष्णौ कः समर्थो निपातने ॥१२
तस्मिन्धर्मपरे नित्य केशवाराधनोद्यते ।
स्ववंशप्रभवैर्दैत्यैः कृतो द्वेषोऽतिदुष्करः ॥१३

धर्मात्मनि महाभागे विष्णुभक्ते विमत्सरे ।
दैतेयैः प्रहृतं कस्मात्तन्ममाख्यातुर्हसि ॥१४
प्रहरन्ति महात्मानो विपक्षा अपि नेदृशे ।
गुणैस्समन्विते साधौ किं पुनर्यः स्वपक्षजः ॥१५
तदेतत्कथ्यतां सर्वं विस्तरान्मुनिपुङ्गव ।
दैत्येश्वरस्य चरितं श्रोतमिच्छाम्यशेषतः ॥१६

हे मुने ! दैत्य गुरुओं ने उन पर कृत्या क्यों चलाई शंबारासुर ने अपनी मायाओं को क्यों प्रयुक्त किया ? ९। दैत्यराज के रसोईयों ने उन्हें मारने को घोर विष क्यों दिया, जिसे वह पचा गये थे ! १० हे महाभाग महान् माहात्म्य के सूचक उस प्रह्लाद चरित्र को मैं पूर्ण रूप से सुनना चाहता हूँ ११। दैत्य उन्हें मारने में असमर्थ रहे, यह तो आश्चर्य का विषय नहीं है, क्योंकि जिसका मन भगवान् में अनन्य भाव से लगा है, उसे मारने मे समर्थ कौन हो सकता । १२। नित्य धर्म परायण तथा भगवनाराधक भक्त से उन्हीं के कुल वालों ने ऐसा भीषण द्वेष किया और उन धर्मात्मा, महाभाग, अमत्सर विष्णु भक्त को दैत्यों ने इतना घोर दुःख दिया, इसका कारण मेरे प्रति कहिए १३-१४। साधुजन तो ऐसे गुणी पुरुषों के विपक्षी होने पर भी उन पर इस प्रहार नहीं करते, जिस मे वह तो अपने ही पक्ष के थे १५। इसलिये हे मुनिवर ! इस सम्पूर्ण वृतान्त को विस्तार से कहिए, क्योंकि मैं उन दैत्यराज के चरित्र श्रवण का अत्यन्त इच्छुक हूँ १६।

—❀—

सत्रहवाँ अध्याय

मैत्रेय श्रूयतां सम्यक् चरित तस्य धीमत ।
प्रहलादस्य सदोदारचरितस्य महात्मनः ॥१
दितेः पुत्रो महावीर्यो हिरण्यकशिपुः पुरा ।
त्रैलोक्य वशमानिन्ये ब्रह्मणोवरदर्पितः ॥२

इन्द्रत्वमकरोद्दैत्य स चासीत्सविता स्वयम् ।
वायुरग्निरपां नाथः सोमश्चाभून्महासुरः ॥३
धनानामधिपः सोऽभूत्स एवासीत्स्वयं यमः ।
यज्ञभागानशेषांस्तु स स्वयं बुभुजेऽसुरः ॥४
देवाः स्वर्गं परित्यज्य तत्त्रासान्मुनिसत्तम :
विचेरुरवनौ सर्वे बिभ्राणा मानुषीं तनुम् ॥५
जित्वा त्रिभुवनं सर्वं त्रैलोक्यैश्वर्यदर्पितः ।
उपगीयमानो गन्धर्वैर्बुभुजे विषयान्प्रियान् ॥६
पानासक्तं महात्मनं हिरण्यकशिपुं तदा ।
उपासाञ्चक्रिरे सर्वे सिद्धगन्धर्वपन्नगाः ॥७

श्री पराशरजी ने कहा-हे मैत्रेयजी ? अब तुम उन मेधावी और उदार चेता महात्मा प्रहलाद के चरित्र को ध्यान से सुनो १। प्राचीनकाल की बात है कि दिति-पुत्र हिरण्यकशिपु ने ब्रह्माजी से वर पाकर अत्यन्त गर्व पूर्वक तीनों लोकों को विजय किया था ।२। वह दैत्य इन्द्र पद पर बैठकर स्वयं ही सूर्य, वायु, अग्नि वरुण और चन्द्रमा बना हुआ था ।३। वही कुबेर और यमराज बन बैठा तथा वही संपूर्ण यज्ञों का भोक्ता हो गया ।४। हे मुनि श्रेष्ठ ! उसके भय के कारण समस्त देवता स्वर्ग का त्याग कर मनुष्य वेष में पृथ्वी पर घूमने लगे ।५। इस प्रकार उसने तीनों लोकों को वश में कर लिया और इस गर्व से गर्वित होकर गंधर्वों से अपनी स्तुति कराता और इच्छित भोगों का उपभोग करता था ।६। उस समय सभी सिद्ध, गंधर्व, नाग इत्यादि उस मद्यपान आदि में आसक्त हिरण्यकशिपु की पूजा करने लगे थे । ७ ।

अवादयन् जगुश्चान्ये जयशब्दं तथापरे ।
दैत्यराजस्य पुरतश्चक्रु सिद्धा मुदान्विताः ॥८
तत्र प्रनृत्ताप्सरसि स्फाटिकाभ्रमयेऽसुरः ।
पपौ पानं मुदा युक्तः प्रसादे सुमनोहरे ॥९
तस्य पुत्रो महाभागः प्रहलादो नाम नामतः ।
पपाठ बालपाठ्यानि गुरुगेहङ्गतोऽर्भकः ॥१०

एकदा तु स धर्मात्मा जगाम गुरुणा सह ।
पानासक्तस्य पुरतः पितुर्दैत्यपतेस्तदा ॥११
पादप्रणामावनतं तमुत्थाप्य पिता सुतम् ।
हिरण्यकशिपु प्राह प्रह्लादम मतौजसम् ॥१२
पठ्यतां भवता वत्स सार भूत सुभाषितम् ।
कालेनैतावता यत्त सदोद्युक्तेन शिक्षितम् ॥१३

उस दैत्यराज हिरण्यकशिपु के समक्ष कोई सिद्ध बाजे बजाते और कोई सिद्ध उसका जयजय कार करते थे और वह असुर स्फटिक और अभ्रशिला-निर्मित सुरम्य भवन में पड़ा हुआ मद्यपान करता रहता था।
८-९। उसी हिरण्यकशिपु का वह प्रहलाद नामक अत्यंत भाग्यशाली पुत्र हुआ और वह गुरु के यहाँ जाकर बालोचित शिक्षा ग्रहण करने लगा।
१०। एक दिन वह धर्मात्मा बालक अपने पिता दैत्यराज के पास अपने गुरु के साथ गया, जहाँ वह मद्यपान कर रहा था ।११। उस समय उस का पुत्र उसके चरणों में झुक गया,जिसे उठाते हुए हिरण्यकशिपु ने कहा
।१२। हिरण्यकशिपु बोला—हे पुत्र ! तुमने अध्ययन में लगे रहकर अब तक जो कुछ शिक्षा प्राप्त की है, उसे सार रूप में मुझे बताओ ।१३।

श्रूयतां तात वक्ष्यामि सारभूतं तवाज्ञया ।
समाहितमना भूत्वा यन्मे चेतस्यवस्थितम् ॥१४
अनादिमध्यान्तमजमवृद्धिक्षयमच्युतम् ।
प्रणतोऽस्म्यन्तसन्तानं सर्वकारणकारणम् ॥१५
एतन्निशम्य दैत्येन्द्रः सकोपो रक्तलोचनः ।
विलोक्य तद्गुरुं प्राह स्फुरिताधरपल्लवः ॥१६
ब्रह्मबन्धो किमेतत्ते विपक्षस्तुतिसहितम् ।
असार ग्राहितो बालो मामवज्ञाय दुर्मते ॥१७
दैत्येश्वर न कोपस्य वशमागन्तुमर्हसि ।
ममोपदेशजनितं नायं वदति ते सुत ॥१८

अनुशिष्टोऽसि केनेदृग्वत्स प्रह्लाद कथ्यताम् ।
मयोपदिष्टं नेत्येष प्रब्रवीति गुरुस्तव ॥१९
शास्ता विष्णुरशेषस्य जगतो यो हृदि स्थितः ।
तमृते परमात्मानं तात कः केन शास्यते ॥२०

प्रह्लाद ने कहा हे पिताजी ! मेरे मन में जो सार रूप से है,उसे मैं आपकी आज्ञा से सुनाता हूँ, आप ध्यान से सुनें ।१४। आदि,मध्य और अन्त से रहित, वृद्धि और क्षय से परे, जन्महीन, अच्युत, सभी कारणों के कारण तथा संसार की सृष्टि, स्थिति और प्रलयकर्त्ता भगवान् विष्णु को मैं प्रणाम करता हूँ ।१५। श्री पराशरजी बोले—प्रह्लादकी बात सुन कर दैत्यराज के नेत्र क्रोध से लाल हो गये और वह उसके गुरु की ओर देखता हुआ कंपित ओठों से कहने लगा १६। हिरण्यकशिपु ने कहा-अरे मतिहीन विप्र ! तूने मेरी आज्ञा की अवहेलना और तिरस्कार कर मेरे विपक्षी की स्तुति सहित सारहीन शिक्षा दी है ।१७।गुरु ने कहा—हे दैत्य-राज ! आप क्रोधित न हों आपके इस पुत्र ने मेरे द्वारा सिखायी हुई बात आपसे नहीं कही है।१८।इस पर हिरण्यकशिपु ने कहा—हे पुत्र प्रह्लाद ! तुमको यह शिक्षा किसने दी है, तुम्हारे गुरुजी कह रहे हैं कि यह शिक्षा मेरी नहीं है १९। प्रह्लाद ने कहा-हे पिताजी ! वही भगवान् सबके हृदय में रह कर संसार को उपदेश देते हैं । उनके अतिरिक्त अन्य कौन किसी को कोई सीख दे सकता है ! ।२०।

कोऽयं विष्णुः सुदुर्बुद्धे यं ब्रवीषि पुनः पुनः ।
जगतामीश्वर येह पुरतः प्रसभ मम ॥२१
न शब्दगोचरं यस्य योगिध्येयं पदम् ।
यतो यश्च स्वय विश्व स विष्णुः परमेश्वरः ॥२२
परमेश्वरसंज्ञोऽज्ञ किमन्तो मय्यवस्थिते ।
तथापि मर्तुकामस्त्व प्रब्रवीपि पुनः पुनः ॥२३
न केवलं तात मम प्रजानां स ब्रह्मभूतोभवाश्च विष्णुः ।
धाता विधाता परमेश्वरश्च प्रसीद कोपं कुरुषे किमर्थम् ॥२४

प्रविष्टः कोऽस्य हृदये दुर्बुद्धेरतिपापकृत् ।
येनेदृशान्यसाधूनि वदत्याविष्टमानसः ॥२५
न केवलं मद्धृदयं स विष्णु—
राक्रम्य लोकानखिलानवस्थितः ।
स मां त्वदादींश्च पितस्समस्ता—
न्सस्तचेष्टासु युनक्ति सर्वगः ॥२६
निष्कास्यतामयं पापः शास्यता च गुरोर्गृहे ।
योजितो दुर्मतिः केन विपक्षविषयस्तुतौ ॥२७

हिरण्यकशिपु ने कहा – रे मूर्ख ! तू जिस विष्णु का मुझ संसार के ईश्वर के समक्ष धृष्टता पूर्वक वर्णन कर रहा है, वह कौन है, यह मुझे बता ? २१।प्रह्लादने कहा-जिसका परमपद योगियों द्वारा चिंतन योग्य है और वाणीसे जिसका वर्णन सम्भव नहीं है तथा जिससे संसार उत्पन्न हुआ है और जो स्वयं विश्व रूप है, वह भगवान् विष्णु ही परमेश्वर हैं, २२। हिरण्यकशिपुने कहा-अरे मूर्ख ! मेरे अतिरिक्त और कौन परमेश्वर हो सकता है ? परन्तु तू बारबार किसी अन्य का गुण गाकर मौतके मुख में जाना चाहता है २३।प्रह्लादने कहा–हे पिताजी ! वह ब्रह्म भूतविष्णु मेरा ही नहीं सम्पूर्ण प्रजा का और आपका भी सृष्टा, नियंता और ईश्वर है। ऐसा जानकर आप प्रसन्न हों, निरर्थक क्रोध न करें २४। हिरण्यकशिपु ने कहा–इस दुर्बुद्धि बालक के हृदय में कौन पापी प्रविष्ट हो गया है, जो इसे दबाकर इससे कुवाक्य कहला रहा है २५। प्रह्लादने कहा—हे पिताजी। वह विष्णु भगवान् ही मेरे हृदय में क्या, सभी लोकों में आत्म रूप से स्थित हैं वही सर्वगामी मुझको, आपको और संसारके सभी जीवों को सचेष्ट करते हैं ।२६। हिरण्यकशिपु ने कहा—इस पापी को तुरन्त यहाँ से ले जाकर गुरुके शासन में भले प्रकार रखो। न जाने किस ने इस छोटी बुद्धि वाले को मेरे विरोधी की प्रशंसामें लगा दिया है २७।

इत्युक्तोऽसौ तदा दैत्यैर्नीतो गुरुगृहं पुनः ।
जग्राह विद्यामनिशं गुरुशुश्रूषणोद्यतः ॥२८

कालेऽतीतेऽति महति प्रह्लादमसुरेश्वरः ।
समाहूयाब्रवीद्गाथा काचित्पुत्रक गीयताम् ॥२९
यतः प्रधानपुरुषौ यतश्चैतच्चराचरम् ।
कारणं सकलस्यास्य स नो विष्णुः प्रसीदतु ॥३०
दुरात्मा वध्यतामेष नानेनार्थोऽस्ति जीवता ।
स्वपक्षहानिकर्तृत्वाद्यः कुलाङ्गारतां गतः ॥३१
इत्याज्ञप्तास्ततस्तेन प्रगृहीतमहायुधाः ।
उद्यतास्तस्य नाशाय दैत्यः शतसहस्रशः ॥३२
विष्णुःशस्त्रेषु युष्मासु मयि चासौ व्यवस्थितः ।
दैतेयास्तेन सत्येन माक्रमन्त्वायुधानि मे ॥३३
ततस्तैश्शतशो दैत्यै शस्त्रौधैराहतोऽपि सन् ।
नावाप वेदनामल्पामभच्चैव पुनर्नवः ॥३४

श्री परशजी ने कहा—दैत्यराज के आदेश से दैत्यों ने उन्हें पुनः गुरुजी के यहाँ पहुँचा दिया जहाँ वह दिन-रात गुरुजी की सेवा-सुश्रूषा करते हुए विद्या पढ़ने लगे ।२८। बहुत दिन बीतने पर हिरण्यकशिपु ने उन्हें फिर अपने पास बुलाकर कहा—हे पुत्र ! आज कोई गाथा कहो।२९ प्रह्लाद बोले—जिनसे प्रधान, पुरुष और सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति हुई है, उस सकल प्रांच के कारण रूप भगवान् विष्णु हम पर प्रसन्न हों ।३०। हिरण्यकशिपु ने कहा—अरे,यह बालक तो अत्यन्त दुरात्मा प्रतीत होता है इसके जीवित रहने से कोई लाभ नहीं है, इसलिए इसका वधकर दो,क्यों कि यह अपने पक्ष के हानिकारक और कुल के लिये अंगार रूप है ३१श्री पराशरजी ने कहा–दैत्यराजकी आज्ञा सुनकर सैकड़ों हजारों दैत्य प्रभाव-शाली शस्त्रास्त्रों से उन्हें मारने लगे ३२।तव प्रह्लादने कहा–हे दैत्यगण। भगवान् तो तुम में, मुझ में और इन शस्त्रास्त्रों में भी विद्यमान हैं, इस सत्य के कारण इन शस्त्राओं का प्रभाव मुझ पर नहीं हो सकता ।३३। श्रीपरशरजी ने कहा—फिर तो उन असंख्य दैत्यों ने शस्त्र-समूह से उन पर आघात किये, परन्तु उन्हें किंचित भी वेदना न हुई और वे जैसे के तैसे बल से परिपूर्ण रहे आये ।३४।

दुर्बुद्धे विनिवर्तस्व वैरिपक्षस्तवादतः ।
अभयं ते प्रयच्छामि मातिमूढमतिर्भव ।३५।
भय भयानामपहारिणि स्थिते
मनस्यनन्ते मम कुत्र तिष्ठति ।
यस्मिन्स्मृते जन्मजरान्तकादि
भयानि सर्वाण्यपयान्ति तात ।३६।
भो भो सर्पाः दुराचारमेनमत्यन्तदुर्मतिम् ।
विषज्वालाकुलैर्वक्त्रैः सद्यो नयत संक्षयम् ।३७।
इत्युक्तास्ते ततः सर्पा कुहकास्तक्षकादयः ।
अदशन्त समस्तेषु गात्रेष्वतिविषोल्बणाः ।३८।
स त्वासक्तमतिः कृष्णे दश्यमानो महोरगैः ।
न विवेदात्मनो गात्रं तत्स्मृत्याह्लादसुस्थितः ।३९।
दंष्ट्रा विसीर्णा मणयः स्फुटन्ति
फणेषु तापो हृदयेषु कम्पः ।
नास्य त्वचः स्वल्पमपीह भिन्नं
प्रशाधि दैत्येश्वर कार्यमन्यत् ।४०।
हे दिग्गजा ! सङ्कटदन्तमिश्रा
घ्नतैनमस्मद्रिपुपक्षभिन्नम् ।
तज्जा विनाशाय भवन्ति तस्य
यथारणेः प्रज्वलितो हुताशः ।४१।

हिरण्यकशिपु—हे खोटी मति वाले पुत्र ! अब तू विपक्षी की स्तुति करना छोड़ दे, इस समय मैं तुझे अभय प्रदान करता हूँ, भविष्य में ऐसी मूर्खता न करना । ३५। प्रहलाद ने कहा—हे पिताजी! जिनके स्मरण मात्र से जन्म, जरा और मृत्यु के सभी भय भाग खड़े होते हैं, उन भयहारी भगवान के हृदय में विराजमान होते हुए, मेरे लिए भय कहाँ रहेगा ? ।३७। हिरण्यकशिपु ने कहा-हे सर्पो ! यह बालक अति खोटी बुद्धि वाला और दुराचारी है, तुम इसे विषाग्नि युक्त मुखों से शीघ्र ही दग्ध

कर डालो ।३७। श्री पराशरजी ने कहा — आज्ञा मिलते ही अत्यंत क्रूर और विषाग्नि युक्त तक्षकादि सर्पों ने प्रह्लाद के सब शरीर को दंशित किया। परन्तु भगवान में आसक्त चित्त होने के कारण उन्हें उन महा-सर्पों के काटने का कुछ भी आभास नहीं हुआ ।३८-३९। सर्पों ने कहा — हे दैत्यराज ! इसे काटने से हमारी दाढ़ें विशीर्ण हो गई। मणियों में दरार पड़ गई, फणों में दर्द होने लगा और हृदय कम्पायमान हो उठा फिर भी इस बालक की त्वचा कहीं से किंचत् भी न कट सकी। इस लिए अब आप हमें कोई और आज्ञा दीजिये ।४०। हिरण्यकशिपु ने कहा— हे दिग्गजा ! मेरे शत्रुओं द्वारा बहकाये हुए इस बालक को अपने सकीर्ण दाँतों को मिलाकर उनके प्रहार द्वारा मार डालो। जैसे अरणी से उत्पन्न अग्नि अरुण को ही भस्म कर देता है, वैसे ही कोई-कोई जिससे उत्पन्न होते हैं, उसी के नाशक हो जाते हैं, ।४१।

ततः स दिग्गजैर्बालो भूभृच्छिखरसन्निभैः ।
पातितो धरणी पृष्टे विषाणर्वावपीडितः ।४२।
स्मरतस्तस्य गोविन्दमिभदन्ताः सहस्रशः ।
शीर्णा वक्षःस्थल प्राप्य स प्राह पितरं ततः ।४३।
दन्तागजानांकुलिशाग्रनिष्ठुराः
शीर्णा यदेते न बल ममैतत् ।
महाधिपत्तापविनाशनोऽयं
जनार्दनानुस्मरणानुभावः ।४४।
ज्वाल्यतामसुरा वह्निरपसर्पत दिग्गजाः ।
वायो समेधयाग्नि त्वं दह्यतामेष पापकृत् ।४५।
महाकाष्ठचयस्थं तमसुरेन्द्रसुतं ततः ।
प्रज्वाल्य दानवा वह्नि ददहुःस्वामिनोदिताः ।४६।
तातैष वह्निःपवनेरितोऽपि
न मां दहत्यत्र समन्ततोऽहम्
पश्यामि पद्मास्तरणास्तृतानि
शीतानि सर्वाणि दिशाम्मुखानि ।४७।

श्री पराशरजी ने कहा-यह सुनकर कर पर्वत की शिखर के समान विशाल देह वाले दिग्गजों ने उस बालक को पृथिवी पर डाल कर अपने दाँतों से रौंदने की बहुत चेष्टा की।३२। परन्तु भगवान् का स्मरण करते रहने के कारण उनकी देह से टकरा-टकरा कर दिग्गजों के दांत टूट गये। तब उनकी हाथियों को हतप्रभ देखकर प्रह्लाद ने अपने पिता से कहा कि दिग्गजों के वज्र जैसे दाँतों के टूटने में मेरा कोई बल नहीं है, यह केवल भगवान् के विपत्ति और क्लेश नाशक स्मरण का प्रभाव ही है।४३-४४ हिरण्यकशिपु ने कहा-अरे दिग्गजो ! अब तुम हट जाओ। हे दैत्यो ! तुम अग्नि जलाओ और हे वायो! तुम उस अग्नि को तीक्ष्ण वेग वाला एवं प्रज्वलित करो, जिससे पापी शीघ्र ही भस्म हो सके।४५। श्री पराशरजी बोले-अपने स्वामी के आदेशानुसार उन दानवों ने काष्ठ का एक विशाल ढेर लगाया और उनमें अग्नि प्रज्वलित करके प्रह्लाद को भस्म करने की चेष्टा करने लगे।४६। प्रह्लाद ने कहा-हे पिताजी ! वायु के प्रयत्न करने पर भी यह अग्नि भस्म करने में समर्थ नहीं हो रही है। मुझे सभी दिशायें ऐसी शीतल और सुहावनी लग रही हैं जैसे मेरे चारों ओर कमल के पुष्प बिछ रहे हों।४७।

अथ दैत्येश्वरं प्रोचुर्भार्गवस्यात्मज द्विजाः।
पुरोहिता महात्मानः साम्ना संस्तूय वग्मिनः।४८।
राजन्नियम्यतां कोपो बालेऽपि तनये निजे।
कोपोदेवानिकायेषु तेषु ते सफलो यतः।४९।
तथातथैनं बालं ते शासितारो वयं नृप।
यथा विपक्षनाशाय विनीतस्ते भविष्यति।५०।
बालत्व सर्वदोषाणां दैत्यराजास्पदं यतः।
ततोऽत्र कोपमत्यर्थं योक्तुमर्हसि नार्मके।५१।
न त्यक्ष्यति हरेः पक्षमस्माकं वचनाद्यदि।
ततःकृत्यां वधायास्य करिष्यामोऽनिवर्त्तिनीम्।५२।
एवमभ्यर्थितस्तैस्तु दैत्यराजः पुरोहितैः।
दैत्यैर्निष्कासयामास तुत्र पावकसञ्चयात्।५३।

ततो गुरुगृहे बालः स वसन्बालदानवान् ।
अध्यापयामस मुहुरुपदेशान्तरे गुरोः ।५४।

श्री पराशरजी ने कहा—इसके पश्चात् शुकाचार्य के पुत्र वाग्मी महात्मा और पुरोहितगण दैत्यराज को सनत्वना देते और उनकी प्रशंसा करते हुए बोले ।४८। पुरोहित ने कहा हे राजन् ! आप अपने इस बालक पुत्र पर क्रोध मत करिये, आपको तो उन देवताओं पर ही क्रोध करना उचित है।४९ हम आपके इस बालक को आपके विपक्ष का नाशक और आपके प्रति विनम्र होने की सीख देंगे ।५०। हे दैत्येन्द्र ! बाल्यावस्था तो सभी दोषों की आश्रय स्थली है, इसलिए इस बालक पर क्रोध न करिये ।५१। यदि हमारे कहने से भी विपक्षी के पक्ष का त्याग न करेगा तो हम इसे नष्ट करने के लिए किसी प्रकार के व्यर्थ न होने वाले कृत्य का प्रयोग करेंगे ।५२। पराशर जी ने कहा—पुरोहितों के ऐसे आश्वासन पर दैत्यराज ने प्रहलाद को अग्नि से बाहर निकालने की आज्ञा दी इसके पश्चात् उन्हें गुरुजी के तहाँ भेजा गया, जहाँ वे दैत्य बालकों को बारम्बार उपदेश करने लगे ।५४।

श्रूयतां परमार्थो मे दैतेयो दितिजात्मजाः ।
न चान्यथैतन्मन्तव्यं नात्र लोभादिकारणम् ५५।
जन्म बाल्यं ततः सर्वो जन्तु प्राप्नोति यौवनम् ।
अव्याहतैव भवति ततोऽनुदिवसं जरा ।५६।
ततश्च मृत्युमभ्येति जन्तुर्दैत्येश्वरात्मजाः ।
प्रत्यक्षं दृश्यते चैतदस्माकं भवतां तथा ५७।
मृतस्य च पुनर्जन्म भवत्येतच्च नान्यथा ।
आगमोऽयं तथा यच्च नोपादानं विनोद्भवाः ।५८।
गर्भवासादि यावत्तु पुनर्जन्मोपपादनम् ।
समस्तावस्थकं तावद्दुःखमेवावगम्यताम् ।६९।
क्षुत्तृष्णोपशमं तद्वच्छीताद्युपशमं सुखम् ।
मन्यते बालबुद्धित्वाद्दुःखमेव हि तत्पुनः ।६०।

अत्यन्तस्तिमिताङ्गानां व्यायामेन सुखैषिणाम् ।
भ्रान्तिज्ञानावृताक्षाणा दुःखमेव सुखायते ।६१।

प्रह्लाद ने कहा हे दैत्य बालको ! मैं तुम्हें परमार्थ की सीख देता हूँ । तुम इसे मिथ्या न जानना, क्योंकि इस उपदेश में मेरा कोई लोभादि स्वार्थ नहीं है ५५। सभी प्राणी जन्म लेकर बाल्यावस्था और यौवनावस्था प्राप्त करते हैं, फिर धीरे-धीरे बुढ़ापे की प्राप्ति भी अनिवार्य ही है ५६। इसके बाद यह प्राणी मृत्यु मुख में चला जाता है । ऐसा होते हुए हम सभी प्रत्यक्ष देखते हैं ५७। मर कर फिर जन्म लेना पड़ता है, यह भी अटल है । आगम भी यही कहते हैं कि उपादान के बिना कोई वस्तु उत्पन्न नहीं हो सकती ५८। पुनर्जन्म को प्राप्त कराने वाली गर्भ में रहने आदि जितनी भी अवस्थायें हैं. वह सभी दुःख रूप ही समझनी चाहिये ५९। मूर्खता के वश में पड़े हुए मनुष्य भूख, प्यास और शीतादि की शांति को सुख समझते हैं, परन्तु यथार्थ में वह दुःख मात्रा ही है ६०। जिनके देहादि शिथिल हो जाते हैं, उन्हें जैसे व्यायाम सुखदायक लगता है, वैसे जिनकी दृष्टि भ्रान्ति से आच्छादित हो चुकी है, उन्हें दुःख ही सुख प्रतीत होता है ६१।

क्व शरीरमशेषाणां श्लेष्मादीनां महाचयः ।
क्व कान्तिशोभासौन्दर्यरमणीयादयो गुणा । ६२।
मांसासृक्पूयविण्मूत्रस्नायुमज्जास्थिसंहतौ ।
देहे चेत्प्रीतिमान्मूढो भविता नरकेऽप्यसौ ।६३।
अग्नेःशीतेन तोयस्यतृषा भक्तस्य च क्षुधा ।
क्रियते सुख कर्तृ त्वंतद्विलोमस्य चेतरैः ।६४।
करोति हे दैत्यसुता यावमात्रं स परिग्रहम् ।
तावन्मात्र एवास्य दुःखचेतसि यच्छति ।६५।
यावतः कुरुते जन्तुःसंबन्धान्मनसः प्रियान् ।
तावन्तोऽस्य निखन्यन्ते हृदये शोकशंङ्कवः ।६६।
यद्यद्गृहे तन्मनसि यत्र तत्रावतिष्ठतः ।
नाषदाहोपकरणां तस्य तत्रैव तिष्ठति ।६७।

जन्मन्यत्र महद्दुःखं म्रियमाणस्य चापि तत् ।
यातानासु यमस्योग्रं गर्भसङ्क्रमणीषु च ६८।

देखो कहाँ तो कफ आदि अत्यन्त घृणित पदार्थ रूप यह देह और कहाँ कांति, शोभा, सौन्दर्य एवं रमणीयतादि गुण ? ६२।यदि कोई मूर्ख इस मांस रक्त, पीव, विष्ठा, मूत्र, स्नायु, मज्जा और हड्डियों के ढाँचे रूपी देह से प्रीति कर सकता है तो वह नरक से भी प्रेम कर सकता है ६३। शीत के शमनार्थ अग्नि पिपासा की शांति लिए जल और क्षुधा की शांति के लिए भात सुख देने वाला होता है तथा इनके प्रतिपक्षी जलादि भी अपने विलोम अग्नि आदि के कारण ही सुख देने वाले होते हैं ६४। विषयों का जितना संचय किया जाय उतना ही मनुष्य के चित्त को दुखदायी होता है ७५। मनुष्य अपने को अच्छे लगने वाले जितने सम्बन्धियों की वृद्धि करता है वह उसके लिये उतने ही अधिक हृदय कटक सिद्ध होते हैं ६६। घर की सभी सामिग्री परदेश में कहीं रहने पर भी चित्त में स्थिर रहती है तथा उसी में उन्हें नष्ट करने और भस्म करने के साधन भी स्थित रहते हैं ६६। इस प्रकार अपने जीवन में तो घोर दुःख की प्राप्ति होती है, मरणोपरांत भी यम-यातनायें और गर्भवासकी यंत्रणाएँ भोगनी पड़ती है ।६८।

गर्भेष सुखलेशोऽपि भवद्भिरनुमीयते ।
यदि तत्कथ्यतामेवं सर्व दुःखमयं जगत् ।६९।
तदेवमतिदःखानामास्पदेऽत्र भवार्णवे ।
भवतां कथ्यते सत्यं विष्णुरेकः परायणः ।।७०।
माजानीत वयं बाला देही देहेषु शाश्वतः ।
जरायौवनजन्माद्या धर्मा देहस्य नात्मनः ।७१।
बालोऽहं तावदिच्छातो यतिष्ये श्रेयसे युवा ।
युवाहं वार्द्धके प्राप्ते करिष्याम्यात्मनो हितम् ।७२।
वृद्धोऽहं मम दार्याणि समस्तानि न गोचरे ।
किं करिष्यामि मन्दात्मा समर्थेन न यत्कृतम् ।७३।

एवं दुराशया क्षिप्तमानसः पुरुषः सदा ।
श्रेयसोऽभिमुखं याति न कदाचित्पिपासितः ।७४।
बाल्ये क्रीडनकासक्ता यौवने विषयोन्मुखाः ।
अज्ञा नयन्त्यशक्त्या च वार्द्धकं समुपस्थितम् ।७५।
तस्माद्बाल्ये विवेकात्मा यतेत श्रेयसे सदा ।
बाल्ययौवनवृद्धाद्यैर्देहभावैरसंयुतः ।७६।

गर्भ में रहने के समय क्या तुम्हें सुखाभास हो सकता है ? संपूर्ण विश्व इसी प्रकार दुःखी रहता है ६९। इसीलिये दुःखों के परमधार इस भवसागर में केवल एक भगवान् विष्णु ही सब की परमगति हैं, मेरा यह कथन नितान्त सत्य है ७०। यदि तुम कहो कि अभी तो हम बालक ही हैं तो आत्मा सभी अवस्थाओं में समान रहता है वृद्धावस्था अथवा जन्मादि तो शरीर के धर्म हैं, आत्मा के नहीं हैं ७१। जो मनुष्य इन दुराशाओं में मत्त रहता है कि अभी मैं लबाक हूँ मेरे खेलने के दिन हैं, यौवनावस्था प्राप्त होने पर कल्याण-साधन करूँगा, फिर सोचता है कि अभी तो मेरी युवावस्था ही हैं बुढ़ापा आने पर कुछ करूँगा और जब बुढ़ापा आ जाता है तब सोचता है कि मेरी कर्मेन्द्रियां शिथिय हो चुकी है, इन्द्रियां कर्मों में प्रवृत्त ही नहीं होती, तो क्या करूँ ? पहिले ही सशत्त रहने पर कुछ किया जा सकता था। इस प्रकार वह अपने कल्याण मार्ग पर कभी नहीं बढ़ता, केवल भोग की तृष्णा में ही लगा रहता है ७२-७४। मूर्ख मनुष्य बाल्यावस्था में खेलते-कूदते, यौवनावस्था में विषयों में फँसे रहते और वृद्धावस्था में असमर्थ हो जाते हैं। इसलिए विवेकी मनेष्य को बाल, युवा या वृद्धावस्था का विचार न करके, बाल्यावस्था से ही अपने कल्याण कार्य में लग जाना चाहिये ७५-७६।

तदेतद्वो तयाख्यातं यदि जानीत नानृतम् ।
तदस्मत्प्रीतये विष्णु स्मर्यतां वन्धमुक्तिदः ।७७।
प्रयासः स्मरणे कोऽस्य स्मृतो यच्छति शोभनम् ।
पापक्षतश्च भवति स्मरतां तमहर्निशम् ।७८।

सर्वभूतस्थिते तस्मिन्मर्मैत्री दिवानिशम् ।७८।
भवतां जायतामेव सर्वक्लेशान्प्रहास्यथ ।७९।
तापत्रयेणाभिहतं यदेतदखिलं जगत् ।
तदा शोयेच्च भूतेषू द्वेषं प्राज्ञः करोत कः ।८०।
अथ भद्राणिभूतानि हीनशक्तिरह परम्
मुद तदापि कुर्वीत हानिद्वेषफल यतः । १।
बद्धवैराणि भूतानि द्वेष कुर्वन्ति चेत्ततः ।
सुशोच्यान्यतिमोहेन व्याप्तानीति मनीषिथाम् ।८२।
एत भिन्नदृशां दैत्या विकल्पाः कथिता मया ।
कृत्वाभ्युपगम तत्र लक्षेपः श्रूयता मम ।८३।

यदि तुम मेरी बात को मिथ्या नहीं समझते हो तो मेरी सन्तुष्टि के लिए ही मोक्षदायक भगवान् विष्णु का स्मरण करो ७७। उस कार्य में कोई परिश्रम भी नहीं है तथा स्मरणमात्र से ही वे अत्यन्त शुभ फल प्रदान करते हैं और जो उनका दिन-रात स्मरण करते हैं, उनके पापों का भी क्षय हो जाता है ७८। सब भूतों मे स्थित उन भगवान् में तुम्हारी बुद्धि दिन रात लगी रहे और उनमें निरन्तर प्रेम- वृद्धि हो तो इससे सभी क्लेश दूर हो जायेंगे ७९। जब यह सम्पूर्ण विश्व त्रिताप से जल रही है तो इन शोचनीय प्राणियों से कौन द्वेष करना चाहेगा ८०। यह सोचकर कि दूसरे तो आनन्द में हैं मैं ही अशक्त हूँ दुःख न माने, क्योंकि द्वेष करता ही हो, तो वह महामोह में फँसा हुआ प्राणी विचारवानों की दृष्टि में शोचनीय ही है ८२। हे दैत्य बालको ! मैंने विभिन्न दृष्टिकोण तुम्हारे सामने रखे हैं और उनका संक्षिप्त समन्वय सुनो ८३।

विस्तारः सर्वभूतस्य विष्णोः हर्वामिद जगत् ।
द्रष्टव्यमात्मवत्तस्मादभेदेन विचक्षणैः ।८४।
समुत्सृज्यासुर भावं तस्माद्यूत्र तथा वयम् ।
तथा यत्नं करिष्यामोयथा प्राप्स्याम निर्वृतिम् ८५।

या नाग्निना न चार्केणा नेन्दुना च न वायुना ।
पर्जन्यवरुणभ्यां वा न सिद्धैर्न चराक्षसैः ।८६।
न यक्षैर्न च दैत्येन्द्रैर्नोगैर्न च किन्नरैः ।
न मनुष्यैर्न पशुभिर्दोषैर्नैवात्मसम्भवैः ।८७।
ज्वराक्षिरोगातीसारप्लीहगुल्मादिकैस्तथा ।
द्वैयेष्यमित्सराद्यैर्वा रागलोभादिभिः क्षयम् ।८८।
न चान्यैर्नीयते कैश्चिन्नित्या यात्यन्तनिर्मला ।
तामाप्नोत्यमले न्यस्य केशवे हृदयं नरः ।८९।
असारससारविवर्तनेषु मा यात तोष प्रसभं ब्रवीमि ।
सर्वत्र दैत्यास्समतामुपेत समत्वमाराधनमच्युतस्य ।९०।
तस्मिन्प्रसन्ने किमिहास्त्यलभ्यं धर्मार्थकामेरलमल्पकास्ते ।
समाश्रिताब्रह्मतरोरनन्तान्निः संशयं प्राप्स्यथ वै महत्फलम् ।९१।

इस विश्व को सर्व भूतात्मक भगवान् का विस्तार ही समझो। क्योंकि विचक्षण पुरुष इसमें अभेद मानते हुए आत्म रूप ही देखते हैं।८४। इसलिए हम-तुम को भी दैत्य-भाव का त्याग करके शान्ति लाभ करने का यत्न करना चाहिए।८५। क्योंकि जो शान्ति अग्नि, सूर्य, चन्द्र, वायु, मेघ, वरुण, सिद्धि, राक्षस, यक्ष, दैत्येन्द्र, उरग, किन्नर, मनुष्यों और पशुओं के अपने मन से उत्पन्न दोषों से, ज्वर, नेत्ररोग, अतिसार, प्लीहा और गुल्मादि रोगों से तथा द्वेष, ईर्ष्या, मत्सर, राग, लोभ और किसी भी अन्य भाव से नष्ट नहीं हो सकती, वह अत्यन्त निर्मल परम शान्ति भगवान् केशव में मन लगाने से ही प्राप्त हो सकती है।८६-८९। हे दैत्य पुत्रो! मेरा आग्रह है कि इन साँसारिक विषयों से कभी प्रसन्न मत होओ, तुम सबके प्रति समान दृष्टि रखो, क्योंकि सर्व समानता ही भगवान् अच्युत की परम अराधना है।९०। उन अच्युत के प्रसन्न होने पर संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं है, धर्म, अर्थ और काम तो अत्यन्त ही तुच्छ हैं, उस ब्रह्म रूप महावृक्ष के आश्रय मे तो अवश्य ही तुम महाफल को प्राप्त करोगे।९१।

अठारहवाँ अध्याय

तस्यैतां दानवाश्चेष्टां दृष्ट्वा दैत्यपतेर्भयात् ।
आचचक्षुः स चोवाच सूदानाहूय सत्वरः ॥१
हे सूदा मम पुत्रोऽसावन्येषामपि दुर्मति ।
कुमार्गदेशिको दुष्टो हन्यतामविलम्बितम् ।।२
हालाहल विष तस्य सर्वभक्षेषु दीयताम् ।
अविज्ञातमसौ पापो हन्यतां मा विचार्यताम् ॥३
ते तथैव ततश्चक्रुः प्रह्लादाय महात्मने ।
विषदान यथाज्ञप्तं पित्रा तस्य महात्मनः ॥४
हालाहलं विष घोरमनन्तोच्चारणेन सः ।
अभिमन्त्र्य सहान्नेन मैत्रेय बुभुजे तदा ॥५
अविकार सतद्भुक्त्वा प्रह्लादः स्वस्थमानसः ।
अनन्तख्यातिनिर्वीर्यं जरयामास तद्विषम् ॥६
ततः सूदा भयत्रस्ता जीर्णं दृष्ट्वा महद्विषम् ।
दैत्येश्वरमुपागम्य प्रणिपत्येदमब्रुवन् ॥७

श्री परारजी ने कहा दैत्यों ने प्रहलाद की चेष्टा देखकर दैत्यराज के भय के कारण उन्होंने वहाँ जाकर सब बातें उससे कहीं और तब हिरण्यकशिपु ने अपने रसोइयों को बुलाकर उनसे कहा ।१। हिरण्यकशिपु बोला हे रसोइयो ! मेरा यह पुत्र इतना दुष्ट और दुर्मति है कि दूसरों को भी कुमार्ग का उपदेश करता है, इसलिए तुम इसका शीघ्र ही विनाश करो ।२। तुम उसे बिना बताये उसके सब खाद्य पदार्थों में हलाहल विष डाल कर उसे बिना कुछ सोचे विचारे भक्षण करा दो, जिससे वह पापी मर जाय ।३। श्री पराशरजी से कहा दैत्यराज की आज्ञानुसार उन रसोइयों ने महात्मा प्रहलाद को विष दे दिया ४। हे मैत्रेयजी ! वह उस घोर विष कर भगवान् का का नाम लेकर भक्षण कर गये ।५। जो विष भगवन्नाम के प्रभाव से तेजहीन होगया था, उसे वह बिना विकार के पचा गये और स्वस्थ

चित्त रहे ६। उस महान् विष को निष्फल हुआ देखकर भयभीत हुए रसोइये हिरण्यकशिपु के पास गए और उसको प्रणाम करके कहने लगे।७।

दैत्यराज विष दत्तमस्माभिरतिभीषणम् ।
जीर्णं तेन सहान्नेन प्रह्लादेन सुतेन ते ॥८
त्वर्यतां त्वर्यतां हे हे सद्यो दैत्यपुरोहिताः ।
कृत्यां तस्य विनाशाय उत्पादयत मा चिरम् ॥९
सकाशमागम्य ततः प्रह्लादस्य पुरोहिताः ।
सामपूर्वमथोचुस्ते प्रह्लादं विनयान्वितम् ॥१०
जातस्त्रैलोक्यविख्यात आयुष्मन्ब्रह्मणःकुले ।
दैत्यराजस्य तनयो हिरण्यकशिपोर्भवान् ॥११
किं देवैः किमनन्तेन किमन्येन तवाश्रयः ।
पिता ते सर्वलोकानां त्वं तथैव भविष्यसि ॥१२
तस्मात्परित्यजैनां त्वं विपक्षस्तवसहिताम् ।
श्लाध्यः पिता समस्ताना गुरुणां परमो गुरुः ॥१३

सूदगण ने कहा—हे दैत्यराज! आपकी इच्छानुसार हमने अत्यन्त तीक्ष्ण विष दिया था, परन्तु आपका पुत्र उसे अन्न के साथ ही पचा गया ८। हिरण्यकशिपु ने कहा—हे पुरोहितो! अब विलब न करो, मारने के लिए अब शीघ्र ही कृत्या उत्पन्न करो ९। श्री पराशरजी ने कहा—यह सुनकर पुरोहितगण प्रह्लाद के पास गये और अति विनीत भाव से उन्होंने साम नीति पूर्वक कहा १०। पुरोहित बोले-अरे आयुष्मान्! तुम त्रैलोक्य प्रसिद्ध ब्रह्मकुल में अवतीर्ण हुए हो तथा दैत्यराज हिरण्यकशिपु तुम्हारे पिता हैं ११। देवगण, अनंत अथवा किसी अन्य से भी तुम्हें क्या प्रयोजन है? तुम्हारे पिता सभी लोगों के आश्रयरूप हैं और तुम्हें भी वैसा ही होना चाहिए १२। इसलिए तुम्हें विपक्ष की स्तुति का त्याग करना चाहिये। पिता सर्वत्र प्रशंसनीय है, वही गुरुओं में परम गुरु हैं, इसलिये उन्हीं की स्तुति करनी चाहिये १३।

एवमेतन्महाभागाः श्लाध्यमेतन्महाकुलम् ।
मरीचेः सकलेऽप्यस्मिन् त्रैलोक्ये नान्यथा वदेत् ॥१४

पिता च मम सर्वस्मिज्जगत्युत्कृष्टचेष्टितः ।
एतदप्यवगच्छामि सत्यमत्रापि नानृतम् ।१५।
गुरूणामपि सर्वेषां पिता परमोको गुरुः ।
यदुक्तं भ्रान्तिस्त्रत्रापि स्वल्पापि हि न विद्यते ।१६।
पिता गुरुर्न संदेहः पूजनीयः प्रयत्नतः ।
तत्रापि नापराध्यामीत्येवं मनसि मे स्थितम् ।१७।
यत्वेतत्किमनन्तेनेत्युक्तं युष्माभिरीदृशम् ।
को ब्रवीति यथान्याय्य किं तु नैतद्वचोऽर्थवत् ।१८।
इत्युक्त्वा सोऽभवन्मौनी तेषां गौरवयन्त्रितः ।
प्रहस्य च पुनः प्राह किमनन्तेन साध्विति ।१९।
साधु भो किमनन्तेनसाधु भो गुरवो मम ।
श्रूयता यदनन्तेन यदि खेदं न यास्यथ ।२०।

प्रह्लाद ने कहा—हे महाभागो ! आपका कथन यथार्थ है । भगवान् मरीचि का यह कुल सम्पूर्ण विश्व में प्रसिद्ध है, इसमें अन्यथा नही है यह भी ज्ञात है कि मेरे पिताजी भी सम्पूर्ण विश्व में अत्यत पराक्रमी हैं, इसमें भी कुछ सन्देह है । १५ । सभी गुरुओं में पिता ही परम गुरु है, आपके इस कथन में भी मुझे शंका नहीं है ।१६। पिताजी परम गुरु और पूज्यनीय हैं, यह भी निःसन्देह सत्य है तथा मैं भी उसके प्रति किसी अप-राध में प्रवृत नहीं हूँ ।१७। परन्तु आपका यह कथन कि अनन्त से क्या प्रयोजन है, क्या कभी न्यायोचित माना जा सकता है ? इसे मैं ठीक नहीं मानता ।१८। यह कह कर उन पुरोहितों का मान रखने के लिए पहिले तो वह चुप हो गए और फिर हँसते हुए बोले—अनन्त से क्या प्रयोजन ! आपके इस विचार को साधुवाद है ।१९ हे गुरुओ ? मुझे अनत से क्या प्रयोजन ? आपके इस विचार को धन्यवाद ! यदि आप बुरा न माने तो अनंत से जो प्रयोजन है, उसे कहता हूँ, कृपया सुनिए ।

धर्मार्थकाममोक्षाश्च पुरुषार्था उदाहृताः ।
चतुष्टयमिदं यस्मात्तस्मात्किं किमिदं वचः ।२१।

मरीचिमिश्रैर्दक्षाद्यैस्तथवान्यैरनन्ततः ।
धर्म प्राप्तस्तथा चान्यैरर्थः कामस्तथापरैः ।२२।
तत्त्ववेदिनो भूत्वा ज्ञानध्यानसमाधिभिः ।
अवापुर्मुक्तिमपरे पुरुषा ध्वस्तबन्धनाः ।२३।
सम्पदैश्वर्यमाहात्म्यज्ञानसन्ततिकर्मणाम् ।
विमुक्तैश्चैकतो लभ्य मूलमाराधनं हरेः ।२३।
यतो धर्मार्थकामाख्यं मुक्तिश्चापि फलं द्विजाः ।
तेनापि किं किमित्येवमनन्तेन किमुच्यते ।२४।
किं चापि बहुनोक्तेन भवन्तो गुरवो मम ।
वदतु साधु वासाधु विवेकोऽस्माकमल्पकः ।२६।
बहुनात्र किमुक्तेन स एव जगतः पतिः ।
स कर्ता च विकर्ता च संहर्ता च हृदि स्थितः ।२७।
स भोक्ता भोज्यमप्येवं स एव जगदीश्वरः ।
भवद्भिरेतत्क्षन्तव्यं बाल्यादुक्तं तु यन्मया ।२८।

धर्म, अर्थ, काम मोक्ष यह चार पुरुषार्थ कहे गये हैं। जिनमें इन चारों की सिद्धि होती हो, उनसे क्या प्रयोजन ! आपके इस विचार को क्या कहूं ।२१। उसी अनन्त से मरीचि तथा अन्याय ऋषियों में से किन्हीं को धर्म, किन्हीं को धन और किन्हीं को काम की प्राप्ति हुई ।२२। करके अपने भवबधन से मुक्त होकर मोक्षपद की प्राप्ति की ।२३। इसलिए सम्पत्ति, ऐश्वर्य, महात्म्य, ज्ञान, संतान, कर्म और ओक्ष, इन सबकी एक ही जड़ भगवान् की अराधना है, उसी का उपार्जन करें ।२४। हे विप्रो ! इस प्रकार जिनसे चारों पदार्थों की प्राप्ति होती है उन्हीं के विषय में आप क्यों कहते हैं कि उनसे क्या प्रयोजन है ।२५। परन्तु मैं आप से क्या कहूँ। आप तो गुरु हैं उचित-अनुचित सब करने का अधिकार है, फिर मैं तो वैसे ही अल्प विचार वाला हूँ ।२६। मेरे विचार में तो वह अनन्त ही जगत् के स्वामी, उसके रचने वाले, पालन करने और संहार करने वाले

हैं तथा एक मात्र वही सबके अन्तःकरण मे स्थित हैं ।२७। वे ही भोक्ता तथा भोज्य हैं, वही जगदीश्वर हैं। हे गुरुदेवो ! यदि बाल्यस्वभाव वश मैंने कुछ अनुचित कह दिया हो तो आप कृपया क्षमा करें ।२८।

दह्यमानस्त्वमाभिरग्मिना बाल रक्षितः ।
भूयो न वक्ष्यसीत्येवं नैव ज्ञातोऽस्यबुद्धिमान् ॥२९
ततः कृत्या विनाशाय तव सृक्ष्याम दुर्मते ॥३०
कः केन हन्यते जन्तुर्जन्तुः कः केन रक्ष्यते ।
हन्ति रक्षिति चैवात्वा ह्यसत्साधु समाचरन् ॥३१
कर्मणा जायते सर्वं कर्मैव गतिसाधनम् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन साधुकर्म समाचरेत् ॥३२
इत्युक्तास्तेन क्रुद्धा दैत्यराजपुरोहिताः ।
कृत्यामुत्पादयामासुर्ज्वालामालाज्ज्वलाकृतिम् ॥३३
अतिभीमा समागम्य पादन्यासक्षतक्षितिः ।
शूलेन साधुसङ्क्रुद्धा त जघानाशु वक्षसि ॥३४
तत्तस्य हृदय प्राप्य शूल बालस्य दीप्तिमत् ।
जगाम खण्डित भूमौ तत्रापि शतधा गतम् ॥३५

पुरोहितों ने कहा—हे बालक ! हम तो समझते थे कि तू हमारी बात मानकर ऐसी बात न कहेगा, इसलिये तुझे भस्म होने से बचाया था हमें क्या मालूम था कि तू ऐसा मतिहीन है ? २९। अरे खोटी बुद्धि वाले यदि तू अपने इस मोहमय दुराग्रह का त्याग न करेगा तो हम तुझे मारने के लिये कृत्या उत्पन्न करेंगे ३०। प्रह्लाद ने कहा—कौन किसके द्वारा मारा जाता या रक्षित होता है ? शुभाशुभ आचरणों से यह आत्मा स्वयं अपनी रक्षा अथवा विनाश में समर्थ है ३१। कर्मों के कारण ही सबका जन्म तथा शुभाशुभ गतियाँ होती हैं, इसलिए सदा शुभ कर्म करने का ही प्रयत्न करना उचित है ३२। श्री पराशरजी ने कहा—प्रह्लाद की बात सुन कर दैत्यराज के वे पुरोहित क्रोध में भर गये और उन्होंने अग्नि-शिखा

के समान प्रज्वलित दैत्यय कृत्या उत्पन्न की ३३। वह भयंकरी कृत्या को अपने पदाघात से पृथिवी को कम्पायमान करती हुई प्रकट हुई और उसने प्रह्लाद के वक्षःस्थल में त्रिशूल से क्रोध पूर्वक प्रहार किया।३४। परन्तु, वह तेजोमय त्रिशूल प्रह्लाद के वक्षःस्थल से स्पर्श होते ही टूट गया तथा धरती पर गिर कर सैकड़ों टुकड़ों में फैल गया ३५॥

यत्रानपायी भगवान् हृद्यास्ते हरिरीश्वरः।
भङ्गो भवति वज्रस्य तत्र शूलस्य का कथा ॥३६
अपापे तत्र पापैश्चपातिता दैत्ययाजकैः।
तानेव साजघानाशु कृत्या नाश जगाम च ॥३७
कृत्यया दह्यमानां स्तान्विलोक्य स महामतिः।
त्राहि कृष्णेत्यनंतेतिवदन्नभ्यवपद्यत ॥३८
सर्वव्यापिन् जगद्रूप जगत्स्रष्टर्जनार्दन।
पाहि विप्रानिमानस्माद्दुः सहान्मंत्रपावकात् ॥३९
यथा सर्वेषु सर्वव्यापी जगद्गुरुः।
विष्णुरेव तथा सर्वे जीवन्त्वेते पुरोहिताः॥४०
यथा सर्वगत विष्णुं मंयमानोऽनपायिनम्।
चिंतयाम्यरिपक्षेऽपि जीवंत्वेते पुरोहिताः॥४१

जिस हृदय में भगवान् श्री हरि का निरन्तर निवास है, उसके स्पर्श से त्रिशूल तो क्या, वज्र के भी टुकड़े उड़ जाते हैं ३६। उन पापी पुरोहितों ने उस पाप-रहित बालक पर जिस कृत्या को चलाया था, वह उन पुरोहितों पर ही बार करके स्वयं भी नष्ट हो गई ३७। परंतु प्रह्लाद ने जैसे ही अपने गुरुओं को कृत्या द्वारा भस्म किये जाते देखा वैसे ही वह, हे कृष्ण ! हे अनन्त ! रक्षा करो, बचाओ, कहते हुए उनकी ओर दौड़ पड़े प्रह्लाद ने कहा—हे सर्वव्यापी, जगद्रूप, जगत्स्रष्टा, जनार्दन ! इस मन्त्राग्नि रूप दुःसह विपत्ति से इन विप्रों की रक्षा करो ३९। सर्वव्याप्त एवं जगद्गुरु भगवान् विष्णु सब भूतों में स्थित हैं, इस न्याय के प्रभाव से यह पुरोहितगण जीवन प्राप्त करें ४०। यदि मैं उन सर्वगत

भगवान् को अपने विपक्षियों में भी स्थित देखता हूँ तो यह पुरोहितगण अवश्य ही जीवन को प्राप्त हों ।४१।

ये हंतुमागता दत्तः यैर्विषं यैर्हुताशनः ।
यैर्दिग्गजैरहं क्षुण्णो दष्टः सर्पैश्च यैरपि ।४२।
तेष्वहं मित्रभावेन समःपापोऽस्मि न क्वचित् ।
यथा तेनाद्य सत्येन जीवन्त्वसुरयाजकाः ।४३।
इत्युक्तास्तेन ते सर्वे संस्पृष्टाश्च निरामयाः ।
समुत्तस्थुर्द्विजा भूयस्तसूचुः प्रश्रयान्वितम् ।४४।
दीर्घायुरप्रतिहतो बलवीर्यसमन्वितः ।
पुत्रपौत्रधनश्वर्यैर्युक्तो वत्स भवोत्तमः ।४५।
इत्पुक्त्वा तं तनो गत्वा यथावृत्तं पुरोहिताः
दैत्यराजाय सकलमाचचक्षुर्महामुने ।४६।

जो मेरी हत्या के लिए आये, जिन्होंने मुझे विष-भक्षण कराया, जिन्होने मुझे अग्नि में दग्ध किया, जिन्होंने दिग्गजों से रुँधवाया अथवा जिन्होंने सर्पों से दशित कराया, मैं उन सबके प्रति समान मैत्री और सदा निष्पाप बुद्धि से रहा हूँ तो मेरे उस सत्य के कारण इन दैत्य-पुरोहितों को जीवन प्राप्त हो ४२-४३। श्री पराशरजी ने कहा—ऐसा कहते हुए उन्होंने पुरोहितों को स्पर्श किया, जिससे वे सब तुरन्त ही स्वस्थ हो उठे और विनय से झुकते हुए उस बालक से बोले ।५४। पुरोहितों ने कहा-हे वत्स ! तू परम श्रेष्ठ है । तू दीर्घायु, द्वंद्व-रहित, बल-वीर्य युक्त एवं पुत्र, पौत्र, धन-वैभव से सम्पन्न होगा ।५४। श्री पराशरजी बोले-हे महामुने ! यह कह कर वे पुरोहित दैत्यराज हिरण्यकशिपु के पास गये और उसे सब समाचार तथावत् सुना दिया ।४६।

———

उन्नीसवां अध्याय

हिरण्यकशिपुः श्रुत्व तां कृत्यां वितथीकृताम्।
आहुय पुत्रं पप्रच्छ प्रभावस्यास्य कारणम् ।१।
प्रहलाद सुप्रभावोऽसि किमतत्ते विचेष्टितम् ।
एतन्मत्रादिजनितमुताहो सहजं तव ।२।
एवं पृष्ठस्तदा पित्रा प्रहलादोऽसुरबालकः ।
प्राणिपत्य पितुः पादाविद वचनमब्रवीत् ।३।
न मंत्रादिकृतं तात न च नैसर्गिको मम ।
प्रभाव एव सामान्यो यस्य यस्याच्युतो हृदि ।४।
अन्येषा यो न पापानि चिंतयत्यात्मनो यथा ।
तस्य पापागमस्तात हेत्वभावान्न विद्यते ।५।
कर्मणा मनसा वाचा परपीडा करोति यः ।
तद्बीजं जन्म फलति प्रभूतं तस्य चाशुभम् ।६।
सोऽह न पापमिच्छामि न करोमि वदासि वा ।
चिंतयन्सर्वभूतस्थमात्म यपि च केशवम् ७।

श्री पराशरजी ने कहा—जब हिरण्यकशिपु ने कृत्या को निष्फल हुई सुना तो अपने पुत्र प्रहलाद को प स पासबुलाकर उससे उस प्रभाव का कारण बताने को कहा ।१। हिरण्यकशिपु ने कहा—अरे पुत्र ! तू अत्यन्त प्रभावशाली हुआ है तेरी यह चेष्टाएँ मन्त्रादि से युक्त हैं अथवा स्वाभाविक ।२। श्री पराशरजी ने कहा—पिता के प्रश्न करने पर प्रहलाद ने उन के चरणों में प्रणाम किया और उससे इस प्रकार कहा ।३। हे पिताजी । यह प्रभाव न तो मंत्रादि से उत्पन्न है और न स्वाभाविक ही है यह तो अच्युत भगवान् का हृदय में निवास होने पर सामान्य बात हो जाती है ।४। जो मनुष्य दूसररों का बुरा नहीं करना चहता, उसका अकारण ही कभी अनिष्ट नहीं होना ।५। जो मनुष्य मन, वचन, कर्म से किसी को कष्ट देता है, उसे उस पर पीड़ा रूपी बीज के द्वारा उत्पन्न हुआ अत्यन्त अशुभ फल प्राप्त होता है ।६। मैं अपने सहित सभी प्राणियों में भगवान् को

स्थित मान कर किसी की बुराई न तो सोचता, न कहता और न करता हूँ ॥७॥

शारीरं मानसं दुःखं दैवं भूतभवं तथा ।
सर्वत्र शुभचित्तस्य मे जायते कुतः ॥८
एवं सर्वेषु भूतेषु भक्तिरव्यभिचारिणी ।
कर्तव्या पण्डितैर्ज्ञात्वा सर्वभूतमयं हरिम् ॥९
इति श्रुत्वा स दैत्येन्द्रः प्रसादखिरे स्थितिः ।
क्रोधान्धकारितमुखः प्राह दैतेयकिङ्करान् ॥१०
दुरात्मा क्षिप्यतामस्मात्प्रासादाच्छतयोजनात् ।
गिरिपृष्ठे पतत्वस्मिन् शिलाभिन्नाङ्गहतिः ॥११
ततस्त चिक्षिपुः सर्वे बालं दैतेयदानवाः ।
पपात सोऽप्यधः क्षिप्तो हृदयेनोद्वहन्हरिम् ॥१२
पतमानं जगद्धात्री जगद्धातरि केशवे ।
भक्तियक्तं दधारैनमुपसङ्गम्य मेदिनी ॥१३
ततो विलोक्य तं स्वस्थमविशीर्णास्थिपञ्जरम् ।
हिरण्यकशिपुः प्राह शम्बर मायिनां वरम् ॥१४

इस प्रकार श्रेष्ठ चित्त वाला होने से मुझे दैहिक, दैविक, मानसिक अथवा भौतिक दुःख कैसे मिल सकता है ? ॥८॥ इस प्रकार भगवान् को सर्वभूतात्मक जानकर सभी प्राणियों में विचलित न होने वाली प्रीति करनी चाहिये ॥९। श्रीपराशरजी ने कहा-अपने भवन की स्थित उस दैत्यराज ने प्रह्लाद की बात सुनी तो क्रोधान्ध हो उठा और अपने अनुचर दैत्यों से कहा ॥१०॥ हिरण्यकशिपु ने कहा—इस अत्यन्त दुरात्मा को सौ योजन ऊँचे भवन से नीचे गिराओ, जिससे पर्वत शिलाओं पर गिर कर इसका शरीर चूर-चूर हो जाय ॥११॥ यह सुनकर उन दानवों ने प्रह्लाद को ऊँचे भवन से गिराया, उस समय वह हरि-स्मरण करते हुए गिरे ॥१२॥ भगवद्भक्त प्रह्लाद के गिरते समय संसार को धारण करने वाली पृथ्वी ने ऊँचे उठकर उन्हें अपनी गोद में ले लिया ॥१३॥ उन्हें इस प्रकार बिना किसी चोट के

स्वस्थ देखकर हिरण्यकशिपु ने घोर मायावी शम्बरासुर से कहा ।१४।

नास्माभिःशक्यते हन्तुमसौ दुर्बुद्धिबालकः ।
मायां वेत्ति भवांस्तस्मान्माययैनं निषूदय ॥१५
सूदयाम्येव दैत्येन्द्र पश्य मायाबल मम ।
सहस्रमत्र मायानां पश्य कोटिशतं तथा ॥१६
ततः स ससृजे मायां प्रह्लादे शम्बरोऽसुरः ।
विनाशमिच्छन्दुर्बुद्धिः सर्वत्र समदर्शिनि ॥१७
समाश्रितमतिर्भूत्वा शम्बरेऽपि विमत्सरः ।
मैत्रेय सोऽपि प्रह्लादः सस्मार मधुसूदनम् ॥१८
ततो भगवता तस्य रक्षार्थं चक्रमुत्तमम् ।
आजगाम समाज्ञप्तं ज्वालामालि सुदर्शनम् ॥१९
तेन मायासहस्रं तच्छम्बरस्याशुगामिना ।
बालस्य रक्षता देहमेकैक च विशोधितम् ॥२०
संशोषकं तथा वायुं दैत्येन्द्रस्त्विदमब्रवीत् ।
शीघ्रमेष ममादेशाद् दुरात्मा नीयतां क्षयम् ।२१
तथेत्युक्त्वा तु सोऽप्येन विवेश पवनो लघुः
शीतोऽतिरूक्षः शोषाय तद्देहस्यातिदुःसहः ॥२२

हिरण्यकशिपु ने कहा—यह खोटी बुद्धि वाला बालक हमारे द्वारा नहीं मारा जा सका, आप माया के ज्ञाता हैं, अतः अपनी माया से ही इसका संहार कर डालो ॥१५॥ शम्बरासुर ने कहा—हे दैत्यराज इस बालक को मैं अभी समाप्त किये देता हूँ, तुम मेरा प्रभाव देखना, मैं आपको कैसी अद्भुत हजारों-करोड़ों मायाएँ दिखाऊंगा ॥१६॥ श्री पराशरजी ने कहा-तब उस मूढ़मति शम्बर ने सबको समान भाव से देखने वाले प्रह्लाद को नष्ट करने के लिए अनेक मायाओं की रचना की ॥१७॥ परन्तु, हे मैत्रेयजी ! प्रह्लाद उस शम्बरासुर के प्रति भी निर्वैर भाव से रहते हुए केवल भगवान् का ही स्मरण करते रहे ॥१८॥ उस समय प्रभु-आज्ञा से ज्वाल—मालाओं से युक्त

सुदर्शन चक्र उनकी रक्षा के लिए आ उपस्थित हुआ ॥१९॥ उस शीघ्र गति वाले चक्र ने बालक की रक्षा करते हुए, असुर की हजारों मायाओं को छिन्न-भिन्न कर दिया ॥२०॥ यह देखकर दैत्यराज ने सर्व शोषक वायु को उस बालक को शीघ्र ही नष्ट कर देने की आज्ञा दी इसलिए उस अत्यन्त शीतल रूक्ष असहनीय वायु ने प्रहलाद के देह को सुखाने के लिए उसमें प्रवेश किया ॥२१-२२॥

तेनाविष्टमथात्मानं स बुद्ध्वा दैत्यबालकः ।
हृदयेन महात्मानं दधार धरणीधरम् ।२३।
हृदयस्थस्ततस्तस्य तं वायुमतिभीषणम् ।
पपौ जनार्दनः क्रुद्धः स ययौ पवनः क्षयम् ।२४।
क्षीणासु सर्वमायासु पवने च क्षयं गते ।
जगाम सोऽपि भवनं गुरोरेव महामतिः ।२५।
अहन्यहन्यथाचार्यो नीतिं राज्यफलप्रदाम् ।
ग्राहयामास तं बाल राज्ञामुशनसा कृताम् ।२६।
गृहतनीतिशास्त्र तं विनीतं च यदा गुरुः ।
मेने तदैनं तत्पित्रे कथयामास शिक्षितम् ।२७।
घृहीतनीतिशास्त्रस्ते पुत्रो दैत्यपते कृतः ।
प्रह्लादस्तत्वतो वेत्ति भार्गवेण यदीरितम् ।२८।

जब प्रहलाद ने अपने देह में वायु को प्रविष्ट हुआ जाना, तब उन्होंने उन्हीं भगवान् को हृदय में धारण किया ॥२३॥ उनके हृदय-स्थित भगवान् ने क्रोध पूर्वक उस भीषण वायु का पान करके उसे क्षीण कर दिया ॥२४॥ इस प्रकार सब मायाओं और वायु के नष्ट होने पर बुद्धिमान प्रहलाद अपने गुरु गृह को गये ॥२५॥ फिर गुरुजी ने उन्हें शुक्राचार्य प्रणीत राज्यफल देने वाली राज-नीति का अध्ययन प्रारम्भ कराया ।२६। और जब उन्हें नीतिशास्त्र में परागत तथा विनय युक्त हुआ देखा तब उनके पिता दैत्यराज के पास जाकर गुरुजी ने कहा—अब यह सुशिक्षित हो चुका है ॥२७॥ आचार्य ने कहा—हे

दत्यपते ! तुम्हारे पुत्र को हमने पूर्णतया नीति-निपुण कर दिया है, अब वह शुक्राचार्यजी कथन का तत्वपूर्वक ज्ञाता है ।२८।

मित्रेषु वतत कथमरिवर्गेषु भूपतिः ।
प्रह्लाद त्रिषु लोकेषु मध्यस्थेष् कथं चरेत् ।२९।
कथ मन्त्रिष्वमात्येष् वाह्येष्वाभ्यन्तरेषु च ।
चारेषु पौरवर्गेषु शङ्कितेष्वितरेषु च ।३०।
कृत्याकृत्यविधानञ्च दुर्गाटविकसाधनम् ।
प्रहलाद कथ्यतां सम्यक् तथा कण्टकशोधनम् ।३१।
यतच्चान्यच्च सकलमवीतं भवता यथा ।
तथा मे कथ्यतां ज्ञातुं तवेच्छामि मनोगतम् ।३२।
प्राणिपत्य पितुः पादौ तदा प्रश्रयभूषणः ।
प्रहलादः प्राह दैत्येन्द्र कृताञ्जलिपुटस्तथा ।३३।
ममोपदिष्ट सकलं गुरुणा नात्र संषयः ।
गृहीतन्तु मया किन्तु न सदेतन्मतम्मम ।३४।
साम चोप्रदानं च भेददण्डौ तथापचौ ।
उपायाः कथिताः सर्वमित्रादीनां च साधने ।३५।

हिरणयकशिपु ने कहा—हे पुत्र प्रहलाद ! राजा को अपने मित्रों के प्रति कैसा व्यवहार करना चाहिये और शत्रुओ के प्रति कैसा ? तथा तीनों लोकों में जो मध्यस्थ हों, उनसे कैसा आचरण करना उचित है ? ।२९। मन्त्रियों या अमात्यों से कैसा व्यवहार करे, बाहरी सेवकों अन्तः-पुरके भृत्यों, गुप्तचरो, नागरिको, शकितों अथवा अन्यान्य व्यक्तियों के प्रति किस-किस प्रकार का व्यवहार करे?।३०। करने योग्य और न करने योग्य कार्यों का विधान कैसे हो ? और आटविक आदि को कैसे वश में करे तथा गुप्तशत्रु रूप कंटक को किस प्रकार दूर करे ? ।३१। यह सब तथा इसके अतिरिक्त भी जो तूने सीखा है, वह मुझे सुना, क्यों कि तेरे मनोगत भावों को मैं जानना चाहता हूँ ।३२। पराशरजी ने कहा-यह सुनकर विनय रूप आभूषण वाले प्रहलाद ने अपने पिता को प्रणाम करके हाथ

जोड़े हुए कहा ।३३। प्रह्लाद बोले--हे पिताजी ! गुरुजी ने मुझे सभी विषयों की शिक्षा दी है और मैंने उन्हें हृदयगत भी कर लिया है परन्तु मैं उन नीतियों को ठीक नहीं समझता ।३४। साम, दाम, दण्ड, भेद, यह चार उपाय मित्रादि को वश में करने के लिए कहे गये हैं ।३५।

तानेवाहं न पश्यामि मित्रादीस्तात मा क्रुधः ।
साध्याभावे महाबाहो साधनैः प्रयाजनम् ।३६।
सर्वभूतात्मके तात जगन्नाथे जगन्मये ।
परमात्मनि गोविन्दे मित्रामित्रकथा कुतः ।३७।
त्वय्यस्ति भगवान् विष्णुर्मयि चान्यत्र चस्थि सः ।
यतस्ततोऽयं मित्रं मे शत्रुश्चेति पृथक्कुतः ।३८।
तदेखिपलमन्यर्थौ दुष्टारम्भोक्तिविस्तरैः ।
अविद्यान्तगर्पैर्यत्नः कर्त्तव्यस्तात शोभने ।३९।
विद्याबुद्धिरविद्यायामज्ञानात्तात जायते ।
बालोऽग्निं किं न खद्योतमसुरेश्वर मन्यते ।४०।
तत्कर्म यन्न बन्धाय विद्या या विमुक्तये ।
आयासाया पर कर्म विद्यान्या शिल्पनैपुणम् ।४१।
तदेयदवगम्याहमसार सारमुत्तमम् ।
निशामय महाभाग प्रणिपत्य ब्रवीमि ते ।४२।

परन्तु हे पिताजी । आप क्रोधित न हों, मुझे न कोई शत्रु दिखाई देता है न मित्रादि ही दिखाई देते है । हे महाबाहो ! साध्य के अभाव में इन साधनों से लाभ ही क्या है ।।३६।। जो सर्वभूतात्मक, जगन्मय एवं जगन्नाथ हैं उन परमात्मा गोविन्द में शत्रु-मित्र का भेद ही कहाँ है । ।३७। वह भगवान् तो आप में मुझ में सब में तथा सर्वत्र स्थित हैं फिर मित्र-शत्रु के भेद को स्थान ही कहाँ होगा ।।३८।। इसलिए अविद्या से उत्पन्न इस निरर्थक वाग्जाल को त्याग कर अपने भले के लिये ही यत्नशील होना चाहिए ।३९। अज्ञान के वशीभूत हुआ बालक खद्योत को ही

अग्नि नहीं मान लेता ।४९। बन्धन का कारण न हो, वही कर्म है और मोक्ष को सिद्ध करने वाली हो वही विद्या है। इससे भिन्न कर्म व्यर्थ परिश्रम रूप और भिन्न विद्यायें केवल कला-कौशल रूप ही है ।४१। हे महाभाग ! इस प्रकार में इन सब को असार समझता हूँ और अब आपको प्रणाम करके श्रेष्ठ सार का वर्णन करता हूँ, उसे सुनिये ।४२।

नचिन्तयति को राज्यं धनं नाभिवाञ्छति ।
तथापि भावमेवैतदुभयं प्राप्यते नरः ।४३।
सर्व एव महाभाग महत्वं प्रति सोद्यमाः ।
तथापि पुंसां भाग्यानि नोद्यमाः धूतिहेतवः ।४४।
जडानोमविवेतानामशूराणमपि प्रभो ।
भाग्यभोज्यानि राज्यानि सन्त्यनीतिमतामपि ।४५।
तस्माद्यतेत पुण्येयु य इच्छेन्महतीं श्रियम् ।
यतितव्यं समत्वे च निर्वाणमपि चेच्छता ।४५।
देवा मनुष्याः पशवः पक्षिबृक्षसरीसृपिः ।
रूपनेतदनन्तस्य विष्णोर्भिन्नमिव स्थिताम् ।४७।
एतद्विजानता सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
द्रष्टव्यमात्मवद्विष्णुर्यंततोऽर्य विक्तरूपधृक् ।४८।
एव ज्ञांते स भगवानंनादिः परमेश्वरः ।
प्रसीदत्यच्युतस्यस्मिन्प्रसन्ने क्लेशसंक्षयः ।४९।

कौन राज्य प्राप्त करना नहीं चाहता ? किसे धन प्राप्ति की इच्छा नहीं होती फिर भी इनकी प्राप्ति उन्हीं को होती है, जिन्हें यह प्राप्त होने वाले होते हैं ।४३। महत्व को सभी प्राप्त करना चाहते हैं, परन्तु वैभव प्राप्त कराने वाला उद्यम नहीं, भाग्य ही होता है ।४२। हे प्रभो ! जड़, विवेकहीन, बलहीन, नीतिज्ञान-शून्य को भी भाग्य से विविध प्रकार के भोग और राज्यादि की प्राप्ति सहसा हो जाती है ।४५। इसलिए जो महान् वैभव का आकांक्षी हो, उसे पुण्यों का संचय करना चाहिये तथा जो मोक्ष की कामना करता हो उसे समत्व-लाभ में लगना चाहिये ।४६। देवता,

मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, सरीसृपादि भगवान् से भिन्न होते हुए भी यथार्थं में उन्हीं अनन्त भगवान् के स्वरूप हैं ॥४७॥ इस बात के ज्ञाता पुरुष को सम्पूर्ण विश्व आत्मवत् देखना चाहिए, क्योंकि यह सब विश्व रूप धारण किए हुए भगवान् स्वयं ही हैं ।४८। ऐसा ज्ञान हो जाने पर भगवान् प्रसन्न होते हैं और उनके प्रसन्न होने पर सभी क्लेशों का नाश होता है ।४९।

एतच्छ्रुत्वा तु कोपेन समुत्थाय वरासनात् ।
हिरण्यकशिपुः पुत्र वक्षस्यताडयत् ।५०।
उवाच च स कोपेन सामपदाः प्रज्वलिन्नव ।
निष्पिष्य पाणिना पाणिं हन्तुकामो जगद्यथा ।५१।
हे विप्रचित्ते हे राहो हे बलैष महार्णवे ।
नागपाशैः क्षिप्यतां मा विलम्ब्यताम् ।५२।
अन्यथा सकला लोकास्तथा दैतेयदानवाः ।
अनुयास्यन्ति मूढ़स्य मतमस्य दुरात्मनः ।५३।
वहुशो वारितोऽस्माभिरय पापस्तथाप्यरेः ।
स्तुतिं करोति दुष्टानां वध एवोपकारकः ।५४।
ततस्ते सत्वरा दैत्या बद्ध्वा तं नागबन्धनैः ।
भर्तुराज्ञां पुरस्कृत्य चिक्षिपुः सलिलार्णवे ।५५।
ततश्चचाल चलता प्रह्लादेन महार्णवः ।
उद्वेलोऽभूत्परं क्षोभमुपेत्य च समततः ।५६।

श्री पराशर जी ने कहा—इतना सुनते ही हिरण्यकशिपु अपने सिंहासन से उठा और उसने अपने पुत्र के हृदय पर पदाघात किया ।५०। तथा क्रोध और अमर्ष से दग्ध होता हुआ, जैसे सम्पूर्ण विश्व का नष्ट कर देगा, वैसे हाथ मलता हुआ कहने लगा ।५१। हिरण्यकशिपु बोला-हे विप्रचित्ते ! हे राहो! हे बल! तुम इस नागपाश में भले प्रकार बाँध कर महासागर में डुबा दो, इस कार्य में विलम्ब मत करो ।५२। ऐसा न करने से सभी लोक तथा दैत्य दानव आदि भी इस अविवेकी दुरात्मा के मत का अनुसरण करने लगेंगे ।५३। हमारे द्वारा बार-बार निषेध करने पर भी यह दुष्ट हमारे शत्रु की ही प्रशंसा करता

रहता है । इसलिए ऐसे दुष्टों को वध कर देना ही उचित है ।५४। श्री पराशरजी ने कहा–फिर उन दैत्यों ने अपने स्वामी की आज्ञा के अनुसार प्रहलाद को उसी समय नागपाश में बाँधकर महासागर में डाल दिया।५५ उससे महासागर में खलबली मच गई और अत्यन्त क्षोभ के कारण उसमें बड़ी ऊँची तरंगें उठने लगीं ।५६।

भूर्लोकमखिलं दृष्ट्वा प्लाव्यमानं महाम्भसा ।
हिरण्यकशिपुर्दैत्यानिदमाह महामते ।५७।
दैतेयाः सकलैः शैलैरत्रैव वरुणालये ।
निश्छिद्रैः सर्वेश्चीयतामेष दुर्मतिः ।५८।
नाग्निर्दहति नैवायं शस्त्रैश्छिन्नो न चोरगैः ।
क्षयं नीतो न वातेन न विषेण न कृत्यया ।५९।
न मायाभिर्न चैवोच्चात्पातितो न च दिग्गजैः ।
बालोऽतिदुष्ठचितोऽयं नानेनार्थोऽस्ति जीवता ।६०।
तदेष तोयमध्ये तु समाक्रान्तो महीधरैः ।
तिन्ष्टवब्दसस्त्रान्त प्राणान्हास्यति दुर्मतिः ।६१।
ततो दैत्या दानवाश्च पर्वतैस्तं महोदधौ ।
आक्रम्य चयनं चक्रुर्योजवानि सहस्रशः ।६२।
स चितः पर्वतैरन्तः समुद्रस्य महामतिः ।
तुष्टावाह्निकवेलायासे काग्रमतिरच्युतम् ।६३।

हे महामते ! महासागर के उमड़ते हुए जल में सम्पूर्ण पृथिवी को डूबती हुई देखकर दैत्यों से हिरण्यकशिपु कहने लगा ।७५। हिरण्यकशिपु बोला—हे दैत्यों ! तुम इस दुर्बुद्धि को समुद्र के भीतर भी कहीं से भी खुला मत रहने दो और सब ओर से पर्वतों से दबा डालो।५८। अहो यह न तो अग्नि में जला न शास्त्रास्त्रों से कटा व सर्पों के दंश से मार न वायुविष या कृत्या से ही नष्ट हुआ न ऊपर से गिराने दिग्गजों के छोड़ने अथवा माया-ओं के द्वारा ही इसका कुछ बिगड़ा परन्तु इस दुष्ट हृदय बालक के जीवन से लाभ नहीं है ।५९-६०। इसलिये यह पर्वतों के भार से दबा हुआ सहस्रों वर्ष

तक समुद्र के जल में ही पड़ा रह कर कभी तो अपने प्राण का त्याग करेगा ।६१। ऐसी आज्ञा पाकर दैत्यों ने उस बालक के ऊपर पर्वतों का हजारों योजन विस्तृत ढेर कर दिया ।६२। परन्तु वह महामति पर्वतों से लदे हुए समुद्र में पड़े रह कर केवल एकाग्र मन से भगवान् की स्तुति ही करते रहे ।।६३।

नमस्ते पुण्ढरीकाक्ष नमस्ते पुरषोत्तम ।
नमस्ते सर्वलोकात्मनमस्ते तिग्मचक्रिणे ।६४।
नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्महिताय च ।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ।६५।
ब्रह्मत्वे सृजते विश्वं स्थितौ पालयते पुनः ।
रुद्ररूपाय कल्पान्ते नमन्तुभ्यं त्रिमूर्तये ।६६।
देवा यक्षासुराः सिद्धा नागा गन्धर्वकिन्नाराः ।
पिशाचा राक्षसाश्चैव मनुष्याः पशवस्तथा ।६७।
पक्षिणाः स्थावराश्चैव पिपीलिकसरीसृपाः ।
भूम्यापोऽग्निर्नभो वायुः शब्दः स्पर्शस्तथा रमः ।६८।
रूपं गन्धो मनो बुद्धिरात्मा कालस्तथा गुणाः ।
एतेषां परमार्थश्च सर्वमेतत्वमच्युत ।६९।
विद्याविद्ये भवान्सत्यमसत्यं त्वं विषामृते ।
प्रवृत्तं च निवृत्तं च कर्म वेदोदितं भवान् ।७०।

प्रह्लाद ने कहा—हे पुण्डरीकाक्ष ! हे पुरुषोत्तम ! हे सर्व लोकात्मन् हे तीक्ष्णचक्रधर ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है ।६४। गो-ब्राह्मण के हितैषी ब्रह्मण्यदेव भगवान् श्री कृष्ण को नमस्कार है, जगत् का हित करने वाले भगवान् गोविन्द को नमस्कार है ।६५। ब्रह्मा रूप विश्व के सृष्टा; विष्णु रूपसे पालक और रुद्र रूप से संहारक त्रिमूर्तिधारी भगवान् को नमस्कार है ।६६। हे अच्युत ! आपही देवता, यक्ष, असुर, सिद्ध, नाग; गन्धर्व, किन्नर, पिशाच, राक्षस, मनुष्य, पशु, पच्छी, स्थावर, चीटीं, सरीसृप पृथ्वी जल, अग्नि, नभ, वायु, शब्द, रूप, रस, गन्ध, मन, बुद्धि, आत्मा, काल और गुण

के परमार्थिक स्वरूप हैं यथार्थ में यह सब आप ही हैं ।६७-६९। आपही विद्या, अविद्या, असत्य विष, अमृत तथा वेदों में कहे गये प्रवृत्त और निवृत्त कर्म हैं ।७०।

समस्तकर्मभोक्ता च कर्मोपकरणानि च ।
त्वमेव विष्णो सर्वाणि सर्वकर्मफलं च यत् ।७१।
मय्ययन्त्र तथान्येषु भूतेषु भुवनेषु च ।
तवैव व्याप्तिरैश्वर्यगुणसंसूचिको प्रभो ।७२।
त्वां योगिनश्चिन्तयन्ति त्वां यजन्ति च याजकाः ।
हव्यकव्यभुगेकस्त्वं पितृदेवस्वरूपधृक् ।७३।
रूपं महत्ते स्थितमत्र विश्वं
ततश्च सूक्ष्मं जगदेतदीश ।
रूपाणि सर्वाणि च भूतभेदा-
स्तेष्वन्तरात्माख्यमतीव सूक्ष्मम् ।७४।
यस्माच्च सूक्ष्मादिविशेषणानामगोचरे यत्परमात्मरूपम् ।
किमप्यचिन्त्यं तव रूपमस्ति तस्मै नमस्ते पुरुषोत्तमाय ।७५।
सर्वभूतेषु सर्वात्मन्या शक्तिपरा तव ।
गुणाश्रया नमस्तस्यै शाश्वतायै सुरेश्वर ।७६।
यातीतगोचरा वाचां मनसां चाविशेषणा ।
ज्ञानिज्ञानपरिच्छेद्या तां वन्देश्वेश्वरीं पराम् ।७७।

हे विष्णो ! आप ही सब कर्मों के भोक्ता तथा भोग हैं और सब कर्मों के जितने भी फल हैं वह सभी आप हैं ।७१। मुझ सहित सभी प्राणियों और लोकों में आपका ही गुण तथा ऐश्वर्य व्याप्त है ।७२। योगीजन आप का ही ध्यान करते और याज्ञिकगण आपका ही यजन करते हैं, आपही पितरों के रूप में कव्य और देवताओं के रूप में हव्य के भोक्ता हैं ७३। हे प्रभो ! यह ब्रह्माण्ड ही आपका स्थूल देह है उससे सूक्ष्म यह संसार और संसार से भी सूक्ष्म यह विभिन्न रूपधारी प्राणी हैं, प्राणियों से भी अत्यत सूक्ष्म उनका अन्तरात्मा है ।७४। उससे भी परे जो सूक्ष्मादि विशेषणों से

रहित आपका अचिन्त्य रूप है, उस पुरुषोत्तम रूप आप प्रभु को नमस्कार है ।७५। हे सर्वात्मन् ! सब भूतों में स्थित आपके गुण की आश्रिता जो परशक्ति है, उस नित्यरूपिणी शक्ति को भी नमस्कार है ।७६। जो मन वाणी और विशेषणों से परे तथा ज्ञानियों के ज्ञान से परिछिन्न है, उस परम स्वतन्त्रा पराशक्ति की मैं वन्दना चाहता हूँ ।७७।

ऊँ नमो वासुदेवाय तस्यै भगवते सदा ।
व्यतिरिक्तं न यस्यास्ति व्यतिरिक्तोऽखिलस्य यः ।७८।
नमस्तस्यै नमस्तस्मै नमस्तस्यै महात्मने ।
नाम रूप न यस्येको योऽतित्वेनोपलभ्यते ।७९।
यस्यावतार रूपाणि समर्चन्ति दिवौकसः ।
अपश्यन्तः परं रूप नमस्तस्यै महात्मने ।८०।
योऽन्तस्तिष्ठन्नशेषस्य पश्यतीशः शुभाशुभम् ।
तं सर्वसाक्षिणं विश्वं नमस्ते परमेश्वरम् ।८१।
नमोऽस्तु विष्णवे तस्मै यस्याभिन्नमिद जगत् ।
ध्येयः स जगतामाद्यः स प्रसीदतु मेऽव्ययः ।८२।
यत्रोतमेतन्प्रोतं च बिश्वमक्षरमव्ययम् ।
आधारभूतः सर्वस्य स प्रसीदतु मे हरिः ।८३।
ऊँ नमो विष्णवे तस्मै नमतस्मै पुनः पुनः ।
यत्र सर्वं यतः सर्वं यः सर्वं सर्वसंश्रयः ।८४।
सर्वगत्वादनन्त स एवाहमवस्थितः ।
मत्तः सर्वमहं सर्वं मयि सर्वं सनातने ।८५।
अहमेवाक्षयो नित्यः परमात्मसश्रयः ।
ब्रह्मसंज्ञोऽहमेवाग्रे तथान्ते च पराः पुमान् ।८६।

उस वासुदेव भगवान् को सदा नमस्कार है, जिनके बिना कोई वस्तु नहीं है, तथा जो सभी से परे हैं ७८ जिनका न कोई रूप है न नाम है केवल अपनी ही सत्ता से उपलब्ध होते हैं उन महात्मा को बारम्बार नमस्कार है ।७९। जिनके पर-स्वरूप का ज्ञान न होने से ही देवगण उनके

अवतरित देहों को भले प्रकार पूजन करते हैं उन महान् आत्मा को नमस्कार है ।८०। जो सभी के अन्तःकरण में रह कर सभी के शुभाशुभ कर्मों के द्रष्टा हैं उन सर्व साक्षी विश्वरूप को मैं प्रणाम करता हूँ ।८१ जिनसे यह विश्व सर्वथा अभिन्न है उन विष्णु को नमस्कार है यह योगियों के ध्यान योग्य विश्व के आदि कारण तथा अव्यय भगवान् मुझ पर प्रसन्न हों ।८२। जिनमें यह जगत् ओत्-प्रोत है और जो अक्षर, अव्यय और सर्वाधार हैं वह श्रीहरि मुझ पर प्रसन्न हों ।८३। जिनमें सर्व प्रपंच स्थित हैं जिनमें सब कुछ प्रकट हुआ है तथा जो सर्वाश्रय हैं उन भगवान् विष्णु को नमस्कार है ।८४। वे सर्वगत भगवान् अनन्त हैं मेरे रूप में भी वही स्थित हैं इसलिए इस सम्पूर्ण विश्व की उत्पत्ति मुझ से होने के कारण मैं ही सब कुछ हूँ और यह सब मुझ सनातन में ही स्थित है ।८५। मैं ही अक्षय नित्य और आत्माश्रय रूप परमेश्वर हूँ तथा मैं ही विश्व के आदि अन्त में स्थित ब्रह्मनाम से विख्यात परम पुरुष हूँ ।८६।



बीसवां अध्याय

एवं सञ्चिन्तयन्विष्णुमभेदेनात्मनो द्विज
तन्मयत्वमवाप्याग्र्यं मेने चात्मानमच्युतम् ।१।
विसस्मार तथात्मानं नान्यत्किञ्चिदजानत ।
अहमेवाव्ययोऽनन्तः परमात्मेत्यचिन्तयत् ।२।
तस्य तद्भावनयोगात्क्षीणपापास्य वै क्रमात् ।
शुद्धेऽन्तःकरणे विष्णुस्तस्थौ ज्ञानमयोऽच्युतः ।
योगप्रभावात्प्रह्लादे जाते विष्णुमयेऽसुरे ।
चयत्युरगबन्धैस्तैर्मैत्रेय त्रुटितं क्षणात् ।४।
भ्रान्तग्राहगणः सोर्मिर्ययौ क्षोभं महार्णवः ।

चचाल च मही सर्वा सशैलवनकानना ।५।
स च त शैलसघातं दैत्यैर्न्य स्तमथोपरि ।
उत्क्षिप्य तस्मात्सलिलान्निश्चकाम महामतिः ।६।
दृष्ट्वा च स जगद्भयो गगनाद्युपलक्षणम् ।
प्रह्लादोऽस्मीति सस्मार पुनरात्मानमात्मनि ।७।
तुष्टाव च पुनर्धीमाननादिं पुरुषोत्तमम् ।
एकाग्रमतिरव्यग्रो यतवक्कायमानसः ।८।

श्री पराशरजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार भगवान् को अपने से अभिन्न चिन्तन करते रहने और पूर्ण तन्मयता प्राप्त होने से प्रह्लाद ने अपने को ही अच्युत स्वरूप माना ।१। उस समय वे स्वयं को भूल गये और उन्हें भगवान् के अतिरिक्त और किसी की अनभूति न होती थी, केवल मैं ही अव्यय, अनन्त परमेश्वर हूँ यही भावना उनके मन में भर गई ।४। उसी भावना के कारण वह पाप-रहित हो गये और उनके अन्तः करण में शान रूप भगवान् साक्षात् रूप से प्रतिष्ठित हो गये ३। हे मैत्रेय ! इस प्रकार के योगबल से जब वे विष्णुमय हो गये तब नागपाश टूट गई ।४। उनके विचलित होने से भ्रमणशील ग्रहों और तरल-तरंगों से महासागर क्षुब्ध हो गया, इससे वनोपवन युक्त एवं पर्वतमयी सम्पूर्ण पृथिवी डोल उठी ।५। तब दैत्यों द्वाराँ लादे गये सब पर्वतों को दूर फेंक कर प्रह्लाद समुद्र से बाहर निकले ।६। और आकाशादि युक्त संसार को देखकर उन्हें पुनः यह आभास हुआ कि मैं दैत्यसुत प्रह्लाद हूँ ।७। तब उन्होंने मन, वाणी और शरीर को सयमित करके धैर्य और एकाग्र धारण करके अनादि पुरुष भगवान् विष्णु की स्तुति की ।८।

ॐ नमः परमार्थार्थ स्थूलसूक्ष्म क्षराक्षर ।
व्यक्ताव्यक्त कलातीत सकलेश निरञ्जन ।९।
गुणाज्जन गुणाधार निर्गुणात्मन् गुणस्थित ।
मूर्तामूर्ततहामूर्ते सूक्ष्ममूर्त स्फुटास्फुट ।१०।
करालसौम्यरूपात्मन्विद्याविद्यामयाच्युत ।

सदसद्रूपसद्भाव सदसदभावभावन ।११।
नित्यानित्यप्रपञ्चात्मन्निष्प्रपञ्चामलाश्रित ।
एकानेक नमस्तुभ्यं वासुदेवादिकारण ।१२।
यः स्थूलसूक्ष्मः प्रकटप्रकाशो यः सर्वभूतो न च सर्वभूतः ।
विश्वं यतश्चैदविश्वहेतोर्नमोस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय ।१३।
तस्य तच्चेतसो देवः स्तुतिमित्थं प्रकुर्वतः ।
अविर्भूव भगवान् पीताम्बरधरो हरिः ।१४।

प्रह्लाद ने कहा-हे परमार्थ ! हे अर्थ ! हे स्थूल-सूक्ष्म ! हे क्षाराक्षर रूप ! हे व्यक्ताव्यक्त ! हे काल से परे परमेश्वर ! हे निरंजन ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ ६। हे गुणाञ्जन ! गुणाधार ! निर्गुणात्मन् ! गुणस्थित ! मूर्तामूर्ते रूप ! महामूर्त ! सूक्ष्ममूर्ते ! प्रकाशाप्रकाश रूप ! विकराल और सौम्य रूप ! विद्या-अविद्यामय अच्युत ! सदसत् रूप ! जगत् के उत्पत्तिस्थान ! सदसत्विश्व के पालनकर्त्ता ! नित्य-अनित्य प्रपचात्मन् ! प्रपंच से परे एवं ज्ञानियों के आश्रय ! एकानेक रूप आदि कारण वासुदेव १०-१२। जो स्थूल-सूक्ष्म रूप, स्फुट प्रकाशमय अधिष्ठान से सर्वभूत रूप परन्तु सभी भूतों से परे, कारण-रहित होने पर भी जिनसे इस विश्व की उत्पत्ति हुई है, उन भगवान् श्रीपुरुषोत्तम को नमस्कार है १३। श्री पराशरजी ने कहा—इस प्रकार तन्मयतापूर्वक स्तव करने पर देव देव भगवान् श्रीहरि साक्षात् रूप में प्रकट हुए १४।

ससम्भ्रमस्तमालोक्य समुत्थायाकुलाक्षरम् ।
नमोऽस्तु विष्णवेत्येतद् व्याजहाराकृद् द्विज ।१५।
देव प्रपन्नार्तिहर प्रसाद कुरु केशव ।
अवलोकनदानेन भूयो मा पावयाच्युत ।१६।
कुर्वतस्ते प्रसन्नोऽहं भक्तिमव्यभिचारिणीम् ।
यथाभिलषितो मत्तः प्रह्लाद व्रियतां वरः ।१७।
नाथ योनिसहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम् ।
तेषु तेष्वच्युता भक्तिरच्युतास्तु सदा त्वयि ।१८।
या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी ।

त्वाममुस्मरतः सा मे हृदयन्मापसर्पतु ।१९।
मति भक्तिस्तवास्त्येव भूयोऽप्येवं भविष्यति ।
वस्तु मत्तः प्रह्लाद व्रियतां यस्तवेप्सितः ।२०।

हे विप्र ! भागवान् को इस प्रकार प्रकट हुऐ देखकर प्रह्लाद खड़े हो गये और उन्होंने गद्‌गद कंठ से बारम्बार कहा-भगवान् विष्णु को नमस्कार है १५। प्रह्लाद ने कहा- हे शरणागत का दुःख हरण करने वाले श्री केशव ! प्रसन्न हूजिये। मुझे अपने पुण्य दर्शनों से पुनः-पुनः पवित्र करते रहिये १६। श्री भगवान् बोले-हे प्रह्लाद ! तेरी अनन्य भक्ति से मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूँ, तू अपना इच्छित वर माँगले १७। प्रह्लाद ने कहा-हे नाथ ! हजारों योनियों में से मैं जिस-जिस योनि को प्राप्त होऊँ, उस-उस में ही मेरी भक्ति आप में सदैव अक्षुण्ण रूप से बनी रहे १८। जैसे अविवेकी जन विषयों में अविचल प्रीति रखते हैं, वैसे ही आप मेरे हृदय से कभी भी पृथक न हों १९। श्री भगवान् ने कहा-हे प्रह्लाद ! मेरे प्रति तो तेरी अटूट भक्ति है ही तथा भविष्य में भी रहेगी। इसके अतिरिक्त भी तुझे जिस वर की अभिलाषा हो, वह मुझसे माँग ले २०।

मयि द्वेषानुबन्धोऽजूत्संस्तुतालुद्यते तव ।
मत्पितुस्तत्कृतं पाप देव तस्य प्रणश्यतु ।२१।
शस्त्राणि पातितान्यङ्गे क्षितो यच्चाग्निराहतौ ।
दंशितश्चोरगैर्दत्तं यद्विष मम भोजने ।२२।
बद्ध्वा समुद्रे यत्क्षिप्तो यच्चितोऽस्मि शिलोच्चयैः ।
अन्यानि चाप्यसाधूनि यानि पित्रा कृतानि मे ।२३।
त्वयि भक्तमतो द्वेषादघं तत्सम्भवं च यत् ।
त्वत्प्रसादात्प्रभो सद्यस्तेन मुच्येत मे पिता ।२४।
प्रह्लाद सर्वमेतत्ते मत्प्रसादाद्भविष्यति ।
अन्यच्च ते वर दद्मि व्रियतामसुरात्मज ।२५।
कृतकृत्याऽस्मि भगवन्वरेणानन यत्त्वयि ।
भवित्री त्वत्प्रसादेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।२६।

धर्मार्थकामैः किं तस्य मुक्तिस्तस्य करे स्थिता ।
समस्तजगतां मूले यस्य भक्तिः स्थिरा त्वयि ।२७।

प्रह्लाद के कहा--हे देव ! आपकी स्तुति करने के कारण जो मेरे पिता के चित्त में द्वेष उत्पन्न हुआ और उससे जो पाप उन्हें लगा, वह दूर हो जाय २१। तथा मेरे देह पर शस्त्राघात करने, अग्नि में जलने, सर्पों से कटवाने भोजन में विष देने, पाशबद्ध कर समुद्र में डालने; शिलाओं से दबाने तथा अन्यान्य दुर्व्यवहार मेरे साथ करने के कारण जो मेरे पिता को लगा है, उस पाप से मेरे पिता शीघ्र ही छूट जायँ २२-२४। भगवान् बोले प्रह्लाद ! तेरी यह सभी कामनाएँ मेरी कृपा से परिपूर्ण होगी । मैं तुझे एक वर और देना चाहता हूँ. तेरी जो इच्छा हो,व ही मांग ले २५। प्रह्लाद ने कहा-हे प्रभो । मैं तो आपके इसी वर से धन्य होगया कि आप में मेरी निरंतर भक्ति रहेगी २६। जब आप संपूर्ण विश्व के कारण रूप में जिनकी अविचल भक्ति है तो मोक्ष उसके हाथ में ही स्थित रहेगी, फिर उसे धर्म, अर्थ और काम से प्रयजन क्या है ? २५।

यथा ते निश्चलं चेतो मयि भक्तिसमन्वितम् ।
तथा त्वं मत्प्रसादेन निर्वाणम्परमाप्स्यसि ।२८।
इत्क्पुत्वान्तर्दधे विष्णुस्तस्यमैत्रेय पश्यतः ।
स चापि पुनरागम्य ववन्दे चरणौ पितुः ।२९।
त पिता मूर्ध्न्युपाधाय परिष्वज्य च पीडितम् ।
जोवसीत्याह वत्सेति बाष्पार्द्रनयनो द्विज ।३०।
प्रीतममाश्चाभवत्तस्मिन्ननुतापी महासुरः ।
गुरुपित्रोश्चकारैवं सुश्रुषा सोऽपि धर्मवित् ।३१।
पितर्युपरतिं नीते नरसिंहस्वरूपिणा ।
विष्णुना सोऽपि दैत्याना मैत्रेयाभूत्पतिस्ततः ।३२।
ततौ राज्यद्युतिं प्राप्य कर्मशुद्धिकरीं द्विज ।
पुत्रपौत्रांश्च सुवहूनवाप्यैश्वर्यमेव च ।३३।

क्षीणाधिकारः स यदा पुण्यपापविवर्जितः ।
तदा स भगवद्धयानात्परं निर्वाणमाप्तवान् ।३४।

भगवान् ने कहा—हेप्रह्लाद ! तेरा चित्त मेरी भक्ति में अविचल होने के कारण तुझे मेरी कृपा से परमनिर्वाण पद की प्राप्ति होगी ।२८। श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी यह कहकर भगवान् तत्काल अन्तर्धान हो गये और प्रह्लाद ने भी अपने पिता के पास जाकर उनके चरणों में प्रणाम किया ।२९। तब दैत्यराज ने अपने जिस पुत्र को विभिन्न प्रकार से संतप्त किया था, उसका मस्तक सूँघकर अश्रु पूर्ण नेत्रों ने कहा—हे पुत्र ! तू जीवित तो है ? ।३०। वह महासुर अपने कर्म पर पश्चात्ताप करता हुआ प्रह्लाद से स्नेह करने लगा और धर्मज्ञ प्रह्लाद भी अपने गुरु तथा माता-पिता की सेवा सुश्रूषा से लग गये ।३१। हे मैत्रेयजी ! फिर नृसिंह रूपधारी भगवान् विष्णु द्वारा हिरण्यकशिपु का वध किये जाने पर वही दत्यों के अधीश्वर हुए ।३२। तब प्रारब्ध का क्षय करने वाली राजश्री, अनेक युत्र-पौत्रादि तथा परमैश्वर्य को प्राप्त होकर कर्माधिकाप की क्षीणता से पाप-पुण्य शून्य होकर प्रभु-स्मरणपूर्वक उन्होंने परम निर्वाणपद पाया ।३६-३४।

एवं प्रभावो दैत्योऽसौ मैत्रेयासीन्यहामतिः ।
प्रह्लादो भगवद्भक्तो यं त्वं मामनुपृच्छसि ।३५।
यस्त्वेतच्चरितं तस्य प्रह्लादस्य महात्मनः ।
शृणोति तस्य पापानि सद्यो गच्छन्ति सङ्क्षयम् ।३६।
अहोरात्रकृतं पापं प्रह्लादचरितं नरः ।
शृण्वन् पठंश्च मैत्रेय व्यपोहति न संशयः ।३७।
पौर्णमास्याममावस्यामष्टम्यामथ वा पठन् ।
द्वादश्यां तदाप्नोति गोप्रदानफलं द्विज ।३८।
प्रह्लादं सकलापत्सु यथा रक्षितवान्हरिः ।
तथा रक्षति यस्तस्य शृणोति चरितं सदा ।३९।

हे मैत्रेयजी ! तुमने जिनके विषय में प्रश्न किया था, वह भगवद्-भक्त प्रह्लाद ऐसे प्रभावशाली हुए थे । उनके चरित्र को सुनने वाले के

सब पापों का शीघ्र ही क्षय हो जाता है।३५-३६। हे मैत्रेयजी ! इस प्रह्लाद चरित्र के श्रवण या पाठ करने से दिन-रात में किये गये पापों से भी मुक्ति होती है।३७। हे द्विज ! जो कोई इसे पूर्णिमा, अमावस्या, अष्टमी अथवा द्वादशी को पढ़ता है वह गोदान का फल पाता है।३८। जैसे भगवान् ने प्रह्लाद की सब सँकटों से रक्षा की थी, वैसे ही वह उनके चरित्र सुनने वाले की भी रक्षा करते हैं।३९।

—※—

इक्कीसवाँ अध्याय

संह्लदपुत्र अयुष्माञ्छिविवष्किल एव च ।
विरोचनस्तु प्राह्लादर्बलिर्ज्ञे विरोचनात् ।१।
बलेः पुत्रशतं त्वासीद्बाणज्येष्ठं महानुने ।
हिरण्याक्षसुताश्चासन्सर्वं एव महाबलाः ।२।
उत्कुरः शकुनिश्चैव भूतसन्तापमस्तथा ।
महानाभो महाबाहुः कालनाभस्तथापरः ।३।
अभवन्दनुपुत्राश्च द्विमूर्द्धा शम्बरस्तथा ।
आयोमुखः शङ्कुशिराः कपिलः शङ्करस्तथा ।४।
एकचक्रो महाबाहुस्तारकश्च महाबलः ।
स्वर्भानुर्वृषपर्वा च पुलोमश्च महाबलः ।५।
ऐते दनो सुताः ख्याता विप्रचित्तश्च वीर्यवान् ।
स्वर्भानोस्तु प्रभा कन्या शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ।६।
उपादानी हयशिराः प्रख्याता वरकन्यकाः ।
वैश्वानरसुते चौभे पुलीमा कालका तथा ।७।

श्रीपराशरजी ने कहा-संह्लाद के पुत्र आयुष्मान् शिवि और वाष्कल हुए तथा प्रह्लाद के पुत्र विरोचन हुए, उस विरोचन का पुत्र बलि हुआ १।

हे महामुने। बलि के सौ पुत्र हुए, जिनमें सबसे बड़ा बाणासुर था। हिरण्याक्ष के उत्कुर शकुनि, भूत सन्तापन, महनाभ, महाबाहु तथा काल नाभ आदि पुत्र हुए, वे सब अत्यन्त बलवान थे।२-३। कश्यप पत्नी दनु के पुत्र द्विमुर्द्धा, शम्बर, अयोमुख शंकुशिरा, कपिल,शंकर, एकचक्र, महाबाहु, तारक, महाबल, स्वर्भानु, वृषपर्वा पुलोम ओर विप्रचित्ति नामक विख्यात पुत्र हुऐ। स्वर्भानु की कन्या प्रभा हुई और वृषपर्वा की अत्यन्त सुन्दरी कन्याएँ शर्मिष्ठा, उपदानी और हयशिरा अत्यन्त प्रसिद्ध हुईं वैश्वानर की दो कन्याएँ पुलोमा और कालका हुई।४-७।

उभे सुते महाभागे मारीचेस्तु परिग्रहः।
ताभ्यां पुत्रसहस्राणि षष्टिर्दानवसत्तमाः।८।
पौलोमाः कालकेंयाश्च मारीचतनयाः स्मृताः।
ततोऽपरे महावीर्या दारुणास्त्वविनिर्घृणाः।९।
सिंहिकायामणोत्पन्ना विप्रचित्तेः सुतास्तथा।
व्यंशः शल्यश्च बलवान् नभश्चैव महाबलः।१०।
वातापी नमुचिश्चै इल्वलः खसृमस्तथा।
अन्धको नरकश्चैव कामनाभस्तथैव च।११।
स्वर्भानुश्च महावीर्यो वक्त्रयोधी महासुरः।
एते वै दानवा श्रेष्ठा दनुवंशविवर्द्धनाः।१२।
एतेषां पुत्रपौत्रश्च शतशोऽथ सहस्रशः।
प्रह्लादश्च तु दैत्यस्य निवातकवचाः कुजे।१३।
समुत्पन्नाः सुमहता तपसा भावितात्मनः।
षट् सुताः सुमहासत्वास्ताम्रायाः परिकीर्त्तिताः।१४।
शुकी श्येनी च भासी च सुग्रीवीशुचिगृद्धिकाः।
शुकी शुकानजनयदुलूकप्रत्युलूकिकान्।१५।

हे महाभाग। वैश्वावर की दो कन्याएँ मरीचिपुत्र कश्यपजी की पत्नियाँ हुईं, जिनके साठ हजार पुत्र हुए।८। मरिचिसुत कश्यपजी के सभी पुत्र दो वर्गों में पौलोम और कालकेय नाम से प्रसिद्ध हुए। इनके

अतिरिक्त विप्रचित्त ने सिंहका के गर्भ से अनेक महाबली, अत्यन्त भयंकर और क्रूर पुत्र उत्पन्न किये। वे व्यश, शल्य, बलवान् नभ, वातारी, नमुचि, इल्वल. खसृम, अन्धक, नरक, काल-नाभ, स्वर्मानु और वक्रयोधी नाम से प्रसिद्ध थे। यह सभी दानव दनु की वंश वृद्धि करने वाले हुए ।९-१२। इनके अन्यान्य से सैंकड़ों हजारों पुत्र-पौत्रादि उत्पन्न हुए थे। महा तप के द्वारा आत्मज्ञान से युक्त प्रह्लाद के वश में निवातकवच नामक एक दैत्य हुए। कश्यप-पत्नी ताम्रा से शुकी, श्येनी, भासी, सुग्रीवी, शुचि गृद्धिका यह छहों कन्याएँ अत्यन्त प्रभाव वाली हुईं शुकी से शुक्र, उलूक और उलूकों के प्रतिपक्षी काक अदि हुए ।१३—१५।

श्येनी श्यनांस्तथा भासी भासान्गृसेध्राश्च गृद्ध्रयपि ।
शुच्यौदकान्पक्षिगणन्सुग्रीवी तु व्यजायत ।१६।
अश्वनुष्टान्गर्दभांश्च तम्राावंशः प्रकीर्त्तितः ।
विनतायास्तु द्वौ पुत्रौ विख्यातो गरुडारुणौ ।१७।
सुपर्णः पततां श्रेष्ठो दारुणः पन्नगाशनः ।
सुरसायां सहस्रं तु सर्पाणामतौजसाम् ।१८।
अनेकशिरसां ब्रह्मन् खेचराणां महात्मनाम् ।
काद्रवेयास्तु बलिनः सहस्रममितौजसः ।१९।
सुपर्णवशगा ब्रह्मन् जज्ञिरे नैकमस्तकाः ।
तेषां प्रधानभूतास्तु शेषवासुकितक्षकाः ।२०।
शङ्खश्वेतो महापद्मः लम्बलाश्वतरौ तथा ।
एलापुत्रस्तथा नागः कर्कोटकधनञ्जयौ ।२१।
एते चान्ये च बहवो दन्दशूका विषोल्बणाः ।
गणं क्रोधवशं विद्धि तस्याः सर्वे च दंष्ट्रिणः ।२२।
स्थलजाः पक्षिणोऽब्जाश्च दारुणाः पिशिताशनाः ।
क्रोधा तु जनयामास पिशाचांश्च महाबलान् ।१३।

श्येनी के श्येन (बाज) हुआ, भासी से भास तथा गृद्धिका से गृद्ध्रों की उत्पत्ति हुई। शुचि से जल के पक्षी हुए तथा सुग्रीवी से घोड़े,

ऊँट और गधे उत्पन्न हुए। इस प्रकार ताम्रा का वंश हुआ। विनता के दो पुत्र गरुड़ ओर अरुण नाम से प्रसिद्ध हुए।१६-१७। इनमें पक्षी श्रेष्ठ गरुड़ सर्पों के भक्षक तथा अत्यन्त प्रभारशाली आकाशचारी, अनेक शीश और विशालकाय वाले हजारों सर्प उत्पन्न हुए और क्रद्रु के भी अनेक सिर वाले अत्यन्त तेजस्वी हजारों ही सर्प उत्पन्न हुये जो गरुड़ के आधीन थे। उनमें से शेष, वासुकि, शंखश्वेत, महापद्म, कम्वल, अश्वातर, एलापुत्र, नाग कर्कों-टक, घनंजय एवं अन्य अनेक उग्र विश याले सर्प प्रधान कहे गये हैं। क्रोधवशा के क्रोधवशगण हुये, वे सब विकरालदा ढ़ वाले भयंकर कच्चे माँस का आहार करने वाले जलचर, थलचर और नभचर हैं। क्रोधा से ही महाबली पिशाचों की उत्पत्ति हुई है।१८-२३।

गास्तु वे जनवामास सुरभिर्महिषांस्तथा।
इरावृक्षलतावल्लीस्तृणजातीश्च सर्वशः।२४।

खसा ते यक्षरक्षांसि मुनिरप्सरसस्तथा।
अरिष्टा ते महासत्वान् गन्धर्वान्समजीजनत्।२५।

एते कश्यपदायादः कीर्तिताः स्थाणुजङ्गमाः।
तेषां पुत्रश्च पौत्राश्च शतोशोऽथ सहस्रशः।२६।

एष मन्वन्तरे सर्गो ब्रह्मन्स्वारोचिषे स्मृतः।
वैवस्वते च महिति वारुणेवितते कृतौ।२७।

जुह्वानस्य ब्रह्मणो वै प्रजासर्ग इहोच्यते।
पूर्वं यत्र तु सप्तर्शीनुत्पन्नान्सप्तमानसान्।२८।

पितृत्वे कल्पयामास स्वयमेव पितामहः।
गन्धर्वभोगिदेवानां दानवानां च सत्तम।२९।

दितिर्विनष्टतुत्रा वै तोषयामास काश्यपम्।
तथा चाराधितः सम्यक्काश्यपत्तपतां वरः।३०।

वरेणच्छन्दयामास सा च वव्रे ततो वरम्।
पुत्रामिन्द्रवधार्थाय समर्थममितौजसम्।३१।

सुरभि से गौ, भैंस आदि उत्पन्न सुईं और इरा से वृक्ष, लता वेल तथा सभी प्रकार के तृणादि उत्पन्न हुये ।२४। खास से यक्ष रासक्ष हुए, मुनि से अप्सराएँ सुईं और अरिष्टा से गंधर्व हुये यह सभी स्थावर जंगम देहधारी कश्यपजी से उत्पन्न हुए हैं। इनके अन्यान्य हजारों पुत्र-पौत्रादि हुए ।२६। हे ब्रह्मन् । यह वर्णन स्वारोचिष-- मन्वन्तर की सृष्टि का है। वैवस्वत--मन्वन्तर के आरम्भ में वारुण नामक महायज्ञ हुआ, उसमें ब्रह्माजी होता थे, अब मैं प्रजा के विषय में कहता हूँ। पहले के मन्वम्मर में ब्रह्माजी के मानस पुत्र रूप से जो सप्तर्षि हुए थे, ब्रह्माजी इस कल्प में इन्हें गंधर्व, नाग, देवता और दानवादि के पितृ रूप से कल्पित किया ।२७-२९। पुत्रों के नष्ट होने पर दिति ने कश्यपजी को प्रसन्न किया, तव संतुष्ट हुए: कश्यपजी ने उसे वर प्रदान द्वारा प्रसन्न किया उस समय उसने इन्द्र को मारने में समर्थ एक अत्यन्त तेजस्वी पुत्र की याचना की ।३०— ३१।

स च तस्मै वरं प्रादाद्भार्यायै मुनिसत्ततः ।
दत्वा च वरमत्युग्रं कश्यपस्तामुवाच ह ।३२।
शक्रं पुत्रो निहन्ता ते यदि गर्भं शरच्छतम् ।
समाहितातिप्रयता शौचिनी धारयिष्यसि ।३३।
इत्येवमुक्तवा तां देवीं सङ्गतः कश्यपो मुनिः ।
दधार सा तं गर्भं सम्यक्छौचसमन्विता ।३४।
गर्भमात्मवधार्थाय ज्ञात्वा तं माधवानपि ।
शुश्रूषुस्तामथ गच्छद्विनयादमराधिपः ।३५।
तस्याश्चै वान्तरप्रेप्सुरतिष्टात्पाकशासनः ।
ऊने वर्षशते चास्या ददर्शान्तिरमात्मना ।३६।
अकृत्वा पदायोः शौचं दितिः शयनमाविशत् ।
निद्रां चाहारयामास तत्या कुक्षिं प्रक्श्यि सः ।३७।
चज्रपाणिर्महागर्भं चिच्छेदाथ स सप्तधा ।
सम्पड्य मानो वज्रेण स रुरोदातिदारुणम् ।३८।
मा रोदीरिति तं शक्रः पुनः पुनरभाषत ।

सोऽभवत्सप्तधा गर्भस्तमिन्द्रः कुपितः पुनः ।३९।
एकैकं सप्तधा चक्रे वज्रेणारि वदारिणा ।
मरुतो नाम देवास्ते बभूवुरतिवेगिनः ।४०।
यदुक्तं वै भगवता तेनैव मरुतोऽभवन् ।
देवा एकोनपञ्चाशत्सहाया वज्रपाणिनः ।४१।

हे मुनिवर। कश्यपजी ने अपनी पत्नी दिति को अत्युग्र वर देते हुए उससे कहा ।३२। यदि तुम भगवान् के ध्यान में लगी रह कर अपने गर्भ को शौच एवं संयम पूर्वक सौ वर्ष तक धारण कर लोगी तो तुम्हें इन्द्र के नाशक पुत्र की प्राप्ति होगी ।३३। यह कह कर कश्यपजी ने उससे भी संगत की और उसने अत्यन्त पवित्रता से रहते हुए उस गर्भ को धारण किया ।३४। जब देवराज इन्द्र को अपने वध के कारण रूप उस गर्भ के विषयमें ज्ञात हुआ तो वह भी उसकी सेवा के लिए वहाँ उपस्थित हुये ।३५। उसके शौचादि में कभी कुछ गड़बड़ी हो, यह देखने की इच्छा से इन्द्र वहाँ निरंतर उपस्थित रहेते थे ।अन्त में सौ वर्ष पूरे होने में कुछ ही समय शेष था तब उन्होंने एक गड़ बड़ी देखी ३६। एक दिन दिति पैर धोये बिना ही शय्या पर लेट गयी और उसे प्रगाढ़ निद्रा ने घेर लिया, तभी इन्द्र अपना वज्र लेकर उसकी कुक्षि में प्रविष्ट हो गये और गर्भ के साथ खण्ड कर डाले। तब वज्र की पीड़ा से व्याकुल हुआ गर्भ चीत्कार कर रोने लगा ।३७-६८। इन्द्र ने गर्भ से बारम्बार कहा कि मत रो, मत रो और जब वह सात भाग में विभक्त होकर भी चुप न हुआ तो इन्द्र ने अत्यन्त क्रोध पूर्वक एक-एक खण्ड के भी सात-सात खन्ड कर दिये। वे अत्यन्त वेगवान् मरुत् नामक देवता हुए ।३९-४०। इन्द्रने उस गर्भ से कहा मा रोदी। अर्णात् न रो, इसलिये वे मरुत कहे गये। यह उनचास मरुद्-गण इन्द्र के ही सहायक देवता हुए थे ।४१।

—:❀❀:—

बीसवां अध्याय

यदभिषिक्तः स पृथुः पूर्वं राज्ये महर्षिभिः ।
ततः क्रमेण राज्यानि ददौ लोकपितामहः ।१।
नक्षत्रग्रहविप्राणां वीरुधां चाप्यशेषतः ।
सोम राज्ये दधद्ब्रह्मा यज्ञानां तपसामपि ।
राज्ञां वैश्रवणं राज्ये जलानां वरुणं तथा ।
आदित्यानां पतिं विष्णुं वसूनामथ पावकम् ।३।
प्रजापतीनां दक्षं तु वासवं मरुतामपि ।
दैत्यानां दानवानां च प्रह्लादमधिपं ददौ ।४।
पितृणां धर्मराजं तं यमं राज्येऽभ्यषेचयत् ।
ऐरावतं गजेन्द्राणामशेषाणां पतिं ददौ ।५।
पतत्रिणां तु गरुडं देवानमपि वासवम् ।
उच्चैः श्रवसमश्वानां वृषभं तु गवामपि ।६।
मृगाणां चैव सर्वेषा राज्ये सिंह ददौ प्रभुः ।
शेष तु दन्दशूकानामकरोत्पतिमव्ययः ।७।

श्री पराशरजी ने कहा—प्राचीन काल में जब महर्षियों ने पृथु को राज्यासन पर अभिषिक्त किया तब लोकपितामह ब्रह्माने क्रम पूर्वक राज्यों का विभाजन किया ।१। उन्होंने नक्षत्र, ग्रह, ब्राह्मण, वनस्पति, यज्ञ और तपादि के राज्य पर सोम को नियुक्त किया ।२। राजाओं का राजा विश्रवापुत्र कुबेर को बनाया, जलों का वरुण को, आदित्यों का विष्णु को और वसुगणों का अग्नि को बनाया ३ प्रजापतियों का दक्ष को, मरुद्गण का इंद्र को तथा दैत्य दानवों का राज प्रहलाद को नियुक्त किया ४। पितरों का अधिपति यम को और हाथियों का राजा ऐरावत को बनाया ५। पक्षियों के गरुड़, देवताओं के इंद्र, अश्वों के उच्चैश्रवा तथा गौओं के अधिपति वृषभ हुए ६। सब मृगों का सिंह राजा हुआ, सर्पों के स्वामी शेष हुए ७।

हिमालयं स्थावराणां मुनीनां कपिलं मुनिम् ।
नखिनां दंष्ट्रिणां चैव मृगाणां व्याघ्रमीश्वरम् ।८।
वनस्पतीनां राजानं प्लक्षमेवाभ्यषेचयत् ।
एवमेवान्यजातीनां प्राधान्येनाकरोत्प्रभुः ।९।
एवं विभज्य राज्यानि दिशां पालाननन्तरम् ।
प्रजापतिपतिर्ब्रह्मा स्थापयामास सर्वतः ।१०।
पूर्वस्यां दिशि राजानं वैराजस्य प्रजापतेः ।
दिशापालं सुधन्वानं सुतं वै सोऽभ्यषेचयत् ।११।
दक्षिणस्यां दिशि तथा कर्दमस्य प्रजापतेः ।
पुत्रं शङ्खपदं नाम राजानं सोऽभ्यषेचयत् ।१२।
पश्चिमस्यां दिशि तथा रजसः पुत्रमच्युतम् ।
केतुमन्तं महात्मानं राजानं सोऽभ्यषेचयत् ।१३।
उदीच्यां दिशि दुर्द्धर्षं राजानमभ्यषेचयत् ।१४।
तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपत्तना ।
यथाप्रदेशमद्यापि धर्मतः परिपाल्यते ।१५।

स्थावरों का स्वामित्व हिमालय को मिला, मुनियों का कपिल को तथा नख-दाढ़ वाले मृगों का अधिकार व्याघ्र को दिया गया ।८। वनस्पतियों का स्वामी प्लक्ष हुआ । इसी प्रकार अन्य-अन्य जीव-जातियों के स्वामित्व की भी ब्रह्माजी ने कल्पना की ९। इस प्रकार राज्य विभाग कर के उन्होंने सब दिशाओं में दिक्पालों को नियुक्त किया १०। पूर्व में वैराज प्रजापति के पुत्र राजा सुधन्वा को दिक्पाल बनाया ११। दक्षिण में कर्दम प्रजापति के पुत्र राजा शंखपद, दिक्पाल नियुक्त हुए १२। पश्चिम में रजस-पुत्र महात्मा केतुमान को निश्चित किया १३। तथा उत्तर में पर्जन्य प्रजापति के पुत्र राजा हिरण्यरोमा को दिक्पाल पद पर अभिषिक्त किया ४१ यह दिक्पाल सातों द्वीप और अनेक नगरों वाली इस सम्पूर्ण पृथ्वी का अपने-अपने अधिकार के अनुसार आज तक धर्म पूर्वक पालन करते चले आ रहे हैं १५।

एते सर्वे प्रवृत्तस्य स्थितौ विष्णोर्महात्मनः ।
विभूतिभूता राजानो ये चान्ये मुनिसत्तम ।१६।
ये भविष्यन्ति ये भूताः सर्वे भूतेश्वरा द्विज ।
ते सर्वे सर्वभूतस्य विष्णोरंशा द्विजोत्तम ।१७।
ये तु देवाधिपतयो ये च दैत्याधिपास्तथा ।
दानवाना च ये नाथाः पिशिताशिनाम् ।१८।
पशूनां ये च पतयः पतयो ये च पक्षिणाम् ।
मनुष्याणा च सर्पाणां नागानामधिपाश्च ये ।१९।
वृक्षाणां पर्वतानां च ग्रहाणां चापि येऽधिपाः ।
अतीता वर्त्तमानश्च ये भविष्यन्ति चापरे ।
ते सर्वे सर्वभूतस्य विष्णोरंशसमुद्भवाः ।२०।
न हि पालनसामर्थ्यमृते सर्वेश्वरं हरिम् ।
स्थितं स्थितौ महाप्राज्ञ भवत्यन्यस्य कस्यचित ।२१।
सृजत्येष जगत्सृष्टौ स्थितौ पाति सनातनः ।
हन्ति चैवान्तकत्वेन रजः सत्वादिसश्रयः ।२२।

हे मुनिश्रेष्ठ ! यह तथा और सभी राजागण संसार पालक भगवान् विष्णु की ही विभूति हैं १६। जो-जो राजा पूर्वकाल में हो चुके अथवा जो-जो भविष्य में होंगे, वे सब उन भगवान् के ही अंश रूप हैं १७। देवता दैत्य, दानव तथा अन्य सब आमिष भोजियों के स्वामी, पशु पक्षी, मनुष्य, सर्प और नागादि के अधिनायक, वृक्ष, पर्वत और ग्रहों के अधिपति तथा अन्य सब भूत, भविष्यत् और वर्तमान के भूतादिपति हैं, वे सभी सर्वभूतात्मक भगवान् के अंश से ही उत्पन्न हुए हैं १८-२०। सृष्टि के पालन-कार्य में प्रवृत्त भगवान् श्री हरि ही पालन-कार्य में समर्थ हैं, और किसी में ऐसी शक्ति नहीं है २१। रजादि गुणों के आश्रय से वे ही सनातन पुरुष विश्व के सर्ग काल में सृष्टि रचते हैं, स्थिति काल में पालन करते तथा अन्त में स्वयं ही काल स्वरूप होकर उसे नष्ट कर डालते हैं २२।

चतुर्विभागः संसृष्टौ चतुर्धा संस्थितः स्थितौ ।
प्रलयं च करोत्यन्ते चतुर्भेदो जनार्दनः ।२३।
एकेनांमेन ब्रह्मासौ भवत्यव्यक्तमूर्तिमान् ।
मरीचिमिश्राः पययः प्रजानां चान्यभागशः ।२४।
कालस्तृतीयस्तस्यांशः सर्वभूतानि चापरः ।
इत्थं चतुर्धा संसृष्टौ वर्त्ततेऽसौ रजोगुणः ।२५।
एकांशेनास्थितो विष्णुः करोति प्रतिपालनम् ।
मन्वादिरूपश्चान्येन कालरूपोऽपरेण च ।२६।
सर्वभूतेश चान्येन संस्थितः कुरुते स्थितिम् ।
सत्वं गुण समाश्रित्य जगतः पुरुषोत्तमः ।२७।
आश्रित्य तमसो वृत्तिमन्तकाले तथा पुनः ।
रुद्रस्वरूपो भगवानेकांशेन भवत्यजः ।२८
अग्न्यन्तकादिरूपेण भागेनान्येन वर्त्तते ।
कालस्वरूपो भागो यस्सर्वभूतानि चापरः ।२९।

वे भगवान् सृष्टि के समय चार विभाग से स्थिति के समय भी चार विभाग से तथा प्रलय काल में भी चार विभाग से स्थित रहते हैं २३। वह अपने ही एक अंश से ब्रह्मा तथा दूसरे से मरीच्यादि प्रजापति होते हैं, उनका तीसरा अंश समस्त जीव हैं। इस प्रकार रजोगुण विशिष्ट होकर वह अपने चार रूप धारण करते हैं २४-२५ फिर वे सत्वगुण के आश्रय से विश्व की स्थिति करते हैं। उस समय एक अंश से विष्णु रूप होकर पृथ्वी का पालन करते है और दूसरे अंश से मनु आदि एवं तीसरे से काल होते हैं तथा चौथे से सभी भूतों में स्थित होते हैं २६-२७। अन्त काल में वे तमोगुण के आश्रय में एक अंश से रुद्र. दूसरे से अग्नि और अन्तकादि, तीसरे से काल तथा चौथे से समस्त भूत रूप होते हैं २२-२९।

विनाशं कुर्वतस्तस्य चतुर्द्धैवं महात्मनः ।
विभागकल्पना ब्रह्मन् कथ्यते सर्वकालिकी ।३०।

ब्रह्मा दक्षादयः कालस्तथैवाखिलजन्तवः ।
विभूतयो हरेरेता जगतः सृष्टिहेतवः ।३१।
विष्णुर्मन्वादयः कालः सर्वभूतानि च द्विज ।
स्थितेर्निमित्तभूतस्य विष्णोरेता विभूत्तयः ।३२।
रुद्रः कालान्तकाद्याश्च समस्ताश्चैव जन्तवः ।
चतुर्धा प्रलयायैता जनार्दनविभूतयः ।३३।
जगदादौ तथा मध्ये सृष्टिराप्रलयाद् द्विज ।
धात्रा मरीचिमिश्रैश्च क्रियते जन्तुभिस्तथा ।३४।
ब्रह्मा सृजत्यादिकाले मरीचिप्रमुखास्ततः ।
उत्पादयन्त्यपत्यानि जन्तवश्च प्रतिक्षणेम् ।३५।
कालेन न विना ब्रह्मा सृष्टिनिष्पादको द्विज ।
न प्रजापतः सर्वे न चैवाखिलजन्तयः ।३६।

हे ब्रह्मन ! विनाश करने के हेतु उनकी इस प्रकार चार रूपों में सार्वकालिक विभाग कल्पना कही गई है ६०। ब्रह्मा, दक्षादि प्रजापति, काल एवं सर्व भूतगण, यह सभी भगवान् की विभूतियाँ विश्व-सृष्टि में कारण रूपा हैं ३१। हे द्विज ! विष्णु मनु आदि, काल और सभी जीव, स्थिति के कारण रूप भगवान् की ही विभूति हैं ३२। रुद्र, काल, अन्त-कादि और सब जीव—ये भगवान् जनार्दन की चार विभूतियाँ प्रलय की कारण रूपा कही गई हैं ३३। हे विप्र ! विश्व के आदि, मध्य तथा प्रलय तक ब्रह्मा, मरीचि आदि विभिन्न प्राणियों से ही सृष्टि होती रहती है ३४। सर्गारम्भ में प्रथम ब्रह्माजी सृजन करते हैं फिर मरीचि आदि प्रजापति और उनके पश्चात् सब प्राणी क्षण-क्षण में प्रजोत्पादन करते रहते हैं ३५। काल के बिना न तो ब्रह्मा ही कुछ कर सकते हैं और न प्रजापति या अन्य जीव ही प्रजोत्पत्ति में समर्थ हो सकते हैं ३६।

एवमेव विभागोऽयं स्थितावत्युपदिश्यते ।
चतुर्धा देवस्य मैत्रय प्रलये तथा ।३७।
यत्किञ्चित्सृज्यते येन सत्वजातेन वै द्विज ।
तस्य सृज्यस्य सम्भूतौ तत्सर्वं वै हरेस्तनुः ।३८।

हन्ति यावच्च यत्किञ्चित्सत्त्वं स्थावरजङ्गमम् ।
जनार्दनस्य तद्रौद्रं मैत्रेयान्तकरं वपुः ।३९।
एवमेष जगत्स्रष्टा जगत्पाता तथा जगत् ।
जगद्भक्षयिता देवः समस्तस्य जनार्दनः ।४०।
सृष्टिस्थित्यन्तकालेषु त्रिधैवं सम्प्रवर्तते ।
गुणप्रवृत्या परम पदं तस्यागुणं महद् ।४१।
तच्च ज्ञानमयं व्यापि स्वसं वेद्यमनौपमम् ।
चतुष्प्रकारं तदपि स्वरूपं परमात्मनः ।४२।

हे मैत्रेयजी ! विश्व की स्थिति और प्रलय में भी उन भगवान् के चार-चार विभाग कहे जाते हैं ३७। जिस जीव द्वारा जो कुछ भी उत्पत्ति होती है, उस सब में भगवान् विष्णु का देह ही एक मात्र कारण है ३८। इसी प्रकार स्थावर-जंगम प्राणियों में से यदि कोई किसी का अन्त करता है, तो वह अन्त करने वाला भी भगवान् का अन्त करने वाला रौद्र रूप होता है ३९। इस प्रकार वह भगवान् ही समस्त विश्व के सृजन, पालन और संहारकर्ता हैं तथा वे स्वयं ही जगद्रूप हैं ४०। उत्पत्ति, स्थिति और विनाश काल में वे इसी प्रकार तीनों गुणों के द्वारा प्रवृत होते हैं, तो भी उनका परमपद सर्वथा गुण रहित है ४१ उनका वह स्वरूप ज्ञान-मय, व्यापक, स्वसवेद्य अनुपम एवं चार प्रकार का है ४२।

चतुः प्रकारता तस्य ब्रह्मभूतस्य हे मुने ।
ममाचक्ष्व यथान्यायं यदुक्तं परमं पदम् ।४३।
मैत्रेय कारणं प्रोक्तं साधनं सर्ववस्तुषु ।
साध्यं च वस्त्वभिमतं यत्साधयितुमात्मनः ।४४।
योगिनो मुक्तिकामस्य प्राणायामादिसाधनम् ।
साध्यं च परमं ब्रह्म पुनर्नावर्तते यतः ।४५।
साधनालम्बनं ज्ञानं मुक्तये योगिना हि यत् ।
स भेदः प्रथमस्तस्य ब्रह्मभूतस्य वै मुने ।४६।
युञ्जतः क्लेशमुक्त्यर्थं साध्यं यद् ब्रह्मयोगिनः ।
तदालम्बनविज्ञानं द्वितीयोंशो महामुने ।४७।

उभयोस्त्वविभागेन साध्यसाधनयोर्हि यत् ।
विज्ञानमद्वैतमयं तद्भागोऽन्यो मयोदित: ।४८।

श्री मत्रैयजी ने कहा-हे मुने ! आपने भगवान् के परम पद को चार प्रकार का कहा है, वह कि प्रकार है ? यह आप मुझे विस्तार सहित बताने की कृपा करिये ४३। श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी सभी वस्तुओं का जो कारण है, वही उनका साधन कहा जाता है । अपनी जिस अभिमित वस्तु की सिद्धि करते है, वही साध्य होती है ४४। मोक्षाभिलाषी योगियों के लिये प्राणायाम आदि साधन तथा परब्रह्म ही साध्य है, जहाँ से कभी पुनरागमन नहीं होती ४५। योगी का मोक्ष-कारण साधनालम्बन ज्ञान ही उस ब्रह्मभूत परमपद का प्रथम भेद समझो ४७। क्लेश से मुक्त होने के योगाभ्यास करने वाले योगी के साध्य रूप ब्रह्म का ज्ञान आलम्बन विज्ञान कहा गया हैं, यह उसका द्वितीय भेद है ४६। तथा साधनों के अभेद वाले अद्वैन युक्त ज्ञाव को ही मैं उनका तृतीय भेद कहता हूँ ४८।

ज्ञानत्रयस्य वै तस्य विशेषो यो महामुने ।
तन्निराकरणद्वारा दर्शितात्मस्वरूपवत् ।४९।
निर्व्यापारमनाख्येय व्याप्तिमात्रमनूपमम् ।
आत्मसम्बोधविषयं सत्तामात्रमलक्षणम् ।५०।
प्रशान्तमभयं शुद्धं दुर्विभाव्य मसंश्रयम् ।
विष्णोर्ज्ञानमयस्योक्तं तज्ज्ञानं ब्रह्मसंज्ञितम् ।५१।
तत्र ज्ञाननिरोधेन योगिनो यान्ति ये लयम् ।
संसारकर्षणोप्तौ ते यान्ति निर्बीजतां द्विज ।५२।
एवं प्रकारममलं नित्यं व्यापकमक्षयम् ।
समस्तहेयरहितं विष्णुवाख्य परमं पदम् ।५३।
तद्ब्रह्म परमं योगी यतो नावर्तते पुन: ।
श्रयत्यपुण्यो परमे क्षीणक्लेशोऽतिनिर्मल: ।५४।

हे महामुने ! उक्त तीनों प्रकार के ज्ञात की विमेषता के निराकरण से अनुभूत आत्म रूप के समान ज्ञान-रूप भगवान् विष्णु का जो

निर्व्यापार, अनुपम, अनाख्येय, व्याप्तिमात्र, सत्तामात्र, आत्मबोधरूप, अलक्षण, अक्षय शान्त, शुद्ध भावना से परे तथा आश्रय से भी परे है, वही 'ब्रह्म' नामक ज्ञान है ।४९-५१। जो योगीजन उक्त अन्य ज्ञानों को छोड़कर इस चतुर्थ ज्ञान में ही लीन हो जाते हैं, वे इस संसार रूपी खेत में बीजारोपण रूप कर्म के लिये निर्बीज होते हैं।५२। इस प्रकार का अमल, नित्य, व्यापक, अक्षय और सब हेय गुणों से परे वह विष्णु संज्ञक परमपद है।।५३।। पुण्य—पाप के निर्मूल और क्लेशों की निवृत्ति से अत्यन्त निर्मल हुआ योगी ही उस परब्रह्म के आश्रय में जाकर पुनरावर्त्तन चक्र में नहीं पड़ता ।।५४।।

द्वे रूपे ब्रह्मणस्तस्य मूर्तं चामूर्त्तमेव च ।
क्षराक्षरस्वरूपे ते सर्वभूतेष्ववस्थिते ।५५।
अक्षरं तत्परं ब्रह्म क्षरं सर्वमिदं जगत् ।
एकदेशस्थितस्याग्नेर्ज्योत्स्ना विस्तारिणी यथा ।
परस्य ब्रह्मणः शक्तिस्तथेदमखिलं जगत् ।५६।
तत्राप्यासन्नदूरत्वाद्बहुत्वस्वल्पतामयः ।
ज्योत्स्नाभेदोऽस्ति तच्छक्तेस्तद्वन्मैत्रेय विद्यते ।५७।
ब्रह्मविष्णुशिवा ब्रह्मन्प्रधाना ब्रह्मशक्तयः ।
ततश्च देवा मैत्रेय न्यूना दक्षादयस्ततः ।५८।
ततो मनुष्याः पशवो मृगपक्षिसरीसृपाः ।
न्यूनान्न्यूनतराश्चैव वृक्षगुल्मादयस्तथा ।५९।
तदेतदक्षरं नित्य जगन्मुनिवराखिलम् ।
आविर्भावतिरोभावजन्मनाशविकल्पवत् ।६०।

उस ब्रह्म के रूप हैं मूर्त्त और अमूर्त्त, वे ही क्षर तथा अक्षर रूप से सभी प्राणियों में स्थित रहते हैं ।।५५।। क्षर रूप यह विश्व है तथा अक्षररूप वह परब्रह्म हैं। जैसे एक स्थान पर प्रज्वलित हुए अग्निका प्रकाश सर्वत्र रहता है, वैसे ही यह सम्पूर्ण विश्व एक परब्रह्म की ही शक्ति है।५६। हे मैत्रेयजी ! जैसे अग्नि के समीपस्थ और दूरस्थ भेद से प्रकाश में अधिकता और न्यूनता हो

जाती है वैसे ही ब्रह्म की शक्ति में समझो ।५७। हे ब्रह्मन् ! ब्रह्मा, विष्णु; शिव यह तीनों, ब्रह्म की प्रधान शक्तियाँ हैं, उनसे न्यून देवता और उनसे भी न्यून दक्ष आदि प्रजापति हैं ।५८। उनसे भी न्यून क्रमशः मनुष्य, पशु-पक्षी, मृग एवं सरीसृपाद तथा उनसे भी न्यून वृक्ष, गुल्म, लता आदि हैं ।२९। इसलिये हे मुनि श्रेष्ठ ! अविर्भाव, तिरोभाव, जन्म, नाश आदि विकल्प वाला यह विश्व यथार्थ मैं तो नित्य और अक्षर ही है ।६०।

सर्वशक्तिमयो विष्णुः स्वरूपं ब्रह्मणः परम् ।
मूर्तं यद्योगिभिः पूर्वं योगारम्भेषु चिन्त्यते ॥६१
सालम्बनो महायोगः सबीजो यत्र संस्थितः ।
मनस्यव्याहृते सम्यग्युञ्जतां जायते मुने ॥६२
स परः परशक्तीनां ब्रह्मणः समनन्तरम् ।
मूर्तं ब्रह्म महाभाग सर्वब्रह्ममयो हरिः ॥६३
तत्र सर्वमिदं प्रोतमोतं चैवाखिलं जगत् ।
ततो जगज्जगत्तस्मिन्स जगच्चखिलं मुने ॥६४
क्षराक्षरमयो विष्णुर्बिभर्त्यखिलमीश्वरः ।
पुरुषाव्याकृतमयं भूषणास्त्रस्वरूपवत् ॥६५

सर्व शक्तिमय भगवान् विष्णु ही ब्रह्म के परम स्वरूप एवं मूर्त्त रूप हैं, योगारम्भ के पूर्व योगिजन उन्हीं का चिंतन किया करते हैं ।६१।हे मुने ? जिन भगवान् में मन को भले प्रकार तन्मय करने वालों को आलम्बन युक्त सबीज महायोग की सिद्धि होती है, वे सर्वब्रह्ममय विष्णु ही सब पर-शक्तियों में प्रधान तथा ब्रह्म के समीपतम मूर्त्त ब्रह्म स्वरूप हैं ।६२-६३। हे मुने ? यह संपूर्ण विश्व उन्हीं में स्थित है तथा वे स्वयं ही सम्पूर्ण विश्व हैं ।६४। क्षर-अक्षर विष्णु ही इस प्रकृति-पुरुषात्मक विश्व को अपने आभूषण तथा आयुध के रूप में धारण करते हैं ।६५।

भूषणास्त्रस्वरूपस्थं यच्चैतदखिलं जगत् ।
बिभर्ति भगवान्विष्णुस्तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥५६

नमस्कृत्याप्रमेयाय विष्णवे प्रभविष्वे ।
कथयामि यथाख्यातं वसिष्ठेन ममाभवत् ।६७।
आत्मानमस्य जगतो निर्लेपमगुणामलम् ।
बिभर्ति कौस्तुभमणिस्वरूपं भगवान्हरिः ।६८।
श्रीवत्ससंस्थानधरमनन्तेन समाश्रितम् ।
प्रधानं बुद्धिरप्यास्ते गदारूपेण माधवे ।६९।
भूतादिमिन्द्रियादिं च द्विधाहङ्कारमीश्वरः ।
बिभर्त्ति शङ्खरूपेण च स्थितम् ।७०।
चलत्स्वरूपमत्यन्तं जवेनान्तरितानिलम् ।
चक्रस्वरूपं च मानो धत्ते विष्णुकरे स्थितम् ।७१।
पञ्चसूपा तु या माला वैजयन्ती गदाभृतः ।
सा भूतहेतुसङ्घाता भूतमाला च भै द्विज ।७२।

श्री मैत्रेयजी बोले–भगवान् विष्णु इस सम्पूर्ण विश्व को आभूषण और आयुध के रूप में कैसे धारण करते हैं, यह मुझे बताने की कृपा करिये ।३५। श्री पराशरजी ने कहा—उन विश्व पालक अप्रमेय भगवान विष्णु को नमस्कार करके अब में तुम्हें वह सब सूनाता हूँ जो वसिष्ठजी ने मुझे सुनाया था ।६१। इस विश्व के निर्लेप, निर्गुण और निर्मल आत्मा को भगवान् विष्णु कौस्तुभ मणि के रूप में धारण करते हैं ।६८। उन अनन्त भगवान् ने प्रधान को श्री वत्स रूप से तथा बुद्धि को गदा रूप से धारण किया है ६९। भूतों के कारण रूप तामस अहंकार और इन्द्रियों के कारण रूप राजस अलंकार को उन्होंने शंख और शार्ङ्ग धनुष के रूप मे धारण किया हुआ है ।७०। पवन को भी अपने वेग से हराने वाला अत्यन्त चंचल और सात्विक अहंकार रूपी मन भगवान् विष्णु के कर-कमलों में चक्र रूप में स्थित है ७१। हे द्विज ! भगवान गदाधर की पञ्च रूपात्मिका वैजयन्ती माला पञ्चतन्मात्रों और पंचभूतों का संचात है ७२

यानीन्द्रयाण्यशेषाणि बुद्धिकर्मात्मकानि वै ।
शररूपाण्यशेषाणि तानि धत्ते जनार्दनः ।७३।

बिभर्ति यच्चासिरत्नमच्युतोऽत्यन्तनिर्मलम् ।
विद्यामयं तु तज्ज्ञानमविद्याकोशसंस्थितम् ।७४।
इत्थं पुमान्प्रधान च बुद्धयहङ्कारमेव च ।
भूतानि च हृषीकेशे मनःसर्वेन्द्रियाणि च ।
विद्याविद्ये च मैत्रेय सर्वमेतत्समाश्रितम् ।७५।
अस्त्रभूषणसंस्थानस्वरूपं रूपवर्जितः ।
विभर्ति मायारूपोऽसौं श्रेयसे प्राणिनां हरिः ।७६।
सविकारं प्रधानं च पुमांसमखिलं जगत् ।
बिभर्त्ति पुण्डरीकाक्षस्तदेवं परमेश्वरः ।७७।
या विद्या या तथाविद्या यत्सद्यच्चासदव्ययम ।
तत्सर्वं सर्वभूतेशे मैत्रेय मधुसूदने ।७८।
कलाकाष्टानिमेषादिनत्वंयनहायनं ।
कालस्वरूपो भगवानपापा हरिरव्ययः ।७९।

समस्त ज्ञान कर्मात्मिका इन्द्रियों को भगवान् जनार्दन बाण रूप में धारण करते हैं ७३। भगवान् अच्युत का निर्मल खड्ग ही अविद्यात्मक कोश से का हुआ अविद्यात्मक ज्ञान है ८४। हे मैत्रेयजी ! इस प्रकार पुरुष प्रधान, बुद्धि, अहंकार पंचभूत, मन, इन्द्रिय और विद्या-अविद्या सब उन्हीं हृषीकेश में आश्रित हैं ७३। भगवान् श्रीहरि रूप-रहित होते हुए भी माया मय रूप से जीवों के कल्याणार्थ इन सब वस्तुओं को अस्त्राभूषण के रूप में धारण करते हैं ७६। इस प्रकार वे पुण्डरीकाक्ष परमेश्वर सविकार प्रधान, पुरुष और सम्पूर्ण विश्व को धारण करते हैं ७७। हे मैत्रेयजी ! विद्या-अविद्या, सदसत् और अव्यय स्वरूप जो कुछ भी हैं, वह सत्र सर्व भूतेश्बर भगवान् मैं ही स्थित है ।७८। कला, काया, विमेष, दिन, ऋतु, अयन तथा वर्ष आदि काल के रूप में अपाप, अव्यय श्रीहरि ही में स्थित हैं ।७९।

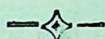
भूर्लोकोऽथ भुवर्लोकः स्वर्लोको मुनिसत्तम ।
महर्जनस्तपः सत्य सप्त लोका इमे विभुः ।८०।
लोकात्ममूर्तिः सर्वेषां पूर्वेषामपि पूर्वजः ।
आधारः सर्वविद्यानां स्वयमेव हरिः स्थितः ।८१।

देवमानुषपश्चादिस्वरूपैर्बहुभिः स्थितः ।
मतः सर्वेश्वरोऽनन्तो भूतमूर्तिरमूर्तिमान् ।।८२
ऋचो यजूंषि सामानि तथैवाथवणानि वै ।
इतिहासापवेदाश्च वेदान्तेषु तथोक्तयः ।।८३
वेदाङ्गानि समस्तानि मन्वादिगदितानि च ।
शास्त्राण्यशेषाण्याख्यानान्यनुवाकाश्च ये क्वचित् ।।८४
काव्यालापाश्च ये केचिद्गीतकाव्यखिलानि च ।
शब्दमूर्तिधरस्यैतद्वपुर्विष्णोर्महात्मनः ।।८५
यानि मूर्त्तान्यमूर्त्तानि यान्यत्रान्यत्र वा क्वचित ।
सन्ति वै वस्तु जातानि तानि सर्वाणि तद्वपुः ।।८६

हे मुनिसत्तम ! भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, मह जन, तप और सत्य आदि सप्तलोक भी स्वयं सर्वव्यापक प्रभु ही हैं ।८०। सब पूर्वजों के पूर्वक और सभी विद्याओं के आश्रय भगवान श्री हरि लोकमय रूप से स्वयं ही स्थित हैं ।८२। ऋक्, यजुः, साम, अथर्व-यह चारों वेद, इतिहास उपवेद, वेदान्त, वेदाङ्ग मनु आदि धर्मशास्त्र, पुराणादि, आख्यान अनुवाक काव्यचर्चा और रागरागिनी आदि सब उन विष्णु का ही देह समझो ।७३-८५। इस लोक में अथवा सर्वत्र जितने भी मूर्त, अमूर्त पदार्थ हैं, वह सभी उन भगवान के शरीर ही हैं ।८६।

अह हरिः सर्वमिदं जनार्दनो नान्यततः कारणकार्यजातम् ।
ईदृङ्मनो यस्य न तस्य भूयो भवोद्भवा द्वन्द्वगदा भवन्ति ।८७
इत्येष तेऽशः प्रथमः पुराणस्यास्य वै द्विज ।
यथावत्कथितो यस्मिञ्छ्रुते पापैः प्रमुच्यते ।।८८
कार्त्तिक्यां पुष्करस्नाने द्वादशब्देन यत्फलम् ।
तदस्य श्रावणात्सर्वं मैत्रेयाप्नोति मानवः ।।८९
देवर्षिपितृगन्धर्व यक्षादीनां च सम्भवम् ।
भवन्ति शृण्वतः पुंसो देवाद्या वरदामुने ।।९०

मैं और यह संपूर्ण विश्व भी जनार्दन हरि हैं, उनसे भिन्न कोई भी कार्य-कारण आदि नहीं है। जिसके चित्त में इस प्रकार की भावना है, उसे शरीर से उत्पन्न रोग तथा राग, द्वेषादि नहीं रहते ।८७। हे द्विज ! इस प्रकार मैंने इस पुराण के प्रथमांश का जैसा था वैसा वर्णन किया है, इसे सुनकर मनुष्य सभी पापों से छूट जाता है ।८८। हे। मैत्रेयजी ! बारह वर्ष तक कार्तिक के महीने में पुष्कर में स्नान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, वह फल इसके सुनने मात्र से प्राप्त हो जाता है ।८९। हे मुने ! देव ऋषि, गंधर्व, पितृ तथा यक्षादि की उत्पत्ति के सुनने वाले पुरुष को ने देवादि वर देने वाले होते हैं ।९०।



द्वितीय अंश

पहला अध्याय

भगवन्सम्यगाख्यातं ममैतदखिलं त्वया ।
जगतः सर्वसम्बन्धि यत्पृष्टोऽसि गुरो मया ।१।
योऽयमशो जगत्सृष्टिसम्बन्धो गदितस्त्वया ।
तत्राहं श्रोतुमिच्छामि भूयोऽपि मुनिसतम ।२।
प्रियव्रतोतानपादौ सुतौ स्वायम्भुवस्य यौ ।
तयोरुतानपादस्य ध्रुवः पुत्रस्त्वयोदितः ।३।
प्रियव्रतस्यनैवोक्ता भवता द्विज सन्ततिः ।
तामहं श्रोतुमिच्छामि प्रसन्नो वक्तुमर्हसि ।४।
कर्दमस्यात्मजां कन्यामुपयेमे प्रियव्रतः ।
सम्राटे कुक्षिश्च तत्कन्ये दशपुत्रास्तथापरे ।५।
महाप्रज्ञा महावीर्या विनीता दयिताः पितुः ।
प्रियव्रतसुताः ख्यातास्तेषां नामानि मे श्रृणु ।६।
आग्नीध्राश्चाग्निबाहुश्च वपुष्मान्द्युतिमांस्तथा ।
मेधा मेधातिथिर्भव्यः सवनः पुत्र एव च ।७।
ज्योतिष्मान्दशमस्तेषां सत्यनामा सुतोऽभवत् ।
प्रियव्रतस्त पुत्रास्ते प्रख्याता बयवीर्यतः ।८।

श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे गुरो ! हे भगवन् ! सृष्टि विषयक मेरे प्रश्न को आपने मुझे भले प्रकार बता दिया ।१। हे मुनिवर । आपने जो विश्व-रचना विषयक प्रथम अंश कहा है, उसमें एक बात और जानने को मेरी इच्छा है ।२। स्वायंभुव मनु के प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्रों में से उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव का वृतात आपने कहा ।३। परंतु, प्रियव्रत की

के विषय में आपने कुछ भी नहीं बतलाया, इसलिए उसके विषय में मेरी जिज्ञासा का समाधान आप हर्षपूर्वक करिये ।४। श्री पराशरजी ने कहा-प्रियव्रत का विवाह कर्दमजी की पुत्री से हुआ, जिससे सम्राट् और कुक्षि नाम्नी पुत्रियाँ तथा दस पुत्र उत्पन्न हुए ५। प्रियव्रत के पुत्र अत्यन्त मेधावी बली, विनयी तथा माता-पिता के अत्यन्त प्रिय हुए । अब उनके नामों को सुनो ।६। आग्नीध्र, अग्निबाहु, वपुष्मान्, द्य ुतिमान्, मेधा, मेधातिथि, भव्य, सवन, पुत्र और दसवाँ ज्योतिष्मान नामक हुए । प्रियव्रत के सभी पुत्र अपने बल और पराक्रम में विख्यात थे ।७-८।

मेधाग्निबाहुपुत्रास्तु त्रयो योगपरायणाः ।
जातिस्मरा महाभागा न राज्याय मनोदधुः ।९।
निर्मलाः सर्वकालन्तु समस्तार्थेषु वै मुने ।
चक्रः क्रियां यथान्यायमफलाकाङ्क्षणो ह्निते ।१०।
प्रियव्रतो ददौ तेषां सप्तानां मुनिसत्तम ।
सप्तद्वीपानि मैत्रेय विभज्य सुमहात्मनान् ।११।
जम्बूद्वीयंमहाभाग साग्नीध्राय ददौ पिता ।
गेधातिथेस्तथा प्रादाप्लक्षद्वीपं तथापरम् ।१२।
शाल्मले च वपुष्मन्तं नरेन्द्रमभिषिक्तवान् ।
ज्योतिष्मन्तं कुशद्वीपे राजानं कृतवान्प्रभुः ।१३।
द्य ुतिमन्तं राजानं क्रौञ्चद्वीपे समादिशत् ।
शाकद्वीपेश्वरं चापि भव्यं चक्रे प्रियव्रतः ।१४।

उनमें मेधा, अग्निबाहु और पुत्र नामक तीन पुत्र तो योग परायण और पूर्व जन्म का हाल जानने वाले हुए, राज्यादि भोगों से विरक्त रहे ।९ क्योंकि वे निर्मल चित्त और कर्मफल की कामना से परे होने के करण सब विषयों में सदैव न्यायानुकूल मुनिसत्तमरहते थे ।१०। हे ! राजा प्रियव्रत ने इनके अतिरिक्त शेष सात पुत्रों को सात द्वीप दिये ११। आग्नीध्रको जम्बूद्वीप तथा मेधातिथि को प्लक्ष नाम-द्वीप प्रदान किया १२। वपुष्मान् को शाल्मल द्वीप और ज्योतिष्मान् कुश द्वीप का अधिपति बनाया ।१३।

द्यु तिमान् को क्रौंच द्वीप और भव्य को शाक द्वीप का राजा नियुक्त किया ।१४।

पुष्कराधिपतिं चक्रे सवनं चापि स प्रभुः ।
जम्बूद्वीतेश्दरो यस्तु आग्नीध्रो मुनिसत्तम ॥१५
तस्य पुत्रा बभूवुस्ते प्रजापतिसमा नव ।
नाभिः किम्पुरुषश्चैव हरिवर्ष इलावृतः ॥१६
रम्यो हिरण्वान्षष्टश्च कुरुर्भद्राश्व एव च ।
केतुमास्तथैवान्यः साधुचेष्टोऽभवन्नृपः ॥१७
जन्बूद्वीपविभागांश्च तेषां विप्र निशामय ।
पित्रा दत्तं हिमाहवं तु वर्षं नाभेस्तु दक्षिणाम् ॥१८
हेमकूटं तथा वर्षं ददौ किम्पुरुषाय सः ।
तृतीयं नैषध वर्षं हरिवर्षाय दत्तवान् ॥१६
इलावृताय प्रददौ मेरुर्यत्र तु मध्यमः ।
नीलाचलाश्रितं वर्षं रम्याय प्रददौ पिता ॥२०
श्वेतं तदुत्तरं वर्षं पित्रा दत्तं हिरण्वते ।
यदुत्तरं शृङ्गवतो वर्षं तत्कुरवे ददौ ॥२१
मेरो पूर्वेण तद्वर्षं भद्राश्वाय प्रदत्तवान् ।
गन्धमादनवर्षं तु केतुमालाय दत्तवान् ॥२२

सवन को पुष्कर द्वीप का राजा बनाया । इससे जम्बू द्वीप के राजा आग्नीध्र के राजपति तुल्य नौ पुत्र हुए । उनके नाम नाभि, किंपुरुष, हरिवर्ष, ईहलावृत, रम्य, हिरण्यवान, कुरु, भद्राश्व और सत्कर्मा राजा केतुमाल थे ।१५-१७। हे ब्रह्मन् ! अब जम्बू द्वीप के जो विभाग हुए, उन्हें सुनो-आग्नीध्र ने दक्षिण की ओर का हिमवर्ष नाभि को प्रदान किया ।१८। किंपुरुष को हेमकूट वर्ष और हरिवर्ष को नैषधवर्ष दिया ।१९। मध्य में मेरुपर्वत युक्त इलावृतवर्ष इलावृत को तथा नीलाचल समीपस्थ वर्ष रम्य को दिया ।२०। उसका उत्तर वर्तीश्वेत वर्ष हिरण्यवान् को और शृंगवान

पर्वत के उत्तर वाला वर्ष कुरु को दिया ।२१। मेरु के पूर्व वाला वर्ष भद्राश्व को और गंधमादन वर्ष केतुमाल को प्रदान किया ।२२।

इत्येतानि ददौ तेभ्यः पुत्रेभ्यः स नरेश्वरः ।
वर्षेष्वेतेषु तान्पुत्रानभिषिच्य स भूमिपः ।२३।
शालग्रामं महापुण्यं मैत्रेय तपसे ययौ ।
यानि किम्पुरुषादीनि वर्षाण्यष्टौ महामुने ।२४।
तेषां स्वाभाविकी सिद्धिः सुखप्राया ह्ययत्नतः ।
विपर्ययो न तेष्वास्तां जरामृत्युभयं न च ।२५।
धर्माधर्मौ न तेष्वास्तां नोत्तमाधममध्यमाः ।
न तेष्वस्ति युगावस्या क्षेत्राष्वष्ठसु सर्वदा ।२६।
हिमाह्वयं तु वै वर्षं नाभेरासीन्महात्मनः ।
तस्यर्षभोऽभवत्पुत्रो मेरुदेव्यां महाद्युतिः ।२७।
ऋषभाद्भरतो जज्ञे ज्येष्ठः पुत्रशतस्य सः ।
कृत्वा राज्यं स्वधर्मेण तथेट्वा विविधान्मखान् ।२८।
अभिषिच्य सुतं वीरं भरतं पृथिवीपतिः ।
तपसे स महाभागः पुलहस्याश्रमं ययौ ।२९।

हे मैत्रेयजी ! राजा आग्नीध्र ने अपने पुत्रों को इस प्रकार इन वर्षों का राज्य दिया और स्वयं तप करने को शालग्राम नामक अत्यंत पुनीत क्षेत्र को चले गये। किम्पुरुषादि जो आठ वर्ष है, उनमें सुखकी इतनी अधिकताहै कि बिना किसी प्रकार का यत्य किये, स्वभाव से ही सब भोग-सिद्धियों की प्राप्ति होनी है । उनमें किसी प्रकार के विपर्यय अथवा वृद्धावस्था या मृत्यु आदि का डर उपस्थित नहीं होता ।२३-२५। वहाँ धर्म, श्रेष्ठ, मध्यम या अधम का भी भेद नहीं है तथा उनमें कभी युग-परिर्तनादि भी नहीं होता ।२६। महात्मा नाभि हिमानामक वर्ष के स्वामी थे, उनकी पत्नी मेरुदेवी से अत्यन्त कान्ति वाला ऋषभ नामक एक पुत्र हुआ ।२७। ऋषभ के सौ पुत्र हुए, जिनमें भरत सबसे बड़े थे । महाभाग राजा ऋषभदेव धर्मपूर्वक

राज्य चलाते हुये अनेक यज्ञों के अनुष्ठान करने अन्त में भारत को राज्य देकर तप करने के लिये पुलहाश्रम को गये ।२८-२९।

वानप्रस्थविधानेन तत्रापि कृतनिश्चयः ।
तपस्तेपे यथान्यायमियाज स महीपतिः ।३०।
तपसा कर्षितोऽत्यर्थं कृशो धर्मनिसन्ततः ।
नग्नो वीटां मुखे कृत्वा वीराध्वानं ततोः गत ।३१।
ततश्च भारतं वर्षमेतल्लोकेषु गीयते ।
भारंताय यतः पित्रा दत्तं प्रातिष्ठता वनम् ।३२।
सुमतिर्भरतस्याभूत्पुत्रः परमधार्मिकः ।
कृत्वा संम्यग्ददौ तस्मै राज्यमिष्टमखः पिता ।३३।
पुत्रङ्क्रामितश्रीस्तु भरतः स महीपतिः ।
योगाभ्यासरतः प्राणान्शालग्रामेऽत्यजन्मुने ।३४।
अजायत च विप्रोऽसौ योगिनां प्रवरे कुले ।
मैत्रेय तस्य चरितं कथयिष्यामि ते पुनः । ३५

पुलहाश्रम में रहकर ऋषभदेव ने वानप्रस्थ पालनपूर्वक दृढ़ तपस्या और यज्ञों के अनुष्ठान किये ।३०। वे घोर तप के कारण अत्यन्त सूख गये और उनकी रक्त वाहिनी नाड़ियाँ स्पष्ट दिखाई देने लगीं । अन्त में नग्नावस्था में अपने मुख में पत्थर की एक वाटिका रखकर जीवन त्याग दिया ।३०-३१। ऋषभदेव ने वनगमन करते समय अपना राज्य भरत को दिया, तभी से यह हिमवर्ष भारतवर्ष कहा जाने लगा ।३२। राजा भरत के सुमति नामक एक अत्यन्त धार्मिक पुत्र हुआ । उन्होंने यज्ञों के न करते हुए जब तक इच्छा रही, राज्य, सुख भोगा और फिर अपने पुत्र सुमति को राज्य दे दिया ।३३। हे मुने ! राजा भरत अपने पुत्र को राज्य देकर योगाभ्यास-परायण हुए और अन्त में उन्होंने शालग्राम क्षेत्र में अपने प्राण त्याग दिये ।।३४।। अगले जन्म में यह योगियों के पवित्र कुल में उत्पन्न हुए । हे मैत्रेयजी ! इनके उस चरित्र को तुम्हें फ़िर सुनाऊंगा ।३५।

सुमतेस्तेजसस्तस्मादिन्द्रद्युम्नो व्यजायत ।
परमेष्ठी ततस्तस्मात्प्रतिहारस्तदन्वयः ।३६।
प्रतिहर्तेति विख्यात उत्पन्नन्तस्य चात्मजः ।
भवस्तस्मादथोद्गीथः प्रस्तावस्तत्सुतो विभुः ।३७।
पृथुस्ततस्ततो नक्तो नक्तस्यापि गयः सुतः ।
नरो गयस्य तेनयस्तत्पुत्रोऽभूद्विराट् ततः ।३८।
तस्य पुत्रो महावीर्यो धीमांस्तस्मादजायतः ।
महान्तस्तत्सुतश्चाभून्सनस्युस्तस्य चात्मजः ।३९
त्वष्टा त्वष्टुश्च विरजो रजस्तस्याप्यभूत्सुतः ।
शतजिद्रजसस्तस्य जज्ञे पुत्रशतं मुने ।४०।
विष्वग्ज्योतिः प्रधानास्ते यैरिमा बर्द्धिताः प्रजाः ।
तैरिद भारत वर्षं नवभेदमलङ्कृम् ।४१।
तेषां वंशप्रसूतैश्च भुक्तेय भारती पुरा ।
कृत्रत्रेतादिसर्गेण युगाख्यामेकसप्ततिम् ।४२।
एष स्वायम्भुवः सर्गो येनेदं पूरितं जगत् ।
वाराहे तु मुने कल्पे पूर्वमन्वन्तराधिपः ।४३

सुमति से इन्द्रद्युम्न उत्पन्न हुआ, उसका पुत्र परमेष्ठी और परमेष्ठी का प्रतिहार हुआ ।३६। प्रतिहार का पुत्र प्रतिहर्त्ता हुआ, उसका पुत्र भव उसका उग्दीथ और उग्दीथ का पुत्र प्रस्ताव हुआ ।३६। प्रस्ताव का पुत्र पृथु पृथु का नक्त,नक्त का गय हुआ । मय का नर और नर का विराट हुआ ।३८। विराट का पुत्र महावीर्य, महावीर्य का धीमान्, धीमान् का महान्त और महान्त से मनस्यु हुआ ।३९। मनस्यु का पुत्र त्वष्टा,त्वष्टा का विरज और विरज का रज हुआ । उस रज का पुत्र शतजित हुआ जिसके सौ पुत्र उत्पन्न हुए ।४०। उन सौ में विष्वग्ज्योति ज्येष्ठ था । उन सौ पुत्रों से प्रजा की बहुत वृद्धि हुई इसलिए यह भारतवर्ष नौ भागों में विभक्त किया गया ४१। उन्हीं के वंशधरों ने कृत-त्रेतादि के क्रम से इस भारत वसुन्धरा का इकहत्तर युग तक भोग किया था ४५। हे मुने ! इस वाराहकल्प में सर्व प्रथम मन्वन्तर

के अधिपति स्वायंभुव मनु का यही वंश है, जिसने उस समय सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त कर लिया था ।४३।

—❀❀—

दूसरा अध्याय

कथितो भवता ब्रह्मन्सर्गः स्वायम्भुवश्च मे ।
श्रोतुमिच्छामिम्यहं त्वत्तः सकलं मण्डलं भुव ।१।
यावन्तः सागरा द्वीपास्तथा वर्षाणि पर्वताः ।
वनानि सरितः पुर्यो देवादीनां तथा मुने ।२।
यत्प्रमाणमिदं सर्वं यदाधारं यदात्मकम् ।
सस्थानमस्य च मुने यथावद्वक्तुमर्हसि ।३।
मैत्रेय श्रूयतामेतत्सङ्क्षेपाद्गदतो मम ।
नास्य वर्षशतेनापि वक्तु शक्यो हि विस्तरः ।४।
जम्बूप्लक्षाह्वयौ द्वीपौ शाल्मलश्चापरो द्विज
कुशः क्रौञ्चस्तथा शाकः पुष्करश्चैव सप्तमः ।५।
एते द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्त सप्तभिरावृताः ।
लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलैः समम् ।६।

श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आपने स्वायंभुव मनु के वंश का वृत्तान्त मुझसे कहा है । अब मुझे भूमंडल का विवरण सुनने की अत्यन्त इच्छा है ।१। हे मुने ! सागर, द्वीप, वर्ष पर्वत, वन, नदियाँ, देवादि की पुरियाँ आदि जो भी हैं, उनका परिणाम, आधार, उपादान, आकार आदि का यथावत् वर्णन करिये ।२-३। श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! इन सबको मैं संक्षेप में कहे देता हूँ, क्योंकि उनका पूरा वर्णन तो सौ वर्ष में भी पूर्ण नहीं होगा ।४। हे द्विज ! जम्बू प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौंच, शाक, और पुष्कर यह सातों द्वीप सब ओर से खारी जल, ईख-रस, मदिरा घी, दही, दूध और मीठे जल के सात समुद्रों से घिरे हुए हैं ।५-६।

जम्बूद्वीपः समस्तानामेतेषां मध्यसंस्तिथः ।
तस्यापि मेरुमैत्रेय मध्ये कनकपर्वतः ।७।
चतुराशीतिसाहस्रो योजनैरस्य चोच्छ्रयः ।
प्रविष्टः षोडशाधस्ताद्द्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विस्तृत
मूले षोडशसाहस्रो विस्तारस्तस्य सर्वशः ।
भूपद्मस्यास्य शैलोऽसौ कर्णिकाकारसंस्थितः ।९।
हिमवान्हेमकूटश्च निषधश्चास्य दक्षिणे ।
नीलः श्वेतश्च श्रृङ्गी च उत्तरे वर्षपर्वताः ।१०।
लक्षप्रमाणौ द्वौ मध्यौ दशहीनास्तथापरे ।
सहस्रद्वितयोच्छ्रयास्तावद्विस्तारिणश्च ते ।११।
भारतं प्रथमं वर्षं ततः किम्पुरुष स्मृतम् ।
हरिवर्षं तथैवान्यन्मेरोर्दक्षिणतौ द्विज ।१२।
रम्यकं चोत्तरं वर्षं तस्यैवानु हिरण्मयम् ।
उत्तराः कुरवश्चैव यथा वै भारतं तथा ।१३।

हे मैत्रेयजी ! जम्बूद्वीप सब द्वीपों के मध्य में हैं और उसके ठीक मध्य में सुमेरु पर्वत हैं ।७। यह पर्वत चौरासी हजार योजन ऊंचा तथा सोलह हजार योजन पृथ्वी में धसा हुआ है । इसका ऊपरी विस्तार बत्तीस हजार योजन हैं ।८। उसका भूमि पर विस्तार सोलह हजार योजन है । इस प्रकार यह पर्वत इस पृथ्वी रूपी कमल की कर्णिका तुल्य समझो ।९। इसके दक्षिण में हिमवान हेमकूट और निषध, उत्तर में नाल, श्वेत और श्रृङ्गी नामक पर्वत हैं ।१०। उसके मध्य के दो पर्वत एक-एक लाख योजन विस्तार वाले हैं, उससे दूसरे-दूसरे पर्वत दस-दस हजार योजन कम हैं वे सभी दो-दो हजार योजन ऊंचे तथा उसने ही विस्तृत हैं ।११। मेरु पर्वत के दक्षिण ओर प्रथम भारत, द्वितीय किम्पुरुष और तृतीय हरि नामक वर्ष है ।१२। उत्तर में क्रमश-रम्पक, हिरण्यमय और उत्तर कुरु हैं, जो भारत वर्ष के समान ही है ।१३।

नवसाहस्रमेकैकमेतेषां द्विजसत्तम ।
इलावृतं च तन्मध्ये सौवर्णो मेरुरुच्छ्रितः ।१४।
मेरोश्चतुर्दिशं तत्तु नवसाहस्रविस्तृतम् ।
इलावृत महाभागः चत्वारश्चात्र पर्वताः ।१५।
विष्कम्भा रचिता मेरोर्योजनायुतमुच्छ्रिताः ।
पूर्वेण मन्दरो नाम दक्षिणे गन्धमादनः ।१६।
विपुलः पश्चिमे पार्श्वे सुपार्श्वश्चोत्तरे स्मृतः ।
कदम्बस्तेषु जम्बुश्च पिप्पलो वट एव च ।१७।
एकादशशतायामाः पादपा गिरिकेतवः ।
जम्बूद्वीपस्य सा जम्बूर्नामहेतुर्महामुने ।१८।
महागजप्रमाणानि जम्ब्वास्तस्याः फलानि वै ।
पतन्ति भूभृतः पृष्ठे शीर्यमाणानि सर्वतः ।१९।
रसेन तेषां प्रख्याता तत्र जाम्बूनदीति वै ।
सरित्प्रवर्तते चापि पीयते तन्निवासिभिः ।२०

हे द्विजवर ? इनमें से प्रत्येक नौ-नौ हजार योजन विस्तार वाले है, इन सब के मध्य में इलावृत वर्ष है, जिसमें स्वर्णमय सुमेरु पर्वत स्थित है ।१४। यह इलावृत वर्ष सुमेरु के सब ओर नौ-नौ हजार योजना तक विस्तृत हैं, इसके चारों ओर चार पर्वत स्थित हैं ।१५। यह चारों पर्वत सुमेरु को धारण करने वाली कीलियाँ—सी प्रतीत होती है । इसमें से मंदराचल पूर्व में गन्धमादन दक्षिण में, विपुल पश्चिम में और सुपार्श्व उत्तर में है । इनकी ऊँचाई दस हजार योजन है । इन पर ग्यारह-ग्यारह सौ योजन ऊँचे कदम्ब, जामुन, पीपल और वट के वृक्ष ध्वजाओं के समान खड़े हैं । इनमें जामुन के वृक्ष से जम्बूद्वीप नाम पड़ा ।१६-१८। उसके फल गजराज के समान महान होते हैं और जब वे पर्वत पर गिरते है तो फटकर सर्वत्र फैल जाते हैं ।१९। उनके रस के एकत्र होने से जम्बू नाम की प्रसिद्ध नदी प्रवाहित होती है, वहाँ के निवासी उसी नदी का जल पीते हैं ।२०।

न स्वेदो न च दौर्गन्ध्यं न जरा नेन्द्रियक्षयः ।
तत्पानात्स्वच्छमनसां जनानां तत्र जायते ।२१।
तीरमृत्तद्रसं सुखवायु विशोषिता ।
जाम्बूनदाख्यं भवति सुवर्णं सिद्धभूषणम् ।२२।
भद्राश्वं पूर्वतो मेरोः केतुमालं च पश्चिमे ।
वर्षे द्वे तु मुनिश्रेष्ठ तयोर्मध्यमिलावृतः ।२३।
वनं चैत्ररथं पूर्वे दक्षिणे गन्धमादनम् ।
वैभ्राजं पश्चिमे तद्वदुत्तरे नन्दनं स्मृतम् ।२४।
अरुणोदं महाभद्रमसितोद समानसम् ।
सरास्येतानि चत्वारि देवभोग्यानि सर्वदा ।२५।
शीतरम्भश्च कुमुन्दश्च कुररी माल्यवांस्तथा ।
वैकङ्कप्रमुखा मेरोः पूर्वतः केसराचलाः ।२६।
त्रिकूटः शिशिरश्चैव पतङ्गो रुचकस्तथा ।
निषदाद्या दक्षिणतस्तस्य केसरपर्वताः ।२७।

उस जल के पीने से वहाँ के शुद्ध चित्त वाले मनुष्यों में स्वेद, दुर्गन्ध, वृद्धावस्था अथवा इन्द्रियक्षय नहीं होता ।२१। उस नदी के तट की मिट्टी उस रस से मिल कर जव वायु से शुष्क हो जाती है, तब वह जाम्बूनद नामक स्वर्ण हो जाती है, जिसे सिद्ध पुरुष धारण करते हैं ।२२। सुमेरु के पूर्व में भद्राश्व वर्ष और पश्चिम में केतुमाल वर्ष हैं,इन दोनों के मध्य में इलावृत नामक वर्ष स्थित है ।२३। इसी प्रकार उसके पूर्व में चैत्ररथ, दक्षिण में गन्धमादन पश्चिम में वैभ्राज और उत्तर में नन्दन-कानन हैं ।२४। देवताओं द्वारा सदैव सेवनीय, अरुणोद, महाभद्र, असितोद और मानस नाम के चार सरोवर भी वहाँ स्थित हैं -२५। हे मैत्रेयजी ! शीताम्भ, कुमुन्द, कुकरी, माल्यवान् बैकंक आदि पर्वत मेरु के पूर्व में केसराचल है ।२६। त्रिकूट, शिशिर, पतग, रुचक और निषाद नामक केसराचल उसके दक्षिण में हैं ।२७।

शिखिवासाः सवैडूर्यः कपिलो गन्धमादनः ।
जारुधिप्रमुखास्तद्वत्पश्चिमे केसराचलाः ।२८।

मेरोरनन्तराङ्गेषु जठरादिष्ववस्थिताः ।
शङ्खकूटोऽथ ऋषभो हंसो नागस्तथापरः ।
कालञ्जाद्याश्च तथा उत्तरे केसराचलाः ।२९।
चतुर्दशशसस्राणि योजनानां महापुरी ।
मेरोरुपरि मैत्रेय ब्रह्मणः प्रथिता दिवि ३०।
तस्यास्समन्ततश्चाष्टौ दिशासु विदिशासु च ।
इन्द्रादिलोकपालानां प्रख्याताः प्रवराः पुराः ।३१।
विष्णुपादविनिष्क्रान्ता प्लावयित्वेन्दुमण्डलम् ।
समन्ताद् ब्रह्मणः पुर्यां गङ्गा पतति वै दिवः ।३२।
सा तत्र पतिता दिक्षु चतुर्द्धा प्रतिपद्यते ।
सीता चालकनन्दा च चक्षुर्भद्रा च वै क्रमात् ।३३।
पूर्वेण शैलात्मीता तु शैलं यात्यन्तरिक्षगा ।
ततश्च पूर्ववर्षेण भद्राश्वेनैति सार्णवम् ।३४।
तथैवालकनन्दापि दक्षिरोनैत्य भारतम् ।
प्रयाति सागरं भूत्वा सप्तभेदा महामुने ।३५।

सुमेरु के पश्चिम में शिखिवासा, वैडूर्य, कपिल, गन्धमादन और जारुधि आदि केसराचल हैं ।६८। मेरु के निकटवर्ती इलावृत वर्ष में और जठारादि देशों में स्थित शंखकूट, ऋषभ, हंस, नाग और कालंजादि पर्वत उत्तर के केसराचल हैं ।२९। हे मैत्रेयजी ! उसी सुमेरु के ऊपर अन्तरिक्ष में ब्रह्माजी की महापुरी है, जिसका विस्तार चौदह हजार योजन है ।३०। उसके सब ओर इन्द्रादि लोकपालोके अत्यन्त रमणीक और प्रसिद्ध नगर दिशा-विदिशाओं में स्थित है ३१। विष्णु भगवान् के चरणों से उद्भूत हुई गंगाजी चद्र-मंडल को सब ओर से आप्लावित करती हुई स्वर्ग से ब्रह्मपुरी में गिरती हैं ।३२। वहाँ गिरकर वह चार भागों में विभक्त होती हुई सीता अलकनंदा, चक्षु और भद्रा नाम से चारों दिशाओं में प्रवाहित होती है ।३३। उनमें से सीता नदी पूर्वीय आकाश के मार्ग से एक पर्वत से दूसरे पर्वत को पार करती हुई समुद्र में जाकर मिल जाती हैं ।३४।

अलकनन्दा दक्षिण की ओर भारतवर्ष में आकर सात में भागों विभक्त होती हुई समुद्र में मिलती है ।३५।

चक्षुश्च पश्चिमगिरीनतीत्य सकलांस्ततः ।
पश्चिमं केतुमालाख्यं वर्षं गत्वैति सागरम् ।३६।
भद्रा तथोत्तरगिरीनुत्तरांश्च तथा कुरून् ।
आतीत्योत्तरमम्भोधिं समभ्येति महामुने ।३७।
अनीलनिषधायामौ माल्यवन्द्गन्धमादनौ ।
तयोर्मध्यगतो मेरुः कर्णिकाकारसंस्थितः ।३८।
भारताः केतुमालाश्च भद्राश्वाः कुरवस्तथा ।
षत्राणि लोकपद्मस्य मर्यादाशैलबाह्यतः ।३९।
जठरो देवकूटश्च मर्यादापर्वतावुभौ ।
तौ दक्षिणोत्तरायामावानीषधायतौ ।४०।

पश्चिम दिशा के पर्वतों को पार करती हुई चक्षु के तुमालवर्षमें प्रवाहित होती हुई समुद्र में मिल जाती हे ।३६। हे मुने । उत्तर के पर्वतों को पार करके भद्रा उत्तर कुरुवर्ष में बहती हुई समुद्र में जा गिरती है ।३७। माल्यवान् और गंधमादन पर्वत उत्तर और दक्षिण की ओर नील तथा निषध पर्वत तक फैले हैं। उन दोनों के मध्य में मणिकर्णिका के आकार में मेरुपर्वत खड़ा है ।३८। हे मैत्रेयजी! मर्यादा पर्वतों के बाहरी भाग में भारत, केतुमाल, भद्राश्व और कुरु नामक वर्ष लोकरूपी कमल के पत्तों के समान लगते हैं ३९। जठर और देवकूट-यह दोनों मर्यादा पर्वत कहे गये हैं, यह उत्तर और दक्षिण में नीलाचल और निषध पर्वत तक फैले हैं ।४०।

गन्धमादनकैलासौ पूर्वपश्चायतावुभौ ।
अशीतियोजनायामावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ।४१।
निषधः पारियात्रश्च मर्यादापर्वतावुभौ ।
मेरोः पश्चिमदिग्भागे यथा पूर्वे तथा स्थितौ ।४२।
त्रिश्रृङ्गो जारुधिश्चैव उत्तरौ वर्षपर्वतौ ।
पूर्वपश्चायतावेतावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ।४३।
इत्येते मुनिवर्योक्ता मर्यादापर्वतास्तव ।
जठराद्याः स्थिता मेरोस्तेषां द्वौ दौ चतुर्दिशमु ।४४।

मेरोश्चतुर्दिशं ये तु प्रोक्ताः केसरपर्वताः ।
शीतान्ताद्या मुने तेषामतीव हि मनोरमाः ।४५।
शैलानामन्तरे द्रोण्यः सिद्धचारणसेविताः ।
सुरम्याणि तथा तासु काननानि पुराणि च ।४६।
लक्ष्मीविष्णवग्निसूर्यादिवानां मुनिसत्तम ।
तास्वायतनवर्याणि जुष्टानि नरकिन्नरैः ।४७।
गन्धर्वयक्षरक्षांसि तथा दैतेयदानवाः ।
क्रीडन्ति तासु रम्यासु शैलद्रोणीष्वहर्निशम् ।४८।
भौमा ह्येते स्मृताः स्वर्गा धर्मिणामालया मुने ।
नैतेषु पापकर्माणो यान्ति जन्मशतैरपि ।४९।

पूर्व और पश्चिम की ओर जो गंधमादन और कैलास हैं, उनका विस्तार अस्सी योजन है और यह समुद्र के भीतर स्थित हैं ४१। पूर्व के समान ही मेरु के पश्चिम में भी निषध और परियात्र नामक दो मर्यादा पर्वत हैं ४२। उत्तर में त्रिश्रृंग जारुधि नाम के दो वष पर्वत हैं और यह दोनों ही पूर्व और पश्चिम के समुद्र गर्भ में स्थित हैं ४३। इस प्रकार हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम्हारे प्रति जठरादि मर्यादा पर्वत के विषय में कहा गया, जिनमें से दो-दो पर्वत मेरु की चारों दिशाओं में स्थित हैं ४४। हे मुने ! मेरु के चारों ओर स्थित जिन केसराचलों के विषय में तुमसे कहा गया; उनके मध्य सिद्ध-चारण आदि द्वारा सेवन की गई अति रम्य कन्दराएँ हैं, उनमें सुरम्य उपवन तथा नगर तक बसे हुए हैं ४५-४६। तथा लक्ष्मी, विष्णु, अग्नि, सूर्यादि देवताओं के अति सुन्दर मन्दिर हैं, जो किन्नरों द्वारा पूजित होते हैं ४७। उन अत्यन्त सुन्दर गिरि-गुफाओं में गंधर्व, यक्ष, राक्षस ओर दैत्य-दानव आदि दिन-रात क्रीडा करते रहते हैं ४८। हे मुनि इन सब स्थानों को पृथ्वी का स्वर्ग कहा गया है, इनमें धार्मिक पुरुष रहते हैं, पाप करने वाले तो यहाँ सौ वर्ष में भी नहीं पहुँच सकते ४९।

भद्राश्वे भगवान्विष्णुरास्ते हयशिरा द्विज ।
वराहः केतुमाले तु भारते कूर्मरूपधृक ।५०।

मत्स्यरूपश्च गोविन्दः कुरुष्वास्ते जनार्दनः।
विश्वरूपेण सर्वत्र सर्वः सर्वत्रगो हरिः।५१।
सर्वस्याधारभूतोऽसौ मैत्रेयास्तेऽखिलात्मकः।५२।
यानि किम्पुरुषादीनि वर्षाण्यष्टौ महामुने।
न तेषु शोको नायासो नोद्वेगः क्षुद्भयादिकम्।
स्वस्थाः प्रजा निरातङ्कास्सर्वदुःखविवर्जिताः।
दशद्वादशवर्षाणां सहस्राणि स्थिरायुषः।५४।
न तेषु वर्षते देवो भौमान्यम्भांसि तेषु वै।
कृतत्रेतादिकं नैव तेषु स्थानेषु कल्पना।५५।
सर्वेष्वेतेषु वर्षेषु सप्त सप्त कुलाचलाः।
नद्यश्च शतशस्तेभ्यः प्रसूता या द्विजोत्तम।५६

हे द्विज ! भद्राश्व वर्ष में हयग्रीव रूप से केतुमाल वर्ष में वराह रूप से और भारत वर्ष में कूर्म रूप से भगवान विष्णु का निवास रहता है ५०। और वे भक्तों का पालन करने वाले भगवान् कुरुवर्ष में मत्स्य रूप से रहते है। इस प्रकार वे सर्वात्मक एवं सर्वगत श्रीहरि विश्व रूप से सर्वत्र निवास करते हैं ५१। हे मैत्रेयजी ! वे भगवान् विष्णु सब प्राणियों के आधारभूत तथा सर्व जीवमय है ५२। किम्पुरुषादि जो आठ वर्ष हैं उनमें शोक, श्रम, उद्वेग एवं क्षुधादि का किंचित् भय नहीं होता ५३। वहाँ की प्रजा स्वस्थ, निरातक सन्ताप-रहित होती है, वहाँ सब की आयु दस-बारह हजार वर्षों से कम नहीं होती ५४। उनमें वर्षा न होकर पार्थिव जल ही बहुत होता है, तथा वहाँ सत्ययुगादि की कल्पना भी नहीं की जाती ५५।हे द्विजवर ! इन सभी वर्षों में सात-सात कुलाचल हैं, जिनसे सैकड़ों नदियाँ उत्पन्न हुई हैं ५६।

—❀❀—

तीसरा अध्याय

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम् ।
वर्ष तद्भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः ।१।
नवयोजनसाहस्रो विस्तारोऽस्य महामुने ।
कर्मभूमिरयं स्वर्गमपवर्गं च गच्छताम् ।२।
महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिनानृपर्वतः
विन्ध्यश्च परित्तायश्च सप्तात्र कुलपर्वताः ।३।
अतः सम्प्राप्यते स्वर्गो मुक्तिमस्मात्प्रयान्ति वै ।
तिर्यक्त्वं नरकं चापि यान्त्यतः पुरुषा मुने ।४।
इतः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यं चान्तश्च गम्यते ।
न खल्वन्यत्र मर्त्यानां कर्म धर्मो विधीयते ।५।

श्री पराशरजी ने कहा--हे मैत्रेयजी ? समुद्र के उत्तर और हिमालय के दक्षिण भूभाग में स्थित भारतवर्ष कहा गया है । उनमें भारतवंशियों का निवास है ।१। हे महामुने । यह नौ हजार योजन विस्तार वाली स्वर्ग अथवा मोक्ष की कामना करने वाले सतों की कर्म-भूमि है।२। इसमें महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्ष, विन्ध्य पारियात्र नामक पर्वत हैं ।३। हे मुने ? मनुष्य को इसी देश मे शुभ कर्मों के द्वारा स्वर्ग अथवा मोक्ष मिल सकता है तथा यहीं से वे नरक या तिर्यग्योनि को प्राप्त हो सकते हैं ।४। यहीं से स्वर्ग, मोक्ष अन्तरिक्ष, या पातालादि लोकों को पाया जा सकता है । इस देश के अतिरिक्त पृथिवी के किसी भी अन्य देश में कर्म का विधान नहीं हैं ।५।

भारतस्यास्य वर्षस्य नवभेदान्निशामय ।
इन्द्रद्वीपः कसेरुश्च ताम्रपर्णो गभस्तिमान् ।६।
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वास्त्वथ वारुणः ।
अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ।७।
योजनानां सहस्रं तु द्वीपोऽय दक्षिणोत्तरात् ।
पूर्वे किराता यस्यान्ते पश्चिमे यवनाः स्थिताः ।८।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्य शूद्राश्च भागशः ।
इज्यायुधवणिज्याद्यैर्वर्तयन्तो व्यवस्थिताः ।९।
शतद्रू चन्द्रभागाद्या हिमवत्पादनिर्गताः ।
वेदस्मृतिमुखाद्याश्च पारियात्रोद्भवा मुने ।१०।
नर्मदा सुरसाद्याश्च नद्यो विन्ध्याद्रिनिर्गताः ।
तापीयोष्णीनिर्विन्ध्याप्रमुखा ऋक्षसम्भवाः ।११।
गोदावरी भीमरथी कृष्णवेण्यादिकास्तथा ।
सह्यपादोद्भवा नद्यः स्मृताः पापभयापहाः ।१२।
कृतमाला ताम्रपर्णीप्रमुखा मलयोद्भवाः ।
त्रिसामा चार्यकुल्याद्या महेन्द्रप्रभवाः स्मृताः ।१३।
ऋषिकुल्याकुमाराद्याः शुक्तिमत्पादसम्भवाः ।
आसां नद्यपनद्यश्च सन्त्यन्याश्च सहस्रशः ।१४।

इस भारतवर्ष के इन्द्रद्वीप, कसेरु, ताम्रपर्ण, गभतिमान् नागद्वीप सौम्य. गन्धर्व और वारुण नाम के आठ विभाग हैं, तथा नवाँ भाग यह समुद्र से घिरा हुआ द्वीप है ।६-७। इस द्वीप का विस्तार उत्तर से दक्षिण पर्यंत हजार योजन है । इसके पूर्वीय प्रदेश में किरात और पश्चिमीय प्रदेश में यवन रहते हैं ।८। यज्ञ, अस्त्र अथवा व्यापार आदि में अपने-अपने कर्मानुसार लगे हुए ब्राह्मण, क्षत्रिय. वैश्य और शूद्र मध्य में निवास करते हैं ।९। इसकी शतद्रू और चन्द्रभागा आदि नदियाँ हिमालय से वेद और स्मृति आदि पारियात्र पर्वत से नर्मदा और सुरसादि विन्ध्याचल से और तापी पयोष्णी एवं निर्विन्ध्यादि ऋक्षगिरि से निर्गत हुई हैं ।१०--११। गोदावारी. भीमरथी और कृष्णवेणी आदि पापों को नष्ट करने वाली नदियाँ सह्य पर्वत से निकली बताई जाती हैं ।१२। कृतमाला और ताम्रपर्णी आदि मलयाचल से, त्रिसामा और आर्यकुल्या आदि महेन्द्र पर्वत से तथा ऋषिकुल्या और कुमारी आदि नदियों का निवास शुक्तिमान पर्वत से हुआ है । इनकी अन्य हजारों शाखायें नदियों और उपनदियों के रूप में प्रवाहित हैं ।१३-१४।

तास्विमे कुरुपाञ्चाला मध्यदेशादयो जनाः ।
पूर्वदेशादि तश्चैव कामरूपनिवासिनः ।१५।
पुण्ड्राः कलिङ्गा मगधा दक्षिणाद्याश्च सवशः ।
तथा परान्ताः सौराष्ट्राः शूराभीरास्तथार्बुदाः ।१६।
कारूषा मालवाश्चैव पारियात्रनिवासिनः ।
सौवीराः सैन्धवा हूणाः साल्वाः कोशलवासिनः ।
माद्रारामास्तथाम्बष्टाः पारसीकादयस्तथा ।१७।
आसां पिबन्ति सलिलं वसन्ति सहिताः सदा ।
समीपतो महाभाग हृष्टपुष्टजनाकुलाः ।१८।
चत्वारि भारतेवर्षे युगान्यत्र महामुने ।
कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिश्चान्यत्र न क्वचित् ।१९।
तपस्तप्यन्ति मुनयो जुह्वते चात्र यज्विनः ।
दानानि चात्र दीयन्ते परलोकार्थमादरात् ।२०।
पुरुषैयज्ञपुरुषो जम्बूद्वीपे सदेज्यते ।
यज्ञर्यज्ञमयो विष्णुरन्यद्वीपेषु चान्याथा ।२१।

इन नदियों के किनारे कुरु, पाञ्चाल और मध्य देशादि निवासी, पूर्व देश और कामरूप के रहने वाले, पुण्ड्र, कलिंग, मगध या दक्षिण के अथवा उपरान्त देश के लोग, सौराष्ट्रगण, शूर, अभीर, अर्बुदगण का रूप, मालव पारियात्र पर रहने वाले, सौवीर, सैंधव, हूण, साल्व और कोशल देश के लौग, माद्र, आराम, अम्बष्ठ और पारसी निवास करते हैं १५-१७। हे महाभाग ! यह परस्पर मेल से रहते और इन्हीं नदियों का जल पीते हैं, इन नदियों की निकटता से वह सदा हृष्ट-पुष्ट रहते हैं १८। हे मुने ! भारतबर्ष में ही सत्युग, त्रेता, द्वापर कलियुग हुआ करते हैं, इन चारों में से कोई भी युग कही अन्यत्र नहीं होता १९। इसी देश में मुनि-गण परलोक प्राप्ति के लिये तप करते है, याज्ञिकों के अनुष्ठान भी इसी लोक में होते हैं तथा यहीं दानी पुरुष दान करते हैं २०। जम्बूद्वीप में यज्ञ-मय एवं यज्ञपुरुष भगवान् विष्णु का सदा भजन किया जाता है तथा अन्यान्य द्वीपों में उनकी उपासन भी भिन्न भिन्न प्रकार से होती है २१।

अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने।
यतो हि कर्मभूरेषा ह्यतोऽन्या भोगभूमयः ।२२।
अत्र जन्मसहस्राणां सहस्रैरपि सत्तम।
कदाचिल्लभते जन्तुर्मानुष्य पुण्यसञ्चयात् ।२३।
गायंति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ।२४।
कर्माण्यसङ्कल्पिततत्फलानि सन्यस्य विष्णौ परमात्मभूते।
अवाप्य तां कर्ममहीमनते तस्मिल्लयं ये त्वमलाः प्रयांति २५।
जानी नैतत्क्व वय विलीन
स्वर्गप्रदे कर्मणि देहबन्वम्।
प्राप्स्याम धन्याः खलु ते मनुष्या
ये भारते नेन्द्रियविप्रहीनाः ।२६।
नववर्षं तु मैत्रेय जम्बूद्वीपमिदं मया।
लक्षयोजनविस्तारं सङ्क्षेपात्कथितं तव ।२७।
जम्बूद्वीपं समावृत्य लक्षयोजनविस्तरः।
मैत्रेय वलयाकारः स्थितः क्षारोदधिर्बहिः ।२८।

हे महामुने। जम्बूद्वीप में भी यह भारतवर्ष कर्म भूमि होने के कारण श्रेष्ठ है, क्योंकि अन्यान्य देश तो भोग भूमि मात्र हैं २२। हजारों जन्मों की यंत्रणा भोग लेने के पश्चात कभी महान् पुण्य फल का उदय हो तो ही इस देश में मनुष्य-देह की प्राप्ति होती है।२३। देवता भी यही कहते रहते हैं कि जो स्वर्ग और मोक्ष के मार्गभूत भारतवर्ष में उत्पन्न हुए हैं तथा जिन्होंने इस कर्मभूमि में उत्पन्न होकर फल प्राप्ति की कामना से रहित अपने कर्मों को परमात्म रूप भगवान् विष्णु को अर्पण कर दिया है तथा इससे मल रहित होकर अन्त में उन्हीं अनन्त भगवान् में लीन हो जाते हैं, वे मनुष्य हम देवताओं से भी अधिक भाग्यवान् हैं २५-२५। अपने स्वर्ग प्राप्त करने वाले पुण्य कर्मों के क्षीण होने पर हम कहाँ जाकर उत्पन्न होंगे, यह हम नही जानते। वे मनुष्य धन्य हैं जिन्होंने भारतवर्ष

की पृथ्वी पर उत्पन्न होकर इन्द्रियों को शक्ति को नहीं छोड़ा है ।२६। हे मैत्रेयजी ? इस प्रकार मैंने लाख योजन विस्तृत इस जम्बूद्वीप का वर्णन संक्षिप्त रूप से किया है ।२७। हे मैत्रेयजी । यह जम्बूद्वीप बाहर से लाख योजन विस्तार वाले खारी जलके बलयाकार समुद्र से घिरा हुआ है ।२८।

—❀❀—

चौथा अध्याय

क्षारोदेन यथा द्वीपो जम्बूसंज्ञोऽभिवेष्टितः ।
सवेष्टय क्षारमूदिधिं प्लक्षद्वीपस्तथा स्थितः ।१।
जम्बूद्वीपस्य विस्तारः शतसाहस्रसम्मितः ।
स एव द्विगुणो ब्रह्मन् प्लक्षद्वीप उदाहृतः ।१।
सप्त मेधातिथेः पुत्राः प्लक्षद्वीपेश्वरस्य वै ।
ज्येष्ठः शान्तहयो नाम शिशिरस्तदनन्तरः ।३।
सुखोदयस्तथानन्दः शिवः क्षेमक एव च ।
ध्रुवश्च सप्तमस्तेषांप्लक्षद्वीतेश्वरा हि ते ।४।
पूर्वं शान्तहयं वर्षं शिशिर च सुख तथा ।
आनन्द च शिवं चैत्र क्षेमकं धूमेव च ।५।
मर्यादाकारकास्तेषां तथान्ये वर्षपर्वताः ।
सप्तव तेषां नामानि श्रृणुष्व मुनिसत्तम ।६।
गोमेदश्चैव चन्द्रश्च नारदो दुन्दुभिस्तथा ।
सोमकः सुमनाश्चैव वैभ्राजश्चैव सप्तमः ।७।

श्री पराशरजी ने कहा-जैसे जम्बूद्वीप खारे जल को समुद्र से घिरा हुआ है, वैसे ही उस खारे जल वाले समुद्र को प्लक्ष द्वीप ने घेर रखा है ।१। जम्बूद्वीप का विस्तार एकलाख योजन है और प्लक्ष द्वीप का विस्तार उससे दुगना बतलाते हैं।२। प्लक्षद्वीपेश्वर मेधातिथि के सात पुत्र हुये थे, उसमें ज्येष्ठ पुत्र शान्तहय और उससे छोटा शिशिर हुआ ।३। उन दोनों के

पश्चात् सुखोदय, आनन्द शिव' क्षेमक और ध्रुव क्रमशः हुए ।४। पहला शान्तहय वर्ष, दूसरा शिशिर वर्ष फिर सुखोदय वर्ष, शिव वर्ष क्षेमक वर्ष और ध्रुव वर्ष हुए ।५। उनकी मर्यादा बनाने वाले सात अन्य पर्वत हैं, उनके नाम गोमद, चन्द्र, नारद, दुन्दुभि, सोमक सुमना और वैभ्राज हैं ।६-७।

वर्षाचलेषु रम्येषु वर्षेष्वेतेषु चानधाः ।
वसन्ति देवगन्धर्वसहिता सततं प्रजाः ।८।
तेषु पुण्या जनपदाश्चिराच्च म्रियते जनः ।
नाधयो व्याधयो वापिसर्वकालसुखं हि तत् ।९।
तेषां नद्यस्तु सप्तैव वर्षाणां च समुद्रगाः ।
नामतस्ताः प्रवक्ष्यामि श्रुताः पापं हरन्ति याः ।१०।
अनुतप्ता शिखी चैव विपाशा त्रिदिवाक्लमा ।
अमृता सुकृता चैव सप्तैतास्तत्र निम्नगाः ।११।
एते शैलास्तथा नद्यः प्रधानाः कथितास्तव ।
क्षुद्रशैलास्था नद्यस्तत्र सन्ति सहस्त्रशः ।१२।
ताः पिवन्ति सदा हृष्टा नदीर्जनपदास्तु ते ।
अपसर्पिणी न तेषां वे न चैवोत्सर्पिणी द्विज ।१३।
न त्वेवास्ति युगावस्था तेषु स्थानेषु सप्तसु ।
त्रेतायुगसमः कालः सर्वदैव महामते ।१४।
प्लक्षद्वीपादिषु ब्रह्मञ्छाकद्वीपान्तिकेष वै ।
पञ्च वर्षसहस्राणि जना जीवन्त्यनामयाः ।१५।

इन अत्यन्त रमणीक वर्ष पर्वतों तथा वर्षों में देवताओं और गंधर्वों सहित पाप रहित प्रजा रहती है ।८। वहाँ के रहने वाले पुण्यवान् और चिरायु होते हैं, उन्हें किसी प्रकार के रोगादिमें ग्रसित नहीं होना होता वे सदा सुखी रहते हैं ।९। उन वर्षों में सात ही नदियाँ हैं, जो समुद्र में गिरती हैं। मैं उनके नाम तुमसे कहता हुँ, जिनके सुनने मात्र से ही वे नदियाँ पापों से छुड़ा देती हैं ।१०। अनुतप्ता, शिखी, विपाशा, त्रिदिवा, अक्लमा,

अमृता और सुकृता—यह उन सातों के नाम हैं ।११। प्रमुख-प्रमुख नदियों और पर्वतों का मैंने तुमसे यह वर्णन किया है, वैसे छोटे-छोटे पर्वत और नदियाँ तो वहाँ हजारों ही होंगी ।१२। उस देश के हृष्ट-पुष्ट मनुष्य सदैव उन नदियों का ही जल पीते हैं, इसलिये उनमें ह्रास अथवा वृद्धि का अभाव रहता है ।१३। उन सात वर्षों में युग की भी अवस्था नहीं है । हे ब्रह्मन! प्लक्ष द्वीप से शाक द्वीप पर्यंत छहों द्वीपों में सदैव त्रेता युग जैसा समय रहता है। इन द्वीपों के निवासी रोग-रहित रहते हुए पाँच हजार वर्ष तक जीवित रहते हैं।

धर्माः पञ्च तथैतेषु वर्णाश्रमविभागशः ।
वर्णाश्च तत्र चत्वारस्तान्निबोध वदामि ते ।१६।
आर्यकाः कुरराश्चैव विदिश्या भाविनश्च ते ।
विप्रक्षत्रियवैश्यास्ते शूद्राश्च मुनिसत्तम ।१७।
जम्बूवृक्षप्रमाणस्तु तन्मध्ये सुमहास्तरुः ।
प्लक्षस्तन्नामसंज्ञोऽयं प्लक्षद्वीपो द्विजोत्तम ।१८।
इज्यते तत्र भगवांस्तैर्वर्णैरार्यकादिभिः ।
सोमरूपी जगत्स्रष्टा सर्व सर्वेश्वरो हरिः ।१९।
प्लक्षद्वीपप्रमाणेन प्लक्षद्वीपः समावृतः ।
तथैवेक्षुरसोदेन वरिवेषानुकारिणा ।२०।
इत्येवं तव मैत्रेय प्लक्षद्वीप उदाहृतः ।
संक्षेपेण मया भुयः शाल्मलं मे निशामय ।२१।

वर्णाश्रम के विभागनुसार इनमें पाँचों धर्म की विद्यमानता रहती है। अब यहाँ के चार वर्णों का तुमसे वर्णन करता हूँ ।१६। हे मुनिश्रेष्ठ! उस द्वीप में आर्यक, कुरर, विदिश्य और भावी संज्ञक जातियाँ हैं, वही क्रम से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वश्य और शूद्र समझो ।१७। उस द्वीप में जम्बू वृक्ष के समान ही प्लक्ष का एक वृक्ष है। उसी के नाम पर वह प्लक्षद्वीप कहा गया है ।१८। वहाँ आर्यक आदि जातियाँ ही जगत्स्रष्टा, सर्वगत, सर्वेश्वर श्री हरि का सोम रूप से यजन करती हैं।१९। यह प्लक्षद्वीप अपने

तुल्य परिमाण के वलयाकार ईखरस के समुद्र से घिरा है २०। हे मैत्रेय जी ! इस प्रकार मैंने प्लक्षद्वीप का संक्षिप्त वर्णन किया, अब शाल्मल द्वीप का वृतान्त सुनो २१।

शाल्मलस्येश्वरो वीरो वपुष्मांस्तत्सुताञ्छृणु ।
तेषा तु नामसंज्ञानि सप्तवर्षाणि तानि वै ।२२।
श्वेतोऽथ हरितश्चैव जीमूता रोहितस्तथा ।
वैद्युतो मानसश्चैव सुप्रभश्च महामुने ।२३।
शाल्मलेन समुद्रोऽसौ द्वीपेनेक्षुरसोदकः ।
विस्तारद्विगुणेनाथ सर्वतः संवृतः स्थितः ।२४।
तत्रापि पर्वताः सप्त विज्ञेया रत्नयोनयः ।
वर्षाभिव्यञ्जका ये तु तथा सप्त च निम्नगाः ।२५।
कुमुदुश्चोन्नतश्चैव तृतीयश्च बलाहकः ।
द्रोणो यत्र महौषध्यः स चतुर्थो महीधरः ।२६।
कङ्कस्तु पञ्चमः षष्ठौ महिषः सप्तमस्तथा ।
ककुद्मान्मपर्वतवरः सरिन्नामानि मे शृणु ।२७।
योनिस्तोया वितृष्णा च चन्द्रभुक्ता विमोचनी ।
निवृत्तिः सप्तमी तासा स्मृतास्ताः पापशान्तिदाः ।२८।
श्वेतञ्च हरितं चैव वैद्युत मानसं तथा ।
जीमूत रोहितं चैव सुप्रभं चापि शोभनम् ।
सप्तैतानि ते वर्षाणि चातुर्वर्ण्ययुतानि वै ।२९।

शाल्मल द्वीप के अधिपति वपुष्मान् थे। अब उनके पुत्रों के नाम श्रवण करो-श्वेत. हरित, जीमूत, विद्युत, मानस और सुप्रभ यह सात पुत्र थे, इन्हीं के नाम पर उनके सात वर्ष हुए। २२-२३। वह इखरस का समुद्र अपने से द्विगुण विस्तार वाले शाल्मल द्वीप से घिरा है २४ वहां भी रत्नोंको उत्पन्न करने वाले सात पर्वत उन सातों वर्षका विभाग करतेहैंऔर सात नदियाँ भी हैं २५ पर्वतमें प्रथमकुमुद, द्वितीय उन्नत तृतीय बलाहक तथा चतुर्थ द्रोण है,जिसमें विभिन्न प्रकार की औषधियाँ उत्पन्न होती है २६

पंचम पर्वत कंक, षष्ठ महिष एवं सप्तम ककुद्मान है अब नदियों के नाम सुनो।२७। वे योनि, तोया, वितृष्णा, चन्द्रा, मुक्ता, विमोचनी और निवृत्ति नाम की हैं और स्मरण करते ही सब पापों का शमन करने वाली है २८। श्वेत, हरित, वैद्युत, मानस जीमूत, रोहित और सुप्रभ, उसके यह सात वर्ष चारों वर्णों से युक्त हैं।२९।

शाल्मले ये तु वर्णाश्च वसन्त्येते महामुने।
कपिलाश्चारुणाः पीताः कृष्णाश्चैव पृथक पृथक।३०।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव यजन्ति तम्।
भगवन्तं समस्तस्य विष्णुमात्मानमव्ययम्।३१।
वायुभूतं मखश्रेष्ठैर्यज्वानो यज्ञसंस्थितिम्।
देवानामत्र सान्निध्यमतीव सुमनोहरे ३२।
शाल्मलिः सुमहान्वृक्षो नाम्ना निर्वृत्तिकारकः।
एष द्वीपः समुद्रेण सुरोदेन समावृतः।३३।
विस्ताराच्छाल्मलस्यैव समेन तु समन्ततः।
सुरोदकः परिवृतः कुशद्वीपेन सर्वतः।३४।
शाल्मलस्य तु विस्ताराद् द्विगुणेन समन्ततः।
ज्योतिष्मतः कुशद्वीपे सप्त पुत्राञ्छृणुष्व तान्।३५।
उद्भिदो वेणुमांश्चैव वैरथो लम्बनो धृतिः।
प्रभाकरोऽथ कपिलस्तन्नामा वर्ष पद्धतिः।३६।

हे महामुने ! उस शाल्मल द्वीप में कपिल, अरुण, पीत और कृष्ण यह जातियाँ रहती हैं जो क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र हैं। यह यज्ञ करने वाले व्यक्ति सर्वात्मा, अव्यय और यज्ञाश्रय वायुरूप विष्णु का श्रेष्ठ यज्ञों सेयजन-पूजन करते हैं तथा यहाँ देवताओं का सदा निवास रहता हे।३०-३१। इस द्वीप में शाल्मलका महान् वृक्ष होने से ही इस द्वीप का यह नाम पड़ा है। यह द्वीप अपने जैसे परिमाण वाले मदिरा के समुद्र से घिरा है तथा मदिरा का यह समुद्र शाल्मल द्वीप से घिरा हुआ है। उस कुश द्वीप के अधिपति ज्योतिष्मान के सात

पुत्र थे, उनके नाम कहता हूँ, सुनो ।३३-३५। उद्भिद, वेणुमान्, वैरथ, लम्बन, धृति, प्रभाकर और कपिल नामक इन राजपुत्रों के नाम पर ही वहाँ के वर्षों के नाम पड़ गये ।३६।

तस्मिन्वसन्ति मनुजाः सह दैतेयदानवैः ।
तथैव देवगन्धर्वयक्षकिम्पुरुषादयः ।३७।
वर्णास्तत्रापि चत्वारो निजानुष्ठानतत्पराः ।
दम्भिनः शुष्मिणः स्नेहा मन्देहाश्च महामुने ।३८।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वेश्याः शूद्राश्चानुक्रमोदिता ।
यथोक्तकर्मकर्तृत्वात्स्वाधिकारक्षयाय ते ।३९।
तत्रैव तं कुशद्वीपे ब्रह्मरूप जनार्दनम् ।
यजन्तः क्षपयन्त्युग्रमधिकारफलप्रदम् ।४०।
विद्रुमो हेमशैश्चद्युतिमान् पुष्पवांस्तथा ।
कुशेशयो हरिश्चैव सप्तमो मन्दराचलः ।४१।
वर्षाचलास्तु सप्तैते तत्र द्वीपे महामुने ।
नद्यश्च सप्त तासां तु शृणु नामान्यनुक्रमात् ।४२।
धूतपापा शिवा चैव पवित्रा सम्मतिस्तथा ।
विद्युदम्भा मही चान्या सर्वपापहरास्त्विमाः ।४३।

उस द्वीप में दैत्य-दानवों सहित मनुष्य, देवता, गंधर्व, यक्ष और किन्नर आदि रहते हैं ।३७। अपने-अपने कर्मों में लगी हुई चार जातियाँ दम्भी, शुष्मी, स्नेह और मंदेह संज्ञक है ।३८। जो क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र हैं । अपने प्रारब्ध को क्षीण करने के निमित्त शास्त्र सम्मत कर्म करते हुए ब्रह्मरूप जनार्दन की उपासना से अपने प्रारब्ध फल के दाता उस अत्यन्त उग्र अहंकार को क्षीण करते हैं ।३९-४०। हे महामुने ! उस द्वीप में सात वर्ष पर्वत हैं, जिनके नाम विद्रुम, हेमशैल, द्युतिमान्, पुष्पवान्, कुशेशय, हरि और मँदराचल हुए । वहाँ सात नदियाँ हैं' उनके भी नाम श्रवण करो ।४१-४२ धूतपापा, शिवा, पवित्रा, सम्मति, विद्युत और अंभा मही नाम की यह सातों नदियाँ सब पापों को नष्ट करनें वाली है ४३

अन्याः सहस्रशस्तत्र क्षुद्रनद्यास्तथाचलाः ।
कुशद्वीपे सुशस्तम्बः संज्ञया तस्या तस्व तत्स्मृतम् ।४४।
तत्प्रमाणेन स द्वीपो घृतोदेन समावृतः ।
घृतोदश्च समुद्रो वै क्रौञ्चद्वीपेन संवृतः ।४५।
क्रौञ्चद्वीपो महाभाग श्रूयताञ्चापरो महान् ।
कुशद्वीपस्य यिस्तारादु द्विगुणो यस्य विस्तरः ।४६।
क्रौञ्चद्वीपे द्युतिमितः पुत्रास्तस्य महात्मनः :
तन्नामानि च वर्षाणि तेषाँ चक्रे महीपतिः ।४७।
कुशलो मन्दगश्चोष्णः पीवरोऽथान्धारकः ।
मुनिश्च दुन्दुमिश्चैव सप्तैते तत्सुता मुने ।४८।
तत्रापि देवगन्धर्वसेविताः सुमनोहराः ।
वर्षाचिला महाबुद्ध तेषां नामानि मे शृणु ।४९।
कौञ्चश्च वामनश्चैव तृतीश्चान्धकारकः ।
चतुर्थो रत्नशैलश्च स्वाहिनी हयसन्निभः ।५०।
दिवावृतपञ्चमश्चात्र तथान्यः पुण्डरीकवान् ।
दुन्दुभिश्च महाशैलौ द्विगुणास्ते परस्परम् ।५१।

उस द्वीप में छोटी-छोटी नदियाँ और क्षुद्र पर्वत तो हजारों ही हैं। वहाँ कुश का एक महान् झाड़ है, उसी के कारण उसका नाम कुशद्वीप हुआ ४४। यह अपने ही जैसे परिमाण वाले घृत के समुद्र से सब ओर से घिरा है और वह घी का समुद्र क्रौंच द्वीप से घिरा हुआ है ४५। हे महाभाग ! अब इससे आगे के क्रौंच नामक महाद्वीप के विषय में कहता हूँ, उसे सुनो। वह कुश द्वीप से द्विगुण विस्तार वाला है ४६। उस क्रौंचद्वीप में महाराज द्युतिमान् के सात पुत्रों के नाम पर ही उनके वर्ष नियत किये गये ४७! हे मुने ! कुशल, मंदग, उष्ण, पीवर, अंधकारक, मुनि और दुंदभि यह उनके नाम थे ३८। वहाँ भी देवताओं और गधर्वों से सेवित सात वर्ष पर्वत अत्यंत सुरम्य हैं, अब उनके भी नाम सुनो ४९। उनमें प्रथम क्रौंच, द्वितीय वामन, तृतीय अंधकारक चतुर्थ घोड़ी के मुख जैसा रत्नमय स्वहिनी पर्वत, पंचम दिवावृत, षष्ठ पुण्डरीकवान् और सप्तम दुन्दभि नामक महापर्वत है ५०-५१।

द्वीपा द्वीपेषु ये शैला यथा द्वीपेषु ते तथा ।
वर्षेष्वेतेषु रम्येषु तथा शैलवरेषु च ।
निवसन्ति निरातङ्काः सह देवगणः प्रजाः ।५२।
पुष्कराः पुष्कला धन्यास्तिष्याख्पाश्च महामुने ।
ब्राह्मणः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चानुक्रमोदिताः ।५३।
नदीमैत्रेय ते तत्र याः पिबन्ति शृणुष्व ताः ।
सप्तप्रधानाः शतशस्तत्रान्याः क्षुद्रनिम्नगाः ।५४।
गौरी कुमुद्वती चैव सन्ध्या रात्रिर्मनोजवा ।
क्षान्तिश्च पुण्डरीका च सप्तैता वर्षनिम्नगाः ।५५।
तत्रापि विष्णुभगवानपुष्कराद्यैर्जनार्दनः ।
यागै रुद्रस्वरूपश्च इज्यत यज्ञसन्निधौ ।५६।
कौञ्चद्वीपः समुद्रेण दधिमण्डोदकेन च ।
आवृतः सर्वतः क्रौञ्चद्वीपतुल्येन मानतः ।५७।
दधिमण्डोदकश्चापि शाकद्वीपेन संवृतः ।
क्रौञ्चद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणेन महामुने ।५८।

उन्हीं के समान उनके पर्वतों का उत्तरोत्तर दुगुना परिमाण है । इन सभी वर्षों और श्रेष्ठ पर्वतों में देवताओं के सहित सब प्रजा भय-रहित होकर निवास करती है ५२। वहाँ के पुष्कर, पुष्कल, धन्य और तिष्य संज्ञक वर्ण ही क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं ५३। हे मैत्रेय जी ! वहाँ जिन नदियों का जल पिया जाता हैं, उन नदियों का वर्णन सुनो । उस द्वीप में सात प्रधान नदियाँ हैं ५४। उन सात वर्ष नदियों के नाम गौरी, कुमुद्वती, सन्ध्या, रात्रि, मनोजवा, क्षान्ति तथा पुण्डरीका हैं ५५। वे पुष्करादि वर्ण वहाँ रुद्र रूपी भगवान् विष्णु का यज्ञादि से पूजन करते हैं ५६। यह क्रौंच द्वीप चारों ओर से अपने ही बराबर परिमाण के मट्ठा के समुद्र से घिरा है ५७। हे महामुने ! मट्ठा का यह समुद्र भी चारों ओर से शाक द्वीप से घिरा है । वह शाक द्वीप क्रौंचद्वीप से द्विगुणी परिमाण वाला है । ५८।

शाकद्वीपेश्वरस्यापि भव्यस्य सुमहात्मनः ।
सप्तैव तनयास्तेषां ददौ वर्षाणि सप्त सः ।५९।
जलदश्च सुकुमारश्च सुकुमारो मरीचकः ।
कुसुमौदश्च मौदाकिः सप्तमश्च महाद्रुमः ।६०।
तत्संज्ञान्येव तत्रापि सप्त वर्षाण्यनुक्रमात् ।
तत्रापि पर्वता सप्त वर्षविच्छेदकारिणः ।६१।
पूर्वस्तत्रोदयगिरिर्जलाधारस्तथापरः ।
तथा रैवतकः श्यामस्तथैवास्तगिरिर्द्विज ।६२।
आम्विकेयस्तथा रम्यः केसरी पर्वतोत्तमः ।
शाकस्तत्र महावृक्षः सिद्धगन्धर्वसेवितः ।६३।
यत्रत्यवातसंस्पर्शादाह्लादो जायते परः ।
तत्र पुण्या जनपदाश्चातुर्वर्ण्यसमन्विताः ।६४।

शाकद्वीप के जो राजा भव्य थे, उनके भी सात पुत्र हुए थे। उनको भी अलग-अलग सात वर्ष दिये गये ।५९। जलद, कुमार, सुकुमार, मरीचक, कुसुमोद, मौदाकि और महाद्रुम उनके नाम थे । उन्हीं के नाम पर उनके नाम पर उनके वर्ष हुए। उन वर्षो के विभाजक सात ही पर्वत हैं ।६०-६१। हे द्विज ! उनमें पहला पर्वत उदयाचल, दूसरा जलाधार और इसी प्रकार रैवतक,श्याम, अस्ताचल आम्विकेय, तथा सातवाँ केसरी है । वहाँ सिद्ध-गन्धर्वो से सेवित एक विशाल शाक वृक्ष है ।६२-६३। उसके स्पर्श से आने वाली वायु अत्यन्त आह्लाद को उत्पन्न करती है । वहाँ भी चारों वर्णो से युक्त अत्यन्त पवित्र देश है ।६४।

नद्यश्चात्र महापुण्याः सर्वपापभयापहाः ।
सुकुमारी कुमारी च नलिनी धेनुका च या ।६५।
इक्षुश्च वेणुका चैव गभस्ती सप्तमी तथा ।
अन्याश्च शतशस्तात्र क्षुद्रनद्यौ महामुने ।६६।
महीधरास्तथा सन्ति शतशोऽथ सहस्रशः ।
ताःपिबन्ति मुद्रा युक्ता जलदादिषु ये स्थिताः ।६७।
वर्षेषु ते जनपदाः स्वर्गादभ्येत्य मेदिनीम् ।
धर्महानिर्न तेष्वस्ति न सङ्घर्ष परस्परम् ।६८

मर्यादाव्युत्क्रमो नापि तेषु देशेषु सप्तसु ।
वङ्गाश्च मागधाश्चैव मानसा मन्दगास्तथा ।६९।
वङ्गा ब्राह्मणभूयिष्ठा मागधाः क्षत्रियास्तथा ।
वैश्यास्तु मानसास्तेषां शूद्रास्तेषां तु मन्दगाः ।७०।
शाकद्वीपे तु तैर्विष्णुः सूर्यरूपधरो मुने ।
यथोक्तैरिज्यते सम्यक्कर्मभिर्नियतात्मभिः ।७१।

वहाँ सात अत्यंत पुनीत नदियाँ हैं। उनके नाम सुकुमारी, कुमारी नलिनी, धेनुका, इक्षु, वेणुका और गभस्ती हैं। वे नदियाँ सब पापों और भयों को नष्ट करती हैं। इन नदियों के अतिरिक्त वहाँ अन्य सैकड़ों ही छोटी छोटी नदियाँ तथा हजारों क्षुद्र पर्वत हैं। स्वर्ग के भोगों का भोग करने के पश्चात् जिन्होंने भूतल पर आकर जलद आदि वर्षों में जन्म लिया है, वे प्रसन्नतापूर्वक उन नदियों का जल पीते हैं। उन सातों वर्षों में कहीं भी धर्म का क्षय, पारस्परिक कलह अथवा मर्यादा का नाश कभी नहीं होता। वहाँ वंग, मागध, मानस और मंदग नामक चार वर्ण क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं।६५-७०। हे मुने! उस शाकद्वीप में शास्त्र सम्मत कर्म करने वाले उन चतुर्वर्ण द्वारा सूर्य रूपी भगवान् विष्णु की आराधना की जाती है ७१।

शाकद्वीपस्तु मैत्रेय क्षीरोदेन समावृतः ।
शाकद्वीपप्रमाणेन वलयेनेव वेष्टितः ।७२।
क्षीराब्धिः सर्वतो ब्रह्मन्पुष्कराख्येन वेष्टितः ।
द्वीपेन शाकद्वीपात्तु द्विगुणेन समन्ततः ।७३।
पुष्करे सवनस्यापि महावीरोऽभवत्सुतः ।
धातकिश्च तयोस्तत्र द्वे वर्षे नामचिह्निते ।७४।
महावीरं तथैवान्द्धातकी खण्डसज्ञितम् ।
एकश्चात्र महाभाग प्रख्यातो वर्ष पर्वतः ।७५।
मानसोत्तरसंज्ञो वै मध्यतो वलयाकृतिः ।
योजनानां सहस्राणि ऊर्ध्वं पञ्चशदुच्छ्रितः ।७६।

तावदेव च विस्तीर्णः सर्वतः परिमण्डलः ।
पुष्करद्वीपवलयं मध्येन विभजन्निव ।७७।
स्थितोऽसौ तेन विच्छिन्नं जातं तद्वर्षकद्वयम् ।
वलयाकारमेकैकं तयोर्वर्षं तथा गिरिः ।७८।
दशवर्षसहस्राणि तत्र जीवन्ति मानवाः ।
निरामया विशोकाश्च रागद्वेषदिवर्जिताः ।७९।
अधमोत्तमौ न तेष्वास्तां न वध्यवधकौ द्विज ।
नेर्ष्यासूजा भयं व्देपो दोषो लोभादिको न च ।८०।

हे मैत्रेयजी ! वह शाकद्वीप अपने ही समान परिमाण वाले वलयाकार दूध (क्षीर) के समुद्र से घिरा है । वह क्षीर सागर शाकद्वीप से दुगने परिमाण के पुष्कर द्वीप से चारों ओर से घिरा हुआ है ७३। पुष्कर द्वीपके राजा सवनके दो पुत्र हुए, जिनके नाम महावीर और धातकि थे । इन्हीं दोनों के नाम पर महावीर-खण्ड और धातकि खण्ड नामक वर्ष हुए । इसमें मानसोत्तर नामक एक ही वर्ष पर्वत मध्य में स्थित है । वह पचास हजार योजन ऊँचा और उतना ही सब ओर फैला हुआ है । इससे ऐसा लगता है जैसे यह पर्वत पुष्कर द्वीप को मध्य में से विभाजित कर रहा है तथा इसके विभाग से ही दो वर्ष हो गये हैं । उनमें से प्रत्येक वर्ष तथा वह पर्वत गोलाकार ही हैं ।७४-७८। वहाँ के निवासी रोग शोक, राग-द्वेषादि से परे रह कर दस हजार वर्ष तक जीवन धारण करते हैं ७९। उनमें ऊँच-नीच मरने-मारने आदि जैसे भाव नहीं है और ईर्ष्या, असूया, भय, व्देष तथा लोभादि का भी अभाव है ८०।

महावीरं बहिर्वर्षं धातकीखण्डमन्ततः ।
मानसोत्तरशैलस्य देवदैत्यादिसेवितम् ।८१।
सत्यानृते न तत्रास्तां द्वीपे पुष्करसज्ञिते ।
न तत्र नद्यः शैला व व्दीपे वर्षव्दयान्विते ।८२।
तुल्यवेषास्तु मनुजा देवास्तत्रैकरूपिणः ।
वर्णाश्रमाचारहीनं धर्माचरणवर्जितम् ।८३।

त्रयी वार्ता दण्डनीतिशुश्रूषारहितश्च यत् ।
वर्षद्वयं तु मैत्रेय भौमः स्वर्गोऽयमुत्तमः ।८४।
सर्वर्तुसुखदः कालो जरारोगादिवर्जितः ।
धातकीखण्डसंज्ञेऽथ महावीरे च वै मुने ।८५।
न्यग्रोधः पुष्करद्वीपे ब्रह्मणः स्थानमुत्तमम् ।
तस्मिन्निवसति ब्रह्मा पूज्यमानः सुरासुरैः ।८६।
स्वादूदकेनोदधिना पुष्करः परिवेष्टितः ।
समेन पुष्करस्यैव विस्तारान्मण्डलं तथा ।८७।

पर्वत के बाहर की ओर महावीर तथा भीतर की ओर धातकी खण्ड है । इनमें देवता और दैत्य रहते हैं ८१। दो खण्डों वाले उस पुष्कर द्वीप में सत्य अथवा असत्य कुछ भी नहीं है और न वहाँ पर्वत और नदी ही है ८२। वहाँ के मनुष्य और देवता समान रूप तथा समान वेश-भूषा वाले हैं । हे मैत्रेयजी ! वहाँ न तो वर्णाश्रम व्यवस्था है, न काम्य कर्म हैं और न वेदत्रयी, कृषि, दंडनीति या सुश्रूषादि ही हैं । इस प्रकार वे दोनों पृथिवी के अतिश्रेष्ठ स्वर्ग ही हैं ८३-८४। हे मुने ! उन दोनों वर्षों में स्थित काल सब ऋतुओं में समान सुख देने वाला तथा बुढ़ापे और रोगादि से शून्य रहता है ८५। उस द्वीप में ब्रह्माजी के श्रेष्ठ स्थान रूप एक वट वृक्ष है, जहाँ देव-दानवों द्वारा पूजित हुए श्री ब्रह्माजी विराजमान रहते हैं ८६। वह पुष्कर द्वीप अपने ही बराबर परिमाण-विस्तार वाले मीठे पानी के समुद्र से चारों ओर से वलयाकार घिरा हुआ है ८७।

एवं द्वीपाः समुद्रैश्च सप्त सप्तभिरावृताः ।
द्विपश्चैव समुद्रैश्च सप्त समानौ द्विगुणौ परौ ।८८।
पयांसि सर्वदा सर्वसमुद्रेषु समानि वै ।
न्यूनातिरिक्तता तेषां कदाचिन्नैव जायते ।८९।
स्थालीस्थमग्निसंयोगादुद्रेकि सलिलं यथा ।
तथेन्दुवृद्धौ सलिलमम्भोधौ मुनिसत्तम ।९०।
अन्यूनानतिरिक्ताश्च वर्धन्त्यापो ह्रसन्ति च ।
उदायास्तमनेष्विन्दोः पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ।९१।

दशोत्तराणि पञ्च व ह्यङ्गुलानां शतानि वै ।
अपां वृद्धिक्षयौ दृष्टौ सामुद्रीणां महामुने ।९२।
भोजनं पुष्करद्वीपे तत्र स्वयमुपस्थितम् ।
षड्रसं भुञ्जते विप्र प्रजाः सर्वाः सदैव हि ।९३।

इस प्रकार सातों द्वीप सात समुद्रों से घिरे हैं । वे द्वीप और समुद्र परस्पर समान परिमाण वाले तथा उत्तरोत्तर द्विगुण होते चले गये हैं ८८। सभी समुद्रों में जल सदैव एक-सा रहता है, कभी अधिक अथवा न्यून नहीं होता ८९। हे मुने ! अग्नि पर चढ़े हुए पात्र का जल जिस प्रकार उष्णता प्राप्त कर उबलने लगता है, वैसे ही चन्द्रमा की कला-वृद्धि के साथ समुद्र के जल में भी वृद्धि होने लगती है ९०। शुक्लपक्ष और कृष्ण-पक्ष में चन्द्रमा के उदय अस्त की सीमा से न्यून या अधिक न होते हुए ही जल में बढ़ाव या उतराव होता है ९१। हे महामुने ! समुद्र का जल पाँच सौ दश अंगुल तक बढ़ता अथवा इतने ही परिमाण तक घटता हुआ देखा जाता है ९२। हे विप्र ! उस पुष्कर द्वीप में सम्पूर्ण प्रजा को बिना प्रयास ही षड्रस भोजन सदा प्राप्त होता रहता है ९३।

स्वादूदकस्य परितो दृश्यतेऽलोकसंस्थितिः ।
द्विगुणा काञ्चनी भूमिः सर्वजन्तुविवर्जिता ।९४।
लोकालोकस्ततश्शैलो योजनायुतविस्तृतः ।
उच्छ्रायेणापि तावन्ति सहस्राण्यचलो हि सः ।९५।
ततस्तमः समावृत्य तं शैलं सर्वतः स्थितम् ।
तमश्चाण्डकटाहेन समन्तात्परिवेष्टितम् ।९६।
पञ्चाशत्कोटिविस्तारा सेयमुर्वी महामुने ।
सहैवाण्डकटाहेन सद्वीपाब्धिमहीधरा ।९७।
सेयं धात्री विधात्री च सर्वभूतगुणाधिका ।
आधारभूता सर्वेषां मैत्रेय जगतामिति ।९८।

मीठे पानी के समुद्र के चारों ओर लोगों के आवास से रहित तथा सभी जीवों से शून्य इससे द्विगुण परिमाण वाली स्वर्णिम पृथ्वी दिखाई

देती हैं ९४। वहाँ दस हजार योजन विस्तार वाला लोकालोक पर्वत है; जिसकी ऊँचाई भी दस हजार योजन की है ९५। उसके आगे उस पर्वत को सब ओर से अन्धकार घेरे हुए है तथा उस अन्धकार को ब्रह्मण्ड कटाह ने सब ओर से घेर रखा है ९६। हे महामुने ! अण्डकटाह के सहित द्वीप और पर्वतादि युक्त इस सम्पूर्ण पृथिवी मण्डल का विस्तार पचास करोड़ योजन है ९७। हे मैत्रेयजी ! आकाशादि सभी भूतों से विशिष्ट गुण वाली यह पृथिवी सम्पूर्ण विश्व की आश्रया तथा उसका पालन और उत्पत्ति करने वाली है ९८।

—०—

पाँचवां अध्याय

विस्तार एष कथितः पृथिव्या भवतो मया।
सप्ततिस्तु सहस्राणि द्विजोच्छ्रायोऽपि कथ्यते ।१।
दशसाहस्रमेकैकं पातालं मुनिसत्तम।
अतलं वितलं चैव नितलं च गभस्तिमत्।
महाख्यं सुतलं चाग्र्यं पातालं चापि सप्तमम् ।२।
शुक्लकृष्णारुणाः पीताः शर्कराः शैलकाञ्चनाः।
भूमयो यत्र मैत्रेय वरप्रासादमण्डिताः ।३।
तेषु दानवदैतेया यक्षाश्च शतस्तथा।
निवसन्ति महानागजातयश्च महामुने ।४।

श्रीपराशरजी ने कहा—हे द्विज ! इस पृथिवी का विस्तार मैंने तुम्हें बताया है। कहते हैं कि इसकी ऊँचाई सत्तर हजार योजन है १। हे मुनिश्रेष्ठ ! अतल, वितल, नितल, गभस्तिमान्, महातल, सुतल और पाताल इन सातों पातालों की पारस्परिक दूरी दस-दस हजार योजन है २। हे मैत्रेयजी ! श्रेष्ठ भवनों से सुशोभित वहाँ के धरातल शुक्ल, कृष्ण अरुण,

पीत, शर्करामयी, शैली अथवा स्वर्णिम हैं ३। दानव, दैत्य, यक्ष और महानाग आदि की सैकड़ों जातियाँ उनमें रहती हैं ४।

स्वर्लोकादपि रम्याणि पातालानीति नारदः ।
प्राह स्वर्गसदां मध्ये पातालेभ्या गतो दिवि ।५।
आह्लादकारिणः शुभ्रा मणयो यत्र सुप्रभाः ।
नागाभरणभूषासु पातालं केन तत्समम् ।६।
दैत्यदानवकन्याभिरितश्चेतश्च शोभिते ।
पाताले कस्य न प्रीतिर्विमुक्तस्यापि जायते ।६।
दिवार्करश्मयो यत्र प्रभां तन्वन्ति नातपम् ।
शशिरश्मिनं शीताय निशि द्योताय केवलम् ।८।
भक्ष्यभोज्यमहापानमुदितेरपि भोगिभिः ।
यत्र न ज्ञायते कालो गतोऽपि दनुजादिभिः ।९।
वनानि नद्यो रम्याणि सरांसि कमलाकरः ।
पुंस्कोकिलाभिलापाश्च मनोज्ञान्यम्बराणि च ।१०।
भूषणान्यतिशुभ्राणि गन्धाढयं चानुलेपनम् ।
वीणावेणुमृदङ्गानां स्वनास्तूर्याणि च द्विज ।११।
एतान्यन्यानि चोदारभाग्यभोग्यानि दानवै ।
दैत्योरगैश्च भुज्यन्ते पातालान्तरगोचरैः ।१२।

एक बार की बात है कि नारदजी उन पातालों में भ्रमण करते हुए जब स्वर्ग पहुंचे, तब उन्होंने वहाँ के रहने वालों से कहा कि पाताल की सुन्दरता तो स्वर्ग से भी बढ़कर है ५। जहाँ नागों के आभूषणों में सुन्दर प्रभामयी श्रेष्ठ मणियाँ जड़ी रहती हैं, उस पाताल लोक को किस लोक की उपमा दी जाय ? ६। इधर-उधर दिखाई पड़ती हुई दैत्य-दानवों की कन्याओं से सुशोभित उस पाताल के प्रति किसकी प्रीति न होगी ? ७। जहाँ सूर्य-रश्मियाँ दिन में प्रकाश ही करतीं हैं, धूप नहीं करती और रात्रि में चन्द्र किरणें शीत को उत्पन्न नहीं करती, केवल उजाला ही करती है८। जहाँ भक्ष्य भोज्य और महापान में निमग्न रहने वाले सर्पों या दानवों

को समय निकलता हुआ मालूम नहीं होता ९। जहाँ सुरम्यवन, सरित, सरोवर, और कमलों के उपवन हैं, जहाँ नर कोकिलों की सुमधुर ध्वनि गूँजती है जहाँ का आकाश भी मन को हरण कर लेने वाला है १०। हे द्विज ! जिस पाताल में रहने वाले दैत्य, दानव और नाग अत्यत स्वच्छ आभूषण, सुगन्धमय लेपन, बीणा, वेणु, मृदङ्ग, तूर्य आदि के मधुर स्वर से युक्त हुए भाग्यवानों के भोगने योग्य अन्य अनेक भोग भोगे जाते हैं ११-१२।

पातालानामधश्चास्ते विष्णोर्या तामसी तनुः ।
शेषाख्या यद्गुणान्वक्तुं न शक्ता दैत्यदानवाः १३।
योऽनन्तः पठयते सिद्धैर्देवो देवर्षिपूजितः ।
स सहस्रशिरा व्यक्तस्वस्तिकामलभूषणः ।१४।
फणामणिसहस्रेण यः स विद्योतयन्दिशः ।
सर्वान्करोति निर्वीर्यान् हिताय जगतोऽसुरान् ।१५।
मदाघूर्णितनेत्रोऽसौ यः सदैवेककुण्डलः ।
किरीट स्रग्धरो भाति साग्निः श्वेत इवाचलः ।१६।
नीलवासा मदोत्सिक्तः श्वेतहारोपशोभितः ।
साभ्रगङ्गाप्रवाहोऽसौ कैलासाद्रिरिवापरः ।१७।
लाङ्गलासक्तहस्ताग्रो बिभ्रन्मुसलमुत्तमम् ।
उपास्यते स्वयं कान्त्या यौ वारुण्या च मूर्त्तया ।१८।
कल्पान्ते यस्य वक्त्रेभ्यो विषानलशिखोज्ज्वलः ।
सङ्कर्षणात्मको रुद्रो निष्क्रम्यात्ति जगत्त्रयम् ।१९।
स बिभ्रच्छेखरीभूतमशेषं क्षितिमण्डलम् ।
आस्ते पातालमलस्थः शेषोऽशेषसुरार्चितः ।२०।

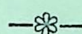
उन पातालों के नीचे भगवान् विष्णु का शेष नामक तमोमय विग्रह है, उसका गुण-गान दैत्य-दानवादि भी नहीं कर सकते १३। देवर्षियों से पूजित जिन भगवान् को सिद्धगण अनन्त कहतेहैं, वे अत्यन्त निर्मल, स्वस्तिक चिन्हों से भूषित तथा हजार शीश वाले हैं १४। जो अपने फणों की हजार मणियों से सब दिशाओं को प्रकाशित करते हुए लोक कल्याणार्थ

सब असुरों को निस्तेज करते रहते हैं १५। मद से अरुण नयन, एक कुण्डल, मुकुट एवं माला आदि धारण किये हुए अग्निमय श्वेत पर्वत के समान शोभायमान है १६। मद से उन्मत्त होकर नीलाम्बर और श्वेत हारों के धारण से शोभायमान् होकर मेघमाला और गंगा के प्रवाह वाले द्वितीय कैलास के समान स्थित है १७। जो अपने हाथों में हल मूशल धारण किये हुए है तथा शोभा और वारुणी देवी स्वयं मूर्तिमती होकर जिनका स्तव करती है १८। कल्प के अन्त में जिनके मुखों से विषाग्नि की ज्वाला के समान प्रकाशित संकर्षण नामक रुद्र निकलता और तीनों लोकों को उदरस्थ कर लेता है १९। वे सब देवताओं से नमस्कृत भगवान् शेष अशेष पृथ्वी मण्डल को मुकुट के समान धारण किये हुए पातालमूल में विराज रहे है २०।

तस्य वीर्यं प्रभावश्च स्वरूप रूपमेव च ।
न हि वर्णयितुं शक्यं ज्ञातुं च त्रिदिशैरपि ।२१।
यस्यैषा सकला पृथ्वी फणामणिशिखारुणा ।
आस्ते कुसुममालेव कस्तद्वीर्यं वदिष्यति ।२२।
यदा विजम्भतेऽनन्तो मदाघूर्णितलोचनः ।
तदा चलति भूरेषा साब्धितोया सकनना ।२३।
गन्धर्वाप्सरसः सिद्धाः किन्नरोरगचारणाः
नान्तं गुणानां गच्छन्ति तेनानन्तोऽयमव्ययः ।२४।
यस्य नागवधूहस्तैर्लेपितं हरिचन्दनम् ।
मुहुः श्वासानिलापास्तं याति दिक्ष ूदवासताम् ।२५।
यमाराध्य पुराणर्षिर्गर्गो ज्योतीषितत्वतः ।
ज्ञातवान्सकलं चैव निमित्तपठितं फलम् ।२६।
तेनेय नागवर्येण शिरसा विधृता मही ।
बिभर्ति मालां लोकानां सदेवासुरमानुषाम् ।२७।

जिन शेष भगवान् का बल-वीर्य, प्रभाव, स्वरूप, आकार, आदि देवगण भी नहीं जान सकते और न वर्णन कर सकते हैं २१। जिनके फणों में स्थित मणियों की आभा से अरुण वर्ण हुई यह सम्पूर्ण पृथिवी पुष्प

रखी है, उनके बल-वीर्य का वर्णन करने में कौन समर्थ हो सकता है ? ।२२। जब मद से मत्त हुए भगवान् शेष जम्हाई लेते हैं तब समुद्रों और वनों से युक्त यह सम्पूर्ण पृथिवी डोल उठती है।२३। गन्धर्व, अप्सरा, सिद्ध, किन्नर, नाग, चारण आदि कोई भी इनके गुणों का अन्त पाने में समर्थ नहीं है, इसी से यह अविनाशी देव अनन्त कहे जाते हैं।२४। जिन के देह पर नागों द्वारा लेपा गया चन्दन श्वांस लेने से छूट छूट कर सब दिशाओं को सुगन्धमय बनाता रहता है।२५। पूर्वकाल में महर्षि गर्ग ने जिनकी अराधना करके ज्योतिर्मण्डल और शकुनादि के नैमित्तिक फलों का तत्व ज्ञान प्राप्त किया था।२६। उन्हीं नागवर शेष ने इस पृथिवी को अपने शीश पर धारण कर रखा है, जो स्वयं भी देवता, असुर, मनुष्यादि के सहित सम्पूर्ण लोकमाला को धारे हुए हैं।२७।



छठा अध्याय

ततश्च नरका विप्र भुवोऽधः सलिलस्य च ।
पापिनो येषु पात्यन्ते ताञ्छृणुष्व महामुने ।१।
रौरवः सूकरो रोधस्तालो विशसनस्तथा ।
महाज्वालस्तप्तकुम्भो लवणोऽथ विलोहितः ।२।
रुधिराम्भो वैतरणिः कृमीशः कृमिभोजनः ।
असिपत्रवनं कृष्णो लालाभक्षश्च दारुणः ।३।
तथा पूयवह पापो वह्निज्वालो ह्यधः शिराः ।
सन्दंशः कालसूत्रश्च तमश्चावीचिरेव च ।४।
श्वभोजनोऽथाप्रतिष्ठश्चाप्रचिश्च तथा परः ।
इत्येवमादयश्चान्ये नरका भृशदारुणाः ।५।
यमस्य विषये घोराः शस्त्राग्निभयदायिनः ।
पतन्ति येषु पुरुषाः पापकर्मरतास्तु ये ।६।

कूटसाक्षी तथा सम्यक्पक्षपातेन यो वदेत् ।
यश्चान्यदनृतं वक्ति स नरो याति रौरवम् ।

श्री पराशर जी ने कहा—हे विप्र ! पृथिवी और जल के नीचे नरक स्थित है, उनमें पापियों को गिराया जाता है, उनका वर्णन सुनो ।१। रौरव, सूकर, रोध, ताल, विशसन, महाज्वाल, तप्तकुम्भ, लवण, विलोहित, रुधिराम्भ, वैतरणि, कृमीश, कृमि भोजन, असि-पत्रवन, कृष्ण लालाभक्ष, दारुण, पूयवह, पाप, वह्निज्वाल, अधःशिरा, संदंश, कालसूत्र तमस, आवीचि, श्वभोजन, अप्रतिष्ठ और अप्रचि तथा इनके अतिरिक्त अन्य अनेकों घोर नरक हैं, जिनका शासन यमराज करते हैं। यह नरक अत्यन्त दारुण शस्त्र और अग्नि का भय देने वाले हैं, इनमें पापी पुरुष ही गिराये जाते हैं ।२६। कूट साक्षी अर्थात् मिथ्या गवाही देने वाला या यथार्थ न बनने वाला मनुष्य रौरव नरक को प्राप्त होता है ।७।

भ्रूणहा तुरहन्ता च गोघ्नश्च मुनिसत्तम ।
यान्ति ते नरकं रोध यश्चोच्छ्वासनिरोधकः ।७।
सुरापो ब्रह्महा हर्ता सुवर्णस्य च सूकरे ।
प्रयान्ति नरके यश्च तैः संसर्गमुपैति वै ।९।
राजन्यवैश्यहा ताले तथैव गुरुतल्पगः ।
तप्तकुण्डे स्वसृगामी हन्ति राजभटांश्च यः ।१०।
साध्वीविक्रयकृद्बन्धपालः केसरिविक्रयी ।
तप्तलोहे पतन्त्येते यश्च भक्तं परित्यजेत् ।११।
स्नुषां सुतां चापि गत्वा महाज्वाले निपात्यते ।
अवमन्ता गुरूणां यो यश्चाक्रोष्टा नराधमः ।१२।
वेददूषयिता यश्च वेदविक्रयिकश्च यः ।
अगम्यगामीयश्च स्यात्ते यान्ति लवण द्विज ।१३।

भ्रूण हत्यारे, ग्राम को नष्ट करने वाले और गो-वधिक को रोध नामक नरक प्राप्त होता है यह नरक श्वासोच्छ्वास को रोकता है । ८ । मद्यपायी, ब्रह्मघाती, स्वर्ण-चोर अथवा इनकी संगति करने वाला पुरुष

सूकर नरक गामी होता है ।९। क्षत्रिय या वैश्य का हत्यारा ताल नरक में जाता है, गुरुपत्नी-भोगी, भगिनीगामी और राजदूतों के हत्यारों को तप्तकुण्ड नरक मिलता है ।१०। सती नारी का विक्रेता कारागार का रक्षक, घोड़ों के बेचने वाला और भक्त पुरुष का त्याग करने वाला मनुष्य तप्तलोह नरक में गिराया जाता है ११। पुत्रवधू या पुत्री का धर्म नष्ट करने वाला महाज्वाल नरक में गिरता है और गुरुजनों का तिरस्कार करने वाला, वेद निन्दक, वेद का विक्रेता अथवा अगम्या से समागम करने वाला नरक को प्राप्त होता है ।१२-१३।

चोरो विलोहे पतति मर्यादादूशकस्तथा ।
देवद्विजपितृद्वेष्टा रत्नदूषयिता च यः ।१४।
स याति कृमिभक्षे वै कृमीशे च दुरिष्टकृत् ।
पितृदेवातिथींस्त्यक्त्वा पर्यश्नान्ति नराधमः ।१५।
लालाभक्षे स यात्युग्रे शरकर्त्ता च वेधके ।
करोति कर्णिनो यश्च यश्च खड्गादि कृन्नर ।१६।
प्रयान्त्येते विशसने नरके भृशदारुणे ।
असत्प्रतिगृहीता तु नरके यात्यधोमुखे ।१७।
अयाज्ययाजकश्चैव तथा नक्षत्रसूचकः ।
वेगी पूयवहे चैको याति भिष्टान्नभुङ् नरः ।१८।
लाक्षामांसरसानां च तिलानां लवणस्य च ।
विक्रेता ब्राह्मणो याति तमेव नरक द्विज ।१९।
मार्जारकुक्कुटच्छागश्ववराह विहङ्गमान् ।
पोषयन्नरकं याति तमेव द्विजसत्तम ।२०।

चोर तथा मर्यादा नष्ट करने वाले को विलोहित नरक मिलता है। देवता, द्विज और पितरों का द्वेषी तथा रत्न को दूषित करने वाला कृमिभक्ष नरक में जाता है तथा अनिष्ट यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले को कृमीशर नरक मिलता है। पितर देवता, अतिथि का ध्यान न कर उनसे पहिले ही भोजन कर लेने वाले को अत्युग्र लालाभक्ष नरक की यंत्रणा भोगनी होतीहै

बाण-निर्माता वेध नरक में जाता है। कर्णी नामक वाण अथा खड्गादि शस्त्रके बनाने वाले लोग अत्यन्त दारुण विशंसन नरक को प्राप्त होते हैं। असत् प्रतिग्रह से ग्रहण करने वाला, अयज्ञ का याजक, नक्षत्र विद्या से जीविका चलाने वाला अधोमुख नरक में गिरता है। साहस (क्रूर) कर्म वाले मनुष्य को पूयवह नरक मिलता है। अकेले ही सुस्वादु भोजन को खा लेने वाला लाख, माँस, रस, तिलया लवण बेचने वाला ब्राह्मण भी उसी नरक में जाता है।१४-१९। बिलाव, कुक्कुट, छाग, अश्व, शूकर या पक्षियों को पालने वाला भी उसी पूयवह नरक को प्राप्त होता है।२०।

रङ्गोपजीवी कैवर्त्तः कुण्डाशी गरदस्तथा।
सूची माहिषकश्चैव सर्वकारी च यो द्विजः।२१।
आगारदाही मित्रघ्नः शाकुनिर्ग्रामयाजकः।
रुधिरान्धे पतन्त्येते सोम विक्रीणते च ये।२२।
मखहा ग्रामहन्ता च याति वैतरणी नरः।
रेतः पातादिकर्त्तारो मर्यादाभेदिनो हि ये।२३।
ते कृष्णे यान्त्यशौचाश्च कुहकाजीविनश्च ये
असिपत्रवनं याति वनच्छेदी वृथैव यः।२४।
औरभ्रिको मृगव्याधो वह्निज्वाले पतन्ति वै।
यान्त्येते द्विज तत्रैव ये चापा केषु वह्निदा।२५।
व्रतानां लोपको यश्च स्वाश्रमाद्विच्युतश्च यः।
सन्दंशयातनामध्ये पततस्तावुभावपि।२६।
दिवा स्वप्ने च स्कन्दन्ते ये नरा ब्रह्मचारिणः।
पुत्रैरध्यापिता ये च ते पतन्ति श्वभोजने।२६।

नट या मल्ल वृत्ति वाला, धीवर कर्म करने वाला, कुण्ड का अन्न खाने वाला, विष खिलाने वाला, चुगली करने वाला, स्त्री वृत्ति से जीविकोपार्जन करने वाला, धनादि के लोभ वंश पर्व के बिना ही पूर्वकाल में होने वाले कार्य का कराने वाला ब्राह्मण घर में अग्नि लगाने वाला शकुन बताने वाला, मित्र, हत्यारा ग्राम-पुरोहित और सोम का विक्रेता—इन सब को

सधिरान्ध नरक की प्राप्ति होती है।२१-२२। यज्ञ या ग्रामको नष्ट करने। वाले मनुष्य को वैतरणी नामक नरक की प्राप्ति होती है रेतपातादि करने वाले, खेत की मेंड़ तोड़ने वाले, अपवित्र और छलवृत्ति से जीविका चलाने वाले कृष्ण नरक में और व्यर्थ ही वनों के काटने वाले असिपत्र वन नरक में गिरते हैं।२३-२४। भेड़ादि से जीवनोपार्जन करने वाले और शिकारी वह्निज्वाल नरक को प्राप्त होते हैं तथा कच्चे घड़ों और ईटों आदि को पकाने के लिये उनमें जो अग्नि डालते हैं, उन्हें भी वही नरक मिलता है।२५। वृक्षों के नाशक और अपने आश्रम से पतित हुए मनुष्य सन्दंश नरक में जाते हैं।२६। जो ब्रह्मचारी दिन में या सोते समय में वीर्यपात करते हैं अथवा जो मनुष्य अपने पुत्रों से शिक्षाध्ययन करते हैं, उन्हें श्वभोजन नामक नरक में जाना होता है।२७।

एते चान्ये च नरकाः शतशोऽथ सहस्रशः।
येषु दुष्कृतकर्माणः पच्यन्ते यातनागताः।२८।
यथैव पापान्येतानि तथान्यानि सहस्रशः।
भुज्यन्ते तानि पुरुषैर्नरकान्तरगोचरैः।२९।
वर्णाश्रमविरुद्धं च कर्म कुर्वन्ति ये नराः।
कर्मणा मनसा वाचा निरयेषु पतन्ति ते।३०।
अधःशिरोभिर्दृश्यन्ते नारकैर्दिवि देवताः।
देवाश्चाधोमुखान्सर्वानधः पश्यन्ति नारकान्।३१।
स्थावराः कृमयोऽब्जाश्च पक्षिणः पशवो नराः।
धार्मिकास्त्रिदशास्तद्वन्मोक्षिणश्च यथाक्रमम्।३२।
सहस्रभागप्रथमा द्वितीयानुक्रमास्तथा।
सर्वे ह्येते महाभाग यावन्मुक्तिसमाश्रयाः।३३।
यावन्तो जन्तवः स्वर्गे तावन्तो नरकौकसः।
पापकृद्याति नरकं प्रायश्चित्तपराङ्मुखः।३४।

इस प्रकार यह तथा अन्य सहस्रों ही नरक है, जिनमें पड़कर दुष्कर्म करने वाले प्राणी विभिन्न प्रकार की यन्त्रणाएँ भोगते हैं।२८। उपरोक्त पापों के समान अन्य अनेक हजारों पापकर्म हैं, उनके फल भिन्न-भिन्न नरकों

में जाकर भोगने होते हैं २९। अपने वर्णाश्रम धर्म के विरुद्ध जो मनुष्य मन, वाणी या कर्म से कोई कार्य करते हैं, उन्हें भी नरक की प्राप्ति होती है ।३०। अधोमुख नरक को प्राप्त हुए प्राणियों को स्वर्ग लोक में देवगण दिखाई देते हैं और वह देवगण भी नीचे के लोकों में पड़े उन नारकी प्राणियों को देखते रहते हैं। ३१। नरक की यन्त्रणा भोगने के पश्चात् पापियों को क्रमशः स्थावर, कृमि जलचर, पक्षी, पशु मनुष्य, धार्मिक, देवता और मुमुक्ष के रूप में उत्पन्न होते हैं ३२। हे महाभाग ! मुमुक्ष तक इन सब प्राणियों में दूसरे से पहले जन्म वाले प्राणियों की संख्या हजार गुनी अधिक है ।३३। स्वर्ग में जितने प्राणी हैं, नरक में भी उतने ही हैं, जो व्यक्ति अपने पापों का प्राश्चित नहीं करते उन्हें नरक की ही प्राप्ति होती है ।३४।

पापानामनुरूपाणि प्रायश्चित्तानि यद्यथा ।
तथा तथैव सस्मृत्य प्रोक्तानि परमर्षिभिः ।३५।
पापे गुरुणि स्वल्पान्यल्पे च तद्विदः ।
प्रायश्चितानि मैत्रेय जगुः स्वायम्भुवादयः ।३६।
प्रायश्चित्तान्यशेषाणि तपः कर्मात्मकानि वै ।
यानि तेषामशेषाणां कृष्णानुस्मरणम्परम् ।३७।
कृते पापेऽनुतापो वै यस्य पुंसः प्रजायते ।
प्रायश्चितं तु तस्यैक हरिसंस्मरण परम् ।३८।
प्रातर्निशि तथा सन्ध्यामध्याह्नीदिषु संस्मरन् ।
नारायणमवाप्नोति सद्यः पापक्षयान्नरः ।३९।
विष्णुरांस्मरणात्क्षीण समस्तक्लेशसञ्चयः ।
मुक्ति प्रयाति स्वर्गाप्तिस्तस्य विघ्नोऽनुमीयते ।४०।
वासुदेवे मनो यस्य जपहोमार्चनादिषु ।
तस्यान्तरायो मैत्रेय देवेन्द्रत्वादिकं फलम् ।४१।
क्व नाकपृष्ठगमन पुनरावृत्तिलक्षणम् ।
क्व जपो वासुदेवेति मुक्तिबीजमनुत्तमम् ।४२।

विभिन्न पापों के अनुरूप विभिन्न प्रायश्चित्त है, जिन्हें महर्षियों ने वेदार्थ के स्मरण पूर्वक कहा है।३५। हे मैत्रेयजी स्वायंभुव मनु आदि स्मृतिकारों ने पापों की अधिकता-न्यूनता की दृष्टि से महान् या अल्प प्रायश्चित्त कल्पित किये हैं।३६। परन्तु तपात्मक और कर्मात्मक प्रायश्चित्तों में भगवान श्रीकृष्ण का स्मरण करना सर्वश्रेष्ठ प्रायश्चित्त है।३७। पाप करने के पश्चात् जो पुरुष उसके लिये पश्चात्ताप करता है उसके लिये तो एक मात्र हरि स्मरण ही परम प्रायश्चित्त है।३८ प्रातः, रात्रि, सायकाल, मध्याह्नादि में भगवान् श्री हरि के स्मरण से पापों का क्षय हो जाता है और भगवान की प्राप्ति होती है।३९। भगवान् के स्मरण से सभी पापों का समूह भस्म हो जाता है, जिससे मनुष्य को मोक्ष पद की प्राप्ति होती है। उसके लिये स्वर्ग की प्राप्ति तो विघ्न स्वरूप समझी जाती है।४०। हे मैत्रेयजी ! जिस मनुष्य का चित्त जप, हवन पूजनादि करते रहने से निरन्तर भगवान् में लगा रहता है, उसके लिये इन्द्रपद जैसे फल तो तुच्छ एव विघ्न ही हैं।४१। कहाँ तो प्राणी को पुनर्जन्म के चक्र में गिराने वाली स्वर्ग-प्राप्ति और कहाँ मुक्ति का सर्वश्रेष्ठ बीज भगवान् वासुदेव के नाम का जप।४२।

तस्मादहर्निशं विष्णुं संस्मरन्पुरुषो मुने ।
न याति नरकं मर्त्यः संक्षीणाखिलपातकः ।४३।
मनः प्रीतिकरः स्वर्गो नरकस्तद्विपर्ययः ।
नरकस्वर्गसंज्ञे वै पापपुण्ये द्विजोत्तम ।४४।
वस्त्वेकमेव दुःखाय सुखायेर्ष्यागमाय च ।
कोपाय च यतस्तस्माद्वस्तु वस्त्वात्मकं कुतः ।४५।
तदेव प्रीतये भूत्वा पुनर्दुःखाय जायते ।
तदेव कोपाय यतः प्रसादाय च जायते ।४६।
तस्माद्दुःखात्मकं नास्ति न च किञ्चित्सुखात्मकम् ।
मनसः परिणामोऽयं सुखदुःखादिलक्षणः ।४७।
ज्ञानमेव परं ब्रह्म ज्ञानं बन्धाय चेष्यते ।
ज्ञानात्मकमिदं विश्वं न ज्ञानाद्विद्यते परम् ।४८।

विद्याविद्येति मैत्रेय ज्ञानमेवोपधारय ।४९।
एवमेतन्मयाख्यातं भवतो मण्डलं भुवः ।
पातालानि च सर्वाणि तथैव नरका द्विज ।५०।
समुद्राः पर्वताश्चैव द्वीपा वर्षाणि निम्नगाः ।
संक्षेपात्सर्वमाख्यातं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ।५१।

इसीलिये भगवान् विष्णु के रात-दिन स्मरण से मनुष्य के सभी पापों का क्षय हो जाता है और उसे नरक की प्राप्ति नहीं होती ।४३। स्वर्ग मन को प्रिय लगता है और नरक उसके विपरीत है । हे विप्रश्रेष्ठ ! पाप ही नरक और पुण्य स्वर्ग है ।४४। जब एक ही वस्तु से सुख, दुःख, ईर्षा क्रोध आदि की प्राप्ति होती है, तब वह वस्तु निय स्वभाव वाली कहाँ हुई ? ।४५। क्योंकि एक वस्तु ही कभी प्रिय लगने वाली होती है और वही वस्तु कभी दुःख देने वाली हो जाती है, वह कभी क्रोध और कभी प्रसन्नता प्रदान करती है ।४६। इसलिये कोई भी पदार्थ दुःखमय अथवा सुखमय नहीं हैं । इन सुख-दु;ख को तो केवल मन का ही विकार समझो ।४७। ज्ञान ही परब्रह्म है परतु अविद्या की उपाधि से वही बंधनकारी हो जाता है । यह सम्पूर्ण जगत् ज्ञानमय है, ज्ञान से विभिन्न कोई भी पदार्थ नहीं है इसलिये हे मैत्रेयजी, तुम्हें भी विद्या और अविद्या दोनों को ज्ञान ही समझना चाहिये ।४८-४९। हे द्विज ! इस प्रकार समस्त पृथिवी मंडल, सम्पूर्ण पाताल-लोक और सभी नरकों का वर्णन मैंने तुमसे कर दिया है ।५०। समुद्र पर्वत, द्वीप, वर्ष और नदियों की भी संक्षिप्त रूप से व्याख्या कर चुका हूं अब तुम्हें और क्या सुनने की इच्छा है सो मुझे बताओ ।५१।



सातवां अध्याय

कथितं भूतलं ब्रह्मन्ममैतदखिलं त्वया ।
भुवर्लोकादिकांल्लोकाञ्छ्रोतुमिच्छाम्यहं मुने ।१।

तथैव ग्रहसंस्थानं प्रमाणानि यथा तथा ।
समाचक्ष्व महाभाग तन्मह्यं परिपृच्छते ।२।
रविचन्द्रमसोर्यावन्मयूखैरवभास्यते ।
ससमुद्रसरिच्छैला तावती पृथिवी स्मृता ।३।
यावत्प्रमाणा पृथिवी विस्तारपरिमण्डलात् ।
नभस्तावत्प्रमाणं वै व्यासमण्डलतो द्विज ।४।
भूमेर्योजनलक्षे तु सौरं मैत्रेय मण्डलम् ।
लक्षाद्दिवाकरस्यापि मण्डलं शशिनः स्थितम् ।५।
पूर्णे शतसहस्रे तु योजनानां निशाकरात् ।
नक्षत्रमण्डलं कृत्स्नमुपरिष्टात्प्रकाशते ।६।
द्वे लक्षे चोत्तरे ब्रह्मन् बुधो नक्षत्रमण्डलात् ।
तावत्प्रमाणभागे तु बुधस्याप्युशनाः स्थितः ।७।

श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आपने समस्त पृथिवी मण्डल के विषय में मुझे बताया । अब मैं भुवर्लोक आदि सब लोकों का वर्णन सुनना चाहता हूँ ।१ और उन ग्रहों की जो-जो स्थिति तथा परिमाण हैं, उन सभी को आप मेरे प्रति कहने की कृपा करिये ।२। श्री पाराशरजी ने कहा—सूर्य और चन्द्रमा की किरणों का प्रकाश जितनी दूर तक पहुँचता है, उतना धरा मंडल समुद्र नदी और पर्वतादि से युक्त 'पृथिवी, कहा जाता है ।३। हे द्विज ! पृथिवी का जितना विस्तार और वलय है, उतना ही विस्तार तथा घेरा भुवर्लोक का है ।४। हे मैत्रेयजी ! पृथिवी से एक लाख योजन की दूरी पर सूर्य मंडल स्थित है और उस सूर्य मंडल से भी एक लाख योजन दूर पर चन्द्र मंडल है ।५। तथा चन्द्रमा से भी एक लाख योजन ऊपर सम्पूर्ण नक्षत्र मंडल प्रकाशमान है ।६। उस नक्षत्र मंडल से दो लाख योजन ऊपर बुध है और बुध से दो लाख योजन परे शुक्र की स्थिति है ।७।

अङ्गारकोऽपि शुक्रस्य तत्प्रमाणे व्यवस्थितः
लक्षद्वये तु भौमस्य स्थितो देवपुरोहितः ।८।

शोरिर्बृहस्पतेश्चोर्ध्वं द्विलक्षे समवस्थितः ।
सप्तर्षिमण्डलं तस्माल्लक्षमेकं द्विजोत्तम ।९।
ऋषिभ्यस्तु सहस्राणां शतदूर्ध्वं व्यवस्थितः ।
मेढीभूत समस्तस्य ज्योतिश्चक्रस्य वै ध्रुवः ।१०।
त्रैलोक्यमेतत्कथितमुत्सेधेन महामुने ।
इज्याफलस्य भूरेषा इज्या चात्र प्रतिष्ठिता ।११।
ध्रुवादूर्ध्वं महर्लोको यत्र ते कल्पवासिनः ।
एकयोजनकोटिस्तु यत्र ते कल्पवासिनः ।१२।
द्वे कोटी तु जनो लोको यत्र ते ब्रह्मणः सुताः ।
सनन्दनाद्याः प्रथिताः मैत्रेयामलचेतसः ।१३।
चतर्गुणोत्तरे चोर्ध्वं जनलोकात्तपः स्थितम् ।
वैराजा यत्र ते देवाः स्थिता दाहविवर्जिताः ।१४।

शुक्र से दो लाख योजन दूर मंगल और मंगल से भी दो लाख योजन ऊपर बृहस्पति हैं ।८। बृहस्पति से दो लाख योजन की ऊँचाई पर शनि और शनि से एक लाख योजन ऊँचा सप्तर्षि-मंडल है ।९। उस सप्तर्षि-मंडल से एक लाख योजन ऊपर सम्पूर्ण ज्योतिष चक्र की नाभि के समान ध्रुव-मंडल है ।१०। हे महामुने ! मैंने तुम्हें तीनों लोकों की ऊँचाई का परिमाण बता दिया । यह तीनों लोक यज्ञफल की भोग भूमि कहे हैं परन्तु यज्ञानुष्ठान की भूमि यह भारत वर्ष ही है ।११। ध्रुव से एक करोड़ योजन ऊँचा महर्लोक है, जहाँ कल्प के अन्त तक रहने वाले भृगु आदि सिद्धगण निवास करते हैं ।१२। हे मैत्रेयजी ! उससे भी दो करोड़ योजन ऊँचाई पर जन लोक है, जिसमें ब्रह्माजी के प्रसिद्ध पुत्र सनकादि का निवास है । ।१६। जनलोक से आठ करोड़ योजन ऊपर तपलोक स्थित है, जहाँ दाह-विवर्जित वैराज नामक देवता वास करते हैं ।१४।

षड्गुणेन तपोलोकात्सत्यलोको विराजते ।
अपुनर्मारका यत्र ब्रह्मलोको हि स स्मृतः ।१५।
पादगम्यन्तु यत्किञ्चिद्वस्त्वस्ति पृथिवीमयम् ।
स भूर्लोकः समाख्यातो विस्तरोऽस्य मयोदितः ।१६।

भूमिसूर्यान्तरं यच्चसिद्धादिमुनिसेवितम् ।
भुवर्लोकस्तु सोऽप्युक्तो द्वितीयो मुनिसत्तम ।१७।
ध्रुवसूर्यान्तर यच्च नियुतानि चतुर्दश ।
स्वर्लोकः सोऽपि गदितो लोकसंस्थानचिन्तकै ।१८।
त्रैलौक्यमेतत्कृतकं मैत्रेय परिपठ्यते ।
जनस्तपस्तथा सत्यमिति चाकृतकं त्रयम् ।१९।
कृतकाकृतयोर्मध्ये महर्लोक इति स्मृतः ।
शून्यो भवति कल्पान्ते योऽत्यन्त न विनश्यति ।२०।

तपलोक से बारह करोड योजन ऊपर सत्यलोक है, उसी को ब्रह्मलोक कहते हैं, इस लोक में पुन मृत्यु को प्राप्त न होने वाले अमरगण रहते हैं ।१५। परन्तु, पग संचार के योग्य पार्थिव वस्तु भूर्लोक ही है उसका विस्तार मैं पहिले ही कह चुका हूँ ।१६। पृथिवी और सूर्यके बीच में सिद्धों और मुनियों द्वारा सेवित स्थान भुवर्लोक है ।१७। सूर्य और ध्रुव के मध्य में चौदह लाख योजन की दूरी है, उसे लोकस्थित के विचारकों ने स्वर्लोक कहा है ।१८। हे मैत्रेयजी । यही भूः, भुवः स्वः, 'कृतक' त्रैलोक्य कहे गये हैं तथा जन, तप, और सत्य 'अकृतक' तीन लोक हैं ।१९। इन कृतक और अकृतक त्रैलोकों के बीच में महर्लोक बताया जाता है, जो कल्प के अन्त में ही जन-शून्य होता है, उसका अत्यन्त नाश नहीं होता ।२०।

एते सप्त मया लोका मैत्रय कथितास्तव ।
पातालानि च सप्तैव ब्रह्माण्डस्यैष विस्तरः ।२१।
एतदण्डकटाहेन तिर्यक् चोर्ध्वमधस्तथा ।
कत्थिस्य यथा बीजं सर्वतो वै समावृतम् ।२२।
देशोत्तरेण पयसा मैत्रेयाण्ड च तद्वृतम् ।
सर्वोऽम्बुपरिधानोऽसौ वह्निना वेष्ठितो बहिः ।।२३।।
वह्निश्च वायुना वायुर्मैत्रेय नभसा वृतः ।
भूतादिना नभः सोऽपि महता परिवेष्टितः ।२४।
देशोत्तराण्यशेषाणि मैत्रेयैतानि सप्त वै ।
महान्त च समावृत्य प्रधानं समवस्थितम् ।२५।

अनन्तस्य न तस्यान्तः संख्यानं चापि विद्यते ।
तदनन्तमसंख्यातप्रमाणं चापि वै यतः ।२६।
हेतुभूतमशेषस्य प्रकृतिः सा परा मुने ।
अण्डानां तु सहस्राणा सहस्राण्ययुतानि च ।२७।

हे मैत्रेयजी ! इस प्रकार तुम्हारे प्रति इन सात लोकों और सात पातालों का वर्णन मैंने तुमसे किया है । यह ब्रह्माण्ड इतने ही विस्तार वाला है ।२१। तथा वह कपित्थ बीज के समान ऊपर, नीचे और सभी ओर अण्डकटाह द्वारा घिरा है ।२२। हे मैत्रेयजी ! यह ब्रह्माण्ड अपने से दश गुने जल से ढका है और वह जलावरण अग्नि से घिरा हुआ है ।२३। अग्नि वायु से और वायु आकाश से घिरा है । वह आकाश भूतों कारण रूप तामस अहंकार से और अहंकार महत्तत्व से परिवेष्ठित है ।२४ हे मैत्रेयजी ! यह सातों उत्तरोत्तर एक दूसरे से दस गुने होते गये हैं । महत्तत्व को प्रधान ने आवृत्त किया हुआ है ।२५। उस अनन्त का न कभी अन्त होता है और न उसकी कोई गणना ही है । क्योंकि, हे मुने ! वह अनन्त, असंख्येय, अपरिमेय और सम्पूर्ण विश्व का कारण तथा परा प्रकृति है । उसमें ऐसे-ऐसे सहस्रों, लाखों, करोड़ों ब्रह्माण्ड हैं ।२६-२७।

ईदृशानां तथा तत्र कोटिकोटिशतानि च ।
दारुण्यग्निर्यथा तैल तिले तद्वत्पुमानपि ।२८।
प्रधानेऽवस्थितो व्यापी चेतनात्मात्मवेदनः ।
प्राधानं च पुमांश्चैव सर्वभूतात्मभूतया ।२९।
विष्णुशक्त्यामहाबुद्धे वृतौ संश्रयधार्मिणौ ।
तयोः सैव पृथग्भावकारणं संश्रयस्य च ।४०।
क्षोभकारणभूता च सर्गकाले महामते ।
यथा सक्त जले वातोबिभर्ति कणिकाशतम् ।३१।
शक्तिः सापि तथा विष्णाः प्रधानपुरुषात्मकम् ।
यथा च पादपो मूलस्कन्धशाखादिसंयुतः ।३२।

आदिबीजात्प्रभवति बीजान्यन्यानि वै ततः ।
प्रभवन्ति ततस्तेभ्यः सम्भवन्त्यपरे द्रुमाः ।३३।
तेऽपि तल्लक्षणद्रव्यकारणानुगता मुने ।
एवमव्याकृतात्पूर्वं जायन्ते महदादयः ।३४।
विशेषान्तास्ततस्तेभ्यः सम्भवन्त्यसुरादयः ।
तेभ्यश्च पुत्रास्तेषां च पुत्राणामपरे सुताः ।३५।

जैसे काष्ठ में अग्नि और तिल में तेल रहता है, वैसे ही अपने प्रकाश से ही प्रकाशित, चेतनात्मा व्यापक पुरुष को प्रधान में स्थित है। ये परस्पर मिले हुए प्रधान और पुरुष सब भूतों की स्वरूप भूता विष्णु-शक्ति से युक्त हैं। वही विष्णु शक्ति उन्हें पृथक् करने वाली और वही मिलाने वाली होती है। सर्ग का आरम्भ होने के समय वही उनको क्षब्ध करती है। जैसे जल के संसर्ग से वायु सैकड़ों जल कणों का धारण करने वाला होता है, वैसे ही विष्णु-शक्ति प्रधान पुरुषात्मक विश्व को धारण करती है। हे मुने ! जैसे आदि बीज के ही द्वारा जड़, स्कंध, शाखा आदि से परिपूर्ण वृक्ष की उत्पत्ति होती है और उन बीजों से दूसरे-दूसरे वृक्ष उत्पन्न हो जाते हैं ।२८-३३। तथा वे भी उन्हें लक्षणों, द्रव्यों और कारणों वाले होते हैं। वैसे ही प्रधान के द्वारा महत्तत्व से पंचभूत तक की भी उत्पत्ति होती है तथा उनसे ही देवाता, असुर आदि उत्पन्न होते हैं और फिर उनके पुत्र अथवा पुत्रों के भी पुत्रादि होते हैं ।३५

बीजाद् वृक्षप्ररोहेण यथा नापचयस्तरोः ।
भूतानां भूतसर्गेण नैवास्त्यपचयस्तथा ।३६।
सन्निधानाद्यथाकाशकालाद्याः कारणं तरोः ।
तथैवापरिणामेन विश्वस्य भगवान्हरिः ।३७।
व्रीहिबीजे यथा मूल नाल पत्राङ्कुरौ तथा ।
काण्ड कोशस्तु पुष्प च क्षीरं तद्वच्च तण्डुलाः ।३८।
तुषा कणाश्च सन्तो वै यान्त्याविर्भावमात्मनः ।
प्ररोहहेतुसामग्रीमासाद्य मुनिसत्तम ।३९।

तथा कर्मस्वनेकेषु देवद्याः समवस्थिताः ।
विष्णुशक्तिं समासाद्या प्ररोहमुपयान्ति वै ।४०।
स च विष्णुः परं ब्रह्म यतः सर्वमिद जगत् ।
जगच्च यो यत्र चेद यस्मिश्च लयमेष्यति ।४१।
तद्ब्रह्म तत्परं धात सदसत्परं पदम् ।
यस्य सर्वभेदेन यतश्चैतच्चराचरम् ।४२।
स एव मूलप्रकृतिर्व्यक्तरूपी जगच्च सः ।
तस्मिन्नेव लय सर्वं याति तत्र च तिष्ठति ।४३।
कर्त्ता क्रियाणां स च इच्यतो क्रतुः स एव तत्कर्मफलं च तस्य ।
स्रुगादि तत्साधनमप्यशेयं हरेन किंचिदव्यातरिक्तमस्ति ।४४

जिस वृक्ष के बीज से अन्य वृक्षों के उत्पन्न होने पर भी जिसका बीज था, उस वृक्ष को कोई भी हानि नहीं पहुँचती, वैसे ही अन्य प्राणियों की उत्पत्ति से उनके जन्मके कारण वीर्यदाता प्राणियों को भी क्षति नहीं पहुँचती ।३६। जैसे आकाश और कालादि निकटता से ही वृक्षादि के कारण हैं, वैसे ही भगवान श्रीहरि बिना परिणाम के ही जगत् के कारण होते हैं ।३७। हे मुनिवर ! जैसे धान के बीज में सूत्र, नाल, पत्र, अंकुर काण्ड, कोष, पुष्प, क्षीर तण्डुल, तुष और कण स्थित रहते हैं और अंकुर को उत्पन्न करने में हेतु वाला सामिग्री को पाकर वे सब प्रकट हो जाते हैं ३८-३९। वैसे ही अपने अनेक पूर्व कर्मों में स्थित देवगण विष्णु-शक्ति काअश्रय प्राप्त करके उत्पन्न हो जाते हैं ।४ । जिस परब्रह्म सु यह विश्व प्रकट हुआ है तथा जो स्वयं ही विश्व रूप से स्थित है और जिसमें इस विश्व का लीत होना है, वह विष्णु ही हैं ४१। वही ब्रह्म है, वह पद सत् असत् दोनों से ही अद्भुत प्रकार का है । उससे अभिन्न यह सम्पूर्ण चराचरात्मक विश्व उसी से उत्पन्न हुआ है ।४२। उसी को अव्यक्त मूल प्रकृति और उसी को व्यक्त स्वरूप विश्व समझो। यह सम्पूर्ण विश्व उसी के आश्रय में स्थित हैं और उसी में लीन हो जायगा । ४३ । वही यज्ञादि का कर्त्ता है, वही यज्ञ-रूप और यजन किया

जाने वाला है तथा वही यज्ञादि का फल स्वरूप और वही यज्ञ के साधन हैं। उन भगवान् के अतिरिक्त कहीं कुछ भी नहीं है ।४४।

—: ❁ ❁ :—

आठवाँ अध्याय

व्याख्यातमेतद्ब्रह्माण्डसंस्थानं तव सुव्रत ।
ततः प्रमाणसंस्थाने सूर्यादीनां शृणुष्व मे ।१।
योजनानां सहस्राणि भास्करस्य रथो नव ।
ईषादण्डस्तथैवास्य द्विगुणो मुनिसत्तम् ।२।
सार्धकोटिस्तथा सप्त नियुक्तान्यधिकानि वै ।
योजनानां तु तस्याक्षस्तत्र चक्रं प्रतिष्ठितम् ।३।
त्रिनाभिमिति पञ्चारे षण्नेमिन्यक्षयात्मके ।
संवत्सरमये कृत्स्नं कालचक्रं प्रतिष्ठितम् ।४।
हयाश्च सप्तच्छन्दांसि तेषां नामानि मे शृणु ।
गायत्रि च वृहत्यष्णिग्जगती त्रिष्टुवेव च ।५।
अनुष्टप्पंवितरित्यक्ता छन्दांसि हरयो रवेः ।
चत्वारिंशत्सहस्राणि द्वितीयोऽक्षो विवस्वन ।६।
पञ्चान्यानि तु सार्धानि स्यन्दनस्य महामते ।
अक्षप्रमाणमुभयोः प्रमाणं तद्युगार्द्धयोः ।७।
ह्रस्वोऽक्षस्तद्युगार्द्धेन ध्रुवधारो रथस्य वै ।
द्वितीऽक्षे तु तच्चक्रं संस्थितं मानसाचले ।८।

श्री पराशरजी ने कहा—हे सुव्रत ! मैंने तुम्हारे प्रति ब्रह्माण्ड का वर्णन किया है, अब सूर्यादि की स्थिति और उनके परिमाण को सुनो ।१। हे मुनिवर ! सूर्यदेव का रथ नौ योजन विस्तार वाला है तथा उससे द्विगुण परिमाण वाला उसका ईषा-दण्ड है ।२। उसका धुरा डेढ़ करोड़ सात लाख

योजन का है जिसमें उसका पहिया लगा हुआ है ।३। उस तीन नाभि, पाँच अरे और छः नेमि वाले संवत्सरात्मक अक्षय चक्र में सम्पूर्ण काल-चक्र विद्यमान है ।४। गायत्री, वृहती, उष्णिक्, जगती, त्रिष्टुप अनुष्टुप् और पंक्ति यह सात छन्द ही उस रथ में जोड़े जाने वाले अश्व हैं । उनके रथ का दूसरा धुरा साढ़े पैंतालीस हजार योजन लम्बा है तथा दोनों धुरों के समान ही उसके जुओं का परिमाण हैं ।५-७। एक जुए के सहित के उस रथ का छोटा धुरा ध्रुव पर और दूसरे धुरे का पहिया मानसोत्तर पर्वत पर स्थित है ।८।

मानसोत्तरशैलस्य पूर्वतो वासवी पुरी ।
दक्षिणे तु यमस्यान्या प्रतीच्यां वरुणस्य च ।९।
उत्तरेण च सोमस्य तासां नामानि मे शृणु ।
वस्वौकसारा शक्रस्य याम्या संयमनी तथा ।१०।
पुरी सुखा जलेशस्य सोमस्य च विभावरी ।
काष्ठां गतो दक्षिणतः क्षिप्तेषुरिव सर्पति ।११।
मैत्रेय भगवान्भानुर्ज्योतिषां चक्रसंयुतः ।
अहोरात्रव्यवस्थानकारणं भगवान्रविः ।१२।
देवयानः परः पन्था योगिनां क्लेसंङ्क्षये ।
दिवसस्य रविर्मध्ये सर्वकालं व्यवस्थितः ।१३।
सर्वद्वीपेषु मैत्रेय निशार्द्धस्य च सम्मुखः ।
दयास्तमने चैव सर्वकालं तु सम्मुखे ।१४।

मानसोत्तर पर्वत के पूर्व में इन्द्र की, दक्षिण में यम की, पश्चिम में वरुण की तथा उत्तर में चन्द्रमा की पुरी, है उनके नाम सुनो । इन्द्र की पुरी का नाम वस्वौकसारा है, यम की पुरी को संयमनी कहते हैं ।९-१०। वरुण की पुरी सुखा और चन्द्रमा की विभावरी है । हे मैत्रेयजी ! ज्योतिश्चक्र के सहित भगवान् सूर्य दक्षिण दिशा में प्रविष्ट होकर धनुष से छोड़े हुए तीर के समान तीव्र वेग से गमन करते हैं वही भगवान् सूर्य दिन और रात्री का विभाग करते हैं ।११-१३। तथा रागादि क्लेशों का शमन

होने पर वे ही मोक्ष भागी योगियों के लिये देवयान नामक सर्वश्रेष्ठ मार्ग है। हे मैत्रेयजी ! सभी द्वीपों में सदा मध्याह्नकाल में तथा रात्रि में वे मध्य-आकाश में सामने की ओर स्थित रहते हैं। वैसे ही उदय और अस्त भी परस्पर सामने ही होते हैं १३-१४।

विदिशासु त्वशेषासु तथा ब्रह्मन् दिशासु च ।
यैर्यत्र दृश्यते भास्वान्स तेषामुदयः स्मृतः ।१५।
तिरोभावं च यत्रैति तत्रैवास्तमन रवेः ।
नैवास्तमनमर्कस्य नोदयः सर्वदा सतः ।१६।
उदयास्तमनाख्यं हि दर्शनादर्शनं रवेः ।
शक्रादीनां पुरे तिष्ठन् स्पृशत्येष पुरत्रयम् ।१७।
विकोणौ द्वौ विकोणस्थस्त्रीन् कौणान्द्वे पुरे तथा ।
उदितो वर्द्धमानाभिरामध्याह्नात्तपन्रविः ।१८।
ततः पर ह्रसन्तीभिर्गोभिरस्त नियच्छति ।
उदयास्तमनाभ्यां च स्मृते पूर्वापरे दिशौ ।१९।
यावत्पुरस्तात्तपति तावत्पृष्ठे च पार्श्वयोः ।
ऋतेऽमरगिरेर्मेरोरुपरि ब्रह्मणः सभाम् ।२०।
ये ये मरीचयोऽर्कस्य प्रयान्ति ब्रह्मणः सभाम् ।
ते ते निरस्तास्तद्भासा प्रतीपमुपयान्ति वै ।२१।

हे ब्रह्मन् ! सब दिशा-विदिशाओं में जहाँ के निवासी जिस स्थान पर सूर्य को देखते हैं, उनके लिये वही सूर्योदय होता है १५। दिन की समाप्ति पर जहाँ सूर्य छिपता है वहाँ उसका अस्त होना कहा जाता है। सदा एक ही रूप में स्थित रहने वाले सूर्य का कभी उदय, अस्त नहीं होता १६। उनका दिखाई देना न देना ही उनका उदय या अस्त होना है। मध्याह्न समय में इन्द्रादि में से किसी की पुरी के ऊपर प्रकाशित होते हुए सूर्य तीन पुरियों और दो कोणों को प्रकाशित करते हैं। इसी प्रकार अग्नि आदि किसी कोण में प्रकाशित होकर वे तीन कोणों और दो पुरियों को प्रकाशित करते हैं। वे उदय होने के बाद मध्याह्न काल तक अपनी प्रवृद्ध होती हुई किरणों से सूर्य स्वयं तपते हैं ।१७-१८। इस

पश्चात् क्षीण होती हुई किरणों से ही धीरे-धीरे अस्त हो जाते हैं। उनके उदय और अस्त से ही पूर्व, पश्चिम आदि दिशाएं कल्पित हुई ।१९। यथार्थ में तो वे जैसा पूर्व में प्रकाश करते हैं, वैसा ही पश्चिम या उसके इधर-उधर की दिशाओं में करते हैं। वे देवगिरि सुमेरु पर स्थित ब्रह्मा जी को छोड़कर अन्य सभी स्थानों को प्रकाशित करते हैं।२०। उनकी जो रश्मियाँ ब्रह्माजी की सभा में पहुँचती हैं, वह उस सभा से निस्तेज होकर उल्टी लौटती हैं।२१।

तस्माद्दिश्युत्तरस्यां वै दिवारात्रिः सदैव हि ।
सर्वेषां द्वीपवर्षाणां मेरुरुत्तरतो यतः ।२२।
प्रभा विवस्वतो रात्रावस्त गच्छति भास्करे ।
विशत्यग्निमतो रात्रो वह्निर्दूरात्प्रकाशते ।२३।
वह्नेः प्रभा तथा भानुर्दिनेण्वाविशति द्विजः ।
अतीव वह्निसंयोगादतः सूर्यः प्रकाशते ।२४।
तेजसी भास्कराग्नेये प्रकाशोष्णस्वरूपिणो ।
परस्परानुप्रवेशादाप्यायेते दिवानिशम् ।२४।
दक्षिणोत्तरभूम्यर्द्धे समुत्तिष्ठति भास्करे ।
अहोरात्रं विशत्यम्भस्तमः प्राकाश्यशीलवत् ।२६।
आताम्रा हि भवन्त्यापो दिवा नक्तप्रवेशनात् ।
दिनं विशति चैवाम्भो भास्करेऽस्तोमुपेयुषि ।२७।
तस्माच्छुक्ला भवन्त्यापो नक्तमह्नः प्रवेशनात् ।
एवं पुष्करमध्येन यदा याति दिवाकरः ।२८।
त्रिशद्भागन्तु मेदिन्यास्तदा मौहुर्तिकी गतिः ।
कुलालचक्रपर्यन्तो भ्रमन्नेष दिवाकरः ।२९।
करोत्यहस्तथा रात्रिं विमुञ्चन्मेदिनीं द्विज ।
अयनस्योत्तरस्यादौ मकरं याति भास्करः ।३०।

सुमेरु पर्वत सभी द्वीपों और वर्षों के उत्तर में है, इसीलिये सदा उत्तर दिशा में ही दिन और रात्रि रहते हैं ।२२। सूर्य के अस्त होने पर

रात्रिकाल में उनका तेज अग्नि में चला जाता है इसलिए अग्नि दूर से ही प्रकाशमान् हो उठता है ।२३। हे द्विज ! दिन के समय अग्नि का तेज सूर्य में प्रविष्ट हो जाता है तब अग्नि का संयोग होने से सूर्य में भी प्रखरता आ जाती है ।२४। इस प्रकार सूर्य और अग्नि के प्रकाश और तेज दोनों ही परस्पर संयुक्त हो कर दिवस रात्रि में बढ़ते रहते हैं ।२५। सुमेरु के दक्षिणोत्तर भूम्यर्द्ध में जब सूर्य प्रकाशित होते हैं तब अन्धकार वाली रात्रि प्रकाशमान दिवस दोनों ही जल में प्रविष्ट हो जाते हैं ।२६। दिन के समय रात्रि के जल-प्रवेश से ही जल में कुछ ताम्रवर्णत्व दिखाई पड़ते हैं और जब सूर्यास्त हो जाता है तब दिवस उसमें प्रविष्ट होता है ।२७। तब रात्रि काल में दिन के जल में प्रविष्ट होने के कारण उसका शुक्लवर्ण प्रतीत होता है । इस प्रकार सूर्य जब पुष्कर द्वीप के बीच में पहुंच कर पृथिवी के तीसवें भाग को लांघ जाता है तब उसकी गति एक मुहूर्त की हो जाती हैं । हे द्विज ! कुम्हार के चाक सिरे पर घूमते हुए समान भ्रमण करता हुआ यह सूर्य पृथ्वी के तीसों भागों को पार करके एक दिन-रात्रि करता है । उत्तरायण के आरम्भ में वह सर्व प्रथम मकर राशि में पहुंचता है ।२८-३०।

ततः कुम्भं च मीन च राशे राश्यन्तरं द्विज ।
त्रिष्वेतोष्वथ भुक्तेषु ततो वैषुवती गतिम् ।३१।
प्रयाति सविता कुर्वन्नहोरात्रं ततः समम् ।
ततो रात्रिः क्षय याति वर्द्धतेऽनुदिनं दिनम् ।३२।
ततश्च मिथुनस्यान्ते परां काष्टामुपागतः ।
राशिं कर्कटकं प्राप्य कुरुते दक्षिणयनम् ।३३।
कुलालचक्रपर्यन्तो यथा शीघ्रं प्रवर्तते ।
दक्षिणप्रक्रमे सूर्यस्तथा शीघ्रं प्रवर्त्तते ।३४।
अतिवेगितया काल वायुवेगवलाच्चरन् ।
तस्मात्प्रकृष्टां भूमिं तु कालेनाल्पेन गच्छति ।३५।

फिर वह कुम्भ और मीन राशियों में एक से दूसरी में जाता है । इन तीनों राशियों को भोगकर रात्रि और दिन को समान करता हुआ

सूर्य वैषुवती गति का आश्रय लेता है। फिर दिनों-दिन रात्रि का क्षय होने लगता है और दिन की वृद्धि होने लगती है ।३१-३२। फिर वह मिथुन राशि से निकल कर उत्तरायण की अन्तिम सीमा पर पहुंचा है और कर्क राशि मे प्रविष्ट होकर दक्षिणायन का आरम्भ कर देता है ।३३। जैसे कुम्हार के चाक के सिरे पर स्थित वस्तु अत्यन्त द्रुत वेग से घूमती है वैसे ही सूर्य दक्षिणायन को पार करने की दिशा मे द्रुतगति से गमन करता है ।३४। इस प्रकार शीघ्र गति और वायु जैसे वेग से चलने के कारण वह उत्कृष्ट मार्ग को अल्प समय में ही पार कर लेता है ।३५।

सूर्यो द्वादशभिः शैघ्र्यान्मुहूर्तैर्दक्षिणायने ।
त्रयोदशार्द्धमृक्षाणमह्ना तु चरति द्विज ।३६।
मुहूर्तैस्तावदृक्षाणि नक्तमष्टादशैश्चरन् ।
कुलालचक्रमध्यस्थो यथा मन्द प्रसर्पति ।३७।
तथोदगयने सूर्यः सर्पते मन्दविक्रमः ।
तस्माद्दीर्घेण कालेन भूमिमल्पां तु गच्छति ।३८।
अष्टादशमुहुर्तं यदुत्तरायणपश्चिमम् ।
अहर्भवति तच्चापि चरते मन्दविक्रमः ।३९।
त्रयोदशार्द्धं मह्ना तु ऋक्षाणां चरते रविः ।
मुहुर्तैस्तावदृक्षाणि रात्रौ द्वादशभिश्चरन् ।४०।
अतो मन्दतरं नाभ्यां चक्रं भ्रमति वै यथा ।
मृत्पिण्ड इव मध्यस्थो ध्रुवो भ्रमति वै तथा ।४१।
कुलालचक्रनाभिस्तु यथा तत्रैव वर्तते ।
ध्रुवस्तथा हि मैत्रेय तत्रैव परिवर्तते ।४२।

हे द्विज ! दक्षिणायन में दिन के समय सूर्य इतनी शीघ्रता से चलता है कि उस समय के साढ़े तेरह नक्षत्रों को बारह मुहूर्तों में ही पार कर लेता है ।३६। परन्तु रात्रि काल में उसकी गति इतनी मन्द हो जाती है कि उतने ही नक्षत्रों का अठारह मुहूर्तों में पार कर पाता है। जैसे कुम्हार के चक्र के मध्य में स्थित वस्तु धीरे-धीरे चलती है, वैसे ही

उत्तरायण समय में सूर्य मन्दगामी होता है और थोड़ा-सा मार्ग भी अत्यन्त दीर्घ समय में पार कर पाता है ।३७-३८। इसलिये उत्तरायण का अन्तिम दिवस अठारह मुहूर्त्त का होता है, क्योंकि उस दिन सूर्य की गति अत्यन्त मन्द होती है ।३९। ज्योतिश्चक्रार्द्ध के साढ़े तेरह नक्षत्रों को वह एक दिन मे पूरा करता है, परन्तु रात्रि के समय वह उतने ही नक्षत्रों को बारह मुहूर्त्तों में पूरा कर लेता हैं ।४०। इसलिये जैसे नाभि देश में चाक धीरे-धीरे घूमता है, जिससे वहाँ का मृतिपड भी मन्द गति से घूमता है ।४१। हे मैत्रेय जी ! जैसे कुम्हार के चाक की नाभि अपने ही स्थान पर घूमती रहती है, वैसे ही ध्रुव भी अपने ही स्थान पर घूमता रहता है ।४२।

उभयोः काष्ठयोर्मध्य भ्रमतो मण्डलानि तु ।
दिवा नक्तच सूर्यस्य मन्दा शीघ्रा च वै गतिः ।४३।
मन्दाह्नि यस्मिन्नयने शीघ्रा नक्तं तदा गतिः ।
शीघ्रा निशि यदा चास्य तदा मन्दा दिवा गतिः ।४४।
एकप्रमाणमेवैष मार्गं याति दिवाकरः ।
अहोरात्रेण भुङ्क्ते समस्ता राशयो द्विज ।४५।
षडेव राशीन् यो भुङ्क्ते रात्रावन्याश्च षड्दिवा ।
राशिप्रमाणजनिता दीर्घह्रस्वात्मता दिने ।४६।
तथा निशायां राशीनां प्रमाणैर्लघुदीर्घता ।
दिनादेर्दीर्घह्रस्वत्वं तद्भागेनैव जायते ।४७।
उत्तरे प्रक्रमे शीघ्रा निशि मन्दा गतिर्दिवा ।
दक्षिणे त्वयेन चैव विपरीता विवस्वतः ।४८।

इस प्रकार उत्तर दक्षिण की सीमाओं के बीच में मण्डलाकार घूमने से सूर्य की गति जिस अयन में धीमी होती है, उस समय अयन में रात्रि के समय द्रुत हो जाती है और जब रात्रि के समय शीघ्र गति होती है तब सूर्य की दिन में धीमी गति होती जाती है ।४४। हे द्विज ! सूर्य को सदैव एक समान मार्ग ही पूरा करना

होता है, एक दिन-रात्रि में ही यह सभी राशियों का भोग करता है।४५
वह छः राशियों को रात्रि-काल में छः को दिन के समय भोगता है।
राशियों के परिमाण से ही दिन की वृद्धि अथवा ह्रास होता है।४६।
रात्रि का छोटा या बड़ा होना भी राशियों के परिमाण के अनुसार होता है। राशियों के भाग के अनुसार ही दिन या रात्रि का लघुत्व या दीर्घत्व होता है।४७। उत्तरायण में रात्रि के समय सूर्य की गति में शीघ्रता और दिन के समय मन्दता होती है। परन्तु दक्षिणायन में उसकी गति इससे नितान्त विपरीत होती है।४८।

उषा रात्रिः समाख्याता व्युतिष्टश्चाप्युच्यते दिनम् ।
प्रोच्यते च तथा सन्ध्या उषाव्युष्टयोर्यदन्तरम् ।४९।
सन्ध्याकाले च सम्प्राप्ते रौद्रे परमदारुणे ।
मन्देहा राक्षसा घोराः सूर्यमिच्छन्ति खादितुम् ।५०।
प्रजापतिकृतः शापस्तेषां मैत्रेय रक्षसाम् ।
अक्षयत्व शरीराणां मरण च दिने दिने ।५१।
ततः सूर्यस्य तैर्युद्धं भवत्यत्यन्तदारुणम् ।
ततो द्विजोत्तमास्तोम सङ्क्षिपन्ति महामुने ।५२।
ॐकारब्रह्मसंयुक्त गायत्र्या चाभिमन्त्रितम् ।
तेन दह्यन्ति ते पापा वज्रीभूतेन वारिणा ।५३।
अग्निहोत्रे हुयते या समन्त्रा प्रथमाहुतिः ।
सूर्यो ज्योतिः सहस्रांशुस्तया दीप्यति भास्करः ।५४।
ओङ्कारो भगवान्विष्णुस्त्रिधामा वचसां पतिः ।
तदुच्चारणतस्तो तु विनाश यान्ति राक्षसाः ।५५।

रात्रि को उषा और दिन को व्युष्टि कहा गया है। इन उषा और व्युष्टि के मध्यकाल को ही सन्ध्या कहते हैं।४९। जब यह अत्यन्त दारुण और भयंकर सन्ध्या काल उपस्थित होता है, तब मन्देहा नामक घोर राक्षस गण सूर्य का भक्षण करने की इच्छा करते हैं-५०। मैत्रेयजी ! उन राक्षसों को प्रजापति का यह शाप लगा हुआ है कि उनके शरीरों में अक्षयत्व होते हुए भी प्रतिदिन उनकी मृत्यु हो।५१। इसलिये

सन्ध्याकाल उपस्थित होने पर उनका सूर्य से अत्यन्त दारुण संग्राम होता है, उस समय श्रेष्ठ ब्राह्मण द्वारा जो ब्रह्म रूप प्रणव एवं गायत्री से अभिमंत्रित जल छोड़ा जाता है, वह जल वज्ररूप होकर उन दुष्ट राक्षसों को भस्म कर देता है।५२-५३। अग्निहोत्र में 'सूर्यो ज्योतिः' इत्यादि मन्त्र से दी जाने वाली प्रथमाहुति से सहस्त्ररश्मि भगवान् भास्कर देदीप्यमान होते हैं।५०। ओंकार ही जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति रूप तीन धामों से परिपूर्ण भगवान् विष्णु और सभी वाणियों का अधीश्वर है, उसका उच्चारण होने से ही राक्षसों का नाश हो जाता है।५५।

वैष्णवोंऽशः परः सूर्यो योऽन्तर्ज्योतिरसम्प्लवम्।
अभिधायक ॐकारस्तस्य तत्प्रेरकः परः।५६।
तेन सम्प्रेरित ज्योतिरोङ्कारेणाथ दीप्तिमत्।
दहत्यशेषरक्षांसि मन्देहाख्यान्यघानि वै।५७।
तस्मान्नोल्लङ्घनं कार्यं सन्ध्योपासनकर्मणः।
स हन्ति सूर्यं सन्ध्यायानोपास्ति कुरुते तु यः।५८।
ततः प्रयाति भगवान्ब्राह्मणैरभिरक्षितः।
बालखिल्यादिभिश्चैव जगतः पालनोद्यतः।५९।
काष्ठा निमेषा दश पञ्च चैव त्रिंशच्च काष्ठा गणयेत्कलां च
त्रिंशत्कलश्चैव भवेन्मुहुर्त स्तैस्त्रिंशता रात्र्यहनी समेते।६०।
ह्रासवृद्धी त्वहर्भागैर्दिवसानां यथाक्रमम्।
सन्ध्यामुहुर्तमात्रा वै ह्रासवृद्धयोः समा स्मता।६१।
रेखाप्रभृत्यथादित्ये त्रिमुहुर्तगते रवौ।
प्रातः स्मृतस्ततः कालो भागश्चाह्न स पञ्चमः।६२
तस्मात्प्रातस्तानात्कालात्त्रिमुहुर्तस्तु सङ्गवः।
मध्याह्नस्त्रिमहुर्तस्तु तस्मात्कालात् सङ्गवात्।६३।
तस्मान्माध्याह्निकात्कालादपराह्ण इति स्मृतः।
त्रय एव मुहुर्तास्तु कालभागः स्मृतो बुधैः।६४।
अपराह्मे व्यतीते तु कालः सायाह्न एव च।
दशपञ्चमुहुर्ता वै मुहुर्तास्त्र एव च।६५।

सूर्य भगवान विष्णु का अंश तथा विकार हीन अन्तर्ज्योति है। प्रणव उसका वाचक होने से वह उसे उन राक्षसों के विनाशार्थ अत्यन्त प्रेरण करता है।५६। उसी प्रणव की प्रेरण से वह ज्योति अत्यन्त प्रदीप्त होकर उन मन्देहा संज्ञक सभी राक्षसों को भस्म करने में समर्थ होती है।५७। इसीलिये सन्ध्योपासन कर्म का कभी भी उल्लंघन करना अनुचित है। सन्ध्योपासन न करने वाला पुरुष सूर्यघाती माना गया है।५८ फिर भगवान् सूर्य बालखिल्यादि ऋषियों से रक्षित होते हुए जगत का पालन में प्रवृत्त होकर जाते हैं।५९ पन्द्रह निमेष की एक काष्ठा और तीस काष्ठा की एक कला होती है। तीस कलाओं का एक मुहूर्त्त और तीस मुहूर्तों की दिन-रात्रि होती है ६०। दिनों का क्षय-वृद्धि क्रमशः प्रातः, मध्याह्न आदि दिन के अंशों के क्षय अथवा वृद्धि के कारण है। परन्तु दिनों के घटने-बढ़ने पर सन्ध्या सदा एक समान एक मुहूर्त की ही होती है ६१। उदय होने के पश्चात् सूर्य के तीन मुहूर्त गमन करने को प्रातः-काल कहते हैं। यह पूरे दिन का पाँचवाँ भाग होता है।६२। इस प्रातः-काल के व्यतीत होने पर तीन मुहूर्त्त के समय को सङ्गव कहा जाता है, और संगव के समाप्त होने पर तीन मुहूर्त तक का समय मध्याह्न होता है।६३। मध्याह्न के पश्चात् अपराह्न काल होता हैं. ज्ञानियों ने इसे भी तीन मुहूर्त्त का ही बताया है।६४। जब अपराह्न बीत जाता हैं, तब सायाह्न उपस्थित होता हैं। इस प्रकार पन्द्रह मुहूँर्त्त का दिन तथा तीन मुहूर्त्त का दिवसांश होता है।६५।

दश पञ्चमुहुर्तं वै अहर्वैषुवतं स्मृतम्।
वर्द्धते ह्रसते चैवाप्ययने दक्षिणोत्तरे।६६।
अहस्तु ग्रसते रात्रिं रात्रिर्ग्रसति वासरम्।
शरद्वसन्तयोर्मध्ये विषुवं तु विभाव्यते।६७।
तुलमेषगते भानौ समरात्रिदिनं तु तत्।
कर्कटावस्थिते भानौ दक्षिणायनमुच्यते।६८।
उत्तरायणमप्युक्तं मकरस्थे दिवाकरे।
त्रिंशन्मुहुर्त्तं कथितमहोरात्रं तु मन्मया।६९।

तानि पञ्चदश ब्रह्मन् पक्ष इत्यभिधीयते ।
मासः पक्षद्वयेनोक्तो द्वौ मासौ चार्कजावृतुः ।७०।
ऋतुत्रयं चाप्ययनं द्वेऽयने वर्षसंज्ञिते ।
संवत्सरादयः पञ्च चतुर्मासविकल्पिताः ।७१।
निश्चयः सर्वकालस्य युगमित्यभिधीयते ।
सवत्सरस्तु प्रथमो द्वितीयः परिवत्सरः ।७२।
इद्वत्सरस्तृतीयस्तु चतुर्थश्चात् वत्सरः ।
वत्सरः पञ्चमश्चात्र कालोऽयं युगसंज्ञितः ।७३।

वैषुवत दिन पन्द्रह मुहुर्त का कहा है, परन्तु उत्तरायण में उसकी वृद्धि और दक्षिणायन में ह्रास होता है।६६। इस प्रकार उत्तरायण में दिन रात्रि को ग्रसने लगता है और दक्षिणायन मे रात्रि, दिन को ग्रसने लगती है। शरद् और वसन्त ऋतु के बीच में जब सूर्य तुला या मेष राशि पर जाता है तब दिन-रात्रि के समान होने से 'विषुव' होता है। जब सूर्य राशि में पहुँचता है तब दक्षिणायन कहा जाता है।६७-६८। तथा मकर राशि में पहुँचता है तब उसे उत्तरायण कहते हैं। हे ब्रह्मन्! मैंने तीस मुहुत्र का जो अहोरात्र कहा है वैसे पन्द्रह अहोरात्र के समय को पक्ष कहते हैं। दो पक्ष का एक मास और दो मास की एक ऋतु होती है। तीन ऋतुओं का एक अयन और दो अयन का एक वर्ष कहा जाता है। चार प्रकार के मास कल्पना तथा पाँच प्रकार के संवत्सरादि वर्ष कहे गये हैं।६९-७१। यही युग सब प्रकार के कालों का निर्णायक है। प्रथम संवत्सर, द्वितीय परिवत्सर तृतीय इद्वित्सर, चतुर्थ अनुवत्सर और पचम वत्सर कहा है। इस समय ही युग के नाम से प्रसिद्ध है।७२-७३।

यः श्वेतस्योत्तरः शैलः शृङ्गवानिति विश्रुतः ।
त्रीणि तस्य तु शृङ्गाणि यैरयं शृङ्गवान्स्मृतः ।७४।
दक्षिणं चोत्तरं चैव मध्यं वैषुवतं तथा ।
शरद्वसन्तयोर्मध्ये तद्भानुः प्रतिपद्यते ।७५।

मेषादौ च तुलादौ च मैत्रेय विषुवत्स्थितः ।
तदा तुल्यमहोरात्रं करोति तिमिरापहः ।७६।
दशपञ्चमुहूर्तं वै तदेतदुभयं स्मृतम् ।
प्रथमे कृत्तिकाभागे यदा भास्वांस्तदा शशी ।७७।
विशाखानां चतुर्थेऽवे मुने तिष्टत्यसंशयम् ।
विशाखानां यदा सूर्यश्चरत्यंश तृतीयकम् ।७८।
तदा चन्द्रं विजानीयात्कृतिकाशिरसि स्थितम् ।
तदैव विषुवाख्योऽयं कालः पुण्योऽभिधीयते ।७९।

श्वेतवर्ष के उत्तर में तीन शृङ्ग वाला एक पर्वत है जो उन शृंगों के कारण ही शृंगवान् नाम से विख्यात है ।७४। उसका एक शृंग उत्तर की ओर, एक दक्षिण की ओर तथा एक बीच में है । वह बीच वाला शृंग ही, 'वैषुवत' है। शरद् और वसन्त ऋतु के बीच में सूर्य इसी वैषुवत शृंग पर स्थित होते हैं ।७५। इसलिये हे मैत्रेयजी ! मेष या तुला राशि के आरम्भ में अन्धकार नष्ट करने वाले सूर्य विषुवत पर आकर दिन और रात को एक ही परिमाण कर देते हैं ।७६। उस समय दिन और रात दोनों ही पन्द्रह-पन्द्रह दिन के होते हैं । हे मुने ! जब सूर्य कृत्तिका नक्षत्र के प्रथम भाग में और चन्द्रमा विशाखा नक्षत्र के चौथे भाग में और चन्द्रमा विशाखा नक्षत्र के चौथे भाग में हों अथवा जब सूर्य विशाखा के तीसरे भाग का और चन्द्रमा कृत्तिका के प्रथम भाग का भोग करते हों, तब यह विषुव नामक अत्यन्त पुनीत समय होता है ।७७-७९।

तदा दानानि देयानि देवेभ्यः प्रयतात्मभिः ।
ब्राह्मणेभ्यः पितृभ्यश्च मुखमेतत् दानजम् ।८०।
उत्तदानस्तु विषुवे कृतकृत्योऽभिजायते ।
अहोरात्रार्द्धमासास्तु कलाः काष्ठा क्षणास्तथा ।८१।
पौर्णमासी तथा ज्ञेया अमावास्या तथैव च ।
सिनीवाली कुहुयचैव राका चानुमतिस्तथा ।८२।
तपस्तपस्यौ मधुमाधवौ च शुक्रः शुचिश्चायनमुत्तरं स्यात् ।
नभोनभस्यौ च इषस्तथोर्जस्सहः सहस्याविति दक्षिण तत् ।८३

लोकालोकश्च यश्शैलः प्रागुक्तो भवतो मया ।
लोकपालास्तु चत्वारस्तत्र तिष्ठन्ति सुव्रताः ।८४।
सुधामा शङ्खपाच्चैव कर्दमस्यात्मजो द्विज ।
हिरण्यरोमा चवान्यश्चतुर्थः केतुमानपि ।८५।
निर्द्वन्द्वा निरभिमाना निस्तन्द्रा निष्परिग्रहाः ।
लोकपालाः स्थिता ह्येते लोकालोके चतुर्दिशम् ।८६।

इस समय देवता, ब्राह्मण, पितर आदि के निमित्त संयत चित्त से दानादि कर्म करे । दान ग्रहण करने के लिये यह काल देवताओं के खुले हुए मुख के तुल्य है ।८०। इसलिये विषुव काल में जो दान करता है वह धन्य हो जाता है। यज्ञादि का समय निश्चित करने के लिए दिन रात पक्ष, कला काष्ठा और क्षण आदि कालों के विषय में भले प्रकार ज्ञान करना चाहिए ।८१। पूर्णमासी के दो भेद हैं:-राका और अनुमति और अमावस भी सिनीवाली और कुहू के भेद से दो प्रकार की है ।८२। उत्तरायण के माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ और अषाढ़-यह छः मास होते हैं तथा श्रावण, भादों, क्वार, कार्तिक, अगहन, पौष-यह छः मास दक्षिणायन के कहे गये हैं ।८३। पहिले मैं तुमसे जिस लोकालोक पर्वत के विषय में कह चुका हूँ, उस पर चार व्रत परायण लोकपाल रहते हैं ।८४। सुधामा, कर्दम-पुत्र शंखपाद, हिरण्यरोमा और केतुमान् नामक यह चारों लोकपाल द्वन्द्व, अभिमान, आलस्य और परिग्रह आदि से दूर रह कर लोकालोक पर्वत की चारों दिशाओं में निवास किये हुए हैं ।८५-८६।

उत्तरं यदगस्त्यस्य अजवीथ्याश्च दक्षिणम् ।
पितृयानः स वै पन्था वैश्वानरपथाद्बहिः ।८७।
तत्रासते महात्मान ऋषयो येग्निहोत्रिणः ।
भूतारम्भकृतं ब्रह्म शंसन्तो ऋत्विगुद्यताः ।
प्रारभन्ते तु ये लोकास्तेषां पन्थाः स दक्षिणः ।८८।
चलितं ते पुनर्ब्रह्म स्थापयन्ति युगे युगे ।
सन्तत्या तपसा चैव मर्यादाभिः श्रुतेन च ।

जायमानास्तु पूर्वे च पश्चिमानां गृहेषु वै ।
पश्चिमाश्चैव पूर्वेषां जायन्ते निधनेष्विह ।९०।
एवमावर्तमानास्ते तिष्ठन्ति नियतव्रताः ।
सवितुर्दक्षिणं मार्गं श्रिता ह्याचन्द्रतारकम् ।९१।

अगस्त्य के उत्तर और अजवीथि के दक्षिण में जो वैश्वानर मार्ग से भिन्न मार्ग है, वही पितृयान कहा गया है ।८७। उस मार्ग मे ऋषि-महात्मा निवास करते हैं । जो अग्निहोत्र करने वाले होकर प्राणियों के सर्ग का आरम्भ करने वाले ब्रह्म की स्तुति सहित यजन करते हैं वह पितृयान उनका दक्षिण मार्ग है ।८८। वे युगान्तर में सन्तान, तप, वर्णाश्रम तथा विविध शस्त्रों और श्रुतियों के द्वारा पुनःस्थापन कार्य करते हैं ।८९। पूर्व देह के धर्म प्रवर्त्तक अपनी सन्तान के यहाँ जन्म लेते और वे धर्म प्रचारकरण अपने यहाँ सन्तान रूप से उत्पन्न हुए पितरों के कुल में उत्पन्न होते हैं ।९०। इस प्रकार वे व्रत्-परायण ऋषिगण जब तक सोम और तारे स्थित रहते हैं, तब तक सूर्य के दक्षिण मार्ग से बारबार आवागमन करते रहते हैं ।९१।

नागवीथ्युत्तरं यच्च सप्तर्षिभ्यश्च दक्षिणम् ।
उत्तरः सवितुः पन्था देवयानश्च स स्मृतः ।९२।
तत्र ते वशिनः सिद्धा विमला ब्रह्मचारिणः ।
सन्ततिं ते जुगुप्सन्ति तस्मान्मृत्युर्जितश्च तैः ।९३।
अष्टाशीतिसहस्राणि मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ।
उदक्पन्थानमर्यम्णः स्थितान्याभूतसम्पलवम् ।९४।
तैऽसम्प्रयोगाल्लोभस्य मैथुनस्य च वर्जनात् ।
इच्छाद्वेषाप्रवृत्या च भूतारम्भविवर्जनात्त् ।९५।
पुनश्च कामासंयोगाच्छब्ददादेर्दोषदर्शनात् ।
इत्येभिः कारणैः शुद्धास्तेऽमृतत्वं हि भेजिरे ।९६।
आभूतसम्प्लवं स्थानममृतत्वं विभाव्यते ।
त्रैलोक्यस्थितिकालोऽयमपुनर्मार उच्यते ।९७।

ब्रह्महत्याश्वमेधाभ्यां पापपुण्यकृतो विधिः ।
आभूतसम्प्लवान्तन्तु फलमुक्त तयोर्द्विज।९८।

जो नागवीथि के उत्तर और सप्तर्षियों के दक्षिण में सूर्य का उत्तरीय पथ है, वह देवयान मार्ग कहा जाता है ।९२। उसमें जिन स्वच्छ स्वभाव वाले जितेन्द्रिय ब्रह्मचारियों का निवास है, वे कभी सन्तान की कामना नहीं करते, इस प्रकार उन्होंने मृत्यु पर विजय प्राप्त करली है ।९३। सूर्य के उस उत्तरीय मार्ग में अस्सी हजार ऊर्ध्वरेता ऋषियों का निवास है ।९४ उन्होंने लोभ, मैथुन, इच्छा द्वेष, कर्मानुष्ठान, वासना तथा शब्दादि विषयों के दोष-दर्शन आदि का पूर्णतथा त्याग किया हुआ है । इसीलिए उन्होंने अमरत्व को प्राप्त कर लिया है ।९५-९६। प्राणियों का प्रलय काल तक स्थिर रहना ही अमरत्व कहा गया है तीनों लोको के स्थिर रहने तक के इस समय को अपुनर्मार कहते हैं ।९७। हे द्विज । ब्रह्म हत्या और अश्वमेध-यज्ञ के करने से जो पाप-पुण्य हो जाते हैं, उनका फल भी प्रलय काल की उपस्थिति तक ही कहा गया है ।९८।

यावन्मात्रे प्रदेशे तु मैत्रेयावस्थितो ध्रुवः ।
क्षयमायाति तावत्तु भूमेराभूतसम्प्लवात् ।९९।
ऊर्ध्वोत्तरमृषिभ्यस्तु ध्रुवो यत्र व्यवस्थितः ।
एतद्विष्णुपदं दिव्यं तृतीय व्योम्नि भासुरम् ।१००।
निर्धूतदोषपङ्कानां यतीनां संयतात्मनाम् ।
स्थानं तत्परमं विप्र पुण्यपापपारक्षये ।१०१।
अपुण्यपुन्योपरमे क्षीणाशेषाप्तिहेतवः ।
यत्र गत्वा न शोचन्ति तद्विष्णोः परमां पदम् ।१०२।
धर्मध्रुवाद्यास्तिष्ठन्ति यत्र ते लोकसाक्षिणः ।
तत्साष्टयोंत्पन्नयोगेद्धास्तद्विष्णे परमं पदम् ।१०३।
यत्रोतमेतत्प्रोतं च यद्भूतं सचराचरम् ।
भाव्यं च विश्वं मैत्रेय तद्विष्णेः परम पदम् ।१०४।

दिवीव चक्षुराततंयौगिनां तन्मयात्मनाम् ।
विवेकज्ञानदृष्टं च तद्विष्णोः परमं पदम् ।१०५।

हे मैत्रेयजी ! जितने प्रदेश में ध्रुव की स्थिति है, पृथिवी से ले कर वह प्रदेश तक सब प्रलय काल में विलीन हो जाता है ।९९। वह ध्रुव सप्तर्षियों के उत्तर ओर तथा ऊपर अत्यन्त तेजोमय स्थान है, उसे आकाश में भगवान् विष्णु का तीसरा दिव्यधाम समझो ।१००। पुण्य-पाप तथा दोष-पङ्क के नष्ट होने से संयतात्मा हुए ऋषियों का परम स्थान यही है ।१०१। पुण्य-पाप के नष्ट होते तथा देह-प्राप्ति के सब कारणों के क्षीण हो जाने पर वहाँ जाकर प्राणियों का शोक नहीं रहता, यही भगवान् विष्णु का परमपद है ।१०२। जहाँ विष्णु के समान ऐश्वर्यवान् हुए और योग से तेजस्विता को प्राप्त हुए धर्म ध्रुवलोक के साक्षिरूप से रहते हैं, वही उन भगवान का परमपद है ।१०३। हे मैत्रेयजी ! जिसमें भूत, भविष्य, वर्तमानमय यह चराचर विश्व ओत-प्रोत है, वही भगवान् विष्णु का परमपद है ।१०४। जो तन्मय हुए योगियों को आकाश में प्रकाशित सूर्य के समान सबका प्रकाश करने वाला प्रतीत होता है, तथा जो विवेक द्वारा ही प्रत्यक्ष होता है, वह भगवान् विष्णु परमपद ही है ।१०५।

यस्मिन्प्रतिष्ठितो भास्वान्मेढीभूतः स्वयं ध्रुवः ।
ध्रुवे च सर्वज्योतीषि ज्योतिःष्वम्भोमुचो द्विजः ।१०२।
मेघेषु सङ्गता वृष्टिर्वृष्टेः सृष्टेश्च पोष्णाम् ।
आप्यायनं च सर्वेषा देवादीनां महामुने ।१०७।
ततश्चाज्याहुतिद्वारा पोषितास्ते हविर्भुजः ।
वृष्टेः कारणातां यान्ति भूतानां स्थितये पुनः ।१०८।
एवमेतत्पद विष्णोस्तृतीयममलात्मकाम् ।
आधारभूत लोकानां त्रयाणं वृष्टिकाणम् ।१०९।
ततः प्रभवति ब्रह्मन्सर्वपापहरा सरित् ।
गङ्गा देवाङ्गनानामनुलेपनपिञ्जरा ।११०।
वामपादाम्बुजाङ्गुष्ठनखस्रोतोविनिर्गताम् ।
विष्णोर्बिभर्ति यां भक्त्या शिरसाहर्निशं ध्रुवः ।१११।

हे द्विज ! उसी विष्णु पद में सबके आश्रयभूत अत्यग्य तेजस्वी ध्रुव की स्थिति है और ध्रुव में सब नक्षत्र स्थित हैं। नक्षत्रों में मेघ तथा मेघों में वृष्टि आश्रय लिये हुए है। उसी वृष्टि के द्वारा सृष्टि का पोषण होता है तथा वही सब देवता, मनुष्यादि प्राणियों को पुष्ट करती।१०६-१०७। फिर गवादि प्राणियों से उत्पन्न दूध, घी आदि की आहुतियों से तृप्त हुए अग्नि ही प्राणियों का पालन करने के लिये पुनः वृष्टि-कारक होते हैं।१०८। इस प्रकार भगवान् विष्णु का यह तीसरा लोक ही तीनों लोकों का आधार भूत तथा वर्षा आदि करने वाला है।१०९। हे ब्रह्मन् ! इसी विष्णुपद से देवांगनाओं के अंगराग के मिश्रण से पाण्डु वर्ण की-सी होकर सब पापों को नष्ट करने वाली सरिता श्रीगंगाजी प्रकट हुई हैं।११०। भगवान् विष्णु के बांए चरण कमल अंगुष्ठ नख रूपी स्रोत से निर्गत उन गंगाजी को ध्रुव अहर्निशि अपने शिर पर धारण किये रहता है।१११।

ततः सप्तर्षयो यस्याः प्राणायामपरायणाः।
तिष्ठन्ति वीचिमालाभिरुह्यमानजटा जले।११२।
वार्योधैः सन्ततैर्यस्या प्लावितं शशिमण्डलम्।
भूयोऽधिकतरां कान्ति वहत्येतदुह क्षये।११३।
मेरुपृष्ठे पतत्युच्चैर्निष्क्रान्ता शशिमण्डलात्।
जगतः पावनार्थाय प्रयाति च चतुर्दिशम्।११४।
सीता चालकनन्दा च चक्षुर्भद्रा च संस्थिता।
एकैव या चतुर्भेदा दिग्भेदगतिलक्षणा।११५।
भेदं चालकनन्दाख्यं यस्याः सर्वोऽपि दक्षिणाम्।
दधार शिरसा प्रोत्या वर्षाणामधिकं शतम्।११६।
शम्भोर्जटाकलापाच्च विनिष्क्रान्तास्थिसर्कराः।
प्लावयित्वा दिवं निन्ये या पापान्सगरात्मजान्।११७।

फिर जिनके जल में स्थित हुए प्राणायाम परायण सप्तर्षि उनकी तरंगों से जटाओं के कम्पित होते हुए भी पापों का मर्दन करने वाले मन्त्र को जपते रहते हैं और जिनकी गहन जल-राशि से आप्लावित हुआ चन्द्र

मण्डल क्षीण होने के पश्चात् अधिक कान्तिवान् हो जाता है, वे गंगाजी उस चन्द्रमण्डल से निकलकर मेरु पर्वत पर गिरती हुई जगत् को पवित्र करने के लिये चारो दिशाओं को गमन करती हैं ।११२—११४ चार दिशाओं में जाती हुई एक ही गंगाजी चार धाराओं के रूप में होकर सीता, अलकनंदा चक्षु और भद्रा कही जाती हैं ।११५। जिनकी अलकनंदा नामक दक्षिणीय धारा को शिवजीने सौ वर्ष से भी अधिक समय तक अपने मस्तक पर प्रीति सहित धारण किया तथा जिसने उन शिवजी की जटाओं से निकलकर पाप कर्मा सगर पुत्रों की हड्डियों के चूरे को आप्लावित कर उन्हें स्वर्ग प्राप्त करा दिया था ।११६-११७।

स्नातस्य सलिले यस्याः सद्यः पापं प्रणश्यति ।
अपूर्वपुण्यप्राप्तिश्च सद्यो मैत्रेय जायते ।११८।
दत्ताः पितृभ्यो यत्रापस्तनयैः श्रद्धयान्वितैः ।
समाशतं प्रयच्छन्ति तृप्तिं मैत्रेय दुर्लभाम् ।११९।
यस्यामिष्ट्वा महायज्ञैर्यज्ञेशं पुरुषोत्तमम् ।
द्विज भूपाः परां सिद्धिमवापुर्दिवि चेह च ।१२०।
स्नानाद्विधूयपापश्च यज्जलैर्यतयस्तथा ।
केशवासक्तमनसः प्राप्ता निर्वाणामुत्तमम् ।१२१।
श्रुताभिलषिता दृष्टा स्पृष्टापीतावगाहिता ।
या पावयति भूतानि कीर्तिता च दिने दिने ।१२२।
गंगा गंगेति यैर्नाम योजनानां शतेष्वपि ।
स्थितैरुच्चरितं हन्ति पापं जन्मत्रयार्जितम् ।१२३।
यतः सा पवनायाल त्रयाणं जगतामपि ।
समुद्भूता परं तत्तु तृतीय भगवत्पदम् ।१२४।

हे मैत्रेयजी ! जिसके जल में स्नान करने मात्र से पापोंका शीघ्र ही क्षय हो जाता है, तथा अभूत पूर्व पुण्य प्राप्त होता है।११८। पुत्रों के द्वारा अपने पितरों के लिए जिसके प्रवाह में एक दिन श्रद्धा पूर्वक किया गया तर्पण उन्हें सौ वर्ष दुर्लभ तृप्ति प्राप्त कराता है ।११९। हे द्विज !

राजाओं ने जिसके किनारे पर यज्ञेश्वर भगवान् का महायज्ञों के द्वारा यजन करके इहलोक और परलोक दोनों को सिद्ध कर लिया ।१२०। जिसमें स्नान करके निष्पाप हुए यतियों ने भगवान् श्री केशव में आसक्त चित्त रहकर श्रेष्ठ निर्वाण पद को प्राप्त किया ।१२१। जो श्रवण, दर्शन, इच्छा, स्पर्श, जलपान, स्नान और कीर्तन से ही प्राणियों को नित्य पवित्र करती रहती है ।१२२। जिसके 'गंगा' नाम को सौ योजन दूर से भी उच्चारण करने पर वह उसके तीन जन्म के एकत्र हुए पापों को भी निर्मूल कर देता है ।१२३। तीनों लोक को पवित्र करने वाली वह गंगा, जिससे आविर्भूत हुई, वह भगवान विष्णु का तृतीय परमपद ही है ।१२४।

—: ❀ ❀ :—

नवां अध्याय

तारामयं भगवतः शिशुमाराकृति प्रभोः ।
दिवि रूपं हरेर्यत्तु तस्य पुच्छे स्थितो ध्रुवः ।१।
सैष भ्रमन् भ्रामयति चन्द्रादित्यादिकान् ग्रहान् ।
भ्रमन्तमनु तं यान्ति नक्षत्राणि च चक्रवत् ।२।
सूर्याचन्द्रमसौ तारा नक्षत्राणि ग्रहैः सह ।
वातानीकमयैर्बन्धैर्ध्रुवे बद्धानि तानि वै ।३।
शिसुमाराकृति प्रोक्त यद्रूपं ज्योतिषां दिवि ।
नारायणोऽयनं धाम्नां तस्याधारः स्वयं हृदि ।४।
उत्तानपादपुत्रस्तु तमाराध्य जगत्पतिम् ।
स ताराशिशुमारस्य ध्रुवः पुच्छे व्यवस्थितः ।५।
आधारः शिशुमारस्य सर्वाध्यक्षो जनार्दनः ।।
ध्रुवस्य शिशुमारस्तु ध्रुवे भानुर्व्यवस्थितः ।६।
तदाधारं जगच्चेदं सदेवासुरमानुषम् ।
येन विप्र विधानेन तन्ममैकमनाः शृणु ।७।

श्री पराशरजी ने कहा–शिशुमार की आकृति वाला भगवान् विष्णु का जो तारामय स्वरूप आकाश में देखने में आता है, उसी की पूँछ में ध्रुव स्थित है।१। यह ध्रुव स्वयं घूमता रहकर चन्द्रमा तथा सूर्यादि ग्रहों को घुमाता रहता है। उस घूमने वाले ध्रुव के साथ ही नक्षत्रगण भी चक्र के समान घूमते हैं।२। सूर्य, चन्द्र, तारे, नक्षत्र तथा अन्य सभी ग्रह वायुमडल रूपी उस डोर से ध्रुव के साथ बँधे हैं।३। ग्रहों का जो शिशुमार स्वरूप मैंने तुम्हें बताया है, उसके हृदय स्थित आश्रय अनंत तेज वाले भगवान् विष्णु ही है।४। उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव ने ही उन जगत्पति भगवान विष्णु की आराधना करके उस तारामय शिशुमार की पूँछ में स्थान प्राप्त किया है।५। शिशुमार के आधार स्वयं सर्वेश्वर जनार्दन हैं, वह शिशुमार ध्रुव का आश्रय है और ध्रुव सूर्य का आश्रय है।६। तथा हे द्विज ! देव, असुर, मनुष्यादि युक्त यह सम्पूर्ण विश्व सूर्य का आश्रय है, उसका वृत्तान्त सावधान चित्त से सुनो।७।

विवस्वानष्टभिर्मासैरादायापो रसात्मिकाः।
वर्षत्यम्बु ततश्चान्नमन्नादप्यखिलं जगत्।८।
विवस्वानशुभिस्तीक्ष्णैरादाय जगतो जलम्।
सोमं पुष्णात्यथेन्दुश्च वायुनाडीमयैर्दिवि।९।
नालैर्विक्षिपतेऽभ्रेषु धूमाग्न्यनिलमूर्तिषु।
न भ्रश्यन्ति यतस्तेभ्यो जलान्यभ्राणि तान्यतः।१०।
अभ्रस्थाः प्रपतन्त्यापो वायुना समुदीरिताः।
संस्कारं कालजनितं मैत्रेयासाद्य निर्मलाः।११।
सरत्समुद्रभौमास्तु तथापः प्राणिसम्भवाः।
चतुष्प्रकारा भगवानादत्ते सविता मुने।१२।
आकाशगङ्गासलिलं तथादाय गभस्तिमान्।
अनभ्रगतमेवोर्व्यां सद्यः क्षितति रश्मिभिः।१३।
तस्य सस्पर्शनिर्धूतपापपङ्को द्विजोत्तम।
न याति नरकं मर्त्यो दिव्ज स्नानं हि तत्स्मृतम्।१४।

सूर्य आठ महीने तक अपनी किरणों के द्वारा रस रूप जल को ग्रहण करता और चार महीने उसे बरसाता है। उस जल-वृष्टि से अन्न उत्पन्न होता है, जिस पर सम्पूर्ण विश्व का पोषण निर्भर है।८। सूर्य अपनी तीक्ष्ण किरणों के द्वारा विश्व से जल खींचकर उससे चन्द्रमा का पोषण करता है और चन्द्रमयी वायुमयी नाड़ियों से उसे धूम, अग्नि और मेघ में पहुँचाता है। चन्द्रमा द्वारा प्राप्त यह जल मेघों से शीघ्र ही भ्रष्ट होने के कारण, वे मेघ 'अभ्र' कहे जाते हैं।९-१०। हे मैत्रेयजी ! काल जनित सस्कार से यह मेघों में स्थित जल निर्मल होकर वायु द्वारा प्रेरित किये जाने पर पृथिवी पर बरसाता है।११। हे मुने ! नदी, समुद्र, पृथिवी तथा प्राणियों से उत्पन्न इन चार प्रकार के जलों को भगवान् सूर्य अपनी ओर खींचते हैं।१२। वे आकाशगंगा के जल को लेकर मेघादि के बिना, केवल अपनी किरणों के ही द्वारा पृथिवी पर बरसाते हैं।१३। हे विप्र श्रेष्ठ ! उसके स्पर्श मात्र से पाप रूपी कीचड़ धुल जाती है, जिससे मनुष्य नरक-प्राप्ति से बच जाता है। इसीलिये इसे इसे दिव्य स्नान कहा है १४।

दृष्टसूर्यं हि यद्वारि पतत्यभ्रैर्विना दिवः।
आकाशगङ्गासलिलं तद्गोभिः क्षिप्यते रवेः।१५।
कृत्तिकादिषु ऋक्षेषु विषमेषु च यद्दिवः।
दृष्टार्कपतितं ज्ञेय तद्गाङ्गं दिग्गजोज्झितम्।१६।
युग्मर्क्षेषु च यत्तोयं पतत्यर्कोज्झितं दिवः।
तत्सूर्यरश्मिभिः सर्वं समादाय निरस्यते।१७।
उभयं पुण्यमत्यर्थं नृणां पापभयापहम्।
आकाशगंगासलिल दिव्यं स्नानं महामुने।१८।
यत्तु मेघैः समुत्सृष्टं वारि तत्प्राणिनां द्विज।
पुष्णात्योषधयः सर्वा जीवनायामृतं हि तत्।१९।
तेन वृद्धिं परां नीतः सकलश्चौषधीगणः।
साधकः फलपाकान्तः प्रजानां द्विज जायते।२०।
तेन यज्ञान्यथाप्रोक्तान्मानवाः शास्त्रचक्षुषः।
कुर्वन्त्यहरहस्तैश्च देवानाप्याययन्ति ते।२१।

सूर्य के दिखाई देते हुए मेघों के बिना ही जो जल वृष्टि होती है, वह आकाशगङ्गा का जल सूर्य की किरणों द्वारा ही बरसाया हुआ होता है।१५। कृत्तिकादि विषम नक्षत्रों में बिना मेघों के तथा सूर्य के दिखाई देते हुए बरसने वाला जल भी आकाशगंगा का ही होता है. उसे दिग्गजों द्वारा बरसाया हुआ समझो।१६। सम संख्यक नक्षत्रों में सूर्य द्वारा बरसाया जाने वाला जल सूर्य की किरणों द्वारा ग्रहण करके ही पृथिवी पर बरसाया जाता है।१७। हे महामुने ! आकाश गंगा के यह दो प्रकाश के जलमय दिव्य स्नान हैं, जिनसे मनुष्यों के पापादि भयों का उन्मूलन होता है।१८। हे द्विज ! मेघों के द्वारा बरसाया जाने वाला जल प्राणियों के जीवन के लिये अमृत तुल्य तथा औषधियों का पोषक है।१९। उस वृष्टि-जल से सब औषधियाँ परम वृद्धि को प्राप्त होती और पककर सूखने वाले तथा प्रजाओं के पोषक होती हैं।२०। उनसे शास्त्रों के ज्ञाता विज्ञजन प्रति दिन विधिवत् यज्ञों के द्वारा देवताओं को प्रसन्न करते हैं।२१।

एवं यज्ञाश्चवेदाश्च वर्णाश्च वृष्टिपूर्वकाः।
सर्वे देवानिकायाश्च सर्वे भुतगणाश्च ये।२२।
वृष्ट्या धृतमिदं सर्वमन्नं निष्पाद्यते यया।
सापि निष्पाद्यते वृष्टिः सवित्रा मुनिसत्तम।२३।
आधारभूतः सवितुध्रुवो मुनिवरात्तम।
ध्रुवस्य शिशुमारोऽसौ सोऽपि नारायणात्मकः।२४।
हृदि नारायणस्तस्य शिशुमारस्य संस्थितः।
विभर्ता सर्वभूतानामादिभूतः सनातनः।२५।

इस प्रकार सब यज्ञ, वेद ब्राह्मणादि चतुर्वण, समस्त देवता तथा अन्यान्य प्राणी वर्षा के ही आश्रित हैं।२९। अन्न को उत्पन्न करने वाली वर्षा ही इन सबका धारण करने वाली है और वर्षा सूर्य से उत्पन्न होती है।२३। हे मुनिवरों में श्रेष्ठ ! सूर्य का आधार ध्रुव है, ध्रुव का आधार शिशुमार है और उस शिशुमार के भी आधार भगवान् श्री नरायण हैं।२४। उस शिशुमार के हृदय में श्री नरायण का निवास है, जो सब प्राणियों के पालक, आदिभूत एवं सनातन हैं।२५।

दसवाँ अध्याय

साशीतिमण्डलसतं काष्ठयोरन्तरं द्वयोः ।
आरोहणावरोहाभ्यां भानोरब्देन या गतिः ।१।
स रथोऽधिष्ठितो देवैरादित्यैर्ऋषिभिस्तथा ।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च ग्रामणीसर्पराक्षसैः ।२।
धाता क्रतुस्थला चैव पुलस्त्यो वासुकिस्तथा ।
रथभृद्ग्रामणीर्हेतिस्तुम्बुरुश्चैव सप्तमः ।३।
एते वसन्ति वै चैत्रे मधुमासे सदैव हि ।
मैत्रेय स्यन्दने भानोः सप्त मासाधिकारिणः ।४।
अर्यमा पुलहश्चैव रथौजाः पुञ्जिकस्थला ।
प्रहेतिः कच्छवीरश्च नारदश्च रथे रवेः ।५।
माधवे निवासन्त्येते शुचिसंज्ञे निबोध मे ।३।
मित्रोऽत्रिस्तक्षको रक्षः पौरुषेयोऽथ मेनका ।
हाहा रथस्वनश्चैव मैत्रेयैते वसन्ति वै ।७।

श्री पराशरजी ने कहा— आरोह–अवरोह से एक वर्ष में सूर्य के रथ की जितनी गति है, उस पूरे मार्ग की दोनों काष्ठाओं का अन्तर एक सौ अस्सी मण्डल होता है ।१। सूर्य का वह रथ ऋषि, गधर्व, अप्सरा, यक्ष, सर्प और राक्षसों से अधिष्ठित होता है ।२। मधुमास चैत्र में धाता, क्रतुस्थला, अप्सरा, पुलस्त्य, वासुकि, रथभृत् यक्ष, हेति राक्षस और तुम्बरु नामक गंधर्व--यह सात मासाधिकारी सूर्य के रथ में निवास करते हैं ३-४। वैशाख मास में अर्यमा, पुलह, रथौजा, पुञ्जिकस्थला, प्रहेति, कच्छवीर और नारद सूर्य के रथ में रहते हैं । अब ज्येष्ठ मास में निवास करने वाले के नाम कहता हूँ, सुनो ।५-६। मित्र, अत्रि, पौरुषेय, मेनका, हाहा और रथस्वन यक्ष उस रथ में रहते हैं ।७।

वरुणो वसिष्ठो नागश्च सहजन्या हुहू रथः ।
रथचित्रस्तथा शुक्रे वसन्त्याषाढसंज्ञके ।८।

इन्द्रो विश्वावसुः स्रोत एलापुत्रस्तथाङ्गिराः ।
प्रम्लोचा च नभस्येते सर्पश्चार्के वसन्ति वै ।९।
विवस्वानुग्रसेनश्च भृगुरापूरणस्तथा ।
अनुम्लोचा शङ्खपालो व्याघ्रो भाद्रपदे तथा ।१०।
पूषा वसुरुचिर्वातो गौतमोऽथ धनञ्जयः ।
सुषेणोऽन्यो घृताची च वसन्त्याश्वयुजे रवौ ।११।
विश्वावसुर्भरद्वाजः पर्जन्यैरावतौ तथा ।
विश्वाची सेनजिच्चापः कार्तिके च वसन्ति वै ।१२।
अंशकाश्यपताक्ष्यास्त महापद्मस्तथोर्वशी ।
चित्रसेनस्तथा विद्युन्मार्गशीर्षेऽधिकारिणः ।१३।
क्रतुर्भगस्तथोर्णायुः स्फूर्जः कर्कोटकस्तथा ।
अरिष्टनेमिश्चैवान्या पूर्वचित्तिर्वरासराः ।१४।
पौषमासे वसन्त्येते सप्त भास्करमण्डले ।
लोकप्रकाशनार्थाय विप्रवर्याधिकारिणः ।१५।

अषाढ़ में वरुण, वसिष्ठ, नाग, सहजन्या हुहू, रथ नामक राक्षस और रथचित्र यक्ष उस रथ में रहते हैं ।८। श्रावण में इन्द्र, विश्वावसु, स्रोत एलापुत्र, अंगिरा, प्रम्लोचा अप्सरा और सर्प नामक राक्षस उसमें निवास करते हैं ।९। भादों में विवस्वान्, उग्रसेन गंधर्व, भृगु, आपूरण यक्ष, अनुम्लोचा अप्सरा, शंखपाल सर्प और व्याघ्र नामक राक्षस उस रथ में रहते हैं ।१०। आश्विन में पूषा वसुरुचि, वात राक्षस, गौतम धनञ्जय सर्प, सुषेण गन्धर्व और घृताची अप्सरा उसमें रहते हैं ।११। कार्तिक में विश्वावसु, भरद्वाज, पर्जन्य, ऐरावत सर्प, विश्वाची अप्सरा, सेनाजित् यक्ष और आप नामक राक्षस का उस रथ में निवास रहता है ।१२। अगहन मे अंश नामक आदित्य, काश्यप, ताक्ष्यं, महापद्म सर्प, उर्वशी चित्रसेन गन्धर्व और विद्युत नामक राक्षस मासाधिकारी रूप से रहते हैं ।१३। पौष में क्रतु ऋषि, भग नामक आदित्य, ऊर्णायु गन्धर्व, स्फूर्ज राक्षस, कर्कोटक सर्प, अरिष्टनेमि यक्ष और पूर्वचित्ति अप्सरा विश्व के प्रकाशनार्थ सूर्य के रथ में निवास करते हैं ।१४-१५।

त्वष्टाथ जमदग्निश्च कम्बलोऽथ तिलोत्तमा ।
ब्रह्मापेतोऽथ ऋतजिद् धृतराष्ट्रोऽथ सप्तमः ।१६।
माघमासे वसन्त्येते सप्त मैत्रेय भास्करे ।
श्रूयतां चापरे सूर्ये फाल्गुने निवसन्ति ये ।१७।
विष्णुरश्वतरो रम्भा सूर्यवर्चाश्च सत्यजित् ।
विश्वामित्रस्तथा रक्षो यज्ञोपेतो महामुने ।१८।
मासेष्वेतेषु मैत्रेय वसन्त्येते तु सप्तकाः ।
सवितुर्मण्डले ब्रह्मन्विष्णुशक्त्युपबृंहिताः ।१९।
स्तुवन्ति मुनयः सूर्यं गन्धर्वैर्गीयते पुरः ।
नृत्यन्त्यप्सरसो यान्ति सूर्यस्यानु निशाचराः ।२०।
वहन्ति पन्नगा यक्षैः क्रियतेऽभीषुसङ्ग्रहः ।
बालखिल्यास्तथैवैनं परिवार्य समासते ।२१।
सोऽयं सप्तगणः सूर्यमण्डले मुनिसत्तम ।
हिमोष्णवारिवृष्टीनां हेतुः स्वसमयं गतः ।२२।

माघ में त्वष्टा, जमदाग्नि, कम्बल नामक सर्प, तिलोत्तमा, अप्सरा ब्रह्मोपेत राक्षस, ऋतजित् यक्ष और धृमराष्ट्र गन्धवर्व सूर्य के रथ में रहते हैं। अब फाल्गुन मास में सूर्य-रथ पर निवास करने वाले मासाधिकारियों के नाम सुनो।१६-१७। विष्णु नामक आदित्य अश्वतर सर्प रम्भा, सूर्यवर्चा गन्धर्व, सत्यजित् यक्ष, विश्वामित्र और यज्ञोपेत नामक राक्षस उसमें रहते है।१८। हे ब्रह्मन्! इस प्रकार भगवान् विष्णु की शक्ति से तेजस्विता प्राप्त कर यह सात-सात गण एक-एक महीने में सूर्य के रथ में रहते हैं।१९। उस समय मुनिगण स्तुति करते, गन्धर्वगण सूर्य का गुणगान करते, अप्सराएँ नृत्य करतीं, राक्षसगण रथ के पीछे चलते, सर्पवण उस रथ को वहन योग्य सजाते, यक्षगण उसकी बागडोर गृहण करते और बालखिल्यादि उस सब ओर से घेरे रहते हैं।२०-२१। हे मुनि वर! सूर्य मण्डल के यही सात-सात गण अपने काल में शीत, उष्णता और वृष्टि आदि के हेतु होते हैं।२२।

ग्यारहवाँ अध्याय

यदेत द्भगवानाह गणः सप्तविधो रवेः ।
मण्डले हिमतापादेः कारणं तन्मया श्रुतम् ।१।
व्यापारश्चापि कथितो गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
ऋषीणां बालखिल्यानां तथैवाप्सरसां गरो ।२।
यक्षाणां च रथे भानोर्विष्णुशक्तिधृतात्मनाम् ।
किं चादित्यस्य यत्कर्म तन्नात्रोक्त त्वया मुने ।३।
यदि सप्तगणो वारि हिममुष्णं च वर्षति ।
तत्किमत्र रवेर्येन वृष्टिः सूर्यादितीर्यते ।४।
विवस्वानुदितो मध्ये यात्यस्तमिति किं जनः ।
ब्रवीत्येतत्समं कर्भ यदि सप्तगणस्य तत् ।५।
मैत्रेय श्रूयतामेतद्यद्भवान्परिपृच्छति ।
यथा सप्तगणेऽप्येकः प्राधान्येनाधिको रविः ।६।
सर्वशक्तिः परा विष्णोऋग्यजः सामसंज्ञिता ।
सैषा त्रयी तपत्यहो जगतश्च हिनस्ति या ।७।

श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे भगवान् ! मैंने आपके द्वारा सूर्यमंडल स्थित सात-सात गणों के शीत, ग्रीष्म आदि के कारण होने का वर्णन सुना ।१। हे गुरो ! आपने भगवान् विष्णु की शक्ति से सम्पन्न गन्धर्व सर्प, राक्षस, ऋषि बालखिल्यादि, अप्सरा और यक्षों के रथ में स्थित होने का वृतान्त भी कहा । परन्तु आपने, सूर्य का क्या कार्य है, यह नहीं बताया ।२-३। यदि सात गण ही शीत, ग्रीष्म और वृष्टि के कर्त्ता हैं, तो सूर्य किस कार्य के लिये हैं और सूर्य को वृष्टि का कारण क्यों बातया जाता है ? ।४। यदि सातों गण समान कार्य वाले हैं तो अब सूर्योदय हुआ अब मध्य में स्थित है तथा अब सूर्यास्त हुआ, ऐसा क्यों कहा जाता है ? ।५। श्री पराशरजी ने कहा--हे मैत्रेयजी ! तुमने जो प्रश्न किया है, उसका समाधान सुनो । सूर्य उन सातों गणों से मिल कर ही एक होता है, परन्तु उनमें प्रमुख होने के कारण ही उनकी अधिकता है।३। भगवान्

विष्णु की ऋक्, यजुः, साम नाम की सर्व शक्तिमयी जो पराशक्ति है, वही वेदत्रयी सूर्य को ताप देती है और वही जगत् के सब पापों का नाश करती है ।७।

सैष विष्णुः स्थितः स्थित्यां जगतः पालनोद्यतः ।
ऋग्यजुः सामभूतोऽन्तः सवितुर्द्विज तिष्ठति ।८।
मासि मासि रविर्यो यस्तत्र तत्र हि सा परा ।
त्रयमयी विष्णुशक्तिरवस्थानं करोति वै ।९।
ऋचः स्तुवन्ति पूर्वाह्णे मध्याह्नेऽथ यजुंषि वै ।
बृहद्रथन्तरादीनि सामान्यह्नः क्षये रविम् ।१०।
अङ्गमेषा त्रयी विष्णोर्ऋग्यजुः सामसंज्ञिता ।
विष्णुशक्तिरवस्थानं सदादित्ये करोति सा ।११।
न केवलं रवेः शक्तिर्वैष्णवी सा त्रयीमयी ।
ब्रह्माथ पुरुषो रुद्रस्त्रयमेतत्त्रयीमयम् ।१२।
सर्गादौ ऋङ्मयो ब्रह्मा स्थितौ विष्णुर्यजुर्मयः ।
रुद्रः साममयोऽन्ताय तस्मात्तस्याशुचिर्ध्वनिः ।१३।

हे द्विज ! विश्व की स्थिति तथा पालन के हेतु वे ऋक् यजुः, और सामरूप विष्णु सूर्य में रहते हैं ।८। जिस-जिस मास में जो-जो सूर्य होता है, उस-उस में वही वेदत्रयी रूपिणी विष्णु की पराशक्ति का निवास रहता है ।९। पूर्वाह्न में ऋक् मध्याह्न यजुः और सायकाल में बृहद्रथन्तर आदि साम-श्रुतियाँ उन सूर्य का स्तवन करती हैं ।१०। यह ऋक्, यजुः और साम रूप वाली वेदत्रयी भगवान् विष्णु का अंग ही है । यह विष्णु शक्ति सूर्य में सदा निवास करती है ।११। यह वैष्णवी शक्ति केवल सूर्य की ही अधिष्ठात्री नहीं है, किन्तु ब्रह्मा, विष्णु और शिव वेदत्रयीमय है ।१२। सर्गारम्भ में ब्रह्मा ऋङ् मय, स्थिति के समय विष्णु यजुर्मय और प्रलयकाल में रुद्र साममय रहते है। इसी कारण सामगान की ध्वनि को सदोष माना गया है ।१३।

एवं सा सात्विकी शक्तिर्वैष्णवी यात्रयीमयी ।
आत्मसप्तगणस्थं तं भास्वन्तमधितिष्ठति ।१४।

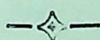
तया चाधिष्ठितः सोऽपि जाज्वलीति स्वरश्मिभिः ।
तमः समस्त जगतां नाश नयति चाखिलम् ।१५।
स्तुवन्ति चैनं मुनयो गन्धर्वैर्गीयते पुरः
नृत्यन्तोऽप्सरसो यान्ति तस्य चानु निशाचराः ।१६।
वहन्ति पन्नगा यक्षः क्रियतेऽभीषुसङ्ग्रह ।
बालखिल्यास्तथैवैनं परिवार्य समासते ।१७।
नोदेता नास्तमेता च कादचिच्छक्तिरूपधृक् ।
विष्णुर्विष्णोः पृथक् तस्य गणस्सप्तविधोऽप्ययम् ।१८।
स्तम्भस्थदर्पणस्येव योऽयमासन्नतां गतः ।
छायादर्शनसंयोग स तं प्राप्नोत्यथात्मनः ।१९।
एवं सा वैष्णवी शक्तिर्नैवापैति ततो द्विज ।
मासानुमासं भास्वन्तमध्यासुते तत्र संस्थितम् ।२०।

इस प्रकार वह त्रयीमयी सात्विकी वैष्णवी शक्ति अपने सात गणों में स्थित सूर्य में ही अवस्थान करती है ।१४। उससे अधिष्ठित हुए सूर्य भी अपनी रश्मियों से और भी प्रखर होते हुए जगत के अन्धकार को मिटा देते हैं ।१५। ऐसे उन सूर्य की मुनि स्तुति करते, गंधर्व यश-कीर्तन करते, अप्सराएँ नृत्य करती, राक्षस पीछे चलते, सर्प रथ को सजाते यक्ष घोड़ों की बागडोर पकड़ते और बाल्यखिल्यादि उस रथ को सब ओर से घेरे हुए चलते हैं ।१६-१७। उन त्रयीमयी शक्ति वाले भगवान् विष्णु का कभी उदयास्त नहीं होता और यह सात प्रकार के गण उनके अलग ही हैं ।१८। जैसे स्तम्भस्थ दर्पण के पास जाने वाले को सदा उसकी छाया दिखाई देती है, वैसे ही विष्णु की वह शक्ति सूर्य के रथ में सदा रहती है तथा प्रत्येक मास में सूर्य के पृथक्-पृथक् रूप में स्थित होने पर वही शक्ति उनकी अधिष्ठात्री होती है ।२०।

पितृदेवमनुष्यादीन्स सदाप्याययन्प्रभुः ।
परिवर्तत्यहोरात्रकारणं सविता द्विज ।२१।
सूर्यरश्मिः सुषुम्ना यस्तर्पितस्तेन चन्द्रमाः ।
कृष्णपक्षेऽमरै शश्वत्पीयते वै सुधामयः ।२२।

पीत तं द्विकलं सोमं कृष्णपक्षक्षये द्विज ।
पिबन्ति पितरस्तेषां भास्करात्तर्पणं ।२३।
आदत्ते रश्मिभिर्यन्तु क्षितिसंस्थं रसं रविः ।
तमुत्सृजति भूतानां पुष्ट्यर्थं सस्यवृद्धते ।२४।
तेन प्रीणात्यशेषाणि भूतानि भगवान्नविः ।
पितृदेवमनुष्यादीनेवमाप्यायत्यसौ ।२५।
पक्षतृप्तिं तु देवानां पितृणां चैव मासिकीम् ।
शश्वतृप्तिं च मर्त्यानां मैत्रेयाकः प्रयच्छति ।२६।

हे द्विज ! दिन और रात्रि को उत्पन्न करने वाले सूर्य पितर, देवता और मनुष्यादि को सदा तृप्त करते हुए भ्रमण करते हैं ।२१। सूर्य की सुषुम्ना नाम्नी किरण शुक्लपक्ष में चन्द्रमा को पुष्ट करती है और कृष्णपक्ष में देवगण उस अमृतमय चन्द्रमा की एक-एक कला को पीते रहते हैं ।२२। कृष्णपक्ष के क्षीण होने पर पितरगण दो कला वाले चन्द्रमा का पान करते रहते हैं । इस प्रकार सूर्य के द्वारा पितरों का तर्पण किया जाता है ।२३। अपनी किरणों के द्वारा सूर्य पृथिवी से जितने जल को आकर्षित करता है उसको प्राणियों के पोषण और अन्न की वृद्धि के लिये पृथिवी पर ही बरसा देता है ।२४। इस प्रकार सूर्य समस्त प्राणियों को प्रसन्न करते हुए देवगण आदि सभी को तृप्त करते हैं ।२५। हे मैत्रेय जी ! इस प्रकार से भगवान सूर्य देवताओं की पाक्षिक, पितरों की मासिक और मनुष्यों की दैनिक तृप्ति के कारण हैं ।२६।



बारहवां अध्याय

रथस्त्रिचक्रः सोमस्य कुन्दाभास्तस्य वाजिनः ।
वामदक्षिणतो युक्ता दश तेन चरत्यसौ ।१।

वीथ्याश्रयाणि ऋक्षाणि ध्रुवाधारेण वेगिना ।
ह्रासवृद्धिक्रमस्तस्य रश्मीनां सवितुर्यथा ।२।
अर्कस्येव हि तस्याश्वाः सकृद्युक्ता वहन्ति ते ।
कल्पमेकं मुनिश्रेष्ठ वारिगर्भसमुद्भवा ।३।
क्षीण पीतं सुरैः सोममाप्याययति दीप्तिमान् ।
मैत्रेयैककलं सन्तं रश्मिनकेन भास्करः ।४।
क्रमेण येन पीतोऽसौ देवैस्तेन निशाकरम् ।
आप्याययत्यनुदिनं भास्करो वारितस्करः ।५।
सम्भृतं चार्धमासेन तत्सोमस्थं सुधामृतम् ।
पिबन्ति देवा मैत्रेय सुधाहारा यतोऽमराः ।६।
त्रयस्त्रिंशत्सहस्राणि त्रयस्त्रिंशच्छतानि च ।
त्रयस्त्रिंशत्तथा देवाः पिबन्ति क्षणदाकरम् ।७।

श्री पराशरजी ने कहा-चन्द्रमा के रथ में तीन पहिये हैं, उसके बाँए और दाँए ओर कुन्द पुष्प के समान सफेद रंग के दस घोड़े जुते हुए हैं। और रथ ध्रुव के आधार पर स्थित है। चन्द्रमा उसी वेगवान् रथ पर चढ़कर भ्रमण करते हैं तथा नागवीथि पर आश्रित अश्विनी आदि नक्षत्रों को भोगते हैं। सूर्य के समान इनकी किरणें भी न्यूनता और वृद्धि को प्राप्त होती है ।१-२। हे मुनिवर ! सूर्य के समान उनके घोड़े भी समुद्र के गर्भ से उत्पन्न होकर एक बार जोते जाने पर एक कल्प तक रथ को खींचते रहते हैं ।३। हे मैत्रेयजी ! देवताओं द्वारा पान किये जाने के कारण क्षीण हुए कला मात्र चन्द्रमा को सूर्य अपनी करणों से पुनः पुष्ट करते हैं ।४। जिस क्रम से देवता उनका पान करते हैं उसी क्रम से शुक्ल पक्ष की प्रतिपक्ष से जल का अपहरण करने वाले सूर्य उन्हें नित्य प्रति पोषित करते हैं ।५। इस प्रकार अर्धमास में संचित चन्द्रमा के उस अमृत का देवगण पुनः पान करने लगते हैं, क्योंकि उन देवताओं का आहार वही अमृत है ।६। तैंतीस सहस्र, तैंतीस सौ तैंतीस देवता चन्द्रमा के उस अमृत को पीते रहते हैं ।७।

कलाद्वयावशिष्टस्तु प्रविष्टः सूर्यमण्डलम् ।
अमाख्यरश्मौवसति आमावास्या ततः स्मृता ।८।
अप्सु तस्मिन्नहोरात्रं पूर्वं विशति चन्द्रमाः ।
ततो वीरुत्सु वसति प्रयात्यर्कं ततः क्रमात् ।९।
छिनत्ति वीरुधो यस्तु वीरुत्संस्थे निशाकरे ।
पत्रं वा पातयत्येकं ब्रह्महत्यां स विन्दति ।१०।
सोम पञ्चदशे भागे किञ्चिच्छिष्टे कलात्मके ।
अपराह्ने जघन्यं पर्युपासते ।११।
पिबन्ति द्विकलाकारं शिष्टा तस्य कला तु या ।
सुधामृतमयी पुण्या तामिन्दोः पितरो मुने ।१२।
निस्सृतं तदमावास्यां गभस्तिभ्यः सुधामृतम् ।
मासं तृप्तिमवाप्याग्र्यां पितरः सन्ति निर्वृताः ।
सौम्या वर्हिषदश्चैव अग्निष्वात्ताश्च ते त्रिधा ।१३।
एवं देवान् सिते पक्षे कृष्णपक्षे तथा पितृन् ।
वीरुधश्चामृतमयैः शीतैरप्परमाणुभिः ।१४।
वीरुधौषधिनिष्पत्या मनुष्यपशुकीटकान् ।
आप्याययति शीतांशुः प्रकाश्याह्लादनेन तु ।१५।

जब चन्द्रमा कला-मात्र रह जाता है और सूर्य मण्डल में प्रविष्ट होकर उसकी अमा नाम की किरण में रहता है, तब उस दिन को अमावस्या कहते हैं ।८। उस दिन वह रात्रि काल में प्रथम जल में प्रविष्टहोता फिर वृक्ष-लतादि में रहता और फिर क्रम से सूर्य में पहुंच जाता है ।९। जब चन्द्रमा वृक्ष और लतादि में रहता है तब इस अमावस तिथि को यदि कोई उसका एक पत्ता भी तोड़ता है तो उसे ब्रह्म हत्या का भागी होना होता है ।१०। केवल पन्द्रहवी कला के बच रहने पर उस क्षीणकाय चंद्रमा को मध्याह्नोत्तर काल में पितरगण सब ओर से आ घेरते है ।११। उस चन्द्रमा की एक अवशिष्ट सुधामयी कला को वे पितरगण पीते हैं ।१२। अमावस के दिन चन्द्रमा की किरण से निकले हुए उस अमृत को पीकर

तृप्त हुए वे सौम्य, बर्हिषद् और अग्निष्वात्त पितरगण एक महीने तक तृप्त रहते हैं।१३। इस प्रकार चन्द्रमा से शुक्ल पक्ष में देवताओं की और कृष्ण पक्ष में पितरों की पुष्टि होती है तथा वह चन्द्रमा अपने शीतल जल कणों से लता, वृक्ष औषधि आदि को उत्पन्न और अपनी चद्रिका द्वारा आह्लादित करके मनुष्य, पशु, कीटादि प्राणियों को परिपुष्ट करते हैं।१४-१५।

वाय्वग्निद्रव्यसम्भूतो रथश्चन्द्रसुतस्य च ।
पिशङ्गैस्तुरगैर्युक्तः सोऽष्टाभिर्वायुवेगिभिः ।१६।
सवरूथः सानुकर्षो युक्तो भूसम्भवहयैः ।
सोपासगंपताकस्तु शुक्रस्यापि रथो महान् ।१७।
अष्टाश्वः काञ्चनः श्रीमान्भौमस्यापि रथा महान् ।
पद्मरागारुणैरश्वैः संयुक्तो वह्निसम्भवैः ।१८।
अष्टाभिः पाण्डुरयुक्तो वाजिभिः काञ्चनो रथः ।
तस्मिंस्तिष्ठति वर्षान्ते राशौ राशौ बृहस्पतिः ।१९।
आकाशसम्भवैरश्वैः शबलैः स्यन्दनं युतम् ।
तमारुह्य शनैर्याति मन्दगामी शनैश्चरः ।२०।

चन्द्रमा का पुत्र बुध है । उसका रथ वायु अग्नि से बना है, वायु-वेग वाले पिशग वण के आठ अश्व उसमें जुते हैं।१६। लौह-आवरण, रथ का निचला भाग, शस्त्र-स्थान, पताका तथा पृथिवी से उत्पन्न हुए अश्वों के सहित शुक्र का रथ भी बहुत बड़ा है।१७। मङ्गल का रथ आठ घोड़ों से युक्त अत्यन्त शोभायमान स्वर्ण से बना हुआ है, उसमें अग्नि से उत्पन्न हुए परागमणि जैसे अरुण वर्ण के घोड़े जुते हैं।१८। पाण्डुवर्ण के आठ अश्वों वाले स्वर्ण रथ में वर्ष के अन्तिम काल में प्रत्येक राशि में बृहस्पतिजी बैठते है।१९। जिस रथ में आकाश से उत्पन्न हुए असेभुत वर्ण वाले अश्व जुड़े हैं, उस पर चढ़कर शनैश्चरजी मन्दगति से चलते हैं।२०।

स्वर्भानोस्तुरगा ह्याष्टौ भृगाभा धूसरं रथम् ।
सकृद्युक्तास्तु मैत्रेय वहन्त्यविरत सदा ।२१।

आदित्यान्निस्सृतो राहुः सोमं गच्छति पर्वसु ।
आदित्यमेति सोमाच्च पुनः सौरेषु पर्वसु ।२२।
तथा केतुरथस्याश्वा अप्यष्टौ वातरंहसः ।
पलालधूमवर्णाभा लाक्षारसनिभारुणाः ।२३।
एते मया ग्रहाणां वै तवाख्याता रथा नव ।
सर्वे ध्रुवे महाभाग प्रबद्धा वायुरश्मिभिः ।२४।
ग्रहर्क्षताराधिष्ण्यानि ध्रुवे बद्धान्यशेषतः ।
भ्रमन्त्युचितचारेण मैत्रेयानिलरश्मिभिः ।२५।
यावन्त्यश्चैव तारास्तास्तावन्तो वातरश्मयः ।
सर्वे ध्रुवे निबद्धास्ते भ्रमन्तो भ्रामयन्ति तम् ।२६।
तैलपीडा यथा चक्रं भ्रमन्तो भ्रामयन्ति वै ।
तथा भ्रमन्ति ज्योतींषि वातविद्धानि सर्वशः ।२७।
अलातचक्रवद्यान्ति वातचक्रेरितानि तु ।
यस्माज्ज्योतिषि वहति प्रवहस्तेन स स्मृतः ।२८।

राहु का रथ धूमर वर्ण वाला हैं। उसमें भौंरों के समान काले रंग के आठ अश्व जुते हैं। उन घोडों को एक बार जोड दिया जाय तो वे निरन्तर अबाध गति से चलते रहते हैं।२१। चन्द्रमा के पर्वों पर यह राहु से निकलकर चन्द्रमा में जाता और सूर्य के पर्वों पर चंद्रमा से निकल कर सूर्य में स्थित होता है।२२। ऐसे ही के रथ में जुड़े हुये वायुवेग वाले आठ घोड़े पलाल धूम वर्ण जैसी आभा और लाख जैसे लाल वर्ण के है।२३। हे महाभाग! यह नवग्रह के रथों का वर्णन मैंने तुमसे किया है यह सभी ग्रह वायुमयी रस्सी के साथ ध्रुव से बंधे हैं।२४। हे मैत्रेयजी! सभी गृह, नक्षत्र और तारे वायुमयी डोर से ध्रुव के साथ बँधकर भ्रमण करते रहते हैं।२५। जितने तारे हैं उतनी ही वायुमयी रस्सियाँ हैं, उनसे बँधकर यह घूमत हुए ध्रुव को भी घुमाते रहते हैं।२६। जैसे तेली स्वयं घूमते हुए कोल्हू को घुमाते रहते है, वैसे ही सब ग्रह वायु के बन्धन में घूमते रहते हैं।२७। इस वातमय चक्र के प्रेरण से समस्त ग्रह अलात चक्र के समान घूमने के कारण इसे 'प्रवह' कहा गया है।२८।

शिशुमारस्तु यः प्रोक्तः स ध्रुवो यत्र तिष्ठति ।
सन्निवेशं च तस्यापि श्रृणुष्व मुनिसत्तम ।२९।
यदह्ना कुरुते पापं तं दृष्ट्वा निशि मुच्यते ।
यावन्त्यश्चैव तारास्ताः शिशुमाराश्रिता दिवि ।३०।
तावन्त्येव तु वर्षाणि जीवत्यभ्यधिकानि च ।
उत्तानपादस्तस्याथो विज्ञेयो ह्युत्तरो हनुः ।३१।
यज्ञोऽधरश्च विज्ञेयो मूर्द्धानमाश्रितः ।
हृदि नारायणश्चास्ते अश्विनौ पूर्वपादयोः ।३२।
वरुणश्चार्यमा चैव पश्चिमे तस्य सक्थिनी ।
शिश्नः संवत्सरस्तस्य मित्रोऽपानं समाश्रित
पुच्छेऽग्निश्च महेन्द्रश्च कश्यपोऽथ ततो ध्रुवः ।
तारका शिशुमारस्य नास्तमेति चतुष्टयम् ।३४।
इत्येषसन्निवेशोऽयं पृथिव्या ज्योतिषां तथा ।
द्वीपानामुदधीनां च पर्वतानां च कीर्तिताः ।३५।
वर्षाणां च नदीनां च ये च तेषु वसन्ति वै ।
तेषां स्वरूपमाख्यातं संक्षेपः श्रूयतां पुनः ।३६।

पहले जिस शिशुमार चक्र का वर्णन किया जा चुका है और जहाँ ध्रुव स्थित है, अब उसकी स्थिति के विषय में कहता हूँ, सुनो ।२९ दिन में जिस मनुष्य से पाप कर्म हो गये हों वह मनुष्य रात्रिकाल उनका दर्शन करने से उन पापों से छूट जाता है तथा आकाश मण्डल में जितने तारागण इस चक्र के आश्रित हैं, उतने संख्यक अधिक वर्ष तक जीवित रहता है, उत्तानपाद उसकी ऊपर की ठोड़ी समझी जाती है ।३०-३१। यज्ञ उससे नीचे की ठोडी है, धर्म उसके मस्तक पर स्थित है, नारायण उसके हृदय देश में हैं तथा अश्विनी कुमार उसके दोनों पूर्वीय चरणों में हैं ।३२। जांघों में वरुण और अर्यमा, शिशन में संवत्सर तथा अपान देश में मित्र हैं ।३३। पुच्छ भाग में अग्नि, महेन्द्र, कश्यप और ध्रुव हैं । यह अग्नि आदि चारों तारे कभी अस्त नहीं होते ।३४। इस प्रकार पृथिवी

ग्रह द्वीप, समुद्र, पर्वत, वर्ष और नदी अथवा अन्यान्य जो भी वहाँ हैं, उन सबका स्वरूप मैंने तुम से कह दिया। इसे अब संक्षिप्त रूप से फिर सुन लो।३५:३६।

यदम्बु वैष्णवः कायस्ततो विप्र वसुन्धरा।
पद्माकारा समुद्भूता पर्वताब्ध्यादिसंयुता।३७।
ज्योतींषि विष्णुर्भुवनानि विष्णुर्वनानि विष्णुर्गिरयो दिशश्च।
नद्यः समुद्राश्च स एव सर्वं यदस्ति यन्नास्ति च विप्रवर्य।३८।
ज्ञानस्वरूपो भगवान्यतोऽसावशेषमूर्तिर्न तु वस्तु तु वस्तुभूतः।
ततो हि शैलाब्धिधरादिभेदाञ्जानीहि विज्ञानविजृम्भितानि।३९।
यदा तु शुद्धं निजरूपि सर्वं कर्मक्षये ज्ञानमपास्तदोषम्।
तदा हि सङ्कल्पतरोः फलानि भवन्ति नो वस्तुषु वस्तुभेदाः।४०।
वस्त्वस्ति किं कुत्रचिदादिमध्यपर्यन्तहीनं सततैकरूपम्।
यच्चान्यथात्वं द्विज याति भूयो न तत्तथा हि तत्त्वम्।४१।
मही घटत्वं घटतः कपालिका कपालिका चूर्णरजस्ततोऽणु।
जनैः स्वकर्मस्तिमितात्मनिश्चयैरालक्ष्यते ब्रूहि किमत्र वस्तु।४२।
तस्मान्न विज्ञानमृतेऽस्ति किञ्चित्क्वचित्कदाचिद्द्विज वस्तुजातम्।
विज्ञानमेकं निजकर्मभेदविभिन्नचित्तैर्बहुधाऽभ्युपेतम्।४३।
ज्ञानं विशुद्धं विमलं विशोकमशेषलोभादिनिरस्तसङ्गम्।
एकं सदैकं परमः परेशः स वासुदेवो न यतोऽन्यदस्ति।४४।

हे विप्र! भगवान् विष्णु के देह रूप जल से पर्वत और समुद्रादि से युक्त पद्माकार वाली यह पृथिवी उत्पन्न हुई है।३७। हे विप्रश्रेष्ठ! तारे भुवन, वन, पर्वत, दिशा, नदी और समुद्र यह सभी भगवान् विष्णु हैं तथा अन्यान्य जो कुछ भी है, अथवा नहीं है, वह भी सब केवल भगवान् ही हैं।३८। भगवान् विष्णु ज्ञानरूप होने से सर्वात्मक हैं, परिच्छिन्न पदार्थों के समान नहीं हैं। इसलिए इस पर्वत, समुद्र, पृथिवी आदि भेदों को केवल विज्ञान का विलास ही समझो।३९। जब आत्मज्ञान न पाकर निर्दोष हुआ प्राणी सभी कर्मों का क्षय हो जाने पर अपने शुद्ध स्वरूप को धारण कर लेता है, तब आत्म वस्तु में संकल्प तरु के फलस्वरूप पदार्थ-भेद दिखाई

नहीं देता ।४०। कोई भी वस्तु कहाँ है ? आदि मध्य और अन्त में परे, एक रूप, नित्य एवं चित् स्वरूप ही तो सर्वव्याप्त है ! जो वस्तु बारम्बार परिवर्तित होती रहती है, वह यथार्थ रूप वाली कहाँ रही ? ४१। मिट्टी ही घट हो जाती है घट से कपाल से चूरा, चूरे से रज और रज से अणु रूप होकर पुनः मिट्टी बन जाती है तो फिर अपने कर्म-बन्धन के आश्रित हुए मनुष्य आत्म स्वरूप को भूलकर किस सत्य वस्तु का दर्शन करते हैं ? ।४२। विज्ञान के सिवाय कहीं कुछ नहीं है । वही एक विज्ञान अपने-अपने कर्मों के भेद से विभिन्न चित्तों द्वारा अनेक भेद वाला मान लिया ।४३। परन्तु, वह विज्ञान अत्यन्त शुद्ध, मल-रहित, तथा शोक-लोभादि सभी दोषों से शून्य केवल एक सत्स्वरूप, वासुदेव, परमेश्वर है, उससे पृथक् कुछ नहीं है ।४४।

सद्भाव एवं भवतो मयोक्तो ज्ञानं यथा सत्यमसत्यमन्यत् ।
एतत्तु यत्संव्यवहारभूतं तत्रापि चोक्तं भुवनाश्रितं ते ।४५।
यज्ञः पशुर्वह्निरशेषऋत्विक्सोमः सुराः स्वर्गमयश्च कामः ।
इत्यादिकर्माश्रितमार्गदृष्टं भूरादिभोगाश्च फलानि तेषाम् ।४६।
यच्चैतद्भुवनगतं मया तवोक्तं सर्वत्र व्रजति हि तत्र कर्मवश्यः ।
ज्ञात्वैवं ध्रुवमचलं सदैकरूपं तत्कुर्याद्विशति हि येन वासुदेवम् ।४७।

इस प्रकार तुम्हारे प्रति यह परमार्थ-विषय मैंने कहा है, एक मात्र ज्ञान ही सत्य है और उससे भिन्न जो कुछ है, वह सब असत्य समझो । जो केवल व्यवहार भूत है, उस भुवन विषयक वृतान्त को तुमसे कह चुका हूँ ।४५। यज्ञ, पशु, अग्नि, ऋत्विक्, सोम देवगण और स्वर्गमय अभिलाषा आदि विषय भी बता दिया । पृथिवी आदि लोकों के सब भोग इन कर्मों के ही आश्रित हैं ।४६। यह जो भुवनगत लोकों के विषय में मैंने कहा है, उन्हीं में यह प्राणी अपने कर्म के वशीभूत हुआ घूमता रहता है, यह जान कर वही करना उचित है जिससे ध्रुव, अचल और सदैव एक रूप वाले भगवान् वासुदेव की प्राप्ति हो सके ।४७।

तेरहवां अध्याय

भगवन्सम्यगाख्यातं यत्पृष्टोऽपि मया किल ।
भूसमुद्रादिसरितां संस्थानं ग्रहसंस्थिति ।१।
विष्ण्वाधारं यथा चैतत्त्रैलोक्य समवस्थितम् ।
परमार्थस्तु ते प्रोक्तो यथा ज्ञानं प्रधानतः ।२।
यत्वेतद्भगवानाह भरतस्य महीपतेः ।
श्रोतुमिच्छामि चरित तन्माख्याततुमर्हसि ।३।
भरतः स महीपालः शालग्रामेऽवसत्किल ।
योगयुक्तः समाधाय वासुदेवे सदा मनः ।४।
पुण्यदेशप्रभावेन ध्यायतश्च सदा हरिम्
कथं तु नाभवन्मुक्तिर्यभूत्स द्विजः पुनः ।५।
विप्रत्वे च कृतं तेन यद्भूयः सुमहात्मना ।
भरतेन मुनिश्रेष्ठ तत्सर्वं वक्तुक्मर्हसि ।६।

श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे भगवन् ! पृथिवी, समुद्र, नदी, ग्रह स्थिति आदि विषयक मेरे सब प्रश्नों को आपने कह दिया ।१। वह त्रैलोक्य भगवान् विष्णु के किस प्रकार आश्रित है और परमार्थ रूप ज्ञान ही किस प्रकार प्रधान है, यह सब भी आपने कह दिया ।२। परन्तु, भगवान् ! आपने जिस राजा भरत के विषय में पहले कहा था, उसके चरित्र को सुनने को मेरी इच्छा है, उसे कृपा-पूर्वक कहिये ।३। कहा जाता है कि वह राजा भरत निरन्तर योग-मग्न रहकर भगवान् में ध्यान लगाये शालग्राम क्षेत्र में निवास करते रहते थे ।४। परन्तु, पुण्य देश के वास और हरि-चिन्तन से भी वह मोक्ष को प्राप्त नहीं हुए, उन्हें ब्राह्मण रूप में पुनः जन्म ग्रहण करना पड़ा ।५। हे मुनिवर ! उन महात्मा भरत ने ब्राह्मण होकर क्या-क्या किया वह सब कृपा-पूर्वक बताइये ।६।

शालग्रामे महाभागो भगवन्न्यस्तमानसः ।
स उवास चिरं कालं मैत्रेय पृथिवीपतिः ।७।

अहिंसादिष्वशेषेषु गुणेषु गुणिनां वरः ।
अवाप परमां काष्ठां मनश्चापि संयमे ।८।
यज्ञेशाच्युत गोविन्द माधवानन्त केशव ।
कृष्ण विष्णो हृषीकेश वासुदेव नमोऽस्तुते ।९।
इति राजाह भरतो हरेर्नामानि केवलम् ।
नान्यज्जगाद मैत्रेय किञ्चित्स्वप्नान्तरेऽपि च ।
एतत्पदन्तदर्थं च विना नान्यदचिन्तयत् ।१०।
समित्पुष्पकुशादानं चक्रे देव क्रियाकृते ।
नान्यानि चक्रे कर्माणि निस्सङ्ग योगतापसः ।११।
जगाम सोऽभिषेकार्थमेकदा तु महानदीम् ।
सस्नौ तत्र तदा चक्रे स्नानस्यानन्तरक्रियाः ।१२।
अथाजगाम तत्तीर जलं पातुं पिपासिता ।
आसन्नप्रसवा ब्रह्मन्नेकैव हरिणी वनात् ।१३।
ततः समभवत्तत्र पीतप्राये जले तथा ।
सिंहस्य नादः सुमहान्सर्वप्राणिभयङ्करः ।१४।

श्री पराशरजी ने कहा–हे मैत्रेयजी ! उस महाभाग राजा भरत ने भगवान् का ध्यान करते हुए चिर काल तक शालग्राम क्षेत्र में निवास किय ।७। गुणियों में श्रेष्ठ उन भरत ने अहिंसादि गुणों के पालनपूर्वक मन को संयम रखकर परम श्रेष्ठता प्राप्त की ।८। हे यज्ञेश ! अच्युत ! गोविन्द ! माधव ! अनन्त ! केशव ! कृष्ण ! विष्णो ! हृषीकेश ! वासुदेव ! आपको नमस्कार है ।९। इस प्रकार राजा भरत केवल श्रीहरि के नामों का उच्चारण करते रहते थे। स्वप्न में भी वह इसी पद को जपते रहते और इसके अतिरिक्त कुछ भी चिन्तन न करते थे ।१०। वह सग-रहित, योगी और तपस्वी राजा प्रभु-पूजन के निमित्त समिध, पुष्प और कुशा मात्र एकत्र करते और इसके अतिरिक्त अन्य कोई कर्म नहीं करते थे ।११। एक दिन की बात है–उन्होंने नदी पर जाकर स्नान किया और फिर स्नान के बाद की क्रियाएँ की ।१२। इतने ही में उस नदी के

तट पर एक प्यासी हिरणी जल पीने के लिये आई, वह हिरणी आसन्न प्रसवा थी ।१३। वह जैसे ही जल पी चुकी, वैसे ही सब जीवों को भयभीत करने वाला भयंकर सिंहनाद सुनाई दिया ।१४।

ततः सा सहसा त्रासादाप्लुता निम्नगातटम् ।
अत्युच्च रोहणेनास्या नद्यां गर्भः पपात ह ।१५।
तमूह्यमानं वेगेन वीचिमालापरिप्लुतम् ।
जग्राह स नृपो गर्भात्पतितं मृगपोतकम् ।१६।
गर्भप्रच्युतिदोषेण प्रोत्तुङ्गक्रमणेन च ।
मैत्रेय सापि हरिणी पपात च ममार च ।१७।
हरिणीं तां विलोक्याथ विपन्नां नृपतापस ।
मृगपोतं समादाय निजमाश्रतमागतः ।१८।
चकारानुदिनं चासौ मृगपोतस्य वैः नृपः ।
पोषणं पुष्यमाणश्च स तेन ववृधे मुने ।१९।
चचाराश्रमपर्यन्ते तृणानि गहनेषु सः ।
दूरं गत्वा च शार्दूलत्रासादभ्याययौ पुनः ।२०।
प्रातर्गत्वातिदूरं च सायमायात्यथाश्रमम् ।
पुनश्च भरतस्याभूदाश्रमस्योटजाजिरे ।२१।

इससे वह अत्यन्त भयभीत हुई और उछलकर नदी तट पर आ गई । बहुत ऊँचे स्थान पर उछलने के कारण उसका गर्भ नदी के जल में जा गिरा ।१५। नदी की तरङ्गों में बहते हुए उस गर्भ से गिरे मृगशावक को राजा भरत ने पकड़ लिया ।१६। हे मैत्रेयजी ! गर्भपात होने और बहुत ऊँची छलांग मारने के कारण वह हिरणी भी पृथिवी पर गिर गई ।१७। उस हिरणी को मरी देखकर तपस्वी भरत उस मृग बालक को लेकर आश्रम पर आ गये ।१८। हे मुने ! राजा भरत उस मृगशावक का पालन पोषण करने लगे, जिससे वह उनसे पोषित हुआ और नित्य प्रति वृद्धि को प्राप्त होने लगा ।१९। वह बालक कभी उनके आश्रम के निकटवर्ती प्रदेश में चरा करता और कभी सुदूर जंगल में चला जाता और फिर

सिंहादि के डर से लौट आता ।२०। प्रातःकाल होने पर यदि दूर चला जाता तो भी सांयकाल होने पर आश्रम में लौटकर पर्णशाला के आँगन में लेट जाता ।२१।

तस्य तस्मिन्मृगे दूरसमीपपरिवर्तिनि ।
आसीच्चेतः समासक्त न ययावन्तो द्विज ।२२।
विमुक्तराज्यतनयः प्रोज्झिताशेषबान्धवः ।
ममत्वं स चकारोच्चैस्तस्मिन्हरिणबालके ।२३।
किं वृकैर्भक्षितो व्याघ्रैः किं सिंहेन निपातितः ।
चिरायमाणे निष्क्रान्ते तस्यासीदिति मानसम् ।२४।
एषा वसुमती तस्य खुराग्रक्षतकर्बुरा ।
प्रीतये मम जातोऽसौ क्व ममैणकबालकः ।२५।
विषाणाग्रेण मद्बाहु कण्डूयनपरो हि सः ।
क्षेमेणाभ्यागतोऽरण्यादपि मां सुखयिष्यति ।२६।
ते लूनशिखास्तस्य दशनैरचिरोन्द्गतैः ।
कुशाः काशा विराजन्ते वटवः सामगा इव ।२७।
इत्थं चिरगते तस्मिन्स चक्रे मानसं मुनिः ।
प्रीतिप्रसन्नवदनः पार्श्वस्थे चाभवन्मृगे ।२८।
समाधिभङ्गस्तस्यासीत्तन्मयत्वाट्टतात्मनः ।
सन्त्यक्ताराज्यभोगर्द्धिस्वजनस्यापि भूपतेः ।
चपल चपले तस्मिन्दूरग दूरगामिनि ।
मृगपोतेऽभवच्चित्तं स्थैर्यवत्तस्य भूपतेः ।३०।
कालेन गच्छता सोऽथ काल चक्रे महीपतिः ।
पितेव सास्रं पुत्रेण मृगपोतेन वीक्षितः ।३१।
मृगमेव तदाद्राक्षीत्यजन्प्राथानसावपि ।
तन्मयत्वेन मैत्रेय नान्यत्किञ्चिषचिन्तयत् ।३२।

इस प्रकार कभी निकट और कभी दूर चले जाने वाले उस मृग के प्रति राजा का मोह लग गया और वह अन्य विषयों से विरक्त हो गये ।२२। जिन्होंने राज्य, वैभव, पुत्र-कलत्र, बन्धु-बाँधव सब कुछ त्याग

दिया था, वही भरत उस मृग-शावक के मोह से भर गये ।२३। जब वह बाहर जाकर देर से लौटता तब उन्हें चिन्ता होती कि कहीं उसे कोई भेड़िया तो नहीं खा गया ? किसी सिंह ने तो नहीं धर दबाया ? ।२४। अहा उसके खुरों के चिन्ह बनने से यह भूमि कैसी चितकबरी लगती है। मेरी प्रसन्नता के लिये ही प्रकट हुआ वह मृग शावक आज न जाने किधर चला गया ? ।२५। क्या वह वन से सकुशल लौटेगा और अपने सीगों के अग्र भाग मेरे बाहुओं को खुजाकर मुझे सुख देगा ? ।२६। उसके अभी उत्पन्न हुए दाँतों से जिनकी शिखाएँ कट गई हैं, ऐसे यह कुश शिखा रहित ब्रह्मचारियों के समान कैसे विराज रहे हैं ।२७। उस मृग-शावक को गये हुए अधिक देर होने पर भरत इस प्रकार चिन्ता किया करते और जब वह लौटकर उसके पास आ जाता, तब उसे देखकर स्नेहवश उनका मुख खिल उठता था ।२८। इस प्रकार उसी में ऐसी आसक्ति रहने से राज्य, भोग, ऋद्धि और स्वजनों को भी छोड़कर आने वाले राजा भरत की समाधि में विघ्न उपस्थित हो गया ।२९। मृग के चंचल होने पर राजा का स्थिर चित्त भी तन्मय हो उठता और जब वह दूर चला जाता तब उनका चित्त भी उनके पास नहीं रहता था ।३०। कालान्तर में जब राजा भरत ने अपने प्राण का त्याग किया, तब वह मृग बालक, जैसे मरते हुए पिता को पुत्र सजल नयनों से देखता है, वैसे ही उन्हें देखता रहा ।३१। हे मैत्रेयजी ! प्राण त्याग करते समय राजा भी उस मृग को ही स्नेहपूर्वक देखते रहे और उसी में तन्मय चित्त रहने के कारण, उन से कुछ अन्य चिन्तन नहीं हो सका ।३२।

ततश्च तत्कालकृतां भावनां प्राप्य तादृशीम् ।
जम्बूमार्गे महारण्येजातो जातिस्मरो मृगः ।३३।
जातिस्मरत्वादुद्विग्नः संसारस्य द्विजोत्तम ।
विहाय मातरं भूयः शालग्राममुपाययौ ।३४।
शुष्कैस्तृणैस्तथा पर्णैः स कुर्वन्नात्मपोषणम् ।
मृगत्वहेतुभूतस्य कर्मणो निष्कृतिं ययौ ।३५।
तत्र चोत्सृष्टदेहोऽसौ जज्ञे जातिस्मरो द्विजः ।
सदाचारवतां शुद्धे योगिनां प्रवरे कुले ।३६।

सर्वविज्ञानसम्पन्नः सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ।
अपश्यत्स च मैत्रेय आत्मानं प्रकृतेः परम् ।३७।
आत्मनोऽधिगतज्ञानो देवादीनि महामुने ।
सर्वभूतान्यभेदेन स ददर्श तदात्मनः ।३८।

उस समय उसकी जो भावना थी, उससे वह जम्बू द्वीप के एक महावन में जाकर मृग रूप में जन्मे । इस जन्म में भी उन्हें पूर्व जन्म की याद बनी रही ।३३। उस पूर्व स्मृति के बने होने से वह संसार से विरक्त ही रहे और अपनी माता का त्यागकर शालग्राम क्षेत्र में निवास करने लगे ।३४। वहाँ शुष्क-पत्रादि के भक्षण द्वारा अपना जीवन-निर्वाह करते हुए वह अपने मृग-योनि प्राप्ति करने के कारणभूत कर्मों का क्षय करने लगे ।३५। फिर अपने उस देह को त्याग कर उन्होंने सदाचाररत योगियों के पवित्र वंश में ब्राह्मण रूप में जन्म लिया ।३६। हे मैत्रेयजी ! उस समय वह सर्व विज्ञानों के ज्ञाता और सभी शास्त्रों के मर्मज्ञ हुए और अपने आत्मा को प्रकृति से सर्वथा परे देखने लगे ।३७। हे महामुने ! यह आत्मज्ञानी होने के कारण देवतादि सब जीवों को अपने से भिन्न नहीं देखते थे ।३८।

न पपाठ गुरुप्रोक्तं कृतोपनयनः श्रुतिम् ।
न ददर्श च कर्माणि शास्त्राणि जगृहे न च ।३९।
उक्तोऽपि बहुशः किञ्चज्जडवाक्यमभाषत ।
तदप्यसंस्कारगुण ग्राम्यवाक्योक्तिसंश्रितम् ।४०।
अपध्वस्तवपुः सोऽपि मलिनाम्बरधृग्द्विजः ।
क्लिन्नदन्तान्तरः सर्वैः परिभूतः स नागरैः ।४१।
सम्मानना परां योद्धैः कुरुते यतः ।
जनेनावमतो योगी योसिद्धिं च विन्दति ।४२।
तस्ताच्चरेत वै योगी सतां धर्ममदूषयन् ।
जना यथावमन्येरन्गच्छेयुर्नैव संगतिन् ।४३।
हियण्यगर्भवचनं विचिन्त्येत्थं महातति ।
आत्मान दर्शयामास जडोन्मत्ताकृति जने ।४४।

भुङ्क्ते कुल्माषव्रीह्यादिशाकं वन्यं फलं कणान् ।
यद्यदाप्नोति सुबुह तदत्ते कालसंयमम् ।४५।

जब उपनयन संस्कार हो गया, तब गुरु के पढ़ाने पर भी वेद अथवा अन्य शास्त्रों को नहीं पढ़ता और न किसी को ही देखता था ।३९। जब उससे कोई प्रश्न करता, तब वह संस्कारहीन, सारहीन अथवा ग्रामीण वाक्य मिले हुये अस्फुट वचन कहता था ।४०। अस्वच्छ शरीर, मैले वस्त्र और मलीन दाँतों वाले उन ब्राह्मण को नागरिकों से सदा अपमानित होना पड़ता था ।४१। हे मैत्रेयजी ! योग-सिद्धि में सबसे बड़ी बाधा सम्मान है, सदा अपमानित होने वाला योगी शीघ्र ही सिद्धि को प्राप्त होता है ।४२। इसलिये सन्मार्ग को निर्दोष रखता हुआ योगी ऐसा आचरण करता रहे, जिसके कारण लोग उसका अपमान करें और संगति से बचते रहें ।४३। हिरण्यगर्भ के इन वचनों का स्मरण करते हुए वह महामति ब्राह्मण लोगों के सामने जड़ और उन्मत्त जैसे रहते थे ।४४। कुल्माष, व्रीहि आदि, शाक, वन के फल या अन्नकण आदि जो कुछ भी मिल जाता, यदि वह थोड़ा भी होता तो उसे अधिक मानकर आहार करते हुए अपना समय व्यतीत करने लगे ।४५।

पितर्युपरते सोऽथ भ्रातृव्यबान्धवैः ।
कारितः क्षेत्रकर्मादि कदन्नाहारपोषितः ।४६।
स तूक्षपीनावयवो जडकारी च कर्मणि ।
सर्वलोकोपकरणं बभूवाहारवेतनः ।४७।
तं तादृशतरांस्कार विप्राकृतिविचेष्टितम् ।
क्षत्ता पृषतराजस्य काल्यै पशुमकल्पयत् ।४८।
रात्रौ त समङ्कृत्य वैशसस्य विधानतः ।
अधिष्टितं महाकाली ज्ञात्वा योगेश्वरं तथा ।
ततः खड्गं समादाय निशितं निशि सा तथा ।
क्षत्तारं क्रूरकर्माणमच्छिनत्कण्ठमूलतः ।
स्वपार्षदयुता देवी पपौ रुधिरमुल्बणम् ।५०।

जब उनके पिता की मृत्यु हो गई, तब उनके भाई, भतीजे और बांधवगण निकृष्ट अन्न से उनका पोषण करते हुए, उनसे कृषिकार्य कराने लगे।४६। वह भी बैल के समान पुष्ट देह वाले और कर्म में जड़ के समान चेष्टा-रहित होने के कारण आहार मात्र प्राप्त करके सब कार्य यन्त्र के समान करते थे।४७। पृषतराज के सेवकों ने उन्हें ब्राह्मण वेश के विरुद्ध आचरण वाला तथा संस्कारहीन देखकर महाकाली की बलि के लिये विधिवत् सजाया परन्तु एक परम योगी को बलि रूप में उपस्थित देखकर स्वयं महाकाली ने अपने तीक्ष्ण खड्ग से उस क्रूर कर्म वाले राज सेवक का कण्ठ मूल सहित काटकर अपने पार्षदों सहित उसका रक्त पी लिया।४८ ५०।

ततस्सौवीरराजस्य प्रयातस्य महात्मनः।
विष्टिकर्तार्थ मन्येत विष्टियोग्योऽयमित्यपि।५१।
तं तादृशं महात्मानं भस्मच्छन्नमिवानलम्।
क्षत्ता सौवीरराजस्य विष्टयोग्यममन्यतः।५२।
स राजा शिविकारूढो गन्तुं कृततमतिर्दिजः।
बभूवेक्षुमतीतीरे कपिलर्षेवराश्रमम्।५३।
श्रेयः किमत्र संसारे दुःखप्राये नृणामिति।
प्रष्टुं तं मोक्षधर्मज्ञं कपिलाख्यं महामुनिम्।५४।
उवाह शिविकां तस्य क्षत्तृर्वचनचोदितः।
नृणां विष्टिगृहीतानामन्येषां सोऽपि मध्यगः।५५।
गृहीतो विष्टिना विप्रः सर्वज्ञानैकभाजनः।
जातिस्मरोऽसौ पापस्य क्षयकाम उवाह ताम्।५६।
ययौ जडमतिः सोऽथ युगामात्रावलोकनम्।
कुर्वन्मतिमतां श्रेष्ठस्तदन्ये त्वरितं ययुः।५७।

फिर एक दिन सौवीर नरेश कहीं जा रहे थे, उनके बेगारियों ने उन्हें बेगार के योग्य समझा।५१। राख में छिपे अग्नि के समान उनकी आकृति आदि देखकर राज सेवकों ने भी उन्हें बेगार करने के लिये उपयुक्त समझ लिया।५२। उन सौवीर नरेशने मोक्ष धर्मके जानने वाले महर्षि

कपिल से 'दुःखमय संसार में श्रेय कहाँ है, इस जिज्ञासा के समाधान पाने के विचार से पालकी पर चढ़कर उन महर्षि के आश्रम पर इक्षुमती नदी के तट पर जाने का निश्चय किया था ।५३-५४। उस समय राजसेवक के कहने से अन्य बेगारियों के साथ लगकर वह ब्राह्मण भी उनकी पालकी को उठाकर चले ।५५। अपने पूर्व जन्म की याद रखने वाले सम्पूर्ण विज्ञान के एक ही भाजन वह ब्राह्मण इस प्रकार बेगार द्वारा अपने पापमय प्रारब्ध का क्षय करने के लिये उस पालकी के वहन-कार्य में लगे ५६। वह जड़मति ब्राह्मण तो चार हाथ पृथिवी देखते हुए धीमी गति से चलते थे, परन्तु उनके अन्य सब साथी शीघ्रता पूर्वक चल रहे थे ।५७।

विलोक्य नृपतिः सोऽथ विषमां शिबिकागतिम् ।
किमेतदित्याह समं गम्यतां शिबिकावहाः ।५८।
पुनस्तथैव शिबिकां विलोक्य विषमां हि सः ।
नृपः किमेतदित्याह भवद्भिर्गम्यतेऽन्यथा ।५९।
भूपतेर्वदतस्तस्य श्रुत्वेत्थं बहुशो वचः ।
शिबिकावाहकाः प्रोचुरयं यातीत्यसत्वरम् ।६०।
किं श्रान्तोऽस्यल्पमध्वानं त्वयोढा शिबिका मम ।
किमायासहो न त्वं पीवानसि निरीक्ष्यसे ।६१।
नाहं पीवान्न चैवोढा शिबिका भवतो मया ।
न श्रान्तोऽस्मि न चायासो सोढव्योऽस्ति महीपते ।६२।
प्रत्यक्षं दृश्यसे पीवानद्यापि शिबिका त्वयि ।
श्रमश्च भारोद्वहने भवत्येव हि देहिनाम् ।६३।

इस प्रकार उस पालकी की समान गति न देखकर राजा बोले—अरे पालकी चलाने वालो ! यह क्या कर रहे हो, एक-सी चाल से चलो ।५८। उसके बाद भी उसकी वैसी ही विषम गति देखकर राजा ने कहा-अरे क्या करते हो ? इस प्रकार विषम भाव से क्यों चल रहे हो ? ।५९। इस प्रकार राजा द्वारा बारम्बार टोके जाने पर पालकी चलाने वालों ने कहा-हमसे यह एक व्यक्ति बहुत मंदगति से चलता है ।६०। राजा बोले-

अरे तूने तो इस पालकी को अभी थोड़ दूर ही ढोया है, क्या इतने में ही श्रान्त हो गया ? देखने में तो तू इतना मोटा ताजा है, फिर क्या तू इतना परिश्रम भी नहीं कर सकता ? ।६१। तब उन ब्राह्मण ने कहा—हे राजन् ! मैं न तो मोटा-ताजा हूँ और न मैंने आपकी पालकी ही उठाई हुई है, न मैं थका हूँ और मुझे परिश्रम करने की ही आवश्यकता है ।६२। राजा ने कहा—अरे, तू तो प्रत्यक्ष ही मोटा-ताजा दिख रहा है, इस समय भी यह पालकी तेरे कन्धे पर रखी है, और भार वहन करने से परिश्रम भी होता ही है ।६३।

प्रत्यक्ष भवता भूप यद्दृष्टं मम तद्वद ।
वलवानवलश्चेति वाच्यं पश्चाद्विशेषणम् ।६४।
त्वयोढा शिबिका चेति त्वय्यद्यापि च संस्थिता ।
मिथ्यैतदत्र भवाञ्छृणोतु वचनं मम ।६५।
भूमौ पादयुगं त्वास्ते जङ्घे पादद्वये स्थिते ।
ऊर्वोर्जङ्घाद्वयावस्थौ तदाधार तथोदरम् ।६६।
वक्षःस्थलं तथा बाहु स्कन्धौ चोरसंस्थितौ ।
स्कन्धाश्रितेय शिबिका मम भरोऽत्र किं कृतः ।६७।
शिबिकायां स्थितं चेद वपुस्त्वदुपलक्षितम् ।
तत्र त्वमहमप्यत्र प्रोच्यते चेदमन्यथा ।६८।
अहं त्वं तथान्ये चभूतैरुह्याम पार्थिव ।
गुणप्रवाहपतितो भूतवर्गोऽपि यात्ययम् ।६९।
कर्मवश्या गुणाश्चैते सत्वाद्याः पृथिवीपते ।
अविद्यासञ्चितं कर्म तच्चाशेयेषु जन्तुषु ।७०।

इस पर ब्राह्मण ने कहा—हे राजन् ! तुम प्रत्यक्ष क्या देख रहे हो ? यही मुझे बताओ । उसके बलवान् या निर्बल विशेषणों की बात तो फिर कहना ।६४। तुम्हारा यह कहना मिथ्या है कि तूने मेरी पालकी उठाई है, इस समय भी वह तेरे कन्धे पर रखी है । अब तुम मेरा वचन सुनो ।६५। पृथिवी पर दोनों पाँव, पर ऊरु और ऊरुओं पर उदर स्थित है ।६६। उदर पर वक्षःस्थल, बाहु और कंधे हैं और उन कन्धों

पर यह पालकी रखी है तो इसका भार मेरे ऊपर कहाँ है ? ।६७। इस पालकी में तुम्हारा बताया जाने वाला देह रखा है । यथार्थ में तो तुम वहाँ हो और मैं यहाँ हूँ ।६८। हे राजन् ! तुम अथवा अन्यान्य सब प्राणी पंच-भूतों द्वारा ही वहन किये जाते हैं और यह भूतवर्ग भी गुणों द्वारा प्रवाह हो रहा हैं ।६९। हे भूपते ! यह सत्वादि गुण कर्मों के आधीन हैं और सब प्राणियों में कर्म की उपत्ति अविद्या से हुई है ।७०।

आत्मा शुद्धोऽक्षरः शान्तो निर्गुणः प्रकृतेः परः ।
प्रवृद्धयपचयौ नास्य एकस्याखिलजन्तुषु ।७१।
यदा नोपचयस्तस्य न चैवापचयो नृप ।
तदा पीवानसीतीत्थं कया युक्त्या त्वयेरितम् ।७२।
भूपादजङ्घाकटयूरुजठरादिषु संस्थिते ।
शिबिकेयं यथा स्कन्धे तथा भारः समस्त्वया ।७३।
तथान्यैर्जन्तुभिर्भूप शिबिकोढा न केवलम् ।
शैलद्रुमगृहोत्थोऽपि पृथिवी सम्भवोऽपि वा ।७४।
यदा पुंसः पृथग्भावः प्राकृतैः कार्णैर्नृप ।
सोढव्यस्तु तदायासः कथं वा नृपते मया ।७५।
यद्द्रव्या शिबिका चेयं तद्द्रव्यो भूतसंग्रहः ।
भवतो मेऽखिलस्यास्यः समत्वेनोपबृंहितः ।७६।
एवमुक्त्वाभवन्मौनी स वहञ्छिबिकां द्विज ।
सोऽपि राजावतीर्योर्व्यां तत्पादौ जगृहे त्वरन् ।७७।

परन्तु आत्मा शुद्ध, अक्षर, शान्त, गुण-रहित तथा प्रकृति से परे है तथा सब प्राणियों में एक ही वह ओत-प्रोत है, इसलिये उसका न कभी वृद्धि है और न क्षय है ।७१। हे राजन् ! जब उसके उपचय या अपचय ही नहीं होते तो तुमने यह किस आधार पर कहा कि तू तो मोटा-ताजा है ।७२। यदि भूमि, पाँव जाँघ, कटि उरु और उदर पर स्थित कंधों पर रखी हुई यह पालकी मेरे बोझ रूप हो सकती है तो यह तुम्हारे लिये भी उसी प्रकार हो सकती है ।७३। इसी युक्ति से अन्य सभी प्राणियों ने

केवल यह पालकी ही नहीं सम्पूर्ण पर्वत, वृक्ष, घर और भूमि आदि का बोझ उठा रखा है ।७४। हे नृप ! जब प्रकृति द्वारा उत्पन्न होने वाले कारणों से पुरुष का पृथक् भाव है, तो मुझे उससे थकान भी कैसे हो सकती है ।७५। जिस-जिस द्रव्य से यह पालकी बनी है, उसी-उसी से तुम्हारा, मेरा और अन्य सभी का शरीर बना है, जिसमें ममता का आरोप मात्र है ।७६। श्री पराशरजी ने कहा—यह कह कर वह ब्राह्मण उस पालकी को कंधे पर रखे हुए ही मौन हो गये और राजा तत्काल भूमि पर उतर आये और उन्होंने ब्राह्मण के चरण पकड़ लिये ।७७।

भो भो विसृज्य शिबिकां प्रसादं कुरु मे द्विज ।
कथ्यतां को भवानत्र जाल्मरूपधरः स्थितः ।७८।
यो भवान्यन्निमित्तं वा यदागमनकारणम् ।
तत्सर्वं कथ्यतां विद्वन्मह्यं शुश्रूषवे त्वया ।७९।
श्रूयतां सोऽहमित्येतद्वक्तुं भूप न शक्यते ।
उपभोगनिमित्तं च सर्वत्रागमनक्रिया ।८०।
सुखदुःखोपभोगो तु तौ देहाद्युपपादकौ ।
धर्माधर्मोद्भवौ भोक्तुं जन्तुर्देहादिमृच्छति ।८१।
सर्वस्यैव हि भूपाल जन्तोः सर्वत्र कारणम् ।
धर्माधर्मौ यतः कस्मात्कारणं पृच्छ्यते त्वया ।८२।
धर्माधर्मौ न सन्देहस्सर्वकार्येषु कारणम् ।
उपभोगनिमित्तं च देहाद्देहान्तरागमः ।८३।
यस्त्वेवद्भवता प्रोक्तं सोऽहमित्येतदात्मनः ।
वक्तुं न शक्यते श्रोतुं तन्मेच्छा प्रवर्त्तते ।८४।
योऽस्ति सोऽहमिति ब्रह्मन्कथं वक्तुं न शक्यते ।
आत्मन्येव न दोषाय शब्दोऽहमिति यो द्विज ।८५।

राजा ने कहा-हे ब्राह्मण ! आप इस पालकी को छोड़ने की कृपा करिये ! हे भगवन् ! आप इस छद्मवेश में कौन हैं, यह मुझे बताइये ७८। हे विद्वन् बताइये आप कौन हैं ? यहाँ किस कारण आये हैं ? मुझे आप के विषय में जानने की बड़ी इच्छा हो रही है ।७९। ब्राह्मण ने कहा—

हे राजन् ! मैं कौन हूँ यह कह नहीं सकता। इसके अतिरिक्त मेरे यहाँ आने का कारण पूछा, तो आवागमनादि क्रियाएँ कर्म-फल भोग के लिये होती हैं।८०। सुख-दुख का भोग शरीरादि को प्राप्त करता है और धर्म-अधर्म से उत्पन्न सुख-दुख का भोग करने के लिये ही प्राणी को देहादि ग्रहण करने होते हैं।८१। हे राजन ! यह धर्म-अधर्म ही सब जीवों की समस्त अवस्थाओं के कारण है, फिर मेरे ही आने के कारण को पूछने में क्या विशेषता है ? ।८२। राजा ने कहा-सब कार्यों में धर्म-अधर्म ही ही कारण है तथा कर्मफल का भोग करने के निमित्त ही जीव का देहान्तर होता है, इसमें संदेह नहीं है।८३। परन्तु आपने कहा कि मैं कौन हूँ यह नहीं कह सकता, इसी को सुनने की मेरी इच्छा है ८४। हे ब्रह्मन् ! जो है वही मैं हूँ, यह क्यों नहीं कह सकते ? यह अहं शब्द तो आत्मा को दूषित करने का कारण नहीं है।८५।

शब्दोऽहमिति दोषाय नात्मन्येषतथैव तत् ।
अनात्मन्यात्मविज्ञान शब्दो वा भ्रान्तिलक्षणः ।८६।
जिह्वा ब्रवीत्यमिति दन्तोष्ठौ तालुके नृप ।
एते नाह यतः सर्वे वाङ् निष्पादनहेतवः ।८७।
किं हेतुभिर्वदत्येषा वागेवाहमिति स्वयम् ।
अत पीवानसीत्येतद्वक्तुमित्थं न युज्यते ।८८।
पिण्डः पृथग्यतः पुंसः शिरः पाण्यादिलक्षणः ।
ततोऽहमिति कुत्रैतां संज्ञां राजन्करोम्यहम् ।८९।
यत्तन्योऽस्ति परः कोऽपि मत्तः पार्थिवसत्तम ।
यद्यन्योऽस्ति परः कोऽपि मत्तः पार्थिवसत्तम ।
तदैषोऽहमयं चान्यो वक्तुमेवमपीष्यते ।९०।
यदा समस्तदेहेषु पुमानेको व्यवस्थितः ।
तदा हि को भवान्सोऽहमित्सेतद्विफलं वचः ।९१।

ब्राह्मण ने कहा-हे राजन् ! अहं शब्द से आत्मा में दोष नहीं आता, यह कहना यो यथार्थ है, परन्तु अहं शब्द अनात्म में आत्मत्व की भ्रांति कराने वाला होने से दोष का कारण हो जाता है।८७। हे राजन् ! अहं शब्द जिह्वा, दाँत, ओष्ठ और तालु से उच्चारण किया जाता है,

परन्तु यह सब उसके उच्चारण के कारण तो हैं, परन्तु स्वयं ही अह नहीं हैं।८७। तो क्या जिह्वादि कारणों के द्वारा वाणी ही अपने आप को अह कहती है ? यदि नहीं तो फिर 'तू मोटा-ताजा है' ऐसा कहना भी ठीक नहीं है।८८। मस्तक, हाथ पाँव आदि रूप वाला यह देह भी आत्मा से भिन्न ही है। इसलिये इस अहं शब्द को प्रयुक्त किया जाय ?।८९। हे राजाओं में श्रेष्ठ ! यदि मुझ से भिन्न कोई अन्य सजातीय ही आत्मा होता तो भी यह मैं हूँ यह भिन्न है ऐसा कह सकते थे।९०। परन्तु जब समस्त देहों में एक ही आत्मा स्थित है, तब तुम कौन और मैं कौन, यह सब निःप्रयोजन ही है।९१।

त्वं राजा शिविका येयमिमे वाहाः पुरः सराः।
अयं च भवतो लोको न सदेतन्नृपोच्यते।९२।
वृक्षाद्दारु ततश्चेय शिविका त्वदधिष्ठिता।
कि वृक्षसंज्ञा वास्याः स्याद्दारुसंज्ञाथ वा नृप।९३।
वृक्षारूढो महाराजो नायं वदति ते जनः।
न च दारुणि सर्वस्त्वां ब्रवीति शिबिकागतम्।९४।
शिबिका दारुसङ्घातो रचनास्थितिसंस्थितः।
अन्विष्यतां नृपश्रेष्ठ तद्भेदे शिबिका त्वया।९५।
एवं छत्रशलाकानां पृथग्भावे विमृश्यताम्।
क्व यातं छत्रमित्येष न्यायस्त्वयि तथा मयि।९६।
पुमान् स्त्री गौरजो वाजी कुञ्जरो विहगस्तरुः।
देहेषु लोकसञ्ज्ञेयं विज्ञेया कर्महेतुषु।९७।
पुमान्न देवो न नरो न पशुर्नचपादपः।
शरीराकृतिदास्तु भूपैत कर्मयोनयः।९८।

तुम राजा हो, यह पालकी तुम्हारी है, यह पालकी ढोने वाले हैं, यह सब तुम्हारी प्रजा हैं—इन सब वाक्यों में से यथार्थ रूप में तो कोई भी सत्य नहीं है।९२। हे राजन् ! वृक्ष के काष्ठ से तेरी पालकी बनी तो इस पालकी को काष्ठ कहें अथवा वृक्ष ?।९३। परन्तु महाराज वृक्ष पर बैठे हैं ऐसा कोई नहीं कहता और न काष्ठ पर ही बैठे हुए बताता है, सभी

पालकी में बैठे हुए कहते हैं ।९४। हे नृपोत्तम ! रचना विशेष से एकत्रित हुआ काष्ठ-समूह ही तो यह पालकी है । यदि यह काष्ठ से भिन्न है तो काष्ठ को इससे पृथक् करके उसकी खोज करो ।९५। उसी प्रकार छत्र-शलाकाओं को पृथक् रख कर सोचो कि फिर वह छत्र कहाँ रहता है ? यही न्याय अपने और मेरे देह के प्रति रखो ।९६। पुरुष, स्त्री, गौ, बकरा, घोड़ा हाथी, पक्षी और वृक्षादि लोक संज्ञाएँ कर्म हेतु वाले देह में माननी चाहिये ।९७। हे भूपते ! आत्मा तो देवता, मनुष्य, पशु, वृक्ष आदि कुछ भी नहीं हैं । यह सब तो कर्म से उत्पन्न देहों के आकृति-भेद ही हैं ।९८।

वस्तु राजेति यल्लोकेयच्च राजभटात्मकम् ।
थतान्यच्च नृपेत्थं तन्न सत्सङ्कल्पनामयम् ।९९।
यत्तु कालान्तरेणापि नान्यां संज्ञामुपैति वै ।
परिणामादिसम्भूतां तद्वस्तु नृप तच्च किम् ।१००।
त्वं राजा सर्वलोकस्य पितुः पुत्रो रिपो रिपुः ।
पत्न्याः पतिः पिता सूनोः किं त्वां भूप वदाम्यहम् ।१०१।
त्वं किमेतच्छिरः किं नु ग्रीबा तव तथोदरम् ।
किमु पादादिकं त्वं वा तवैतत्किं महीपते ।१०२।
समस्तावयवेभ्यस्त्वं पृथग्भूय व्यवस्थितः ।
कोऽहमित्यत्र निपुणो भूत्वा चिन्तय पार्थिव ।१०३।
एवं व्यवस्थिते तत्त्वे मयाहमिति भाषितुम् ।
पृथक्करणनिष्पाद्यं शक्यते नृपते कथम् ।१०४।

संसार में राजा, राजा के वीर सैनिक तथा अन्यान्य सभी वस्तुएँ यथार्थ में सत्य नहीं हैं, वह तो निरी कल्पना है ।९९। परमार्थ वस्तु तो वही है, जिसके परिमाणादि के कारण से होने वाली संज्ञा कालान्तर के उपस्थित होने पर भी नहीं होती । हे नृप ! वह वस्तु क्या है ? ।१००। सब प्रजाजनों के लिये तुम राजा हो, पत्नी के लिये पति हो, पुत्र के लिये पिता हो तथा शत्रु के लिये शत्रु हो । अब हे भूपते ! तुम्हीं बताओ कि मैं तुम्हें क्या कहूँ ? ।१०१ हे राजन् ! तुम शिर, ग्रीवा, उदर अथवा पाँव

में से कुछ हो ? और क्या यह शिर आदि भी तुम्हारे अपने हैं ? ।१०२। तुम इन सब अवयवों से भिन्न हो इसलिये यत्न पूर्वक सोचो कि मैं कौन हूँ ।१०३। हे राजन् ! इस प्रकार व्यवस्थित आत्म तत्व को सबसे पृथक करके ही उसका प्रतिपादन किया जा सकता है, तो मैं उसे अहं शब्द द्वारा किस प्रकार कह सकता हूँ ।१०४।

चौदहवाँ अध्याय

—:❀❀:—

निशम्य तस्योति वचः परमार्थसमन्वितम् ।
प्रश्रयावनतौ भूत्वा तमाह नृपर्पिर्द्विजम् ।१।
भगवन्यत्त्वया प्रोक्तं परमार्थमयं वचः ।
श्रूते तस्मिन्भ्रमन्तोव मनसो मम वृत्तयः ।२।
एतद्विवेकविज्ञानं यदशेषेषु जन्तुषु ।
भवता दर्शितं विप्र तत्परं प्रकृतेर्महत् ।३।
नाहं वहामि शिबिकां शिबिका न मयि स्थिता ।
शरीरमन्यदस्मत्तो येनेयं शिबिका धृता ।४।
गुणप्रवृत्त्या भूतानां प्रवृत्तिः कर्मचोदिता ।
प्रवर्तन्ते गुणा ह्येते किं ममेति त्वयोदितम् ।५।
एतस्मिन्परमार्थज्ञ मम श्रोत्रपथं गते ।
मनो विह्वलतामेति परमार्थार्थितां गतम् ।६।
पूर्वमेव महाभागं कपिलर्षिमहं द्विज ।
प्रष्टुमभ्युद्यतो गत्वा श्रेयः किं त्वत्र शंस मे ।७।
तदन्तरे च भवता यदेतद्वाक्यमीरितम् ।
तनैव परमार्थार्थं त्वयि चेतः प्रधावति ।८।

श्री पराशरजी ने कहा--ब्राह्मण के यह परमार्थ युक्त वचन सुनकर विनय से झुकते हुए राजा ने उनसे कहा ।१। राजा बोले-हे भगवन्

आपके कहे हुए परमार्थमय वचनों को सुनकर मेरी मनो-वृत्तियां में भ्रांति आगई है ।२। हे ब्रह्मन् ! सम्पूर्ण प्राणियों में व्याप्त जिस असंग विज्ञान का आपने मुझे दिग्दर्शन कराया है वह अवश्य ही प्रकृति से परे ब्रह्म है ।३। परन्तु, आपने जो यह कहा कि मैं पालकी को नहीं ढो रहा हूँ पालकी मेरे ऊपर नहीं है अथवा जिस देह ने इसे उठाया हुआ है, वह मुझसे भिन्न है । गुणों की प्रेरणा से प्राणियों की प्रवृत्ति होती है और गुण कर्मों के द्वारा प्रेरित होते हैं तो इसमें मेरा कर्त्तृत्व कैसे माना जायगा ? ४-५। हे परमार्थ के ज्ञाता ! यह सुनते ही मेरा चित्त परमार्थ को जानने के लिये अत्यन्त उत्कंठित हो रहा है ।६। हे द्विज ! 'संसार स्थित मनुष्यों का श्रेय' पूछने के लिये ही मैं महाभाग महर्षि कपिल के पास जाने को तत्पर हूँ ७। परन्तु मार्ग में ही आपके वचन सुनकर परमार्थ को जानने की अभिलाषा से मेरा चित्त आपके प्रति झुक गया है ।८।

कपिलर्षिर्भगवत; सर्वभूतस्य वै द्विज ।
विष्णोरंशो जगन्मोहनाशायोर्वीमुपागतः ।९।
स एव भगवन्नूनमस्माकं हितकाम्यया ।
प्रत्यक्षतामत्र गतो तथैतद्भवतोच्यते ।
तन्मह्यं प्रणताय त्वं लच्छ्रेयः परमं द्विज ।
तद्वदाखिलविज्ञानजलवीच्युदधिर्भवान् ।११।
भूप पृच्छसि किं श्रेयः परमार्थं नु पृच्छसि ।
श्रेयांस्यपरमार्थानि अशेषाणि च भूपते ।१२।
देवातारानं कृत्वा धनसम्पदमिच्छति ।
पुत्रानिच्छति राज्यं च श्रेयस्तस्यैव तन्नृप ।१३।
कर्म यज्ञात्मकं श्रेयः फलं स्वर्गाप्तिलक्षणम् ।
श्रेयः प्रधान च फले तदेवानभिसहिते ।१४।
आत्मा ध्येयः सदा भूप योगयुक्तैस्तथा परम ।
श्रेयस्तस्यैव संयोगः श्रेयो यः परमात्मनः ।१५।

हे द्विज ! महर्षि कपिल सर्वात्मक भगवान् विष्णु के ही अंश हैं. वह जगत् के मोह को नष्ट करने के लिये ही पृथ्वी पर अवतरित हुए हैं ९।

परन्तु आपकी इस प्रकार की वाणी सुनकर मुझे निश्चय हो रहा है कि वही भगवान् कपिल मेरा हित करने की इच्छा से यहाँ आपके रूप में प्रकट हुए हैं ।१०। इसलिये हे द्विज ! जिसमें परम श्रेष्ठ हो, वह आप मुझे प्रसन्नता से बताईये। आप तो सम्पूर्ण विज्ञान तरंगों से सम्पन्न समुद्र के समान हैं ।११। ब्राह्मण ने कहा–हे भूपते ! तुम श्रेय जानना चाहते हो अथवा परमार्थ ? क्योंकि श्रेय तो सभी अपरमार्थिक हैं ।१२। हे राजन् ! देवताओं की आराधना के द्वारा जो मनुष्य धन, सम्पत्ति, पुत्र, राज्यादि की कामना करता है, उसके लिये तो उनकी प्राप्ति ही परम श्रेय है ।१३। स्वर्ग-प्राप्ति रूप फल वाले यज्ञादिक कर्म भी श्रेय हैं, परन्तु प्रमुख श्रेय तो कर्म के फल की कामना न करने में है ।१४। इसलिये हे राजन् ! योगी पुरुष को तो प्रकृति आदि से परे उस आत्मा का ही चिन्तन करना चाहिये, क्योंकि उसी का संयोग रूप श्रेय यथार्थ श्रेय हैं ।१५।

श्रेयांस्येवमनेकानि शतशोऽथ सहस्रशः ।
सन्त्यत्र परमार्थस्तु न त्वेते श्रूयता च मे ।१६।
धर्माय त्यज्यते किन्नु परमार्थो धनं यदि ।
व्ययश्च क्रियते कस्मात्कामप्राप्त्युपलक्षणः ।१७।
पुत्रश्चेत्परमार्थः स्यात्योऽप्यन्यस्य नरेश्वर ।
परमार्थभूतः सोऽन्यस्य परमार्थो हि तत्पिता ।१८।
एवं न परमार्थोऽस्ति जगत्यस्मिश्चराचरे ।
परमार्थो हि कार्याणिानामशेषतः ।१९।
राज्यादिप्राप्तिरत्रोक्ता परमार्थतया यदि ।
परमार्था भवन्त्यत्र न भवन्ति च वै ततः ।२०।
ऋग्यजुः सामनिष्पाद्यं यज्ञकर्म मतं तव ।
परमार्थभूतं तत्रापि श्रूयतां गदतो मम ।२१।
यत्तु निष्पाद्यते कार्यं मृदा कारणभूतया ।
तत्कारणनुगमनाज्ज्ञायते नृप मृण्मयम् ।२२।

एवं विनाशिभिर्द्रव्यैः समिदाज्यकुशादिभिः ।
निष्पाद्यते क्रिया या तु सा भवित्री विनाशिनी ।२३।

इस प्रकार श्रेय सैकड़ों-सहस्रों भाँति के हैं, परन्तु यह सब परमार्थिक नहीं हैं; अब मैं परमार्थ कहता हूँ--उसे सुनो ।१६। यदि धन को परमार्थ समझें तो धर्म के लिए उसका त्याग क्यों न करें? और इच्छित भोगों की प्राप्ति के लिए उसका व्यय क्यों करें? ।१७। यदि पुत्र को परमार्थ कहें तो वह अन्य का परमार्थ भूत है और उसका पिता भी अन्य का पुत्र होने से उसका परमार्थ हुआ ।१८। इसलिये इस चराचर विश्व में पिता का कार्य रूप पुत्र भी परमार्थ सिद्ध नहीं होता । यदि ऐसा हो जाय तो सभी कारणों के कार्य परमार्थ ही न बन जाँय ! ।१९। यदि राज्यादि की प्राप्ति को परमार्थ कहें तो यस सदैव पास नहीं रहते, इसलिए यह भी परमार्थ नहीं हो सकते ।२०। यदि ऋक् यजुः साम रूप वेदत्रयी से सम्पन्न होने वाले यज्ञ को परमार्थ समझें तो उसके विषय में भी मेरी बात सुनो ।२१। हे राजन् ! जो वस्तु कारण रूपा मिट्टी का कार्य होती है (जैसे घड़ा इत्यादि), वह वस्तु कारण की अनुगामिनी होने से मिट्टी ही समझी जाती है ।२२। इसलिए जो कर्म समिधा, घृत और कुशादि नष्ट होने वाले पदार्थों से सम्पन्न होता है वह भी नष्ट होने वाला होगा ।२३।

अनाशी परमार्थश्च प्राज्ञैरभ्युपगम्यते ।
तत्तु नाशि न सन्देहो नाशिद्रव्योपपादितम् ।२४।
तदेवाफलद कर्म परमार्थो मतस्तव ।
मुक्तिसाधनभूतत्वात्परमार्थो न साधनम् २५।
ध्यानं चैवात्मनो भूप परमार्थाशब्दितम् ।
भेदकारि परेभ्यस्तु परमार्थो न भेदवान् ।२६।
परमात्मात्मनोर्योगः परमार्थ इतिष्यते ।
मिथ्यैतदन्यद्द्रव्य हि नति तद्द्रव्यतां यतः ।२७।
तस्माच्छ्रेयांस्यशेषाणि नृपैतानि न संशयः ।
परमार्थस्तु भूपाल सङ्क्षेपाच्छ्रूयतां मम ।२८।

एको व्यापी समः शुद्धो निर्गुणः प्रकृतेः परः ।
जन्मवृद्ध्यादिरहित आत्मा सर्वगतोऽव्ययः ।२९।
परज्ञानमयोऽसद्भिर्नामजात्यादिभिर्विभुः ।
न योगवान्न युक्तोऽभून्नैव पार्थिव योक्ष्यते ।३०।

ज्ञानीजन परमार्थ को अविनाशी कहते हैं और नाशवान द्रव्यों से सम्पन्न होने के कारण कर्म नाशवान हैं, उसमें संदेह नहीं है । २४। यदि फल की आशा से रहित निष्काम कर्म को परमार्थ कहें तो वह मोक्ष रूप फल का साधक होने से ही, परमार्थ नहीं हो सकता । २५ । यदि शरीरादि से आत्मा की भिन्नता विचार कर उसके चिंतन को परमार्थ कहें तो वह अनात्मा से आत्मा का भेद करने वाला है और परमार्थ भेद रहित है । २६ । यदि परमात्मा और जीवात्मा के संयोग को परमार्थ कहें तो द्रव्य से संयोग नहीं हो सकता, इसलिए हे राजन् ! यह सभी श्रेय हैं । अब जो परमार्थ है, उसे संक्षित रूप से सुनो ।२८। आत्मा एक है, वह सर्वव्यापी, सम, शुद्ध, निर्गुण, प्रकृति से परे तथा जन्म-वृद्धि आदि से रहित, सर्वगामी और अव्यय है ।२९। हे राजन् ! वह परम् ज्ञानमय है, असत् नाम तथा जाति आदि से वह कभी भी संयुक्त होने वाला नहीं है ।३०।

तस्यात्मपरदेहेषु सतोऽप्येकमयं हि यत् ।
विज्ञानं परमार्थोऽसौ द्वैतिनोऽतथ्यदर्शिनः ।३१।
वेणुरन्ध्रप्रभेदेन भेदः षड्जादिसंज्ञितः ।
अभेदव्यापिनो वायोस्तथास्य परमात्मनः ।३२।
एकस्वरूपभेदश्च बाह्यकर्मप्रवृतिजः ।
देवादिभेदेऽपध्वस्ते नास्त्येवावरणोहि सः ।३३।

वह आत्मा अपने तथा अन्यन्य प्राणियों के देहों में स्थित रहता हुआ भी एक है—इस प्रकार का विशेष ज्ञान ही परमार्थ है जो लोग द्वैत भावना वाले हैं वे अपरमार्थ का दर्शन करते हैं ।३ । जैसे अभिन्न भाव वाले एक ही वायु के द्वारा बाँसुरी के छेदों के भेद से षड्ज आदि विभिन्न

भेद हो जाते हैं वैसे एक ही परमात्मा के अनेक भेद जान पड़ते हैं ।३२। एक रूप आत्मा के अनेक भेद वाह्य शरीरादि की कर्म प्रवृत्ति से हुए हैं। देवादि शरीरों के भेद को जान लेने पर वह भेद ज्ञान नष्ट हो जाते हैं, क्योंकि जब तक अविद्या का आवरण रहता है तभी तक वह स्थित रहता है ।३३।



पंद्रहवाँ अध्याय

इत्युक्ते मौनिनं भूयश्चिन्तयानं महीपतिम् ।
प्रत्युवाचाथ विप्रोऽसावद्वैतान्तर्गतां कथाम् ।१।
श्रूयतां नृपशार्दूल यद्गीतमृभुणा पुरा ।
अवबोधं जनयता निदाधस्य महात्मनः ।२।
ऋभुर्नामाभवत्पुत्रो ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
विज्ञाततत्वसद्भावो निसर्गादेव भूपते ।३।
तस्य शिष्यो निदाघोऽभूत्पुलस्त्यतनयः पुरा ।
प्रादादशेषविज्ञानं स तस्मै परया मुदा ।४।
अवाप्तज्ञानतन्त्रस्य न तस्याद्वैतवासना ।
स ऋभुःतर्कयामास निदाघस्य नरेश्वर ।५।
देविकायास्तटे वीरनगरं नाम वै पुरम् ।
समृद्धिमतिरम्यं च पुलस्त्येन निवेशितम् ।६।
रम्योपवनपर्यन्ते स तस्मिन्पार्थिवोत्तम ।
निदाघो नाम योगज्ञ ऋभुशिष्योऽवसत्पुरा ।७।

श्री पराशरजी ने कहा- हे मैत्रेयजी ! यह सुनकर राजा मौन हुए मन ही मन सोचने लगे। यह देखकर उन ब्राह्मण ने राजा को अद्वैत विषयक यह वृतान्त सुनाया ।१। ब्राह्मण ने कहा--हे नृपशार्दूल ! पूर्वकाल की बात हैं- महर्षि ऋभु ने महात्मा निदाघ को जो उपदेश दिया था, उसे

श्रवण करो ।२। हे राजन् ! परमेष्ठी ब्रह्माजी का जो ऋभु नामक पुत्र था, वह स्वभाव से ही परमार्थ तत्व का ज्ञाता था ।३। महर्षि पुलस्त्य का पुत्र निदाघ उनका शिष्य था । उसे अत्यन्त प्रसन्न होकर महर्षि ऋभु ने तत्वोपदेश दिया ।४। हे नरेश्वर ! उस समय ऋभु को प्रतीत हुआ कि सम्पूर्ण शास्त्रों का ज्ञान होने पर भी निदाघ अद्वैत के प्रति निष्ठावान नहीं हैं ।५। देविका-नदी के किनारे पुलस्त्यजी ने वीर नगर नामक एक अति सुरम्य और समृद्ध नगर की स्थापना की थी ।६। वह नगर उपवनादि से सुशोभित था, जिसमें योग- वेत्ता ऋभु-शिष्य निदाघ निवास करता था ७।

दिव्ये वर्षसहस्रे तु समतीतेऽस्य तत्पुरम् ।
जगाम स ऋभुः शिष्यं निदाघमवलोककः ।८।
स्थितस्तेन गृहीतार्घ्यो निजवेश्म प्रवेशितः ।९।
प्रक्षायिताङ्घ्रिपाणिं च कृतासनपरिग्रहम् ।
उवाच स द्विज श्रेष्ठो भुज्यतामिति सादरम् ।१०।
भो विप्रवर्य भोक्तव्यां यदन्नं भवतो गृहे ।
तत्कथ्यतां कदन्नेषु न प्रीतिः सततं मम ।११।
सक्तुयावकवाटयानामपूपानां च मे गृहे ।
यद्रोचते द्विजश्रेष्ठ तत्वं भुङ्क्ष्व यथेच्छया ।१२।
कदन्नानि द्विजैतानि मृष्टमन्नं प्रयच्छ मे ।
संयावपायसादीनि द्रप्सफाणितवन्ति च ।१३।
हे हे शालिनि मद्गेहे यत्किञ्चिदतिशोभनम् ।
भक्ष्योपसाधन मृष्टं तेनास्यन्नं प्रसाधय ।१४।

एक हजार दिव्य वर्ष व्यतीत होने पर महर्षि ऋभु अपने शिष्य निदाघ को देखने की इच्छा से उस नगर में गये ।८। जब निदाघ वलिवैश्वदेव के पश्चात् अपने द्वार पर अतिथियों की प्रतीक्षा में खड़ा था, तभी वे महर्षि उसे दिखाई दिये और वह उन्हें अर्घ्य देकर अपने घर में ले गया ।९। उसने उनके हाथ;पाँव धुलाकर उन्हें आसन पर बिठाया और आदर

सहित भोजन करिये ।१०। ऋभु ने कहा-हे विप्र श्रेष्ठ ! आपके यहाँ जिस अन्न का भोजन करना है, वह मुझे बताओ । क्योंकि कुत्सित अन्न के प्रति मुझे अरुचि है ।१२। निदाघ बोला-हे द्विजोत्तम ! मेरे यहाँ सत्तू, जौ की लप्सी, बाटी और पूए बनाये गये हैं, इनमें से जो आप खाना चाहें, वही भोजन करें ।१२। ऋभु ने कहा-हे द्विज ! यह सभी कुत्सित अन्न हैं, मुझे तो हलुआ, खीर, मट्ठा, मिष्ठान्नादि स्वादिष्ट अन्न का भोजन कराओ ।१३। निदाघ ने कहा-हे शालिनि ! मेरे घर जो श्रेष्ठ से श्रेष्ठ पदार्थ हो, उसी से इनके लिये अति सुस्वादु भोजन तैयार करो ।१४।

इत्युक्ता तेन सा पत्नीं मृष्टमन्नं द्विजस्य यत् ।
प्रसाधितवती तद्वै भर्तुर्वचनगौरवात् ।१५।
तं भुक्तवन्तमिच्छातो मृष्टमन्नं महामुनिम् ।
निदाघः प्राह भूपाल प्रश्रयावनतः स्थितः ।१६।
अपि ते परमा तृप्तिरुत्पन्ना तुष्टिरेव च ।
अपि ते मानसं स्वस्थमाहारेण कृतं द्विज ।१७।
क्व निवासो भवान्विप्र क्व च गन्तुं समुद्यतः ।
आगम्यते च भवता यतस्तच्च द्विजोच्यताम् ।१८।
क्षुद्यस्य तस्य भुक्तेऽन्ने तृप्तिर्ब्राह्मण जायते ।
न मे क्षुन्नाभवत्तृप्तिं कस्मान्मां परिपृच्छसि ।१९।
वह्निना पार्थिवे धातौ क्षपिते क्षुत्समुद्भवः ।
भवत्यम्भसि च क्षीणे नृणां तृडपि जायते ।२०।
क्षुत्तृष्णे देहधर्माख्ये न ममैते यतो द्विज ।
ततः क्षुत्सम्भवाभावात्तृप्तिरस्त्येव मे सदा ।२१।

ब्राह्मण बोले—निदाघ द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर उसकी पत्नी ने पति-आज्ञा से आदर पूर्वक उनके लिये अति सुस्वादु भोजन बनाया ।१५। हे राजन् ! जब ऋभु ने अपनी इच्छा के अनुसार भोजन कर लिया तब निदाघ ने अत्यन्त विनय पूर्वक उन महामुनी से कहा ।१६। निदाघ बोले—हे द्विज भोजन करके आपका चित्त प्रसन्न तो हुआ ? आप पूर्ण

रूपेण तृप्त और सन्तुष्ट हो गये ? ।१७। हे भगवन् ! आप कहाँ के निवासी हैं ? कहाँ जा रहे हैं और कहाँ से आ रहे हैं ? ।१८। ऋभु ने कहा—हे विप्र ! भूखे को ही तृप्ति होती है । परन्तु, मुझे तो कभी भूख ही नहीं लगती, फिर तृप्ति विषयक प्रश्न ही कैसा ? ।१९। जब जठराग्नि ठोस धातुओं को क्षीण कर देती है तब भूख जल को शुष्क कर देती है, तब प्यास लगती है । हे द्विज ! यह भूख और प्यास दोनों लगती हैं ।२०। हे द्विज ! यह भूख और प्यास दोनों ही देह के धर्म हैं, मेरे नहीं । इसलिये मैं कभी भूखा न होकर सदा ही तृप्त रहता हूँ ।२१।

मनसः स्वस्थता तुष्टिश्चितधर्माविमौ द्विज ।
चेतसो यस्य तत्पृच्छ पुमानेभिर्नयुज्यते ।२२।
क्वनिवासस्तवेन्युक्तं क्व गन्तासि च यत्वया ।
कुतश्चागम्यते तत्र त्रितयेऽपि निबोध मे ।२३।
पुमान्सर्वगतो व्यापी आकाशवदयं यतः ।
कुतः कुत्र क्व गन्तासीत्येतदप्यर्थवत्कथम् ।२४।
सोऽहं गन्ता न चागन्ता नैकदेशनिकेतगः ।
त्वं चान्ये च न च त्वं च नान्ये नैवाहमप्यहम् ।२५।
मृष्ट न मृष्टमप्येषा जिज्ञासा मे कृता तव ।
किं वक्ष्यसीति तत्रापि श्रूयतां द्विजसत्तम ।२६।
किमस्वाद्वथ वा मृष्टं भुञ्जतोऽस्ति द्विजोत्तम ।
मृष्टसेव यदामृष्टं तदेवोद्वेगकारकम् ।२७।
अमृष्टं जायते मृष्टं मृष्टादुद्विजते जनः ।
आदिमध्यावसानेषु किमन्न रुचिकारकम् ।२८।

स्वस्थता और संतुष्टि यह भी मन के धर्म हैं, आत्मा से इनका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है । इसलिये हे विप्र ! जिसके यह धर्म हैं, उसी से इनके विषय में प्रश्न करो ।२२। तथा तुमने मेरे विषय में यह पूछा कि कहाँ का निवास है, कहाँ जा रहा हूँ और कहाँ से आया हूँ, सो इसके विषय में मेरे विचार सुनो २३। आत्मा आकाश के समान व्यापक होने

से परे है, इसलिये कहाँ रहते, कहाँ से आये, कहाँ जाते हो यह प्रश्न भी निरर्थक ही हैं ।२४। क्योंकि मैं तो न कहीं जाता हूँ और न कहीं रहने का मेरा स्थान है । यथार्थ में तो न तू तू है, और न मैं मैं हूँ और न अन्य अन्य हैं ।२५। वास्तव में मधुर मधुर नहीं है । मैंने तुमसे जो मधुर अन्न माँगा था उससे भी तुम्हारे विचार ही सुनना चाहता था ।२६। हे द्विजोत्तम ! खाने वाले के लिए सुस्वादु और अस्वादु का विचार ही कैसा ? क्योंकि जब कालान्तर में स्वादिष्ट पदार्थ ही स्वाद-रहित हो जाता है तो वही उद्वेग उत्पन्न करने वाला हो जाता है ।२७। इसी प्रकार जो अरुचिकर पदार्थ है वह कभी रुचिकर प्रतीत होने लगते हैं और रुचिकर पदार्थ कभी उद्विग्न करने वाले हो जाते हैं । बताओ ऐसा पदार्थ कौन सा है जो आदि, मध्य और अन्त तीनों समय ही रुचिकर प्रतीत हो ? ।२८।

मृण्मयं हि गृहं यद्वन्मृदा लिप्तं स्थिरं भवेत् ।
पार्थिवोऽयं तथा देहः पार्थिवैः परमाणुभिः ।२९।
यवगोधूममुद्गादि घृतं तैलं पयो दधि ।
गुडं फलादीनि तथा पार्थिवाः परमाणवः ।३०।
तदेतद्भवता ज्ञात्वा मृष्टामृष्टविचारि यत् ।
तन्मनस्समतालम्बि कार्यं साम्यं हि मुक्तये ।३१।
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य परमार्थाश्रितं नृप ।
प्रणिपत्य महाभागो निदाघो वाक्यमब्रवीत् ।३२।
प्रसीद मद्धितार्थाय कथ्यतां यत्त्वमागतः ।
नष्टो मोहस्तवाकर्ण्य वचांस्येतानि मे द्विज ।३३।
ऋभुरस्मि तवाचार्यः प्रज्ञादानाय ते द्विज ।
इहागतोऽहं यास्यामि परमार्थस्तवोदितः ।३४।
एवमेकमिदं विद्धि न भेदि सकलं जगत् ।
वासुदेवाभिध्येयस्य स्वरूपं परमात्मनः ।३५।
तथेत्युक्त्वा निदाघेन प्रणिपातपुरःसरम् ।
पूजितः परया भक्त्या इच्छातः प्रययावृभुः ।३६।

जैसे मिट्टी का घर मिट्टी से लिप पुत कर दृढ़ होता है, वैसे ही यह पार्थिव शरीर पार्थिव अन्न कणों से परिपुष्ट होता है।२९। जौ, गेंहू, मूँग, घी, तैल, दूध, दही, गुड़ और फलादि सभी पदार्थ पार्थिव परमाणु ही हैं।३०। ऐसा जानकर तुम अपने सुस्वादु-अस्वादु की चिन्ता करने वाले अपने चित्त को समदर्शी बनाओ, क्योंकि समत्व ही मोक्ष का एक मात्र उपाय है।३१। ब्राह्मण ने कहा—हे राजन् ! ऋभु के यह परमार्थमय वचन सुनकर महाभाग निदाघ ने उन्हें प्रणाम किया और ऋषि से कहने लगा।३२। हे प्रभो ! आप प्रसन्न हों। मेरे कल्याण-साधन की इच्छा से आने वाले आप कौन हैं ? आपकी वाणी से मेरा सब मोह दूर हो गया है।३३। ऋभु बोले—हे विप्र ! मैं तेरा गुरु ऋभु हूँ। तुझे सत्-असत् का विवेक कराने वाली बुद्धि देने की इच्छा से ही मैं यहाँ आया था। जो परमार्थ है, वह मैं तुझे बता चुका। अब मैं जा रहा हूँ।३४। इस परमार्थ तत्व का विचार करके तू इस सम्पूर्ण विश्व को एक परमात्मा भगवान वासुदेव का रूप ही समझ, इसमें किञ्चित भी भेद नहीं है।३५। ब्राह्मण ने कहा—इसके पश्चात् निदाघ ने उनका वचन स्वीकार करके उन्हें प्रणाम किया और उसके द्वारा परम भक्तिपूर्वक आदर को प्राप्त हुए ऋभु स्वेच्छापूर्वक वहाँ से चले गये।३६।

सोलहवां अध्याय

ऋभुर्वर्षसहस्रे तु समतीते नरेश्वर।
निदाघज्ञानदानाय तदेव नगरं ययौ।१।
नगरस्य बहिः सोऽथ निदाघं ददृशे मुनिः।
महाबलपरीवारे पुरं विशति पार्थिवे।२।
दूर स्थितं महाभागं जनसम्मर्दवर्जकम्।
क्षुत्क्षामकण्ठमायान्तमरण्यात्ससमित्कुशम्।३।

दृष्ट्वा निदाघं स ऋभुरुपगम्याभिवाद्य च ।
उवाच कस्मादेकान्ते स्थीयते भवता द्विज ।४।
भो विप्र जनसम्मर्दो महानेश नरेश्वरः ।
प्रिविविक्षुः पुरं रम्य तेनात्र स्थीयते मया ।५।
नराधिपोऽत्र कतमः कतमश्चेतरो जनः ।
कथ्यतां मे द्विजश्रेष्ठ त्वमभिज्ञो मतो मम ।६।
योऽयं गजेन्द्रमुन्मत्तमद्रिशृङ्गसमुच्छ्रितम् ।
अधिरूढो नरेन्द्रोऽयं परिलोकस्तथेतरः ।७।

ब्राह्मण ने कहा-हे राजन् ! फिर एक हजार वर्ष बीत जाने पर महर्षि ऋभु निदाघ को ज्ञानोपदेश करने के लिये पुनः उसी नगर में पहुँचे ।१। वहाँ जाकर उन्होने देखा कि उस देश का राजा बहुत-सी सेनादि के सहित धूम-धाम सहित नगर में प्रविष्ट हो रहा है तथा वन से कुश और समिधा लेकर आया हुआ निदाघ भीड़ से दूर हटकर भूखा-प्यासा एक ओर खड़ा है ।२-३। यह देखकर महर्षि ऋभु उस निदाघ के पास गये और अभिवादन पूर्वक बोले—हे द्विज ! तुम यहाँ एकान्त में क्यों खड़े हो? ।४। निदाघ ने कहा-आज इस अत्यन्त रमणीक नगर में राजा प्रवेश कर रहा है, इसलिये मार्ग में बहुत भीड़ होने के कारण मैं यहाँ खड़ा हूँ ।५। ऋभु ने कहा-हे विप्रश्रेष्ठ ! तुम यहाँ की सब बातें जानते प्रतीत होते हो । इसलिये बताओ कि इनमें राजा कौन-सा है तथा अन्य पुरुष कौन हैं ? ।६। निदाघ ने कहा—पर्वत जैसे ऊँचे इस हाथी पर जो चढ़ा हुआ है, वही राजा है तथा अन्य पुरुष इसके परिवार के हैं ।७।

एतौ हि गजराजानौ युगपद्दर्शितौ मम ।
भवता न विशेषेण पृथक्चिह्नोपलक्षणौ ।८।
तत्कथ्यतां महाभाग विशेषो भवतानयोः ।
ज्ञातुमिच्छाम्यहं कोऽत्र गजः को वानराधिपः ।९।
गजो योऽययमधो ब्रह्मन्नुपर्यस्यैष भूपतिः ।
वाह्यवाहकसम्बन्धं को न जानाति वै द्विज ।१०।

जानाम्यहं यथा ब्रह्मंस्तथा मामवबोधय ।
अधःशब्दनिगद्यं हि किं चोर्ध्वमभिधीयते ।११।
इत्युक्तः सहसारुह्य निदाघः प्राह तमृभुम् ।
श्रूयतां कथयाम्येष यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।१२।
उपर्यहं यथा राजा त्वमधः कुञ्जरो यथा ।
अवबोधाय ते ब्रह्मन्दृष्टान्तो दर्शितो मया ।१३।
त्वं राजेव द्विजश्रेष्ठ स्थितोऽहं गजवद्यदि ।
तदेत समाचक्ष्व कतमस्त्वमहं तथा ।१४।

ऋभु ने कहा—तुमने मुझे राजा और हाथी दोनों एक साथ दिखाये परन्तु इन दोनों के पृथक् पृथक् लक्षण नहीं बताये ।८। इसलिये हे महाभाग ! इन दोनों की पृथक्-पृथक् विशेषताएँ मुझे बताओ, जिससे मैं यह जान सकूँ कि इनमें कौन राजा और कौन हाथी है ? ।९। निदाघ ने कहा-इनमें से नीचे वाला हाथी और उससे ऊपर वाला राजा है । हे द्विज ! इन दोनों के वाह्य वाहक सम्बन्ध को कौन नहीं जानता ? ।१०। ऋभु ने कहा—हे ब्रह्मन् ! मुझे तो इस प्रकार समझाओ जिससे मैं 'नीचे' और 'ऊपर' शब्दों के वाच्यार्थ समझ सकूँ ।११। ब्राह्मण ने कहा-ऋभु की बात सुनकर निदाघ ने सहसा उनके ऊपर चढ़कर कहा—आपने जो पूछा है, उसे कहता हूँ, सुनिये ।१२। इस समय मैं तो राजा के समान ऊपर हूँ और आप हाथी के समान नीचे हैं । हे ब्रह्मन् ! आपके समझाने के लिये ही मुझे यह दृष्टान्त दिखाना पड़ा है ।१३। ऋभु ने कहा-हे द्विज-वर ! यदि तुम राजा के समान हो तो मैं हाथी के समान हूँ, तो यह बताओ कि तुम कौन हो और मैं कौन हूँ ? ।१४।

इत्युक्तः सत्वरं तस्य प्रगृह्य चरणावुभौ ।
निदाघस्त्वाह भगवानाचार्यस्त्वमृभुर्ध्रुवम् ।१५।
नान्यस्याद्वैतसंस्कारसंस्कृत मानसं तथा ।
यथाचार्यस्य तेन त्वां मन्ये प्राप्तमहं गुरुम् ।१६।
तवोपदेशदानाय पूर्वशुश्रूणादृत- ।
गुरुस्नेहादृभुर्नाम निदाघ समुपागतः ।१७।

तदेतदुपदिष्टं ते सङ्क्षेपेण महामते ।
परमार्थसारभूतं यत्तदद्वैतमशेषतः ।१८।
एवमुक्त्वा ययौ विद्वान्निदाघं स ऋभुर्गुरुः ।
निदाघोऽप्युपदेशेन तेनाद्वैतपरोऽभवत् ।१९।
सर्वभूतान्यभेदेन ददृशे स तदात्मनः ।
यथा ब्रह्मपरो मुक्तिमवाप परमां द्विज ।२०।
तथा त्वमपि धर्मज्ञ तुल्यात्मरिपुबान्धवः ।
भव सर्वगतं जानन्नात्मानमवनीपते ।२१।
सितनीलादिभेदेन यथैकं दृश्यते नभः ।
भ्रान्तिदृष्टिभिरात्मापि तथैकः सन्पृथक्पृथक् ।२२।
एकः समस्तं यदिहास्ति किञ्चित्तदच्युतो नास्ति परं ततोऽन्यत् ।
सोऽहं स च त्वं स च सर्वमेतदात्मस्वरूपं त्यज भेदमोहम् ।२३।
इतीरितस्तेन स राजवर्यस्तत्याज भेदं परमार्थदृष्टिः ।
स चापि जातिस्मरणाप्तबोधस्तत्रैव जन्मन्यपवर्गमाप ।२४।
इति भरतनरेन्द्रसारवृत्तं कथयति यश्च शृणोति भक्तियुक्तः ।
स विमलमतिरेति नात्ममोहं भवति च संसरणेषु मुक्तियोग्यः ।२५।

ब्राह्मण बोले—ऋभु की बात सुनते ही निदाघ ने उनके चरण पकड़ लिए और बोला कि अवश्य ही आप आचार्य श्रेष्ठ महर्षि ऋभु हैं ।१५। क्योंकि हमारे आचार्यजी के समान अद्वैत चित्त वाला अन्य कोई नहीं है, इसलिए मैं समझता हूँ कि आप मेरे गुरुजी ही यहाँ पधारे हैं ।१६। महर्षि ऋभु ने कहा—हे निदाघ ! तुम पहले मेरी बहुत सेवा-सुश्रूषा कर चुके हो, इसलिए तुम्हारे स्नेह के वशीभूत होकर ही मैं ऋभु नामक गुरु तुम्हें उपदेश देने के लिए ही यहाँ आया हूँ ।१७। हे महामते ! सब पदार्थों में अद्वैत एवं आत्म बुद्धि रखना, परमार्थ का यही सार है, जो मैंने तुम्हारे प्रति संक्षेप में कह दिया है ।१८। ब्राह्मण ने कहा—निदाघ को ऐसा उपदेश देकर गुरुवर ऋभु चले गये और तब निदाघ भी अद्वैत-चिन्तन में लग गया ।१९। फिर वह सब जीवों को अपने से अभिन्न

देखने लगा। हे राजन्! जैसे उस ब्रह्म परायण को मोक्ष पद की प्राप्ति हुई, वैसे ही तू भी अपने आत्मा, शत्रु तथा मित्रादि में अभेद रखकर स्वयं को ही सर्वगत मानता हुआ मोक्ष को प्राप्त हो।२०-२१। जैसे एक ही आकाश श्वेत-नील आदि अनेक रूप दिखाई देता है, वैसे ही भ्रान्त-दर्शियों को एक ही आत्मा अलग-अलग दिखाई देता है।२२। इस संसार में सब कुछ एक आत्मा ही है, वही अविनाशी है, उससे भिन्न कुछ भी नहीं। मैं और तू यह सब भी आत्म रूप है इसलिए भेद वाले ज्ञान रूपी मोह का त्याग कर।२३। श्री पराशरजी ने कहा-उनका उपदेश सुनकर सौवीरराज ने परमार्थ दृष्टि के आश्रय से भेद बुद्धि का त्याग किया और वह पूर्वजन्म के स्मरण वाले ब्राह्मण श्रेष्ठ भी ज्ञानमय होने से उसी जन्म में मोक्ष को प्राप्त हुए।२४। राजेन्द्र भरत के इतिहास के इस सारभूत वृतान्त को कहने या सुनने की बुद्धि स्वच्छ हो जाती है, उसे कभी आत्म विस्मृत नहीं होती और वह जन्म-जन्मान्तर में सदा मोक्ष के योग्य रहता है।२५।

— - —

तृतीय अंश

पहला अध्याय

कथिता गुरुणा सम्यग्भूसमुद्रादिसंस्थितिः ।
सूर्यादीनां च संस्थानं ज्योतिषां चातिविस्तरात् ।१।
देवादीनां तथा सृष्टिर्ऋषीणां चापि वर्णिता ।
चातुर्वर्ण्यस्य चोत्पत्तिस्तिर्यग्योनिगतस्य च ।२।
ध्रुवप्रह्लादचरितं विस्ताच्च त्वयोदितम् ।
मन्वन्तराण्यशेषाणि श्रोतुमिच्छाम्यनुक्रमात् ।३।
मन्वन्तराधिपांश्चैव शक्रदेवपुरोगमान् ।
भवता कथितानेताञ्छ्रोतुमिच्छाम्यहं गुरो ।४।
अतीतानागतानीह यानि मन्वन्तराणि वै ।
तान्यहं भवतः सम्यक्कथयामि यथाक्रमम् ।५।
स्वायम्भुवो मनुः पूर्वं परः स्वारोचिषस्तथा ।
उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा ।६।
षडेते मनवोऽतीतास्साम्प्रतं तु रवेस्सुतः ।
वैवस्वतोऽयं यस्यैतत्सप्तमं वर्ततेऽन्तरम् ।७।

श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे गुरो ! पृथिवी, समुद्र और सूर्यादि की स्थिति का आपने विस्तार सहित मुझसे वर्णन किया ।१। आपने देवताओं और ऋषियों आदि की उत्पत्ति चारों वर्ण और तिर्यक् योनि के प्राणियों की रचना का भी भले प्रकार वर्णन किया ।२। ध्रुव और प्रह्लाद के चरित्र भी आपने विस्तृत रूप से सुनाये । अब मैं आपके मुख कमल से सभी मन्वन्तरों और देवता-इन्द्रादि के सहित मन्वन्तराधिपति मनुओं का वृत्तांत सुनने की इच्छा करता हूँ ।३-४। श्री पराशरजी ने कहा-अब तक जितने

मन्वन्तर हो चुके तथा भविष्य में जो भी होंगे, उन सभी का क्रमपूर्वक वर्णन करता हूँ।५। पहिले मनृ स्वायम्भुव हुए, उनके पश्चात् स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, और चाक्षुष हुए।६। यह छ; मनु पहिले हो चुके हैं यह सातवाँ मन्वन्तर वर्तमान है, जिसके नुत सूर्य-पुत्र वैवस्वत हैं।७।

स्वायम्भुवं तु कथितं कल्पादावन्तरं मया
देवास्सप्तर्षयश्चैव यथावत्कथिया मया।८।
अतः ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि मनोस्वारोचिषस्य तु।
मन्वन्तराधिपान्सम्यग्देवर्षीस्तस्सुतांस्तथा।९।
पारावताातास्सतुषिता देवास्वारोचिर्षन्तरे।
विपश्चित्तत्र देवेन्द्रो मैत्रेयासीत्महाबलः।१०।
ऊर्ज्जः स्तम्भस्तथा प्राणो वातोऽथ पृषभस्तथा।
निरयश्च परोवांश्च तत्र सप्तर्षयोऽभवन्।११।
चैत्रकिम्पुरुषाद्याश्च सुतास्पारोचिषस्य तु।
द्वितीयमेतद्वयाख्यातमन्तरं श्रृणु चोत्तमम्।१२।
तृतीयेऽप्यन्तरे ब्रह्मन्नुत्तमो नाम यो मनुः।
सुशान्तिर्नाम देवेन्द्रो मैत्रेयासीत्सुरेश्वरः।१३।
सुधामानस्तथा सत्या जपाश्चाथ प्रतर्दनाः।
वशवर्तिनश्च पञ्चैते गणा द्वादशकास्मृताः।१४।
वसिष्ठतनया ह्येते सप्त सप्तर्षयोऽभवन्।
अजः परशुदीप्ताद्यास्तथोत्तममनोस्सुताः।१५।

कल्प के आदि में हुए जिस स्वायंभुव-मन्वन्तर के विषय में मैंने कहा था, उनके देवता और सप्तर्षियो को भी मैं पहिले बता चुका हूँ।८। अब में स्वारोचिष मन्वन्तर के अधिकारी देवता, ऋषि और ननु-पुत्रों का वर्णन करूँगा।९। हे मैत्रेयजी! स्वारोचिष मन्वन्तर में पारावत और तुषितगण देवता और महाबली विपश्चित् इन्द्र थे।१०। उस समय जो सप्तर्षि थे उनके नाम ऊर्ज्ज, स्तम्भ, प्राण, वात, पृषभ, निरय और परीवान् थे।११। चैत्र और किम्पुरुष आदि उन स्वारोचिष मनु के पुत्र हुए।

इस प्रकार जो वर्णन किया गया वह दूसरे मन्वन्तर का है, अब तीसरे उत्तम नामक मन्वन्तर का विवरण-श्रवण करो ।१२। हे ब्रह्मन् ! उस मन्वन्तर में उत्तम नामक मनु उसके अधिपति और सुशांति नामक देवेन्द्र हुए ।१३। उस काल में सुधाम, सत्य जप, प्रतर्दन और वशवर्ती इन पाँच में बारह-बारह देवता थे ।१४। वसिष्ठजी के सात पुत्र सप्तर्षि तथा जव, परशु, दीप्त आदि नाम वाले उत्तम मनु के पुत्र थे ।१५।

तामसस्यान्तरे देवास्सुपारा हरयस्तथा ।
सत्याश्च सुधियश्चैव सप्तविंशतिका गणाः ।१६।
शिबिरिन्द्रस्तथा चासीच्छतयज्ञोपलक्षणः ।
सप्तर्षयश्च तेषां तेषां नामानि मे शृणु ।१७।
ज्योतिर्धामा पृथः काव्यश्चैत्रोऽग्निर्वनकस्तथा ।
पीवरश्चर्षयो ह्येते सप्त तत्रापि चान्तरु ।१८।
नरः ख्यातिः केतुरूपो जानुजङ्घादयस्तथा ।
पुत्रास्तु तामसस्यासान्नजानस्सुमहाबलाः ।१९।
पञ्चमे वापि मैत्रेय रैवतो नाम नामतः ।
मनुर्विभुश्च तत्रेन्द्रो देवांश्चात्रान्तरे ।२०।
अमिताभा भूतरया वैकुण्ठास्ससुमेथसः ।
एते देवगणास्तत्र चतुर्दश चतुर्दश ।२१।
हिरण्यरोमा वेदश्रीरूर्ध्ववाहुस्तथापरः ।
वेदबाहुस्सुधामा च पर्जन्यश्च महामुनिः ।
एते सप्तर्षयो विप्र तत्रासन्नैवतोन्तरे ।२२।
बलबन्धुश्च सम्भाव्यस्सत्यकाद्याश्च तत्सुताः ।
नरेन्द्राश्च महावीर्या वभूवुमुनिसत्तम ।२३।

तामस मन्वन्तर में सुपार, हरि, सत्य और सुधि-इन चार देवगणों में से प्रत्येक वर्ग में सत्ताईस गण थे ।१६। सौ यज्ञ का कर्त्ता राजा शिबि उस समय का इन्द्र था और जब सप्तर्षि थे उनके भी नाम सुनो-ज्योतिर्धामा, पृथु, काव्व, चैत्र, अग्नि, वनक और पीवर ।१८। तथा नर, ख्याति, केतुरूप और जानुजंघ आदि उन तामस मनु के महाबलवान् पुत्र

राज्य के अधिकारी थे ।१६। हे मैत्रेयजी ! पांचवें मन्वन्तर के मनु रैवत थे । विभु नामक इन्द्र और जो-जो देवगण हुए उनके नामों को सुनो ।२०। इस मन्वन्तर में अमिताभ भूतरय, वैकुण्ठ और सुमेधा नामक देवताओं के वर्ग थे प्रत्येक वर्ग में चौदह गण थे ।२१। हिरण्यरोमा, वेदश्री, ऊर्ध्वबाहु, देदबाहु, सुधामा, पर्जन्य और महामुनि-यह उस मन्वन्तर के सप्तर्षि थे ।२२। हे मुनिश्रेष्ठ ! उस समय रैवत मनु के अत्यत पराक्रमी पुत्र बलबन्धु, सम्भाव्य और सत्यक आदि राज्य के अधिकारी हुए ।२३।

स्वारोचिषश्चोत्तमश्च तामसो रैवतास्तथा ।
प्रियव्रतान्वया ह्येते चत्वारो मनवस्मृताः ।२४।
विष्णुमाराध्य तपसा स राजर्षिः प्रियव्रतः ।
मन्वन्तराधिपानेतांल्लब्धवानात्मवंशजान् ।२५।
षष्ठे मन्वन्तरे चासीच्चाक्षुषाख्यस्तथा मनुः ।
मनोजवस्तथैवेन्द्रो देवानपि निबोध मे ।२६।
आप्याः प्रसूता भव्याश्च पृथुकाश्च दिवौकसः ।
महानुभावा लेखश्च पञ्चते ह्यष्टका गणाः ।२७।
सुमेधा विरजाश्चैव हविष्मानुत्तमो मधः ।
अतिनामा सहिष्णुश्च सप्तासन्निति चर्षयः ।२८।
ऊरुः पुरुश्शतद्युम्नप्रमुखास्सुमहाबलाः ।
चाक्षुषस्य मनोः पुत्राः पृथिवीपतयोऽभवन् ।२९।

हे मैत्रेयजी ! स्वारोचिष, उत्तम, तामस और रैवत-यह चार मनु राजा प्रियव्रत के कुल में उत्पन्न हुए बताये जाते हैं ।२४। राजर्षि प्रितव्रत ने तप के द्वारा भगवान विष्णु को प्रसन्न करके अपने वंश में उद्भूत हुए इन चार मनुष्यों को पाया था ।२५। छठवें मन्वन्तर में चाक्षुष नामक मनु हुए । उस समय के इन्द्र का नाम मनोजव था । अब उस मन्वन्तर देवताओं के नाम सुनो ।२६। आप्य, प्रसूत, भव्य, पृथक् और लेख यह पाँच प्रकार के देवता थे । इन प्रत्येक गण में आठ देवता हुए ।२७। उस

समय सुमेधा, विरजा, हविष्मान्, उत्तम, मधु, अतिनामा और सहिष्णु नामक सप्तर्षि थे।२८। चाक्षुष मनु के अत्यन्त बली पुत्र पूरु, पुरु और शतद्युम्नादि राज्य के अधिकारी हुए।२९।

विवस्वतस्सुतो विप्र श्राद्धदेवो महाद्युतिः।
मनुस्संवर्तते धीमान् साम्प्रत सप्तमेऽन्तरे।३०।
आदित्यवसुरुद्राद्या देवाश्चात्र महामुने।
पुरन्दरस्तथवात्र मैत्रेय त्रिदशेश्वरः।३१।
वसिष्टः काश्यपोऽयात्रिर्जमदग्निस्सगौतमः।
विश्वर्नमित्रभरद्वाजौ सप्त सप्तर्षयोऽभवन्।३२।
इक्ष्वाकुश्च नृगश्चैव धृष्ट शर्यातिरेव च।
नरिष्यन्तश्च विख्यातो नाभागोऽरिष्ट एव च।३३।
करूषश्च पृषध्रश्च सुमहाँल्लोकविश्रुतः।
मनोर्वैवस्वतस्यैते नव पुत्राः सुधार्मिकाः।३४।

हे द्विज ! इस समय यह सातवां मन्वन्तर है। इसमें महा तेजस्वी और धीमान् सूर्य पुत्र श्राद्धदेव मनु हैं।३०। आदित्वा, वसु और रुद्रादि देवता तथा पुरन्दर नामक इंद्र इस मन्वन्तर के हैं।३१। वसिष्ठ, काश्यप अत्रि, जमदग्नि, गौतम, विश्वामित्र; और भरद्वाज नामक सप्तर्षि है।३२। वैवस्वत मनु के नौ पुत्र हुए, जिनके नाम इक्ष्वाकु, नृग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यंत, नाभाग, अरिष्ट, करूष और पृषध्र हुए। यह सभी धर्मात्मा और संसार प्रसिद्ध थे।३३-३४।

विष्णुवितरनौपम्या सत्वोद्रिक्ता स्थितौ स्थिता।
मन्वन्तरेष्वमेषेषु देवत्वेनाधितिष्ठति।३५।
अंशेन तस्या जज्ञेऽसौ यज्ञस्वायम्भुवेऽन्तरे।
आकूत्यां मानसो देव उत्पन्नः प्रथमेऽन्तरे।३६।
ततः पुनः स वै देव प्राप्ते स्वारोचिषेऽन्तरे।
तुषितायां समुत्पन्नो ह्ययजितस्तुषितैः सहः।३७।
औत्तमेऽप्यन्तरे देवस्तुषितस्तु पुनस्स वै।
सत्यायामभवत्सत्यः सत्यैस्सह सुरोत्तमैः।३८।

तामसस्यान्तरे चैव सम्प्राप्ते पुनरेव हि ।
हर्यायां हरिभिस्सार्धं हरिरेव बभूत ह ।३९।
रैवतेऽप्यन्तरे देवस्सम्भूत्यां मानसो हरिः ।
सम्भूतो रैवतैस्सार्धं देवैर्देववरो हरिः ।४०।
चाक्षुषे चान्तरे देवो वैकुण्ठ पुरुषोत्तमः :
विकुण्ठायामसौ जज्ञे वैकुण्ठैर्देवतैः सह ।४१।

सभी मन्वन्तरों में देव रूप से अधिष्ठित भगवान् विष्णु की अनुपम एवं सत्वगुण प्रधान वाली शक्ति ही विश्व की स्थिति में अधिष्ठान करने वाली होती है ।३५। सबसे पहिले मन्वन्तर में मानस देव यज्ञ पुरुष उसी विष्णु शक्ति के अंश से आकूति के उदर से प्रकट हुए थे ।३६। फिर स्वारोचिष मन्वन्तर आ गया तब वही मानस देव अजित तुषिता नामक देवताओं के सहित उत्पन्न हुए ।३७। फिर वही तुषित देव उत्तम मन्वन्तर में सत्या के गर्भ से सत्य नामक देवताओं के साथ उत्पन्न हुए ।३८। जब तामस मन्वन्तर आया तब वह हरि रूप से हर्या के उदर से हरि नामक देवताओं के साथ प्रकट हुए ।३९। रैवत मन्वन्तर में वही देवश्रेष्ठ हरि, सम्भूति के गर्भ से उस समय के देवताओं के साथ मानस नाम से प्रकट हुए ।४०। फिर चाक्षुष मन्वन्तर में विकुण्ठा के गर्भ से तत्कालीन देवताओं के साथ उत्पन्न होकर वैकुण्ठ नाम से प्रसिद्ध हुए ।४१।

मन्वन्तरेऽत्र सम्प्राप्ते तथा वैवस्वते द्विज ।
वामनः कश्यपाद्विष्णुरदित्यां सम्बभूव ह ।४२।
त्रिभिः क्रमैरिमाँल्लोकाञ्जित्वा येन महात्मना ।
पुरन्दराय त्रैलोक्यं दत्तं निहतकण्टकम् ।४३।
इत्येतास्तनवस्तस्य सप्तमन्वन्तरेषु वै ।
सप्तस्वेवाभवन्विप्र याभिः संवर्द्धिताः प्रजाः ।४४।
यस्माद्विष्टमिदं विश्वं तस्य शक्त्या महात्मनः ।
तस्मात्स प्रोच्यये विष्णुर्विशेर्धातोः प्रवेशनात् ।४५।

सर्वे च देवा मनवस्समस्तास्सप्तर्षयो ये मनुसूनवश्च ।
इन्द्रश्च तोऽयं त्रिदेशेशभूतो विष्णोरशेषास्तु विभूतायस्ता: ।४६

हे द्विज ! अब इस वैवस्वत मन्वन्तर के आने पर भगवान् विष्णु कश्यप के द्वारा अदिति के उदर से वामन रूप में अवतरित हुए ।४२। उन्हीं वामन देव ने तीनों लोकों को अपने तीन पदों में नापकर जीत लिया और उन्हें कण्टकहीन करके इन्द्र को सौंप दिया था ।४३। इस प्रकार सातों मन्वन्तरों में भगवान् विष्णु की यह सात मूर्तियाँ अवतरित हुईं, जिनसे इस सम्पूर्ण प्रजा की वृद्धि हुई है ।४४। यह सम्पूर्ण जगत उन्ही परमेश्वर की शक्ति से व्याप्त है, इसलिए वह विष्णु नाम से प्रसिद्ध है क्योंकि 'विश' धातु का तात्पर्य प्रवेश करने से है ।४५। सब देवता, मनु सप्तर्षि, मनु पुत्र और इन्द्र-यह सब-उन्हीं भगवान् विष्णु की विभूतियाँ हैं ।४६।

दूसरा अध्याय

प्रोक्तान्येतानि भवता सप्तमन्वन्तराणि वै ।
भविष्याण्यपि विप्रर्षे ममाख्यातुं त्वमर्हसि ।१।
सूर्यस्य पत्नीसंज्ञाभूत्तनया विश्वकर्मणः ।
मनुर्यमो यमी चैव तदपत्यानि वै मुने ।२।
असहन्ती तु सा भर्तुस्तेजश्छायां युयोज वै ।
भर्तृशुश्रूषणेऽरण्यं स्वयं च तपसे ययौ ।३।
सज्ञयमित्यथार्कश्च छायायायात्मजत्रयम् ।
शनैश्चरं मनुं चान्य तपतीं चाप्यजीजनत् ।४।
छायासंज्ञा ददौ शापं यमाय कुपिता यदा ।
तदान्येयमसौ बुद्धिरित्यासीद्यमसूर्ययोः ।५।
ततो विवस्वानाख्याते तयैवारण्यसंस्थिताम् ।
समाधिदृष्टया ददृशे तामश्वां तपसि स्थिताम् ।६।

वाजिरूपधरः सोऽय तस्यां देवावथऽश्विनौ ।
जनयामास रेवन्तं रेतसोऽन्टे च भास्करः ।७।

श्री मैत्रेयजी ने कहा-हे ब्रह्मर्षे ! आपने बीते हुए सात मन्वन्तरों का वर्णन किया, अब आप आगे होने वाले मन्वन्तरों के विषय में कहिये ।१। श्री पराशरजी ने कहा-हे मुने ! विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा सूर्य की पत्नी हुई। उसने मनु और यम दो पुत्र तथा यमी नाम की पुत्री को जन्म दिया ।२। संज्ञा अपने पति का तेज सहन न कर सकने के कारण अपने समान छाया उत्पन्न कर और उसे अपने पति की सेवा सौंप कर, स्वयं तपस्विनी बनकर चली गई ।३। सूर्य ने छाया को संज्ञा समझा और उस से शनैश्वर, एक दूसरा मनु और तपती इन तीन सन्तानों को जन्म दिया ।४। एक दिन की बात है-उस छाया संज्ञा ने क्रोध करके यम को शाप दिया, तब सूर्य और यम को सदेह हुआ कि यह संज्ञा नहीं है ।५। तब छाया के रहस्य का उद्घाटन हुआ और सूर्य ने समाधि लगाकर यह जान लिया कि संज्ञा घोड़ी का रूप धारण किये हुए वन में तप कर रही है ।६। इससे उन्होंने भी घोड़े का रूप धारण कर घोड़ी रूपिणी संज्ञा से दो अश्विनीकुमार और रेतः स्राव के पश्चात् रेवन्त को उत्पन्न किया ।७।

अनिन्ये च पुनः संज्ञां स्वस्थानं भगवान्रविः ।
तेजसश्शमनं चास्य विश्वकर्मा चकार ह ।८।
भ्रमसारोप्य सूर्यं तु तस्य तेजोनिशातनम् ।
कृतवानष्टमं भागं स व्यशातयदव्ययम् ।९।
यत्तस्माद्वैष्णवं तेजश्शातितं विश्वकर्मणा ।
जाज्वल्यमानमपतत्तद्भूमौ मुनिसत्तम् ।१०।
त्वष्टैव तेजसा तेन विष्णोश्चक्रमकल्पयत् ।
त्रिशूलं चैव शर्वस्य शिविका धनदस्य च ।११।
शक्तिं गुहस्य देवानामन्येषां च यदायुधम् ।
तत्सर्वं तेजसा तेन विश्वकर्मा व्यर्वयत् ।१२।

छायासंज्ञासुतो योऽसौ द्वितीयः कथितो मनुः ।
पूर्वजस्य सवर्णोऽसौ सावर्णिस्तेन कथ्यते ।१३।
तस्य मन्वन्तरं ह्येतत्सावर्णिकमथाष्टमम् ।
तच्छृणुष्व महाभाग भविष्यत्कथयामि ते ।१४।

इसके बाद भगवान् सूर्य संज्ञा को आगे यहाँ लाये और विश्वकर्मा ने भी उनका तेज न्यून कर दिया ।८। उन्होंने सूर्य को सान पर चढ़ाकर उनके तेज को छीलना आरम्भ किया, परन्तु वह उसका आठवाँ अंश ही कम कर सके ।९। हे मुनिश्रेष्ठ ! सूर्य के जिस अत्यन्त प्रकाशमान वैष्णव तेज को छीला, वह तेज पृथिवी पर आ गिरा ।१०। उसी गिरे हुए तेज से विश्वकर्मा ने भगवान् विष्णु का चक्र, शिवजी का त्रिशूल तथा कार्तिकेय की शक्ति का निर्माण विष्णु और अन्यान्य देवताओं के जो कुबेर का विमान शस्त्रास्त्र थे, वे भी उस तेज से पुष्ट किए ।११-१२। पहिले जिस छाया संज्ञा के पुत्र द्वितीय मनु के विषय में कह चुके हैं, वह अपने पूर्वज मनु का सवर्ण होने के कारण सावर्णि कहा गया १३। हे महाभाग! मैं उन्हीं सावर्णि के सावर्णिक मन्वन्तर का वर्णन करता हूँ । यह अष्टम मन्वन्तर आगे होने वाला है ।१४

सावर्णिस्तु मनुर्योऽसौ मैत्रेय भविता ततः ।
सुतपाश्चाभिताभाश्च सुख्याश्चापि तथा सुराः ।१५।
तेषां गणश्च देवानामेकैको विंशकः स्मृतः ।
सप्तर्षीनपि वक्ष्यामि भविष्यान्मुनिसत्तम ।१६।
दीप्तिमान् गालवो रामः कृपो द्रौणिस्तथा परः ।
मत्पुत्रश्च तथा व्यास ऋष्यशृङ्गश्च सप्तमः ।१७।
विष्णुप्रसादादनघः पातालान्तरगोचरः ।
विरोचनसुतस्तेषां बलिरिन्द्रो भविष्यति ।१८।
विरजाश्चोर्वरीवांश्च निर्मोकाद्यास्तथापरे ।
सावर्णेस्तु मनोः पुत्रा भविष्यन्ति नरेश्वराः ।१९।
नवमो दक्षसावर्णिर्भविष्याति मुने मनुः ।
पारा मरीचिगर्भाश्च सुधर्माणस्तथा त्रिधा ।२०।

भविष्यन्ति देवा तथाह्येकैको द्वादशो गणः ।
तेषामिन्द्रो महावीर्यो भविष्यत्यद्भुतो द्विज ।२१।
सवनो द्युतिमान् भव्यो वसुर्मेधातिथिस्तथा ।
ज्योतिष्मान् सप्तमः सत्यस्तत्रैते च महर्षय ।२२।
धृतकेतुर्दीप्तिकेतुः पञ्चहस्तनिरामयौ ।
पृथुश्रवाद्याश्च तथा दक्षसावर्णिकात्मजाः ।२३।

हे मैत्रेयजी ! यही सावर्णि उस मन्वन्तर में मनु एवं सुतप, अमिताभ और मुख्यगण देवता होंगे ।१५। उन देवताओं के प्रत्येक गण में बीस देवता होंगे । अब मैं उस मन्वन्तर के सप्तर्षियों के विषय में कहता हूँ ।१६। दीप्तिमान्, गालव, राम, कृप, अश्वत्थामा, मेरे पुत्र व्यास और सातवें ऋषि श्रृङ्ग होंगे ।१७। उस समय पाताल लोकवासी विरोचन-पुत्र बलि भगवान् विष्णु की कृपा से इन्द्र होंगे तथा विरजा, ऊर्वरीवान् और निर्मीक आदि सावर्णि मनु पुत्र उस मन्वन्तर के राजा होंगे ।१८। हे मुने ! नौवें मन्वन्तर को मनु दक्ष सावर्णि होंगे । उनके समय में पार मरीचिगर्भ और सुधर्मा नामक देवताओं का त्रिवर्ग होगा, जिन तीनों में से प्रत्येक वर्ग में बारह देवता होंगे और उनका अधिपति अद्भुत नामक अत्यंत पराक्रमी इन्द्र होगा ।२०-२१। सवन, द्युतिमान्, भव्य, वसु, मेधातिथि, ज्योतिष्मान् और सत्य नामक सप्तर्षि होंगे ।२२। तथा दक्ष सावर्णि मनु के पुत्र धृतकेतु, दीप्तिकेतु, निरामय, पृथुश्रवा आदि उस समय के राजा होंगे ।२३।

दशमो ब्रह्मसावर्णिर्भविष्यति मुने मनुः ।
सुधामानो विशुद्धाश्च शतसंख्यास्तथा सुराः ।२४।
तेषामिन्द्रश्च भविता शान्तिर्नाम महाबलः ।
सप्तर्षयो भविष्यन्ति ये तथा ताञ्छृणुष्व ह ।२५।
हविष्मान्सुकृतस्सत्यस्तपोमूर्तिस्तथापरः ।
नाभागोऽप्रतिमौजाश्च सत्यकेतुस्तथैव च ।२६।
सुक्षेत्रश्चोत्तमौजाश्च भूरिषैणादयो दश ।
ब्रह्मसावर्णिपुत्रास्तु रक्षिष्यन्यि वसुन्धराम् ।२७।

एकादशश्च भविता धर्मसार्णिको मनुः ।
विहङ्गमाः कामगमा निर्वाणरतयस्तथा ।२८।
गणास्त्वेते तदा मुख्या देवानां च भविष्यताम् ।
एकैकस्त्रिंशकस्तेषां गणश्चेन्द्रश्च वै वृषः ।२९।
निःस्वरश्चाग्नितेजाश्च वपुष्मान्घृणिरारुणिः ।
हविष्माननघश्चैव भाव्याः सप्तर्षयस्तथा ।३०।
सर्वत्रगस्सुधर्मा च देवानीकादयस्तथा ।
भविष्यन्ति मनोस्तस्य तनयाः पृथिवीश्वराः ।३१।

हे मुने ! दसवें मन्वन्तर के अधिपति ब्रह्म सावर्णि होंगे । उस समय सुधामा और विशुद्ध नामक दो गण सौ-सौ देवताओं के होंगे ।२४। महाबली शांति उनका इन्द्र होगा, अब उस समय के सप्तर्षियों के नाम सुनो ।२५। हविष्मान्, सुकृत, सत्य, तपोमूर्ति, नाभाग, अप्रतिमौजा और सत्यकेतु–यह सप्तर्षि थे ।२६। उस समय ब्रह्म सावर्णि मनु के सुक्षेत्र, उत्तमौजा और भूरिषेण आदि दस पुत्र पृथिवी के रक्षक होंगे ।२७। ग्यारहवाँ मनु धर्मसावर्णि होगा तथा विहंगम, कामगम और निर्वाण रति नामक तीस-तीस देवताओं के गण होंगे और वृष नामक इंद्र होगा ।२८-२९। निःस्वर, अग्नितेजा, वपुष्मान् घृणि, आरुणि, हविष्मान् अनघ नामक सप्तर्षि होंगे ।३०। धर्मसावर्णि मनु के सर्वत्रग, सुधर्मा और देवनीकादि पुत्र उस समय पृथिवी पालक होंगे ।३१।

रुद्रपुत्रस्तु सावर्णिर्भविता द्वादशो मनुः ।
ऋतुधामा च तत्रेन्द्रो भवति श्रृणु मे सुरान् ।३२।
हरिता रोहिता देवास्तथा सुमनसो द्विजः ।
सुकर्माणः सुरापाश्च दशकाः पञ्च वै गुणाः ।३३।
तपस्वी सुतपाश्चैव तपोमूर्तिस्तपोरतिः ।
तपोधृतिर्द्युतिश्चान्यः सप्तमस्तु तपोधनः ।३४।
सप्तर्षयस्त्विमे तस्य पुत्रानपि निबोध मे ।
देववानुपदेवश्च देवश्रेष्ठादयस्तथा ।३५।

मनोस्तस्य महावीर्या भविष्यन्ति महानृपाः ।
त्रयोदशो रुचिर्नामा भविष्यति मुने मनुः ।३६।
सुत्रामाण; सुकर्माणः सुवर्माणस्तथामराः ।
त्रयस्त्रिंशद्विभेदास्ते देवानां यत्र वै गणाः ।३७।
दिवस्पतिर्महावीर्यस्तेषामिन्द्रो भविष्यति ।
निर्मोहस्तत्वदर्शी च निष्प्रकम्प्यो निरुत्सुकः ।३८।
धृतिमानव्ययश्चान्यस्सप्तमस्सुतपा मुनिः ।
सप्तर्षयस्त्वमी तस्य पुत्रानपि निबोध मे ।३९।

बारहवें मनु रुद्र सावर्णि होंगे। उस समय इन्द्र का नाम ऋतुधामा होगा। अब देवताओं के नाम सुनो।३२। हरित, रोहित, सुमना, सुकर्मा और सुराप नामक देवताओं के पाँच गण होंगे। प्रत्येक गण में दस देवता होंगे।३३। तपस्वी, सुतपा, तपोमूर्ति तपोरति तपोधृति, तपोद्युति और तपोधन उस समय के सप्तर्षि होंगे। रुद्र सावर्णि मनु के देववान्, उपदेय और देवश्रेष्ठ आदि महावीर्यवान पुत्र उस समय के राज्याधिकारी होंगे। तेरहवाँ मनु रुचि होगा और सुत्रामा, सुकर्मा और सुधर्मा नामक देवताओं के गण होंगे। प्रत्येक गण में तैंतालीस देवता होंगे तथा अत्यन्त बली दिवस्पति नामक उसका इन्द्र होगा। निर्मोह, तत्वदर्शी, नष्प्रकम्प, निरुत्सुक, धृतिमान्, अव्यय और सुतपा नामक सप्तर्षि होंगे। अब मनु-पुत्रों के नाम बताता हूँ।३७-३९।

चित्रसेनविचित्राद्या भविष्यन्ति महीक्षितः ।
भौमश्चतुर्दशश्चात्र मैत्रेय भविता मनुः ।
शुचिरिन्द्रः सुरगणास्तत्र पञ्च श्रृणुष्व तान् ।
चाक्षुषाश्च पवित्राश्च कनिष्ठा भ्राजिकास्तथा ।४१।
वाचावृद्धाश्च वै देवास्सप्तर्षीनपि मे श्रृणु ।
अग्निवाहुः शुचि शुक्रो मागधोऽग्निध्र एव च ।४२।
युक्तस्तथा जितश्चान्यो मनुपुत्रानतः श्रृणु ।
उरुगम्भीरबुद्धयाद्या मनोस्तस्य सुता नृपाः ।४३।
कथिता मुनिशार्दूल पालयिष्यन्ति ये महीम् ।४४।

उन रुचि नामक मनु के चित्रसेन और विचित्रादि पुत्र राज्याधिकारी होंगे । चौदहवें मनु भौम होंगे ।४०। उस मन्वन्तर में शुचि नामक इन्द्र और चाक्षुष, पवित्र, कनिष्ठ, भ्राजिक और वाचावृद्ध नामक पाँच देवगण होंगे । अब सप्तर्षियों के नाम सुनो-अग्निबाहु, शुचि, शुक्र, मागध, अग्निध्र युक्त और जित नामक सप्तर्षि होंगे । अब मनु पुत्रों के नाम सुनो हे मुनिश्रेष्ठ ! भौम नामक उन मनु के ऊरु और गम्भीर बुद्धि आदि पुत्र पृथिवी का पालन करने वाले होंगे ।४१-४४।

चतुर्युगान्ते वेदानां जायते किल विप्लवः ।
प्रवर्तयन्ति तानेत्य भुवं सप्तर्षयो दिवः ।४५।
कृते कृते स्मृतेर्विप्र प्रणेता जायते मनुः ।
देवा यज्ञभुजस्ते तु यावन्मन्वन्तरं तु तत् ।४६।
भवन्ति ये मनोः पुत्रा यावन्मन्वन्तरं तु तैः ।
तदन्वयोद्भवैश्चैव तावद्भूः परिपाल्यते ।४७।
मनुस्सप्तर्षयो देवा भूपालाश्च मनोः सुताः ।
मन्वन्तरे भवन्त्येते शक्रश्चैवाधिकारिणः ।४८।
चतुर्दशभिरेतैस्तु गतैर्मन्वन्तरैर्द्विज ।
सहस्रयुगपर्यन्तः कल्पो निश्शेष उच्यते ।४९।
तावत्प्रमाणा च निशा ततो भवति सत्तम ।
ब्रह्मरूपधरश्शेते शेषाहावम्बुसम्प्लवे ।५०।
त्रैलोक्यमखिलं ग्रस्त्वा भगवानादिकृद्विभुः ।
स्वमायासंस्थितो विप्र सर्वभूतो जनार्दनः ।५१।
ततः प्रबुद्धो भगवान् यथा पूर्वं तथा पुनः ।
सृष्टिं करोत्यव्ययात्मा कल्पे कल्पे रजोगुणः ।५२।
मनवो भूभुजस्सेन्द्रा देवास्सप्तर्षयस्तथा ।
सात्विकोंऽशः स्थितिकरो जगतो द्विज सत्तम ।५३।

प्रत्येक चतुर्युगी के अन्त में जब वेद लुप्त हो जाते हैं, तब सप्तर्षि ही स्वर्ग से पृथिवी पर उत्पन्न होकर उनका प्रकाश करते हैं ।४५। प्रत्येक

सत्युग के आरम्भ में स्मृतिकार मनु की उत्पत्ति होती है मन्वन्तर के समाप्त होने तक उस काल के पुत्र तथा उनके वंशधर मन्वन्तर की समाप्ति पर्यन्त पृथिवी का परिपालन करते रहते हैं ।४७। इस प्रकार मनु, सप्तर्षि, देवता, इन्द्र और मनु-पुत्र नृपतिगण-यह सभी उस मन्वन्तर के अधिकारी माने जाते हैं ।४८। हे विप्र ! इन चौदह मन्वन्तरों के व्यतीत होने पर एक हजार युगों तक का कल्प समाप्त हुआ बताया जाता है ।४९। इसके पश्चात् इतने ही समय की रात्रि होती है। उस समय ब्रह्मरूपी विष्णु प्रलयकाल के उस जल के ऊपर स्थित शेष-शय्या पर सोते हैं ।५०। तब आदि कर्त्ता सर्वभूत भगवान् जनार्दन अखिल त्रैलोक्य का ग्रास करके अपनी ही माया में स्थित हो जाते हैं ।५१। प्रत्येक कल्प के आरम्भ में वह अव्ययात्मा भगवान् जाग्रत होकर रजोगुण के आश्रय से सृष्टि को रचते हैं ५२। हे द्विज सत्तम ! मनु उनके पुत्र नृपगण, इंद्र, देवगण और सप्तर्षि-गण-यह सभी विश्व पालक भगवान् श्री हरि के सात्विक अंश हैं ।५३।

चतुर्युगेऽप्यसौ विष्णुः स्थितिव्यापारलक्षणः ।
युगव्यवस्थां कुरुते यथा मैत्रेय तच्छृणु ।५४।
कृते युगे परं ज्ञान कपिलादिस्वरूपधृक् ।
ददाति सर्वभूतात्मा सर्वभूतहिते रतः ।५५।
चक्रवर्तिस्वरूपेण त्रेतायामपि स प्रभुः ।
दुष्टाना निग्रहं कुर्वन्परिपाति जगत्त्रयम् ।५६।
वेदमेकं चतुर्भेदं कृत्वा शाखशतैर्विभुः ।
करोति बहुलं भूयो वेदव्यासस्वरूपधृक् ।५७।
वेदास्तु द्वापरे व्यस्य कलेरन्ते पुनर्हरिः ।
कल्किस्वरूपी दुर्वृत्तान्मार्गे स्थापयति प्रभुः ।५८।
एवमेतज्जगत्सर्वं शश्वत्पाति करोति च ।
हन्ति चान्तेष्वनन्तात्मा नास्त्यस्माद्व्यतिरेकि यत् ५९।
भूतं भव्य भविष्य च सर्वभूतान्महात्मनः ।
तदत्रान्यत्र वा विप्र सद्भावः कथितस्तव ।६०।

मन्वन्तराण्यशेषाणि कथितानि मया तव ।
मन्वन्तराधिपांश्चैव किमन्यत्कथयामि ते ।६१।

हे मैत्रेयजी ! विश्व की स्थिति के करने वाले भगवान् विष्णु जिस प्रकार चारों युग में व्यवस्था करते हैं, उसे सुनो ।५४। सभी जीवों के कल्याण में तत्पर हुए वे सर्वभूतात्मा भगवान् सत्ययुग में कपिल आदि के रूप में परम ज्ञानोपदेश करते हैं ।५५। त्रेता में चक्रवर्ती सम्राट होकर दुष्टों का निग्रह करते हुए वही तीनों लोकों की रक्षा करते हैं ।५६। द्वापर में वेद व्यास रूप से एक वेद को चार भागों में विभक्त करके, उसे सकड़ों शाखाओं में बाँट कर उसका अत्यन्त प्रसार कर देते हैं ।५७। इस प्रकार द्वापर युग में वेदों का विस्तार करने के पश्चात कलियुग के अन्त में कल्कि रूप धारण करके दुराचरण में प्रर्वत्त हुए लोगों को सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त करते हैं ।५८। इसी प्रकार वह सर्वात्मा भगवान् निरन्तर इस विश्व की उत्पत्ति, पालन और संहार करते रहते हैं । संसार की कोई भी वस्तु उनसे भिन्न नहीं है ।५९। हे विप्र ! इहलोक और परलोक के अतीत में हुए आगे होने वाले तथा अब जो स्थित है, वे सम्पूर्ण पदार्थ भगवान् विष्णु से ही प्रकट हुए हैं, इस विषय में सब कुछ तुम्हारे प्रति कह चुका हूँ ।६२। सभी मन्वन्तरों तथा उनके अधिकारियों का वृतान्त भी मैं सुना चुका हूँ । अब तुम्हें और क्या सुनाऊँ यह मुझसे कहो ।६१।

तीसरा अध्याय

ज्ञातमेतन्मया त्वत्तो यथा सर्वमिदं जगत् ।
विष्णर्विष्णौ विष्णुतश्च न परं विद्यते ततः ।१।
एतत्तु श्रोतुमिच्छामि व्यस्ता वेदा महात्मना ।
वेदव्यासस्वरूपेण तथा तेन युगे युगे ।२।

यस्मिन्यस्मिन्युगे व्यासो यो य आसीन्महामुने ।
तं तमाचक्ष्व भगवञ्छाखाभेदांश्च मे वद ।३।
वेदद्रुमस्य मैत्रेय शाखाभेदास्सहस्रशः ।
न शक्तो विस्तराद्वक्तुं संक्षेपेण श्रृणुष्व तम् ।४।
द्वापरे द्वापरे विष्णुर्व्यासरूपी महामुने ।
वेदमेकं सुबहुधा कुरुते जगतो हितः ।५।
वीर्यं तेजो बलं चाल्पं मनुष्याणामवेक्ष्य च ।
हिताय सर्वभूतानां वेदभेदान्करोति सः ।६।
ययासौ कुरुते तन्वा वेदमेकं पृथक् प्रभुः ।
वेदव्यासाभिधाना तु साच मूर्तिर्मधुद्विषः ।७।

श्री मैत्रेयजी ने कहा—आपके कहने से मैंने यह जान लिया कि यह विश्व विष्णुरूप, विष्णु में स्थित तथा उन्हीं से उत्पन्न हुआ है। उन भगवान् विष्णु के अतिरिक्त कहीं कुछ भी नहीं है ।१। अब मुझे यह सुनने की जिज्ञासा है कि उन्होंने वेदव्यास रूप से युग-युग में प्रकट होकर वेदों का विभाग किस प्रकार किया ? ।२। हे महामुने ! जिस जिस युग में जो-जो वेदव्यास हुए, उन सबका तथा वेदों के सब शाखा-भेदों को आप मेरे प्रति कहिये ।३। श्री पराशरजी ने कहा-हे मैत्रेयजी ! वेद रूपी वृक्ष के हजारों शाखा भेद है, उनका विस्तृत वर्णन करने में तो कोई भी शक्य नहीं है, इसलिए उसे संक्षेप में श्रवण करो ।४। हे महामुने ! जब-जब द्वापर युग आता है, तभी-तभी भगवान् विष्णु वेद व्यास के रूप में अवतीर्ण होकर विश्व-कल्याणार्थ एक वेद के अनेक कर देते हैं ।५। वे उस समय के मनुष्यों के बल, वीर्य, तेज को घटता हुआ देखकर सब जीवों का हित करने की इच्छा से वेदों को विभक्त करते हैं ।६। जिस देह से एक वेद के अनेक भेद करते हैं, भगवान् की उस मूर्ति को वेदव्यास कहते हैं ।७।

यस्मिन्मन्वन्तरे व्यासा ये ये स्युस्तान्निबोध मे ।
यथा च भेदश्शाखानां व्यासेन क्रियते मुने ।८।

अष्टाविंशतिकृत्वो वै वेदो व्यस्तो महर्षिभिः ।
वैवस्वतेऽन्तर तस्मिन्द्वापरेषु पुनः पुनः ।९।
वेदव्यासा व्यतीता ये ह्यष्टविंशति सत्तम ।
चतुर्धा यैः कृतो वेदो द्वापरेषु पुनः पुनः ।१०।
द्वापरे प्रथमे व्यस्तस्स्वयं वेदः स्वम्भुवा ।
द्वितीये द्वापरे चैव वेदव्यासः प्रजापतिः ।११।
तृतीये चोशना व्यासश्चतुर्थे च बृहस्पतिः ।
सविता पञ्चमेः व्यासः षष्ठे मृत्युस्स्मृतः प्रभुः ।१२।
सप्तमे च तथैवेन्द्रो वषिष्ठश्चाष्टमे स्मृतः ।
सारस्वतश्च नवमे त्रिधामा दशमे स्मृतः ।१३।
एकादशे तु त्रिशिखो भरुद्वाजस्ततः परः ।
त्रयोदशे चान्तरिक्षो वर्णी चापि चतुर्दशे ।१४:

हे मुने ! जिस-जिस मन्वन्तर में जो-जो व्यास हाते है और वह जिस-जिस प्रकार से वेदों का विभाग करते हैं, वह सब मुझसे श्रवण करो ।८। इसी वैवस्वत मन्वन्तर के प्रत्येक द्वापर युग में व्यास ऋषियों ने अब तक अट्ठाईस बार वेदों को विभक्त किया है ।९। अब उन अट्ठाइस व्यासों का वृतान्त सुनो, जिन्होंने द्वापर युग में वेदों के बार-बार चार-चार विभाग किये हैं ।१०। प्रथम द्वापर में स्वयं ब्रह्माजी ने वेदों का विभाग किया और दूसरे द्वापर में प्रजापति वेदव्यास हुए ।११। तीसरे द्वापर में शुक्राचार्य वेदव्यास हुए, चौथे में बृहस्पतिजी, पाँचवे में सूर्य और छटवे में मृत्यु वेद व्यास बने ।१२। सातवे मे इन्द्र, आठवे में वसिष्ट, नौवें में सारस्वत और दसवें में त्रिधामा वेदव्यास कहलाये ।१३। ग्यारहवें में भारद्वाज तेरहवे में अन्तरिक्ष और चौदहवें में वर्णी वेद व्यास हुए ।१४।

त्रय्यारुणः पञ्चदशे षोडशे तु धनञ्जयः ।
ऋतुञ्जयः सप्तदशे तदुर्ध्वं च जयस्स्मृतः ।१५।
ततो व्यासो भरद्वाजो भरद्वाजाच्च गौतमः ।
गौतमादुत्तरो व्यासो हर्यात्मा योऽभिधीयते ।१६।

अथ हर्यात्मनोऽन्ते च स्मृतो वाजश्रवा मुनिः ।
सोमशुष्मायणस्तस्मात्तृणबिन्दुरिति स्मृतः ।१७।
ऋक्षोऽभूद्भार्गवस्तस्माद्वाल्मीकिर्योऽभिधीयते ।
तस्मादस्मत्पिता शक्तिर्व्यासस्तस्मादहं मुने ।१८।
जातुकर्णोऽभवन्मत्तः कृष्णद्वैपायनस्ततः ।
अष्टाविंशतिरित्येते वेदव्यासाः पुरातनाः ।१९।
एको वेदश्चतुर्धा तु तैः कृतो द्वापरादिषु ।२०।
भविष्ये द्वापरे चापि द्रौणिर्व्यासो भविष्यति ।
व्यतीते मम पुत्रेऽस्मिन् कृष्णद्वैपायने मुने ।२१।

पन्द्रहवें द्वापर में त्रय्यारुण: सोलहवें में धनञ्जय, सत्रहवे में क्रतुञ्जय और अठारहवें में जय नामक वेदव्यास हुए ।१५। उन्नीसवें द्वापर में भरद्वाज, बीसवें में गौतम के बाद इक्कीसवें द्वापर में हर्यात्मा नामक व्यास हुए ।१६। बाईसवें मन्वन्तर में वाजश्रवा मुनी वेद व्यास हुए, और उनके बाद सोम शुष्म वंश के तृणविन्दु नामक तेईसवें द्वापर के व्यास हुए ।१७। उनके पश्चात् भृगुवंश के ऋक्ष चौबीसवें व्यास हुए, यही कालान्तर में वाल्मीकि कहलाये, उनके पश्चात् मेरे पिता शक्ति हुए और फिर मैं छब्बीसवाँ व्यास हुआ ।१८। मेरे बाद जातुकर्ण और फिर कृष्ण द्वैपायन हुए। इस प्रकार वह अट्ठाईस व्यास प्राचीन कहे हैं । इन्होंने सब द्वापरों में एक-एक वेद के चार-चार विभाग किये ।१९—२०। हे मुने ! मेरे पुत्र कृष्ण द्वैहायन के पश्चात् आगामी द्वापर युग में द्रोणाचार्यजी के पुत्र अश्वत्थामा व्यास होंगे ।२१।

ध्रुवमेकाक्षरं ब्रह्म ओमित्येव व्यवस्थितम् ।
वृहत्तद्बृंहणत्वाच्च तद्ब्रह्मेत्यभिधीयते ।२२।
प्रणवावस्थितं नित्यं भूर्भुवस्स्वरितीर्यते ।
ऋग्यजुस्सामाथर्वाणो यत्तस्मै ब्रह्मणे नमः ।२३।
जगतःप्रलयोत्पत्योर्यत्तत्कारणसंज्ञितम् ।
महतः परम गुह्यं तस्मै सुब्रह्मण नमः ।२४।

अगाधापारमक्षय्यं जगत्सम्मोहनालयम् ।
स्वप्रकाशप्रवृत्तिभ्यां पुरुषार्थप्रयोजनम् ।२५।
सांख्यज्ञानवतां सिष्टा गदिश्शमदमात्मनाम् ।
यत्तदव्यक्तममृतं प्रवृत्तिब्रह्म शाश्वतम् ।२६।
प्रधानमात्मयोनिश्च गुहासस्थ च शब्द्यते ।
अविभागं तथा शुक्रमक्षयं बहुधात्मकम् ।२७।।
परमब्रह्मणे तस्मै नित्यमेव नमो नमः ।
यद्रूप वासुदेवस्य परमात्मस्वरूपिणः ।२८।

यह अविनाशी ॐ रूप एकाक्षर ही ब्रह्म है। यह बृहद् एवं व्यापक होने के कारण 'ब्रह्म' कहा जाता है ।२२। भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक—यह तीनों ही प्रणव रूप ब्रह्म में स्थित है तथा प्रणव ही ऋक् यजुः, साम और अथर्व रूप चारों वेद हैं, इसलिए उस प्रणव रूप ब्रह्म को नमस्कार है ।२३। जो ब्रह्म विश्व की उत्पत्ति और प्रलय का कारण कहा गया है तथा जो महत्तत्व से भी परम गुह्य है, उस प्रणव रूप को नमस्कार है ।२४। जो अगाध अपार और अक्षय तथा जगत् को मोहित करने वाले तभी गुण का आधार एवं स्वप्रकाश युक्त सत्वगुण से भोग तथा मोक्ष रूप पुरुषार्थ का कारण में ।२५। जो सांख्य ज्ञानियों को निष्ठा और शम-दम वालों का गन्तव्य स्थान है तथा जो अव्यक्त अविनाशी और सक्रिय ब्रह्म होकर सदा स्थित है ।२६। जो स्वयं प्रधान और अन्तर्वासी कहा गया है तथा जो अविभाग अक्षय और बहुत रूप वाला है ।२७। तथा जो परमात्म स्वरूप वासुदेव भगवान् का ही रूप है उस प्रणवा रूप परब्रह्म को वारम्वार नमस्कार है ।२८।

एतद्ब्रह्म त्रिधा भेदमभेदमपि स प्रभुः ।
सर्वभेदेष्वभेदोऽसौ भिद्यते भिन्नबुद्धिभिः ।२९।
सऋङ्मयस्साममयः सर्वात्मा स यजुर्मयः ।
ऋग्यजुस्सामसारात्मा स एवात्मा शरीरिणाम् ।३०।

स भिद्यते वदमयस्ववेदं करोति भेदैर्दैहुभिस्सशाखम् ।
शाखाप्रणेता स समस्तशुाखाज्ञानस्वरूपो भगवानसङ्ग ।३१।

यह प्रणव रूप ब्रह्म अभेद होकर भी तीन भेद वाला और सभी भेदों में अभिन्न रूप से स्थित है, परन्तु भेद बुद्धि वालों को पृथक्-पृथक् प्रतीत होता है ।२९। वह सर्वात्मा ऋङ्.मय साममय और यजुर्मय है तथा ऋक् यजुः साम का सार रूप वह प्रणव ही सब देहधारियों को आत्मा है ।३०। वह वेदमय है, वही ऋग्वेदादि रूप से भिन्न-भिन्न होता और अपने वेद रूप को विभिन्न शाखाओं में विभक्त करता है । वही सग रहित ज्ञान स्वरूप परमात्मा सब शाखों का रचने वाला है ।३१।



चौथा अध्याय

आद्यो वेदश्चतुष्पादः शतसाहस्रसम्मितः ।
ततो दशगुणः कृत्स्नो यज्ञोऽयं सर्वकामधुक् ।१।
ततोऽत्र मत्सुतो व्यासो अष्टाविंशतिमेऽन्तरे ।
वेदमेकं चतष्पादं चतुर्धा व्यभजत्प्रभु ।२।
यथा च तेन वें व्यस्ता वेदव्यासेन धीमता ।
वेदास्तथा समस्तैस्यर्यस्ता व्यस्तैस्तथा मया ।३।
तदनेनैव वेदानां शाखाभेदान्द्विजोत्तम ।
चतुर्युगेषु पठितान्समस्तेष्ववधारय ।४।
कृष्णद्वैपायन व्यासं विद्धि नारायण प्रभुम् ।
को ह्यन्यो भुवि मैत्रेय महाभारतकृद्भवेत् ।५।
तेन व्यस्ता यथा वेदा मत्पुत्रेण महात्मनाः ।
द्वापरे ह्यत्र मैत्रेय तस्मिञ्छृणु यथातथम् ।६।
ब्रह्मणा चोदितो व्यासो वेदान्व्यस्तुं प्रचक्रमे ।
अथ शिष्यान्प्रजग्राह चतुरो वेदपारगान् ।७।

श्री पराशरजी ने कहा-सृष्टि के आदि में वेद चार पदों से युक्त तथा एक लाख मंत्रों का था जिससे समस्त कामनाप्रद अग्निहोत्रादि दस प्रकार के यज्ञों का प्रचार हुआ ।१। फिर अट्ठाईसवे द्वापर में मेरे पुत्र कृष्ण द्वैपायन ने इस चार पाद वाले एक वेद के चार विभाग किये ।२। परम मेधावी वेदव्यास ने जैसे उनका विभाग किया, वैसे ही मैंने तथा अन्यान्य वेदव्यासों ने भी किया था ।३। इसलिए हे द्विजश्रेष्ठ ! सब चतुर्युगियों में इन्हीं शाखा-भेदों वाले वेद का पाठ होता हुआ समझो ।४। भगवान् कृष्ण द्वैपायन को साक्षात् नारायण ही मानों क्योंकि भगवान् के अतिरिक्त किसमें महाभारत रचने की सामर्थ्य हो सकती है ? ।५। हे मैत्रेयजी ! द्वापर में मेरे महात्मा पुत्र कृष्ण द्वैपायन वेदों को जिस प्रकार विभक्त किया था, उसे अब यथातथ्य सुनो ।६। ब्रह्माजी की प्रेरणा से जब उन्होंने वेदों का विभाग करना चाहा, तब उन्होंने वेदाध्ययन में समर्थ चार शिष्यों को इस कार्य में नियुक्त किया ।७।

ऋग्वेदपाठकं पैलं जग्राह स महामुनिः ।
वैशम्पायननामानं यजुर्वेदस्य चाग्रहीत् ।८।
जैमिनि सामवेदस्य तथैवाथर्ववेदवित् ।
सुमन्तुस्तस्य शिष्योऽभूद्वेदव्यासस्य धीमतः ।९।
रोमहर्षणनामानं महाबुद्धि महामुनिः ।
सूतं जग्राह शिष्यं स इतिहासपुराणयोः ।१०।
एक आसोद्यजुर्वेदस्तं चतुर्धा व्यकल्पयत् ।
चातुर्होत्रमधूत्तस्मिंस्तेन यज्ञमथाकरोत् ।११।
आध्वर्यवं यजुर्भिस्तु ऋग्भिर्होत्रं तथा मुनिः ।
औन्दात्रं सामभिश्चक्रे ब्रह्मत्व चाप्यथर्वभिः ।१२।
ततस्स ऋचा उद्धृत्य ऋग्वेदं कृतवान्मुनिः ।
यजूंषि चा यजुर्वेद सामवेद चा सामभिः ।१३।

उन चार शिष्यों में से पैल नामक शिष्य को उन महामुनि ने ऋग्वेद पढ़ाया । फिर वैशम्पायन को यजुर्वेद और जैमिनी को सामवेद

का अध्ययन कराया। उन्होंने अपने सुमन्तु नामक शिष्य को अथर्ववेद में पारंगत किया।८-९। इनके अतिरिक्त सूत जाति में उत्पन्न रोमहर्षण नाम महा मेधावी को व्यासजी ने इतिहास-पुराण के विद्यार्थी के रूप में शिष्य बनाया।१०। पहिले यजुर्वेद एक ही था। उन्होंने उसके चार विभाग किये, इसलिए उसमें चातुर्होत्र की प्रवृत्ति हुई और इसी विधि से उन्होंने यज्ञों के अनुष्ठानों को व्यवस्थित किया।११। व्यासजी ने यजुर्वेद से अध्वर्यु का कर्म निश्चय किया, ऋग्वेद से होता का कर्म कल्पित किया सामवेद से उद्गाता के कर्म की और अथर्ववेद से ब्रह्म के कर्म की स्थापना की।१२। फिर उन्होंने ऋग्वेद और यजुर्वेद की श्रुतियों का उद्धार करके ऋग्यजुः साम की श्रुतियों से सामवेद की रचना की।१३।

राज्ञां चाथर्ववेदेन सर्वकर्माणि च प्रभुः।
कारयामास मैत्रेय ब्रह्मत्वं च यथास्थिति।१४।
सोऽयमेको यथा वेदस्तरुस्तेन पृथक्कृतः।
चातुर्धाथ ततो जातं वेदपादपकाननम्।१५।
विभेद प्रथमं विप्र पैलो ऋग्वेदपादपम्।
इन्द्रप्रमितये प्रादाद्बाष्कलाय च संहिते।१६।
चतुर्धा स बिभेदाथ बाष्कलोऽपि च संहिताम्।
बोध्यादिभ्यो ददौ ताश्च शिष्येभ्यस्स महामुनिः।१७।
बोध्याग्निमाढकौ तद्वद्याज्ञवल्क्यपराशरौ।
प्रतिशाखास्तु शाखायास्तस्यास्ते जगृहुर्मुने।१८।
इन्द्रप्रमितिरेकां तु संहितां स्वसुतं ततः।
माण्डुकेयं महात्मानं मैत्रेयाध्यापयत्तदा।१९।
तस्य शिष्यप्रशिष्येभ्यः पुत्रशिष्यक्रमाद्ययौ।
वेदमित्रस्तु शाकल्यः संहितां तामधीतवान्।२०।

हे मैत्रेयजी! अथर्ववेद के द्वारा उन वेदव्यास ने समस्त राजकर्म की, ब्रह्मत्व की व्यवस्था की।१४। इस प्रकार उन्होंने एक वेदरूप वृक्ष के चार भाग किए और उन चारों भागों से वेद रूपी वृक्षों का वन ही लग

गया ।१५। प्रथम पैल ने ऋग्वेद रूपी वृक्ष को दो भागों में बाँटा और अपने शिष्य इन्द्रप्रमिति और वाष्कल को उनका अध्ययन कराया ।१६। वाष्कल ने भी अपनी शाखा के चार भाग करके उन्हें अपने बोध्य आदि शिष्यों को पढ़ाया ।१७। हे मुने ! वाष्फल की शाखा की जो चार प्रति-शाखाएँ हुई, उन्हें उनके शिष्य बोध्य, अग्निमाढक, याज्ञवल्क्य और पराशर ने ग्रहण किया ।१८। हे मैत्रेयजी ! इन्द्र प्रमिति ने अपनी प्रति शाखा का अध्ययन अपने पुत्र माण्डुकेय को किराया ।१९। इस प्रकार शिष्य और शिष्य के भी शिष्य के क्रम से उस शाखा की इनके पुत्र और शिष्यों ने वृद्धि की। इसी शिष्य-परम्परा से शाकल्प वेदमित्र ने इससहिता का अध्ययन किया ।२०।

चकार संहिताः पञ्च शिष्येभ्यः प्रददौ च ताः ।
तस्य शिष्यास्तु ते पञ्च तेषां नामानि मे श्रृणु ।२१।
मुद्गलो गोमुखश्चैव वात्स्यश्शालीय एव च ।
शरीरः पञ्चमश्चासन्मैत्रेय महामतिः ।२२।
संहितात्रितयं चक्रे शाकपूर्णस्तथेतरः ।
निरुक्तमकरोत्तद्वच्चातुर्थं मुनिसत्तम ।२३।
क्रौञ्चो वैतालिकस्तद्वद्बलाकश्च महामुनिः ।
निरुक्तकृच्चतुर्थोऽभूद्वेदवेदाङ्गपारगः ।२४।
इत्येताः प्रतिशाखाभ्यो ह्यनुशाखा द्विजोत्तम ।
वाष्कलश्चापरास्तिस्रस्संहिताः कृतवान्द्विज ।२५।
शिष्यः कालायनिर्गार्ग्यस्तृतीयश्च कथाजवः ।
इत्येते वह्वृचाः प्रोक्ताः यैः प्रवर्तिताः ।२६।

इसके पश्चात् शाकल्प वेदमित्र ने उस शाखा की पाँच अनुशाखायें कीं और अपने पाँच शिष्यों को उनका अध्ययन कराया। अब उनके नाम सुनो ।२१। मुद्गल, गोमुख, वात्स्य, शालीय और पाँचवें अत्यन्त बुद्धिमान शिष्य थे ।२२। हे मुने ! उनके एक अन्य शिष्य शाकपूर्ण ने तीन वेद संहिताओं तथा एक निरुक्त ग्रन्थ को रचा था ।२३। महामुनि क्रौंच, वैतालिक और बालक नामक उनके शिष्यों ने तीनों संहिताओं का अध्ययन

किया तथा उनके एक चतुर्थ शिष्य ने वेद--वेदांग में पारंगत प्राप्त की ।२४। इस प्रकार वेद-वृक्ष की शाखाओं से प्रति शाखायें और उनसे भी अनुशाखाएँ उत्पन्न हुईं । हे द्विजोत्तम ! बाष्कण ने अन्य तीन संहिताओं की भी रचना की थी ।२५। कालायनि, गार्ग्य और कथा जब उनके शिष्य थे । जिन्होंने इन संहिताओं का प्रसार किया, वे वह वृच कह कर विख्यात हुए ।२६।

—:※※:—

पाँचवाँ अध्याय

यजुर्वेदतरोश्शाखास्यप्तविंशन्महामुनिः ।
वैशम्पायननामासौ व्यासशिष्यश्चकार वै ।१।
शिष्येभ्यः प्रददौ ताश्च जगृहुस्तेऽप्यनुक्रमात् ।
याज्ञवल्क्यस्तु तत्राभूद्ब्रह्मरातसुतो द्विज ।२।
शिष्यः परमधर्मज्ञो गुरुवृत्तिपरस्सदा ।
ऋषिर्योऽद्य महामेरोः समाजे नायमिष्यति ।३।
तस्य वै सप्तरात्रात्तु ब्रह्महत्या भविष्यति ।
पूर्णमेवं मुनीगणैस्समयौ यः कृतो द्विज ।४।
वैशम्पायन एकस्तु तं व्यतिक्रान्दवांस्तदा ।
स्वस्त्रीयं बालकं सोऽथ पदा स्पृष्टमघातयत् ।५।
शिष्यानाह स भो शिष्या ब्रह्महत्यापह व्रतम् ।
चरध्वं मत्कृते सर्वे न विचार्यमिदं तथा ।६।
अथाह याज्ञवल्क्यस्तु किमेभिर्भगवन्द्विजैः ।
क्लेशितैरल्पतेजोभिश्चरिष्येऽहमिदं व्रतम् ।७।

हे महामुने ! व्यास-शिष्य वैशम्पायनजी ने यजुर्वेद रूपी वृक्ष की सत्ताईस शाखाओं को रचा ।१। वे शाखाएँ उन्होंने अपने शिष्यों की पढ़ाई तथा शिष्यो ने भी उन्हें क्रमशः ग्रहण किया । हे विप्र । उनका एक परम

धार्मिक शिष्य ब्रह्मरात-पुत्र याज्ञवल्क्य था। जो सदा ही गुरु सेवा में तत्पर रहता था। जो महामेरु स्थित हमारे समाज में सम्मिलित न होगा, उसे सात रातों में ब्रह्महत्या लगेगी। इस प्रकार मुनियों ने पहिले निश्चित किया था, परन्तु उनके उस नियम का सर्व प्रथम वैशम्पायन ने ही उल्लघन किया था। इसके पश्चात् उसका चरण छू जाने मात्र से उसके भानजे की मृत्यु हो गई।२-५। तब वह अपने शिष्यों से बोले-हे शिष्यों ! तुम किसी प्रकार का विचार न करते हुए मेरी ब्रह्म हत्या को दूर करने के निमित्त व्रत करो।६। इस पर याज्ञवल्क्यजी ने कहा—हे भगवन् ! यह ब्राह्मण अल्प तेज वाले हैं, इन्हें कष्ट देने से क्या लाभ है ? मैं ही अकेला व्रत का अनुष्ठान करूँगा।७।

ततः क्रुद्धो गुरुः प्राह याज्ञवल्क्यं महामुनिम् ।
मुच्यतां यत्त्वयाधीत मत्तो विप्रावमानक।८।
निस्तेजसो वदस्येनान्यत्वं ब्राह्मणपुङ्गवान् ।
तेन शिष्येण नार्थोऽस्ति ममाज्ञाभङ्गकारिणा।९।
याज्ञवल्क्यस्ततः प्राहः भक्त्यैतत्ते मयोदितम् ।
समाप्यलं त्वयाधीतं यन्मया तदिद द्विजः।१०।
इत्युक्तो रुधिराक्तानि सरूपाणि यजूंषि सः ।
छर्दयित्वा ददौ तस्मै ययौ स स्वेच्छया मुनिः।११।
यजूंष्यथ विसृष्टानि याज्ञवल्क्येन वै द्विज ।
जगृहुस्तित्तिरा भूत्वा तैत्तिरीयास्तु ते ततः।१२।
ब्रह्महत्याव्रतं चीर्णं गुरुणा चोदितैस्तु यैः ।
चरकाध्वर्यवस्ते तु चरणान्मुनिसत्तम।१३।
याज्ञवल्क्योऽपि मैत्रेय प्राणयामपरायणः ।
तुष्टाव प्रयतस्सूर्यं यजूंष्यभिलषंस्ततः।१४।

याज्ञवल्क्य की बात से वैशम्पायनजी क्रोधित हो गये और उन्होंने उन महामुनि याज्ञवल्क्यजी कहा-अरे ब्राह्मणों का अपमान करने वाले मूर्ख। तूने मुझसे जो कुछ भी पढ़ा है, उस सबका त्याग कर दे।८। तू इन सब विप्र पुंगवों को निस्तेज कहता है, इसलिये तेरे जैसे आज्ञा-

करने वाले शिष्य से मैं कोई प्रयोजन नहीं रखता।९ याज्ञवल्क्य बोले—हे ब्रह्मन् ! मैंने तो आपकी भक्ति के वश ही यह बात कही थी, अब मुझे भी आपसे कुछ प्रयोजन नहीं है, आपसे जो कुछ मैंने पढ़ा था, वह सब यह उपस्थित है।१०। श्री पराशरजी ने कहा-यह कह कर महामुनि याज्ञल्वक्यजी ने रुधिर से लथपथ यजुर्वेद मूर्तिमान् रूप में वमन करके उन्हें दिया और अपनी इच्छानुसार वहाँ से चले गये।११। हे द्विज ! याज्ञवल्वयजी के द्वारा वमन की गई उन यजुर्वेद की श्रुतियों को अन्य शिष्यों ने तीतर का रूप धारण कर ग्रहण किया, इसीलिए वे सब शिष्य तैत्तिरीय संज्ञक हुए।१२। हे मुनिवर ! गुरु की प्रेरणा से जिन ब्राह्मणों ने ब्रह्म हत्या को नष्ट करने वाले ब्रत का अनुष्ठान किया था, वे व्रत करने के कारण चरकाध्वर्यु कहे गये।१३। फिर याज्ञवल्वयजी ने भी यजुर्वेद की कामना से प्राणायाम परायण रह कर सूर्य का स्तवन किया।१४।

नमस्सवित्रे द्वाराय मुक्तेरमिततेजसे।
ऋग्यजुस्सामभूताय त्रयोधाम्ने च ते नमः।१५।
नमोऽग्नीषोमभूताय जगत कारणात्मने।
भास्कराय परं तेजस्सौषुम्नरुचिबिभ्रते।१६।
कलाकाष्टानिमेषादिकालज्ञानात्मरूपिणे।
ध्येयाय विष्णुरूपाय परमाक्षररूपिणे।१७।
बिभर्त्ति यस्सुरगणानाप्यायेन्दुं स्वरश्मिभिः।
स्वधामतेन च पितृंस्तस्मै तृप्त्यात्मने नमः।१८।
हिमाम्बुधर्मवृष्टीनां कर्ता भर्ता च यः प्रभुः।
तस्मै त्रिकालरूपाय नमस्सूर्याय वेधसे।१९।
अपहन्ति तमो यश्च जगतोऽस्य जगत्पतिः।
सत्वधामधरो देवो नमस्तस्मै विवस्वते।२०।
सत्कर्मयोग्यो न जनो नैवापः शुद्धिकारणम्।
यस्मिन्ननुदिते तस्मै नमो देवाय भास्वते।२१।

याज्ञवल्क्यजी ने कहा-अमित तेजोमय, मोक्ष द्वार स्वरूप, वेदत्रयी रूपी तेज से सम्पन्न तथा ऋक् यजुः और साम के साक्षात् रूप सूर्य

भगवान् को नमस्कार है ।१५। अग्नि और चन्द्रमा रूपी विश्व के कारण और सुषुम्न नामक परम तेज के धारक भगवान भास्कर को नमस्कार है ।१६। कला, काष्ठा, निमेषादि काल-ज्ञान के कारण रूप और चिन्तनीय परब्रह्म विष्णु मय श्री सूर्यदेव को नमस्कार है ।१७। जो अपनी किरणों द्वारा चन्द्रमा को पुष्ट कर सुधा से देवताओं को तथा स्वधा से पितरों को तृप्त करते है, उन तृप्ति रूप भगवान् सूर्य को नमस्कार है ।१८। जो शीत वर्षा, ग्रीष्म आदि के कर्त्ता तथा विश्व के पोषक हैं, उन त्रिकाल मूर्ति भगवान् को नमस्कार हैं ।१९। जो जगत्पति इस सम्पूर्ण संसार के अन्धकार को नष्ट करते है, उन सत्वधामधर विवस्वान् को नमस्कार हैं ।२०। जिनके उदय होने पर ही मनुष्यगण सत्कर्मों में प्रवृत्त होते हैं तथा जल भी उनके उदय हुए बिना शुद्धि करने वाला नहीं होता, उन भास्वान् को नमस्कार है ।२१।

स्पृष्टौ यदंशुभिर्लोकः क्रिया योग्यो हि जायते ।
पवित्रताकारणाय तस्मै शुद्धात्मने नमः ।२२।
नमः सवित्रे सूर्याय भास्कराय विवस्वते ।
आदित्यायादिभूताय देवादीनां नमो नमः ।२३।
हिरण्मयं रथं यस्य केतवोऽमृतवाजिनः ।
वहन्ति भुवनालोकिचक्षुषं तं नमाम्यहम् ।२४।
इत्येवमादिभिस्तेन स्तूयमानस्य वै रविः ।
वाजिरूपधरः प्राह व्रियतामिति वाञ्छितम् ।२५।
याज्ञवल्क्यस्तदा प्राह प्राणिपत्य दिवाकरम् ।
यजूंषि तानि मे देहि यानि सन्ति न मे गुरौ ।२६।
एवमुक्तो ददौ तस्मै यजूंषि भगवान्रविः ।
अयातयामसंज्ञानि यानि वेत्ति न तद्गुरुः ।२७।
यजूंषि यैरधीतानि तानि विप्रर्द्विजोत्तम ।
वाजिनस्ते समाख्याताः सूर्योऽप्यश्वोऽभवद्यतः ।२८।
शाखाभेदास्तु तेषां वै दश पञ्च च वाजिनाम् ।
काण्वाद्यास्सुमहाभाग याज्ञवल्क्याः प्रकीर्तिताः ।२९।

जिनकी किरणों के स्पर्श होने पर ही संसार कर्मों का अनुष्ठान करने के योग्य होता है, उन पवित्रता के कारण, शुद्ध स्वरूप को नमस्कार है ।२२। सवितादेव, सूर्य, भास्कर और विवस्वान् को नमस्कार है, देवादि सब भूतों के आदिभूत भगवान आदित्य को नमस्कार है ।२३। जिनका हिरण्यमय रथ और ध्वजाएँ हैं, अमरत्व प्राप्त अश्व वहन करते हैं और जो त्रिभुवन को प्रकाशित करने में नेत्र स्वरूप हैं, उन सूर्य भगवान् को नमस्कार करता हूँ ।२४। श्री पराशरजी ने कहा-याज्ञवल्क्यजी द्वारा इस प्रकार स्तुत होने पर भगवान् सूर्य अश्व रूप से प्रकट हुए और उनसे बोले कि तुम अपना इच्छित वर माँगो ।२५। यह देखकर याज्ञवल्क्यजी ने प्रणाम पूर्वक उनसे निवेदन किया-आप मुझे वे यजु: श्रुतियाँ प्रदान करें जिनका ज्ञान मेरे गुरुजी को भी न हो ।२६। याज्ञवल्क्यजी के ऐसा कहने पर उन्होने उन्हें आयातयाम नामक यजु: श्रुतियो का उपदेश दिया उन श्रुतियों का उनके गुरु वैशम्पायनजी को भी ज्ञान नहीं था ।२७। हे द्विज-श्रेष्ठ ! भगवान् सूर्य ने उन श्रुतियो का उपदेश अश्वरूप में प्रकट होकर दिया था इसलिए उन श्रुतियों को पढ़ने वाले ब्राह्मण वाजी संज्ञक हुए ।२८। हे महाभाग ! उन वाजि-श्रुतियों की काण्व आदि पन्द्रह शाखाएँ हैं, जो महर्षि याज्ञवल्क्यजी द्वारा प्रवृत्त की हुई बताई जाती है ।२९।

—:❀❀:—

छठा अध्याय

सामवेदतरोश्शाखा व्याशिष्यस्स जैमिनि: ।
क्रमेण येन मैत्रेय विभेद श्रृणु तन्मम ।१।
सुमन्तुस्तस्य पुत्रोऽभूत्सुकर्मास्याप्भूत्सुत: ।
अधीतवन्तौ चैकैकां संहितां तो महामती ।२।
सहस्रसंहिताभेदं सुकर्मा तत्सुतस्तत: ।
चकार तं च तच्छिष्यौ जगृहाते महाव्रतौ ।३।

हिरण्यनाभः कौसल्यः पौष्पिञ्जिश्च द्विजोत्तम ।
उदीच्यास्सामगाः शिष्यास्तस्य पञ्चशतं स्मृताः ।४।
हिरण्यनाभात्तावत्यस्संहिता यैर्द्विजोत्तमैः ।
गृहीतास्तेऽपि चोच्यन्ते पण्डितैः प्राच्यसामगाः ।५।
लोकाक्षिनौधमिश्चैव कक्षीवाँल्याङ्गलिस्तथा ।
पौष्पिञ्जिशिष्यास्तद्भेदैस्संहिताः बाहुलीकृताः ।६।
हिरण्यनाभशिष्यास्तु चतुर्विंशतिसंहिताः ।
प्रोवाच कृतिनामासौ शिष्येभ्यश्च महामुनिः ।७।
तैश्चापि सामवेदोऽसौ शाखाभिर्बहुली कृतः ।
अथर्वणामथो वक्ष्ये संहितानां समुच्चयम् ।८।

श्री पराशरजी ने कहा-हे मैत्रेयजी ! जिस क्रम से व्यास शिष्य जैमिनि ने सामवेद की शाखाओं को विभक्त किया था अब उसे श्रवण करो ।१। जैमिनि का पुत्र सुमन्तु और उसका पुत्र सुकर्मा हुआ । उन दोनों श्रेष्ठ बुद्धि वाले पुत्र-पौत्र ने सामवेद की एक-एक शाखा को पढ़ा ।२। फिर सुमन्तु-पुत्र सुकर्मा ने अपनी सामवेद संहिता के एक हजार शाखा भेद किये, जिन्हें उसके कौसल्य, हिरण्यनाभ और पौष्पिञ्जि नामक महाव्रती शिष्यों ने ग्रहण किया । हिरण्यनाभ के जो पाँच सौ शिष्य हुए वे सब उदीच्य सामग नाम से प्रसिद्ध हुए ।३-४। और जिन अन्य श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने हिरण्यनाभ से इतनी ही संहिताएँ और ग्रहण की थीं, वे सब प्राच्यसागम नाम से विख्यात हुए ।५। पौष्पिञ्जि के शिष्य लोकाक्षि, नौधमि, कक्षीवन् और लाँगलि हुए । उनके शिष्य तथा प्रशिष्यों ने भी अपनी-अपनी संहिताओं की शाखा करके उनका विस्तार किया ।६। हिरण्यनाभ के एक अन्य शिष्य महामुनि कृति ने अपने शिष्यों को सामवेद की चौबीस संहिताओं का अध्ययन कराया ।७। इन शिष्यों ने भी सामवेद की इन शाखाओं को बहुत बढ़ाया । अब मैं अथर्ववेद-संहिताओं के समुच्चय को कहता हूँ ।८।

अथर्ववेदं स मुनिस्सुमन्तुरमितद्युतिः ।
शिष्यमध्यापयामास कबन्धं सोऽपि तं द्विधा ।
कृत्वा तु देवदर्शाय तथा पथ्याय दत्तवान् ।९।

देवदर्शस्य शिष्यास्तु मेधो ब्रह्मबलिस्तथा ।
शौल्कायनिः पिप्पलादस्तथान्यो द्विजसत्तम ।१०।
पथ्यस्यापि त्रयश्शिष्याः कृता यैर्द्विज संहिताः ।
जाबालिः कुमुदादिश्च तृतीयश्शौनको द्विज ।११।
शौनकस्तु द्विधा कृत्वा ददावेकां तु बभ्रवे ।
द्वितीयां संहितां प्रादत्सैन्धवाय च संज्ञिने ।१२।
सैन्धवान्मुञ्जिकेशश्च द्विधा भिन्नस्त्रिधा पुनः ।
नक्षत्र कल्पो वेदानां संहितानां तथैव च ।१३।
चतुर्थस्स्यादाङ्गिरसश्शान्तिकल्पश्च पञ्चमः ।
श्रेष्ठास्त्वथर्वणामेते संहितानां विकल्पकाः ।१४।

सुमन्तु मुनि ने अथर्ववेद का अध्ययन सबसे पहले अपने शिष्य कबन्ध को कराया, जिसने उसके दो विभाग करके उन्हें अपने शिष्य देव-दर्श और पथ्य को दिया ।९। हे द्विज श्रेष्ठ ! देवदर्श के शिष्य मेध, ब्रह्म-बलि, शौल्कायनि और पिप्पलाद हुए ।१०। पथ्य के तीन शिष्य जाबालि कुमुदादि शौनक हुए, जिन्होंने संहिताओं को शाखा रूप में विभक्त किया ११। शौनक ने भी अपनी संहिता के दो विभाग किये इनमें से एक बभ्रु को और दूसरी सैन्धव को प्रदान की ।१२। सैन्धव से मुञ्जिकेश ने उसका अध्ययन किया और इसके प्रथम दो और फिर तीन विभाग किये। नक्षत्र कल्प वेदकल्प, संहिताकल्प चौथा आंगिरस कल्प और पाँचवाँ शांति कल्प-इन पाँच कल्पों को उन्होंने रचना की जो अथर्व-संहिताओं में सर्वो-त्कृष्ट मानी गई हैं ।१३-१४।

आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथिभिः कल्पशुद्धिभिः ।
पुराणसंहितां चक्रे पुराणार्थविशारदः ।१५।
प्रख्यातो व्यासशिष्योऽभूत्सूतो वै रोमहर्षणः ।
पुराणसंहितां तस्मै ददौ व्यासो महामतिः ।१६।
सुमतिश्चाग्निवर्चाश्च मित्रायुश्शांसपायनः ।
अकृतव्रणसावर्णी षट् शिष्यास्तस्य चाभवन् ।१७।

काश्यपः संहिताकर्ता सावर्णिश्शांसपायनः ।
रोमहर्षणिका चाया तिसृणां मूलसंहिता ।१८।
चतुष्टयेन भेदेन संहितानामिद मुने ।१९।
आद्यं सर्वपुराणनां पुराण ब्राह्ममुच्यते ।
अष्टादशपुराणानिः पुराणज्ञाः प्रचक्षते ।२०।
ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैव भागवतं तथा ।
तथान्यन्नारदीयं च मार्कण्डेयं च सप्तमम्ः ।२१।

फिर पुराणार्थ में पारगत व्यासजी ने आख्यान, उपाख्यान, गाथा कल्प शुद्धि सहित पुराण संहिता को रचा ।१५। व्यासजी ने अपने प्रसिद्ध शिष्य रोमहर्षण सूत को पुराण संहिता का अध्ययन कराया ।१६। इन रोमहर्षण सूत के छः शिष्य हुए, जिनके सुमति, अग्निवर्चा, मित्रायु शांसपायन, अकृतव्रण और सावर्णि नाम थे ।१७। काश्यप गोत्र के अकृतव्रण सावर्णि और शांसपायन–इन तीनों ने संहिताएँ रचीं । उन तीनों संहिताओं की आधार एक संहिता रोमहर्षण सूत की है । हे मुने ! मैंने यह विष्णु पुराण संहिता चारों संहिताओं की सारभूत रची है ।१८–१९। पुराणज्ञ पुरुष जो अठारह पुराण बतलाते है, उनमें सबसे प्राचीन ब्रह्मपुराण है ।२०। पहला पुराण ब्राह्म, दूसरा पाद्म तीसरा वैष्णव, चौथा शैव, पाँचवाँ भागवत, छठा नारदीय और सातवाँ मार्कण्डेय पुराण है ।२१।

आग्नेयमष्टमं चैव भविष्यन्नवम स्मृतम् ।
दशमं ब्रह्मवैवर्तं लैङ्गमेकादशं स्मृतम् ।२२।
वाराहं द्वादशं चैव स्कान्दं चात्र त्रयोदशम् ।
चतुर्दशं वामनं च कौर्मं पञ्चदशं तथा ।२३।
मात्स्यं च गारुडं चैव ब्रह्माण्ड च ततः परम् ।
महापुराणान्येतानि ह्यष्टादश महामुने ।२४।
तथा चौपपुराणानि मुनिभिः कथितानि च ।
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशमन्वन्तराणि च ।
सर्वेष्वेतेषु कथ्यन्ते वंशानुचरितं च यत् ।२५।

यदेतत्तव मैत्रेय पुराणं कथ्यते मया ।
एतद्वैष्णवसंज्ञं वै पाद्मस्य समनन्तरम् ।२६।
सर्गे च प्रतिसर्गे च वंशमन्वन्तरादिषु ।
कथ्यते भवगान्विष्णुरशेषेष्वेव सत्तम ।२७।

इसी प्रकार आँठवाँ पुराण आग्नेय है । नौवाँ भविष्य पुराण दसवाँ ब्रह्मवैवर्त्त तथा ग्यारहवाँ लैंग पुराण कहा जाता है ।२२। बारहवाँ वाराह, तेरहवाँ स्कान्द, चौदहवाँ वामन, पन्द्रहवाँ कौर्म, सोलहवाँ मात्स्य, सत्रहवाँ गारुड़ और अठारहवाँ ब्रह्माण्ड पुराण है । हे महामुने ! अठारह महापुराण यही हैं ।२३-२४। इनके अतिरिक्त और बहुत-से उपपुराण मुनिजनों ने बताये हैं । इन सबमें सृष्टि, प्रलय, देवादि के वशों का वर्णन, मन्वन्तर और विभिन्न राज-वंशों के वृतान्त हैं ।२५। हे मैत्रेयजी ! मैं तुम्हें जो पुराण इस समय सुना रहा हूँ वह पाद्मपुराण के पश्चात् कहा गया वैष्णव नामक महापुराण है ।२६। इसमें सर्ग, प्रतिसर्ग; वंश और मन्वन्तरादि का वर्णन करते हुए सर्वत्र केवल भगवान् विष्णु का ही संकीर्तन किया गया है ।२७।

अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः ।
पुराण धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश ।२८।
आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चैव ते त्रयः ।
अर्थशास्त्रं चतुर्थं तु विद्या ह्यष्टादशैव ताः ।२९।
ज्ञेया ब्रह्मर्षयः पूर्वं तेभ्यो देवर्षयः पुनः ।
राजर्षयः पुनस्तेभ्यश्च ऋषिप्रकृतयस्त्रयः ।३०।
इति शाखास्समाख्याताशाखाभेदास्तथैव च ।
कर्तारश्चैव शाखानां भेदहेतुस्तथोदितः ।३१।
सर्वमन्वन्तरेष्वेवं शाखाभेदास्समाः स्मृताः ।
प्राजापत्या श्रुतिर्नित्या तद्विकल्पास्त्विमे द्विज ।३२।
एतत्ते कथितं सर्वं यत्पृष्टोऽहमिह त्वया ।
मैत्रेय वेदसम्बन्धः किमन्यत्कथयामि ते ।३३।

जो चौदह विद्याएँ प्रसिद्ध हैं, उनमें छः वेदांग, चार वेद, मीमांसा न्याय, पुराण और धर्मशास्त्र हैं ।२८। इन्हीं में आयुर्वेद, धनुर्वेद, गांधर्व और अर्थशास्त्र को मिला लेने पर यह सब अठारह विद्याएँ हो जाती हैं। ऋषि तीन प्रकार है-प्रथम प्रकार के ब्रह्मर्षि दूसरे देवर्षि और तीसरे राजर्षि ।२९-३०। इस प्रकार मैंने तुम्हें वेदों की शाखा, उनके भेद, उन के रचने वाले और शाखा-भेद के कारण भी बता दिये हैं ।३१। इसी प्रकार सब मन्वन्तरों में एक जैसे ही शाखा-भेद रहते हैं। हे विप्र ! प्रजापति श्रीब्रह्माजी से प्रकट हुई श्रुति ही नित्य है, यह सब तो उसके विकल्प ही समझो ।३२। हे मैत्रेयजी ! तुमने जो वेद-विषयक जिज्ञासा की थी उस सबका वर्णन मैंने किया है, अब बताओ और क्या सुनना चाहते हो, जिसका मैं वर्णन करूँगा ? ।३३।



सातवाँ अध्याय

यथावत्कथितं सर्वं यत्पृष्टोऽसि मया गुरो ।
श्रोतुमिच्छाम्यहं त्वेक तद्भवान्प्रब्रवीतु मे ।१।
सप्त द्वीपानि पातालविधयश्च महामुने ।
सप्तलोकाश्च येऽन्तः स्था ब्रह्माण्डस्यास्य सर्वतः ।२।
स्थूलैः सूक्ष्मैस्तथा सूक्ष्मसूक्ष्मात्सूक्ष्मतरैस्तथा ।
स्थूलात्स्थूलतरैश्चैव सर्वप्राणिभिरावृतम् ।३।
अङ्गुलस्याष्टभागोऽपि न सोऽस्ति मुनिसत्तम ।
न सन्ति प्राणिनो यत्र कर्मबन्धनिबन्धनाः ।४।
सर्वे चैते वशं यान्ति यमस्य भगवन् किल ।
आयुषोऽन्ते तथा यान्ति यातनास्तत्प्रचोदिताः ।५।
यातनाभ्यः परिभ्रष्टा देवाद्यास्वथ योनिषु ।
जन्तवः परिवर्तन्ते शास्त्रथमेष निर्णयः ।६।

सोऽहमिच्छामि तच्छ्रोतुं यमस्य वशवर्त्तिनः ।
न भवन्ति नरा येन तत्कर्म कथयस्व मे ।७।

श्री मैत्रेयजी ने कहा–हे गुरो ! मेरे समस्त प्रश्नोंका आपने यथावत् उत्तर दिया है । अब एक बात और सुनने की इच्छा है, उसे आप मेरे प्रति कहिए ।१। हे महामुने ! इस ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत जो सात द्वीप, सात पाताल और सात लोक हैं वे सब स्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, सूक्ष्मातिसूक्ष्म तथा थूल और स्थूलतर प्राणियों से परिपूर्ण हैं ।२—३। एक अगुल का अष्टमांस भी ऐसा नहीं है जहाँ कर्म के बन्धन में बँधे हुए जीवों का निवास न हो ।४। परन्तु हे भगवन् ! जब आयु का अन्त होता है, तब ये सब यम के वश में पड़कर उन्हीं के निर्देशन में नरकादि की विभिन्न यात्रणाएँ भोगते हैं ।५। फिर पाप भोग के निःशेष होने पर उन्हें देवादि योनियों में भ्रमण करना होता है—सभी शास्त्र ऐसा कहते हैं ।६। इसलिए, आप मुझे उस कर्म को बताइये, जिसे करके मनुष्य को यमराज के वश में नहीं पड़ना होता, मुझे इसी के जानने की इच्छा है ।७।

अयमेव मुने प्रश्नो नकुलेन महात्मना ।
पृष्टः पितामहः प्राह भीष्मो यत्तच्छृणुष्व मे ।८।
पुरा ममागतो वत्स सखा कलिङ्गको द्विजः ।
स मामुवाच प्रष्टो वै मया जातिस्मरो मुनिः ।९।
तेनाख्यातमिदं सर्वमित्थं चैतद्भविष्यति ।
तथा च तदभूद्वत्स यथोक्तं तेन धीमता ।१०।
स पृष्टश्च मया भूयः श्रद्दधानेन वै द्विजः ।
यद्यदाह न तद्दृष्टमन्यथा हि मया क्वचित् ।११।
एकदा तु मया पृष्टमेतद्यद्भवतोदितम् ।
प्राह कलिङ्गको विप्रस्स्मृत्वा तस्य मुनेर्वचः ।१२।
जातिस्मरेण कथितो रहस्यः परमो मम ।
यमकिङ्करयोर्योऽभूत्संवादस्तं ब्रवीमि ते ।१३।

श्री पराशरजी ने कहा—हे मुने ! ऐसा ही प्रश्न पितामह भीष्म से महात्मा नकुल ने किया था। उन्होंने उसका जो उत्तर दिया, वह तुम्हें बताता हूँ सुनो।८। भीष्मजी ने कहा—हे वत्स ! पहिले की बात है—मेरे पास कलिंग देश का एक ब्राह्मण आया। वह मेरा मित्र था। उसने मुझ से कहा-मेरे प्रश्न करने पर पूर्वजन्म के वृतान्त को जानने वाले एक मुनि ने मुझे बताया था कि यह सब बातें अमुक-अमुक प्रकार होंगी। हे वत्स ! उस मतिमान ने जो बात जिस प्रकार बताई, वह उसी प्रकार हुई।९-१०। इससे उसके प्रति मेरी श्रद्धा बढ़ गई और मैंने उससे कुछ अन्य प्रश्न किये। उनका भी जो उत्तर उस विप्रश्रेष्ठ ने दिया उस सबके विपरीत कभी कुछ होता मैंने नहीं देखा।११। जो बात तुमने मुझसे पूछी है, वही बात एक दिन मैंने उस कलिंग देशीय ब्राह्मण से पूछी तब उस मुनि के वचनों का स्मरण करके मुझे बताया कि उस जातिस्मर मुनि ने यमराज और उनके दूतों के मध्य हुए संवाद के अत्यन्त गूढ रहस्य को मुझे सुनाया था। उसे ही मैं जैसे का तैसा तुम्हें सुनाता हूँ।१२-१३।

स्वपुरुषमभिवीक्ष्य पाशहस्त वदति यमः किल तस्य कर्णमूले।
परिहर मधुसूदनप्रपन्नान्प्रभुरहमन्यनृणामवैष्णवानाम्।१४
अहममरवरार्चितेन धात्रा यम इति लोकहिताहिते नियुक्तः।
हरिगुरुवशगोऽस्मि न स्वतन्त्रः प्रभवति संयमने ममापि विष्णु।१५
कटकमुकुटकर्णिकादिभेदः कनकमभेदमपीष्यते यथैकम्।
सुरपशुमनुजादिकल्पनाभिर्हरिरखिलाभिरुदीर्यते तथैकः।१६।
क्षितितलपरमाणवोऽनिलान्ते पुनरुपयान्ति यथैकतां धरित्र्याः।
सुरपशुमनुजादयस्तथान्ते गुणकलुषेण सनातनेन तेन।१७।
हरिममरवरार्चिताङ्घ्रिपद्मं प्रणमति यः परमार्थतो हि मर्त्यः।
तमपगतसमस्तपापबन्धं व्रज परिहृत्य यथाग्निमाज्यसिक्तम्।१८।
इति यमवचनं निशम्य पाशी यमपुरुषस्तमुवाच धर्मराजम्।
कथय मम विभो समस्तधातुर्भवति हरेः खलु यादृशोऽस्य भक्तः।१९

न चलति निजवर्णधर्मतो यः सममतिमसुहृद्विपक्षपक्षे।
न हरित न च हन्ति किञ्चदुच्चैः सितमनसं तमवेहि विष्णुभक्तम्
कलिकलूषमलेन यस्य नात्मा विमलमतेर्मलिनीकृतस्तमेनम्।
मनसि कृनजार्दनं मनुष्यं सततमवेहि हरेरतीवभक्तम्।२१।

कालिंग ने कहा-यमराज ने अपने अनुचर को हाथ पाश धारण किये देखकर, उसके कान में कहा-हे अनुचर! मैं भगवान् विष्णु के अभक्तों का ही स्वामी हूँ, इसलिये भगवान् के शरणागतों को मत पकड़ना।१४। देवताओं के पूज्यनीय विधाता ने मुझे 'यम' नामक पद देकर लोकों के पाप-पुण्य के विचारार्थ नियुक्त किया है। मैं अपने गुरु श्रीहरि के अधीन हूँ, स्वतन्त्र नहीं हूँ। वे भगवान् श्रीहरि मुझे पर भी शासन करने में समर्थ हैं।१५। जैसे एक ही स्वर्ण कटक, मुकुट, कर्णिकादि के भेद से अनेक रूप वाला दिखाई देता है वैसे ही एक ही श्री हरि के देवता मनुष्य और पशु आदि के रूप मे नाना भेद कल्पित किये जाते हैं।१६। जैसे वायु के शान्त होने पर, उससे उड़ते हुए परमाणु भूमि में मिल जात हैं, वैसे ही गुणों के क्षोभ से उत्पन्न हुए सब देव, मनुष्य, पशु आदि अन्त में उसी सनातन ब्रह्म में लीन हो जाते हैं।१७। जो मनुष्य देवताओं द्वारा वन्दित भगवान् के चरण कमलों की वन्दना परमार्थ बुद्धि से करता है, वह घृताहुति से प्रदीप्त अग्नि के समान पाप-बधन से छूट जाता है। तुम ऐसे पुरुष को दूर से देखकर ही वहाँ से चल देना।१८। यमराज की बात सुनकर पाशधारी उस यमदूत ने उनसे पूछा-हे विभो! सबके स्वामी भगवान श्रीहरि का भक्त किस प्रकार का होता है, यह मुझे बताने की कृपा कीजिये।१९। यमराज ने कहा-जो अपने वर्णाश्रम धर्म से विचलित नहीं होता, अपने सुहृदों और वैरियों में समान भाव रखता है, किसी के धन का हरण नहीं करता तथा किसी जीव की हिंसा में प्रवृत्त नहीं होता उस स्वच्छ चित्त मनुष्य को भगवान् विष्णु का भक्त समझो।२०। जिस स्वच्छ बुद्धि का चित्त कलियुग के कल्पष से मलिन नहीं हुआ, जिसने अपने हृदय में सदैव भगवान् श्रीजनार्दन को धारण कर रखा है, उस मनुष्य को भगवान् श्रीहरि का अतीव भक्त मानो।२१।

कनकमपि रहस्यवेक्ष्य बुद्धया तृणमिव यस्मवैति वै परस्वम् ।
भवति च भगवत्यनन्यचेताः पुरुषवरं तमवेहि विष्णुभक्तम् ।२२।
स्फटिकगिरिशिलामलः क विष्णुर्मनसि नृणां क्व च मत्सरादिदोषः।
न हि तुहिनमयूखरश्मिपुञ्जे भवति हुताशदीप्तिजः प्रतापः ।२३।
विमलमतिरमत्सरः प्रशान्तश्शुचिचरितोऽखिलसत्वमित्रभूतः ।
प्रियहितवचनोऽस्तमानमायो वसति सदा हृदि तस्य वासुदेवः ।२४।
वसति हृदि सनातने च तस्मिन् भवति पुमाञ्जगतोऽस्य सौम्यरूपः ।
क्षितिरसमतिरम्यमात्मनोऽन्तः कथयति चारुतयैव शालपोतः ।२५।
यमनियमविधूतकल्मषाणामनुदिनमच्युतसक्तमानसानाम् ।
अपगतमदमानसमत्सराणां त्यज भट दूरतरेण मानवानाम् ।२६।
हृदि यदि भगवाननादिरास्ते हरिरसिशङ्खगदाधरोऽव्ययात्मा ।
तदघमघविघातकर्तृभिन्नं भवति कथं सति चान्धकारमर्के ।२७।
हरति परधन निहन्ति जन्तून् वदति तथानृतनिष्ठुराणि यश्च ।
अशुभजनितदुर्मदस्य पुंसः कलषमतेर्हृदि तस्य नास्त्यनन्तः ।२८।

जो निर्जन स्थान में पराये स्वर्ण को भी पड़ा देखकर उसे तिनके के समान मानता है और भगवान् श्रीहरि का अनन्य भाव से निरन्तर चिंतन करता है, उस मनुष्य श्रेष्ठ को भगवान् का भक्त समझो ।२२। कहाँ तो स्फटिक शिला के तुल्य अत्यन्त असग भगवान् श्रीहरि और कहाँ मनुष्य के मन में सदा बसे रहने वाले राग द्वेषादि दोष-चन्द्रमा के रश्मि-जाल में अग्नि के तेज जैसे गर्मी का रहना कभी भी सम्भव नहीं है।२३। जो मनुष्य स्वच्छ चित्त, मत्सरता-हीन, प्रशान्त, पुनीत चरित्र, सब प्राणियों का प्रेमी, सुहृदय तथा हित की बात कहने वाला, निरभिमान और माया से अलग रहता है उसके हृदय में भगवान् श्री वासुदेव का सदा निवास रहता है।२४। जब वे सनातन भगवान् हृदय में प्रतिष्ठित होते है, तब वह मनुष्य संसार के लिये शांत रूप हो जाता है, जैसे नवीन शालिवृक्ष अपने सौन्दर्य से ही अपने में भरे हुए श्रेष्ठ रस का भान करा देता है ।२५। हे दूत ! जिनके पाप समूह यम-नियम से नष्ट हो गये और

जिनका हृदय निरन्तर भगवान् अच्युत में रमा रहता है तथा जिनमें अह और मात्सर्य नाम मात्र को भी शेष नहीं है, उन मनुष्यों को दूर से छोड़ देना ।२६। जिसके हृदय में खंग, शंख, गदा आदि के धारण करने वाले अव्ययात्मा श्रीहरि निवास करते हैं, तो उनके निवास से उसके सम्पूर्ण पापों का क्षय हो जाता है। भला सूर्य के स्थित रहते हुए अँधेरा कैसे रह सकता है ? ।२७। पर-धन का अपहरण करने वाले, प्राणियों की हिंसक मिथ्या और कटु भाषी अथवा अशुभ कर्मों के करने वाले दुष्ट बुद्धि मनुष्य के हृदय में अनन्त भगवान् कभी भी निवास नहीं करते ।२८।

न सहति परसम्पदं विनिन्दां कलुषमतिः कुरुते सतामसाधुः ।
न जयति न ददाति यश्च सन्तं मनसि न तस्य जनार्दनोऽधमस्य।२९
परमसुहृदि बान्धवे कलत्रे सुततनयापितृमातृभृत्यवर्गे ।
शठमतिरुपयाति योऽर्थतृष्णां तमधमचेष्टमवेहि नास्य भक्तम्।३०।
अशुभमतिरसत्प्रवृत्तिसक्तस्सततमनार्यकुशीलसङ्गमत्तः ।
अनुदितकृतपापवन्धयुक्तः पुरुषपशुर्न हि वासुदेवभक्तः ।३१।
सकलमिदमहं च वासुदेवः परमपुमान्परमेश्वरस्य एकः ।
इति मतिरचला भवत्यनन्ते हृदयगते व्रज तान्विहाय दूरात् ।३२।
कमलनयन वासुदेव विष्णो धरणिधराच्युत शङ्खचक्रपाणे ।
भव शरणमितिरयन्ति ये वै त्यज भट दूरतरेण तानपापान् ।३३।
वसति मनसि यस्य सोऽव्ययात्मा पुरुषवरस्य न तस्य दृष्टिपाते ।
तव गतिरथ वा ममास्ति चक्रप्रतिहतवीर्यबलस्य सोऽन्यलोक्य।३४

जो मतिहीन मनुष्य पराये वैभव से ईर्ष्या करता है, परायी निंदा में लगा रहता है, सन्तजनों का तिरस्कार करता है, भगवान् श्री हरि का पूजन नहीं करता अथवा दान नहीं देता. उस अधम के हृदय में भगवान् श्रीजनार्दन कभी भी निवास नहीं करते ।२९। जो दुष्ट मति मनुष्य अपने परम सुहृद, बन्धु-बाँधव, स्त्री, पुत्र, पुत्री, माता, पिता. सेवकादि के प्रति धन की तृष्णा दिखाता है, उस पाप का आचरण करने वाले को तुम कभी भी भगवद्भक्त मत समझना ।३०। जो खोटी बुद्धि वाला मनुष्य मिथ्या कर्मों में तत्पर रहता है, नीच मनुष्यों के साथ रहता या उन जैसा

आचरण करता है तथा पाप युक्त कर्मों के बंधन में दिनो दिन बंधता जाता है उसे मनुष्य के रूप में पशु ही समझो। ऐसा पुरुष कभी भी भगवान् का भक्त नहीं हो सकता ।३१। तथा भगवान् के हृदय में स्थित होने के कारण, जिनकी ऐसी स्थिर बुद्धि हो गई है कि मैं और यह समस्त प्रपंच एक मात्र वासुदेव ही हैं उन मनुष्यों को तुम दूर से ही त्याग देना ।३२। जो मनुष्य' हे पद्माक्ष ! हे वासुदेव ! हे विष्णो ! हे धरणीधर ! हे अच्युत ! हे शंख-चक्र पाणे ! हमें शरण दीजिये' इस प्रकार भगवान् को पुकारते हों, उन पाप रहित मनुष्यों को तुम दूर से ही छोड़ देना ।३३। जिस पुरुषवर के अन्त:करण में उन अव्ययात्मा भगवान् का निवास रहता है, वह जहा तक देखता है, वहाँ तक प्रभु चक्र के प्रभाव से तुम या मैं अपने बल-वीर्य के क्षीण हो जाने के कारण नही पहुँच सकते, क्योंकि वह तो अन्य लोकों का अधिकारी है ।३४।

इति निजभटशासनाय देवो रवितनयस्स किलाह धर्मराजः ।
मम कथितमिद च तेन तुभ्य कुरुवर सम्यगिदं मयापि चोक्तम्
नकुलैतन्ममाख्यातं पूर्वं तेन द्विजन्मना ।
कलिङ्गदेशादभ्येत्य प्रीतेन सुमहात्मना ।३६।
मयाप्येतद्यथान्यायं सम्यग्वत्स तवोदितम् ।
यथा विष्णुमृते नान्यत्त्राणं संसारसागरे ।३७।
किङ्कराः पाशदण्डाश्च न यमो न च यातनाः ।
समर्थास्तस्य यस्यात्मा केशवालम्बनस्सदा ।३८।
एतन्मुने समाख्यातं गीतं वैवस्वतेन यत् ।
त्वत्प्रश्नानुगतं सम्यक्किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ।३९।

कालिंग ने कहा— हे कुरुश्रेष्ठ ! सूर्य पुत्र धर्मराज ने अपने दूत को इस प्रकार शिक्षामय आदेश दिया। उस जातिस्मर मुनि ने मुझे यह प्रसंग सुनाया था, जिसे मैंने यथावत तुमसे कहा है ।३५। भीष्मजी ने कहा— हे नकुल ! कलिंग देश से आये हुए उस ब्राह्मण ने प्रसन्नता सहित मुझसे यह सब कथा कही थी ।३६। हे वत्स ! जिस प्रकार, इस संसार में केवल भगवान् विष्णु के अतिरिक्त और कोई भी रक्षक जीव का नहीं हो सकता,

वह सब वृतान्त यथावत तुमसे कहा है ।३७। जिसका हृदय निरन्तर श्री केशव भगवान् में जगा है उसका यमराज, उनके दूत, उनका दण्ड तथा यातनाएँ कुछ भी अनिष्ट करने में समर्थ नहीं हो सकते ।३८। श्री पराशरजी ने कहा—हे मुने ! तुमने जो कुछ पूछा था, उसके समाधान स्वरूप मैंने तुम्हें स्वयं यमराज का कथन ही भले प्रकार सुना दिया । अब और क्या सुनने की इच्छा करते हो, सो कहो ? ।३९।

—:❀❀:—

आठवाँ अध्याय

भगवन्भगवान्देवः संसारविजिगीषुभिः ।
समाख्याहि जगन्नाथो विष्णुराराध्यते यथा ।१।
आराधिताच्च गोविन्दादाराधनपरैर्नरैः ।
यत्प्राप्यते फलं श्रोतुं तच्चेच्छामि महामुने ।२।
यत्पृच्छति भवानेतत्सगरेण महात्मना ।
ओर्वः प्राह यथा पृष्टस्तन्मे निगदतश्शृणु ।३।
सगरः प्रणिपत्यैनमौर्वं पप्रच्छ भार्गवम् ।
विष्णोराराधनोपायसम्बन्धं मुनिसत्तत ।४।
फलं चाराधिते विष्णौ यत्पुंसामभिजायते ।
स चाह पृष्टो यत्नेन तस्मै तन्मेऽखिलं श्रृणु ।५।
भौमं मनोरथ स्वर्गिवन्द्यं च यत्पदम् ।
प्राप्नोत्याराधिते विष्णौ निर्वाणमपि चोत्तमम् ।६।
यद्यविच्छति यावच्च फलमाराधितेऽच्युते ।
तत्तदाप्नोति राजेन्द्र भूरि स्वल्पमथापि वा ।७।

श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे भगवान् ! संसार को जीतने की इच्छा वाले पुरुष भगवान् विष्णु की आराधना किस प्रकार करते हैं । वह मुझे

हे महामुने ! उन भगवान् गोविन्द का आराधन करने पर, उन्हें जिस फल की प्राप्ति होती है, उसे भी सुनने की मैं इच्छा करता हूँ ।२। श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! तुमने जो प्रश्न किया था, तब उन ऋषि ने उन्हें जो उत्तर दिया था, वही मैं तुम्हें सुनाता हूँ, सुनो ।३। हे मुनिवर ! सगर ने उन भृगुवंशी और्व को प्रणाम किया और उनसे भगवान् श्री हरि की आराधना-विधि और उससे प्राप्त होने वाले फल के विषय में प्रश्न किया। उनके प्रश्न का और्व ऋषि ने जो उत्तर दिया, उस सबको सावधानी से सुनो ।४-५। और्व ने कहा-भगवान् विष्णु की आराधना करके मनुष्य पृथिवी विषयक सभी मनोरथ, वर्ग, स्वर्ग में रहने वालों के लिये भी वन्दनीय ब्रह्मपद तथा परम निर्वाणपद भी पा लेता है ।६। हे राजेन्द्र ! वह जिस-जिस फलकी जितनी अभिलाषा करता है, वह थोड़ा हो अथवा कितना भी अधिक हो, भगवान् श्री अच्युत की आराधना से इसे अवश्य ही सब मिल जाता है ।७।

यत्तु पृच्छसि भूपाल कथमाराध्यते हरिः ।
तदहं सकलं तुभ्यं कथयामि निबोध मे ॥ ८ ॥
वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परः पुमान् ।
विष्णुराराध्यते पन्था नान्यस्तत्तोषकारकः ॥ ९ ॥
यजन्यज्ञान्यजत्येनं जपत्येनं जपन्नृप ।
निघ्नन्नन्यान्हिनस्त्येनं सर्वभूतो यतो हरिः ॥१०॥
तस्मात्सदाचारवता पुरुषेण जनार्दनः ।
आराध्यते स्ववर्णोक्तधर्मानुष्ठानकारिणा ॥११॥
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्च पृथिवीपते ।
स्वधर्मतत्परो विष्णुमाराधयति नान्यथा ॥१२॥
परापवादं पैशुन्यमनृतं च न भाषते ।
अन्योद्वेगकरं वापि तोष्यते तेन केशवः ॥१३॥
परदारपरद्रव्यपरहिंसासु यो रतिम् ।
न करोति पुमान्भूप तोष्यते तेन केशवः ॥१४॥

हे राजन् ! तुमने श्रीहरि को आराधना कैसे की जाय, ऐसा जो प्रश्न किया है, वह सभी तुम्हें बतलाता हूँ, यत्न पूर्वक सुनो।८। वर्णाश्रम धर्म का पालन करने वाला पुरुष ही भगवान् विष्णु की आराधना का अधिकारी है, उसके बिना उनकी प्रसन्नता प्राप्त नहीं हो सकती।९। हे राजन् ! यजनकर्त्ता पुरुष उन्हीं भगवान् का यजन करता है, जापक उन्हीं का जप करता है तथा परायी हिंसा करने वाला भी उनकी ही हिंसा करता है, क्योंकि भगवान् श्रीहरि सर्वभूतात्मक हैं।१०। इसीलिये सदाचारी पुरुष को अपने वर्ण के अनुकूल धर्म का आचरण करते हुए भगवान् जनार्दन की ही उपासना करनी चाहिए।११। हे भूपते ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सभी अपने-अपने वर्ण धर्म के पालन पूर्वक विष्णु की आराधन करते हैं, किसी और प्रकार से नहीं करते।१२। जो किसी की निन्दा, पैशुन्य और मिथ्या भाषण नहीं करता और किसी को खेदजनक वचन नहीं कहता, उस पर भगवान् केशव अवश्य ही प्रसन्न होते हैं।१३। हे राजन् ! जो परनारी, परधन तथा पर-हिंसा में कभी मन को नहीं लगाता, उससे भगवान् केशव सदा ही संतुष्ट रहते हैं।१४।

न ताडयति नो हन्ति प्राणिनोऽन्यांश्च देहिनः।
यो मनुष्यो मनुष्येन्द्र तोष्यते तेन केशवः॥१५॥
देवद्विजगुरूणां च शुश्रूषासु सदोद्यतः।
तोष्यते तेन गोविन्दः पुरुषेण नरेश्वर॥१६॥
यथात्मनि च पुत्रे च सर्वभूतेषु यस्तथा।
हितकामो हरिस्तेन सर्वदा तोष्यते सुखम्॥१७॥
यस्य रागादिदोषेण न दुष्टं नृप मानसम्।
विशुद्धचेतसा विष्णुस्तोष्यते तेन सर्वदा॥१८॥
वर्णाश्रमेषु ये धर्माश्शास्त्रोक्ता नृपसत्तम।
तेषु तिष्टन्नरो विष्णुमाराधयति नान्यथा॥१९॥
तदहं श्रोतुमिच्छामि वर्णधर्मानशेषतः।
तथैवाश्रमधर्मांश्च द्विजवर्य ब्रवीहि तन्॥२०॥

हे मानवेन्द्र ! जो पुरुष किसी देहधारी को अथवा अन्य किसी जीव को पीड़ित नहीं करता या उसकी हिंसा नहीं करता उस पर श्री केशव भगवान् सदा प्रसन्न रहते हैं ।१५। जो मनुष्य सदा ही देव ब्राह्मण और गुरुजन की सेवा में लगा रहता है, उससे भगवान् गोविन्द सदा प्रसन्न रहते हैं ।१६। जो सभी प्राणियों का हित चिन्तन अपनी सन्तान के समान करता है, वह भगवान् श्रीहरि को सुख पूर्वक प्रसन्न कर लेता है ।१७। जिसका मन रागादि दोषों से मलिन नहीं हुआ है, उस शुद्धचेता पुरुष पर भगवान् विष्णु सदैव प्रसन्न रहते हैं।१८। हे नृपसत्तम ! शास्त्रों ने जिन-जिन वर्णाश्रम धर्मों का वर्णन किया है, उन-उन के आचरण पूर्वक ही मनुष्य उन भगवान् विष्णु की आराधना कर सकता है, अन्य प्रकार से नहीं ।१९। सगर ने कहा–हे द्विजवर ! अब मैं सभी वर्ण-धर्मों को सुनने की इच्छा करता हूँ, आप उन्हें कहने की कृपा करिये ।२०।

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च यथाक्रमम् ।
त्वमेकाग्रमतिर्भूत्वा शृणु धर्मान्मयोदितान् ॥२१॥

दानं दद्याद्यजेद्देवान्यज्ञस्स्वाध्यायतत्परः ।
नित्योदकी भवेद्विप्रः कुर्याच्चाग्निपरिग्रहम् ॥२२॥

वृत्यर्थी याजयेच्चान्यानन्यानध्यापयेत्तथा ।
कुर्यात्प्रतिग्रहदानं शुक्लार्थान्नयायतो द्विजः ॥२३॥

सर्वभूतहितं कुर्यान्नाहितं कस्यचिद् द्विजः ।
मैत्री समस्तभूतेषु ब्राह्मणस्योत्तमं धनम् ॥२४॥

ग्रावणि रत्ने च पारक्ये सम्बुद्धिर्भवेद्ः द्विजः ।
ऋतावभिगमः पत्न्यां शस्यते चास्य पार्थिव ॥२५॥

दानादि दद्यादिच्छातो द्विजेभ्यः क्षत्रियोऽपि वा ।
यजेच्च विविधैर्यज्ञैरधीयीत च पार्थिवः ॥२६॥

शस्त्राजीवो महीरक्षा प्रवरा तस्य जीविका ।
तत्रापि प्रथमः कल्पः पृथिवीपरिपालनम् ॥२७॥

और्व ने कहा—मैं जिन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णों के धर्म को कहता हूँ, उन्हें एकाग्र मन से सुनो ।२१। ब्राह्मण को उचित है कि वह दान करे, यज्ञों से देवताओं का यजन करे, स्वाध्याय करे, नित्य स्नान, तर्पण तथा अग्न्याधानादि कर्मों को करे, ।२२। अपनी वृत्ति के लिये यज्ञ करावे, शिक्षा दे तथा न्याय से उपार्जित धन में से ही न्याय के अनुकूल द्रव्य का संचय करे ।२३। कभी किसी का अहित-चिन्तन न करे और सदा सब जीवों के हित में तत्पर रहे । सब प्राणियों से मैत्रि-भाव रखना ब्राह्मण का परम धर्म कहा है ।२४। पराये धन में और पाषाण में समान बुद्धि रखे । पत्नी का ऋतु काल में ही सेवन करे, यही ब्राह्मण के लिये उचित कर्म हैं ।२५। क्षत्रियों का कर्त्तव्य है कि ब्राह्मणों को उनकी इच्छानुसार दान दे, नाना प्रकार के यज्ञों को करे और अध्ययनशील रहे ।२६। शस्त्रधारण पूर्वक पृथिवी की रक्षा करना ही क्षत्रिय की श्रेष्ठ आजीविका है, इनमें भी पृथिवी का परिपालन तो सर्वोत्कृष्ट ही है ।२७।

धारित्रीपालनेनैव कृतकृत्या नराधिपाः ।
भवन्ति नृपतेरंशा यतो यज्ञादिकर्मणाम् ॥२८॥
दुष्टानां शासनाद्राजा शिष्टानां परिपालनात् ।
प्राप्नोत्यभिमतांल्लोकान्वर्णसंस्था करोति यः ॥२९॥
पाशुपाल्यं च वाणिज्यं कृषिं च मनुजेश्वर ।
वैश्याय जीविकां ब्रह्मा ददौ लोक पितामहः ॥३०॥
तस्याप्यध्ययनं यज्ञो दानं धर्मश्च शस्यते ।
नित्यनैमित्तिकादीनामनुष्ठानं च कर्मणाम् ॥३१॥
द्विजातिसंश्रितं कर्म तादर्थ्यं तेन पोषणम् ।
क्रयविक्रयजैर्वापि धनैः कारूद्भवेन वा ॥३२॥
शूद्रस्य सन्नतिश्शौचं सेवा स्वामिन्यमायया ।
अमन्त्रयज्ञो ह्यस्तेयं सत्सङ्गो विप्ररक्षणम् ॥३३॥

पृथिवी का पालन करने से ही राजगण धन्य हो जाते हैं, क्योंकि पृथिवी पर जो यज्ञादि कर्म होते हैं, उनका अंश राजा को भी मिलता है ।२८। जो राजा अपने वर्ण-धर्म के प्रति आस्थावान् होता है, वह दुष्टों को

दण्ड और साधुजन का पालन करने वाले अपने कर्म के प्रभाव से ही इच्छित लोकों को प्राप्त कर लेता है ।२९। हे नरेश्वर ! लोक पितामह ब्रह्माजी ने वैश्यों के कर्म पशु पालन, वाणिज्य और कृषि-यह सब आजीविका के रूप दिये हैं ।३०। वैश्य के लिये भी अध्ययन, यज्ञ, दान और नित्य, नैमित्तिकादि कर्म करना आवश्यक है ।३१। शूद्र को द्विजातियों के प्रयोजनानुकूल कर्म करना चाहिये, वही उसकी आजीविका है, इसके अतिरिक्त वस्तुओं का क्रय-विक्रय या कारीगरी के कार्य से जीवनयापन करे ।३२। नम्रता, शौच, सेवा, स्वामि-भक्ति, मन्त्ररहित, यज्ञ, अस्तेय सत्संग, और ब्राह्मण की रक्षा, शूद्र के यह प्रमुख कर्त्तव्य हैं ।३३।

दानं च दद्याच्छुद्रोऽपि पाकयज्ञैर्यजेत च ।
पित्र्यादिकं च तत्सर्वं शूद्रः कुर्वीत तेन वै ।।३४।।
भृत्यादिभरणार्थाय सर्वेषां च परिग्रहः ।
ऋतुकालेऽभिगमनं स्वदारेषु महीपते ।।३५।।
दया समस्तभूतेषु तितिक्षा नातिमानिता ।
सत्यं शौचमनायासो मङ्गलं प्रियवादिता ।।३६।।
मैत्र्यस्पृहा तथा तद्वदकार्पण्यं नरेश्वर ।
अनसूया च सामान्यवर्णानां कथिता गुणाः ।।३७।।
आश्रमाणां च सर्वेषामेते सामान्यलक्षणाः ।
गुणांस्तथापद्धर्मांश्च विप्रदीनामिमाञ्छृणु ।।३८।।
क्षात्रं कर्म द्विजस्योक्तं वैश्यं कर्म तथापदि ।
राजन्यस्य वैश्योक्तं शूद्रकर्म न चैतयोः ।।३९।।
सामर्थ्ये सति तत्त्याज्यमुभाभ्यामपि पार्थिव ।
तदेवापदि कर्तव्यं न कुर्यात्कर्मसङ्करम् ।।४०।।
इत्येते कथिता राजन्वर्णधर्मा मया तव ।
धर्मानाश्रमिणां सम्यग्ब्रुवतो मे निशामय ।।४१।।

हे राजन् ! शूद्र के लिये भी दान देना बलिवैश्यदेव, नमस्कार और अल्प यज्ञों का अनुष्ठान करना, पितृ श्राद्धादि करना, अपने आश्रितों

के परि-पालनार्थ सब वर्णों से धन ग्रहण करना और अपनी ही भार्या में ऋतुगामी होना उचित कर्म हैं ।३४-३५। हे राजन् ! इनके अतिरिक्त सब जीवों पर दया, तितिक्षा, अमानिता, सत्य, शौच, मङ्गलाचरण, प्रियवादिता, मित्रता, अकृपणता, परदोष दर्शन-शून्यता आदि गुण तो सभी वर्णों द्वारा समान रूप से पालनीय है ।३६-३७। सब वर्णों के यह सामान्य लक्षण कहे गये, अब इन विप्रादि चारों वर्ण के आपद्धर्म और गुणों को सुनो ।३८। आपत्ति काल में ब्राह्मण को क्षत्रिय या वैश्य की वृत्ति का अवलम्बन करना उचित है और क्षत्रिय को केवल वैश्य वृत्त का आश्रय लेना चाहिए । इनको शूद्र वृत्ति का आश्रय लेना कभी भी उचित नहीं है ।३६। जब पुनः समर्थ हो जाय तो इन उपरोक्त वृत्तियों को छोड़ दे क्यों कि यह तो आपद्काल में ही अवलम्बन करने योग्य है, अन्यथा कर्म सङ्करत्व की प्राप्ति होगी ।४०। हे राजन ! इस प्रकार मैंने वर्ण धर्म का वर्णन तुम्हें सुनाया, अब आश्रम धर्मों का जो निरूपण करता हूँ उसे यत्न से सुनो ।३१।

—※—

नवां अध्याय

बालः कृतोपनयनो वेदाहरणतत्परः ।
गुरुगेहे वसेद्भूत ब्रह्मचारी समाहितः ॥ १ ॥
शौचाचारव्रतं तत्र कार्यं शुश्रूषणं गुरोः ।
व्रतानि चरता ग्राह्यो वेदश्च कृतबुद्धिना ॥ २ ॥
उभे सन्ध्ये रविं भूप तथैवाग्निं समाहितः ।
उपतिष्ठेत्तदा कुर्याद् गुरोप्यभिवादनम् ॥ ३ ॥
स्थिते तिष्ठेद्व्रजेद्याये नीचैरासीत चासति ।
शिष्यो गुरोर्नृपश्रेष्ठ प्रतिकूलं न सञ्चरेत् ॥ ४ ॥
तेनैवोक्तं पठेद्वेदं नान्यचित्तः पुरस्थितः ।
अनुज्ञातश्च भिक्षान्नमश्नीयाद्गुरुणा ततः ॥ ५ ॥

अवगाहेदपः पूर्वमाचार्येणावगाहिताः ।
समिज्जलादिकं चास्य कल्यं कल्यमुपानयेत् ॥ ६ ॥
गृहीतग्राह्यवेदश्च ततोऽनुज्ञामवाप्य च ।
गार्हस्थ्यमाविशेत्प्राज्ञो निष्पन्नगुरुनिष्कृतिः ॥ ७ ॥

और्व ऋषि ने कहा-बालक को उपनयन संस्कार के पश्चात् वेदाध्ययन परायण होकर और ब्रह्मचर्य पालन पूर्वक गुरु गृह में निवास करना चाहिये ।१। वहां रह कर वह शौच और आचार-व्रत का पालन तथा गुरु-सेवा करे एवं व्रतादि के पालन पूर्वक स्थिर चित्त से वेदाध्ययन करे ।१। हे राजन् ! दोनों सन्ध्याओं में एकाग्रमन से सूर्य और अग्नि की उपासना करे तथा गुरुदेव का अभिवादन करे ।३। जब गुरुजी खड़े हों, तब खड़ा हो जाय, जब चलें तब पीछे पीछे चले और जब बैठें तब नीचे बैठ जाय । इस प्रकार करते हुए कभी भी गुरु के विरुद्ध कोई आचरण नहीं करना चाहिए ।४। गुरुजी कहें तभी उनके सामने बैठ कर वेद का अध्ययन करे और जब उनकी आज्ञा हो तब भिक्षा से प्राप्त अन्न का भोजन करे ।५। जब आचार्य जल में स्नान करलें तब स्नान करे और नित्य प्रति उनके लिये समिधा, जल, कुश, पुष्पादि लाकर एकत्र करे ।६। इस प्रकार वेदाध्ययन को पूर्ण करके मतिमान शिष्य गुरुजी की आज्ञा प्राप्त करके उन्हें गुरु-दक्षिणा दे और फिर गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट हो ।७।

विधिनावाप्तदारस्तु धनं प्राप्य स्वकर्मणा ।
गृहस्थकार्यमखिलं कुर्याद्भूपाल शक्तितः ॥ ८ ॥
निवापेन पितृनर्चन्यज्ञैर्देवांस्तथातिथीन् ।
अन्नैर्मुनींश्च स्वाध्यायैररत्येन प्रजापतिम् ॥ ९ ॥
भूतानि बलिभिश्चैव वात्सल्येनाखिलं जगत् ।
प्राप्नोति लोकान्पुरुषो निजकर्मसमार्जितान् ॥१०॥
भिक्षाभुजश्च ये केचित्परिव्राड्ब्रह्मचारिणः ।
तेऽप्यत्रैव प्रतिष्ठन्ते गार्हस्थ्यं तेन वै परम् ॥११॥

वेदाहरणकार्याय तीर्थस्नानाय च प्रभो ।
अटन्ति वसुधां विप्राः पृथिवीदर्शनाय च ।।११।।
अनिकेता ह्यनाहारा यत्र सायंगृहाश्च ये ।
तेषां गृहस्थः सर्वेषां प्रतिष्ठा योनिरेव च ।।१३।।
तेषां स्वागतदानादि व्यक्तव्यं मधुरं नृप ।
गृहागतानां दद्याच्च शयनासनभोनम् ।।१४।।

हे राजन् ! उस समय विधिवत् किसी योग्य कन्या का पाणिग्रहण करके अपने वर्ण से अनुकूल वृत्ति के द्रव्योपार्जन करे तथा अपनी शक्ति के अनुसार व्ययादि कार्य करे ।८। पितरों की पिण्डादानादि से, देवताओं की यज्ञादि के अनुष्ठान से अतिथियों की अन्न-दान से, ऋषियों की स्वाध्याय से, प्रजापति की पुत्रोत्पादन से भूतों की बलि से, और सम्पूर्ण विश्व की वात्सल्य भाव से, सन्तुष्ट करे । अपने इन कर्मों के द्वारा वह पुरुष श्रेष्ठ से श्रेष्ठ लोक को प्राप्त कर लेता है।९-१०।भिक्षावृत्ति पर निर्भर रहने वाले परिव्राजकों और ब्रह्मचारियों आदि का आश्रय भी यह गृहस्थाश्रम ही है, इसीलिये इसे सर्वश्रेष्ठ कहा गया है ।११। हे राजन् ! ब्राह्मणगण वेदाध्ययन, तीर्थ स्नान और देव-दर्शन आदि के निमित्त पृथिवी पर भ्रमण करते रहते हैं ।२१। उसमें से जिनका कोई निश्चित घर और भोजनादि की व्यवस्था नहीं होती वे जहाँ सायं-काल हो जाता है, वहीं रात्रि-विश्रमार्थ ठहर जाते हैं । उनका भी आश्रय यह गृहस्थाश्रम ही है ।१३। हे राजन् ! जब ऐसे व्यक्ति अपने घर पर आवें तब उनका मीठे बचनों और कुशलादि पूछने से स्वागत करना चाहिये । उन्हें ठहरने को निवास, शय्या, आसन और भोजनादि भी अपने सामर्थ्यानुसार देना चाहिये ।१४।

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते ।
स दत्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति ।।१५।।
अवज्ञानमहङ्कारो दम्भश्चैव गृहे सतः ।
परितापोपघातौ च पारुष्य च न शस्यते ।।१६।।

यस्तु सम्यङ्करोत्येवं गृहस्थः परमं विधिम् ।
सर्वबन्धविनिर्मुक्तो लोकानाप्नोत्यनुत्तमान् ॥१७॥
वयःपरिणतो राजन्कृतकृत्यो गृहाश्रमी ।
पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा ॥१८॥
पर्णमूलफलाहारः केशश्मश्रुजटाधरः ।
भूमिशायी भवेत्तत्र मुनिस्सर्वातिथिर्नृप ॥१९॥
चर्मकाशकुशैः कुर्यात्परिधानोत्तरीय के ।
तद्वत्त्रिषवणं स्नान शस्तमस्य नरेश्वर ॥२०॥
देवताभ्यर्चनं होमस्सर्वाभ्यागतपूजनम् ।
भिक्षा बलिप्रदानं च शस्तमस्य नरेश्वर ॥२१॥

जिनके घर पर आया हुआ अतिथि निराश होकर लौटता है, वह अपने सब पाप कर्म उस गृहस्थ को देकर उसके सभी पुण्यकर्मों के साथ ले जाता है ।१५। अतिथि का अपमान उसके प्रति गर्व और दम्भ व्यवहार, उसे कोई वस्तु देकर उसका पश्चात्ताप, कटु भाषण अथवा उस पर प्रहार करना नितान्त अनुचित है ।१६। इस प्रकार अपने वर्ण-धर्म का भले प्रकार पालन करने वाला गृहस्थ सभी बंधनों से छूट कर अत्युत्तम लोकों में जाता है ।१७। हे राजन् ! जब गृहस्थ धर्म का पालन करते-करते अवस्था ढल जाय, तब अपनी स्त्री के पालन का भार पुत्रों को सौंपे या उसे भी अपने साथ लेकर वन को प्रस्थान करे ।१८। वहाँ फल, पुष्प, पत्रादि आहार करे, दाढ़ी, मूँछ और जटादि को धारण करे भूमि पर सोवे और मुनिवृत्ति से रहता हुआ अतिथि की सेवा में तत्पर रहे ।१९। चर्म, काश और कुशों से ओढ़ने-बिछाने के वस्त्र बनावे और तीनों समय स्नान करे ।२०। देवपूजन, हवन अतिथि-सत्कार, भिक्षा, बलिवैश्व देव आदि सभी कर्म उसके लिए कर्त्तव्य है ।२१।

वन्यस्नेहेन गात्राणामभ्यङ्गश्चास्य शस्यते ।
तपश्च तस्य राजेन्द्र शीतोष्णादिसहिष्णुता ॥२२॥
यस्त्वेतां नियतश्चर्यां वानप्रस्थश्चरेन्मुनिः ।
स दहत्यग्निवद्दोषाञ्जयेल्लोकांश्च शाश्वतान् ॥२३॥

चतुर्थश्चाश्रमो भिक्षोः प्रोच्यते यो मनीषिभिः ।
तस्य स्वरूपं गदतो मम श्रोतुं नृपार्हसि ॥२४॥
पुत्रद्रव्यकलत्रेषु त्यक्तस्नेहोनराधिप ।
चतुर्थमाश्रमस्थानं गच्छेन्निर्धूतमत्सरः ॥२५॥
त्रैवर्गिकाँस्त्यजेत्सर्वानारम्भानवनीपते ।
मित्रादिषु समो मैत्रस्समस्तेष्वेव जन्तुषु ॥२६॥
जरायुजाण्डजादीनां वाङ्मनः कायकर्मभिः ।
युक्तः कुर्वीत न द्रोह सर्वसंङ्गाश्च वर्जयेत् ॥२७॥

हे नृपेन्द्र ! वन के तैलों को शरीर में मलना और शीत-ताप सहना यह उसकी तपस्या के ही अंश हैं ।२२। जो वानप्रस्थी इन नियत कर्मों को करता है, वह अपने सभी दोषों को भस्म कर डालता है और तब उसे नित्य लोकों की प्राप्ति होती है ।२३। अब मैं उस चतुर्थ आश्रम का वर्णन करता हूँ, जिसे ज्ञानीजन भिक्षु आश्रम कहते है, तुम उसे साव-धान चित्त से श्रवण करो ।२४। हे राजान् ! तीसरे आश्रम के पश्चात् पुत्र, धन और स्त्री आदि की प्रीति को छोड़ कर और मात्सर्य-रहित होकर चौथे आश्रम में प्रवेश करना चाहिये ।२५। हे अवनीपते ! भिक्षु को धर्म अर्थ और काम रूपी त्रिवर्ग विषयक सब कर्मों का नितान्त त्याग करना चाहिये। शत्रु-मित्रादि के प्रति समता का भाव तथा सभी जीवों से सुहृदता यह उसके आवश्यक कर्त्तव्य हैं ।२६। निरन्तर समा-हित रहे। जरायुज, अण्डज, स्वेदज आदि सब प्राणियों से मन, वचन, कर्म से द्वेष न करे और सब प्रकार की वासनाओं का त्याग करे ।२७।

एकरात्रस्थितिर्ग्रामे पञ्चरात्रस्थितिः पुरे ।
तथा तिष्ठेद्यथाप्रीतिर्द्वेषो वा नास्य जायते ॥२८॥
प्राणयात्रानिमित्तं च व्यंगारे भुक्तवज्जने ।
काले प्रशस्तवर्णानां भिक्षार्थं पर्यटेद् गृहान् ॥२९॥
कामः क्रोधस्तथा दर्पमोहलोभादयश्च ये ।
तांस्तु सर्वान्परित्यज्य परिव्राङ् निर्ममो भवेत् ॥३०॥

अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्वा यश्चरते मुनिः ।
तस्यापि सर्वभूतेभ्यो य भयं विद्यते क्वचित् ॥३१॥
कृत्वाग्निहोत्रं स्वशरीरसंस्थं
शारीरमग्नि स्यमुखे जुहोति ।
विप्रस्तु भैक्ष्योपहितैर्हविभि-
श्चिताग्निकानां ब्रजति स्म लोकान ॥३२॥
मोक्षाश्रमं यश्चरते यथोक्तं
शुचिस्सुखं कल्पितबुद्धियुक्तः ।
अनिन्धनं ज्योतिरिव प्रशान्तः
स ब्रह्मलोकं श्रयते द्विजातिः ॥३३॥

ग्राम में एक रात्रि तथा नगर में पाँच रात्रि निवास करे और इतने दिन भी इस प्रकार रहे जिससे किसी से द्वेष अथवा प्रीति न हो सके ।२८। जब घरों में चूल्हा ठन्डा हो जाय और घर के सब लोग भोजन कर चुकें तब प्राण रक्षा के निमित्त ऊँचे वर्णों में से किसी के यहाँ जा कर भिक्षा ले ।२९। परिव्राजक को काम, क्रोध, दर्प, मोह, लोभ आदि का त्याग करके ममता-रहित होना चाहिये ।३०। सभी प्राणियों को अभय प्रदान करता हुआ जो मुनि पृथ्वी पर विचरण करता है, उसे कभी किसी से भय प्राप्त नहीं होता ।३१। चतुर्थ आश्रम स्थित जो ब्राह्मण अपने देह में स्थित प्राणादि के उद्देश्य से ही अपने मुख में भिक्षान्न रूपी हवि को जठराग्नि में होमता है, उसके कारण उसे अग्नि-होत्रियों के लोकों की प्राप्ति होती है ।३२। जो ब्राह्मण बुद्धियोग वाल होकर विधिवत् आचरण करता हुआ, मोक्षाश्रम का पालन करता और बिना ईंधन की अग्नि के समान शान्त होता है, उसे अन्त में ब्रह्म लोक की प्राप्ति होती है ।३३।

—※—

दसवाँ अध्याय

कथितं चतुराश्रम्यं चातुर्वर्ण्यक्रियास्तथा ।
पुंसः क्रियामहं श्रोतुमिच्छामि द्विजसत्तमा ।। १ ।।
नित्यनैमित्तिकाः काम्याः क्रियाः पुंसामशेषतः ।
समाख्याहि भृगुश्रेष्ठ सर्वज्ञो ह्यसि मे मतः ।। २ ।।
यदेतदुक्तं भवता नित्यनैमित्तिकाश्रयम् ।
तदह कथयिष्यामि शृणुष्वैकमना मम ।। ३ ।।
जातस्य जातकर्मादिक्रियाकाण्डमशेषतः ।
पुत्रस्य कुर्वीत पिता श्राद्धं चाभ्युदयात्मकम् ।। ४ ।।
युग्मांस्तु प्राङ्मुखान्विप्रान्भोजयेन्मनुजेश्वर ।
यथा वृत्तिस्तथा कुर्याद्दैवं पित्र्य द्विजन्मनाम् ।। ५ ।।
दध्ना यवैः सबदरैर्मिश्रान्पिण्डान्मुदा युतः ।
नान्दीमुखेभ्यस्तीर्थेन दद्याद्दैवेन पार्थिव ।। ६ ।।
प्राजापत्येन वा सर्वमुपचारं प्रदक्षिणम् ।
कुर्वीत तत्तथाशेषवृद्धिकालेषु भूपते ।। ७ ।।

सगर ने कहा-हे द्विजवर ! आपने चारों आश्रम और चारों वर्णों के कर्म मेरे प्रति कहे, अब मैं आपके श्रीमुख से मनुष्यों के कर्मों को श्रवण करना चाहता हूँ ।१। हे भृगुवर ! आप सर्वज्ञ हैं, इसलिये कृपया मनुष्यों के नित्य-नैमित्तिक और काम्यादि समस्त कर्मों को मुझसे कहिये ।२। और्व ने कहा—आपने नित्य-नैमित्तिक आदि के विषय में प्रश्न किया, उस सबको कहता हूँ सावधान होकर सुनो ।३। पिता को पुत्र का जन्म होने पर उसके सब जात-कर्मादि संस्कार तथा आभ्युदयात्मक श्राद्ध करना उचित है ।४। युग्म ब्राह्मणों को पूर्व की ओर मुख करके बिठावे तथा द्विजातियों के अनुकूल व्यवहारानुसार देवता और पितरों की तृप्ति के लिये श्राद्ध करे ।५। तथा दैवतीर्थ द्वारा नान्दीमुख पितरों को दही, जौ और बदरीफल के मिश्रित पिण्ड दे ।५। अथवा कनिष्ठिका के मूल में जो

प्रजापत्यतीर्थ कहा है उससे सब उपचार द्रव्यों का दान करे। इसी प्रकार सब वृद्धिकालों में करना चाहिये।७।

ततश्च नाम कुर्वीत पितैव दशमेऽहनि।
देवपूर्वं नराख्यं हि शर्मवर्मादिसंयुतम्॥८॥
शर्मेति ब्राह्मणस्योक्तं वर्मेति क्षत्रसंश्रयम्।
गुप्तदासात्मकं नाम प्रशस्तं वैश्यशूद्रयोः॥९॥
नार्थहीनं न चाशस्तं नापशब्दयुतं तथा।
नामङ्गल्यं जुगुप्स्यं वा नाम कुर्यात्समाक्षरम्॥१०॥
नातिदीर्घं नातिह्रस्वं नातिगुर्वक्षरान्वितम्।
सुखोच्चार्यं तु तन्नाम कुर्याद्यत्प्रवणाक्षरम्॥११॥
ततोऽनन्तरसंस्कारसंस्कृतो गुरुवेश्मनि।
यथोक्तविधिमाश्रित्य कुर्याद्विद्यापरिग्रहम्॥१२॥
गृहीतविद्यो गुरुवे दत्त्वा च गुरुदक्षिणाम्।
गार्हस्थ्यमिच्छन्भूपालं कुर्याद्दारपरिग्रहम्॥१३॥
ब्रह्मचर्येण वा कालं कुर्यात्संकल्पपूर्वकम्।
गुरोश्शुश्रूणं कुर्यात्तत्पुत्रादेरथापि वा॥१४॥
वैखानसो वापि भवेत्परिव्राडथ वेच्छया।
पूर्वसङ्कल्पितं यादृक् तादृक्कुर्यान्नराधिप॥१५॥

जन्म के दसवें दिन पिता अपने पुत्र का नामकरण करे। नाम के पहिले देव वाचक शब्द और फिर वर्ण संज्ञक शर्मा, वर्मा आदि लगावे।८। ब्राह्मण के नाम में शर्मा क्षत्रिय के नामान्त में वर्मा, वैश्य के लिये गुप्त और शूद्र के लिये दास शब्द का प्रयोग करे।९। जो नाम रखा जाय वह अर्थहीन, अपशब्द वाला असाँगलिक अथवा कुत्सित नहीं होना चाहिये और उसके अक्षरों में समानता नहीं होनी चाहिये।१०। बहुत बड़ा, बहुत छोटा अथवा कठिन अक्षरों से युक्त नाम भी नहीं रखना चाहिये। जिसका उच्चारण सुगमता से ही हो सके और जिसके पीछे लघुवर्ण हो, ऐसा नामकरण करे।११। फिर उपनयन संस्कार होने पर गुरु-गृह में निवासपूर्वक विधिवत् विद्याध्ययन करावे।१२। हे राजन् ! जब वह शिष्य

विद्याध्ययन कर चुके तब गुरुजी को दक्षिणा देकर यदि गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहे तो विधि पूर्वक विवाह करे ।१३। गृहस्थाश्रम-प्रवेश की इच्छा न हो तो सन्यास ग्रहण करे । हे राजन् ! इसमें विचार पूर्वक जैसा निश्चय किया गया हो, वही करना चाहिये ।१४-१५।

वर्षैरेकगुणां भार्यामुद्वहेत्त्रिगुणास्स्वयम् ।
नातिकेशामकेशां वा नातिकृष्णाँ न पिंगलाम् ।।१६।।
निसर्गतोऽधिकांगी वा न्यूनाँगी मपि नोद्वहेत् :
नाविशुद्धां सरोमाँ वाकुलजां वापि रोगिणीम् ।।१७।।
न दुष्टां दुष्टवाक्यां वा व्यंगिनी पितृमातृत: ।
न श्मश्रुव्यञ्जनवतीं न चैव पुरुषाकृतिम् ।।१८।।
न घर्धरस्वराँ क्षामां तथा काकस्वराँ न च ।
नानिबन्धेक्षणां तद्वद्वृत्ताक्षीं नोद्वहेद्बुध: ।।१९।।
यस्याश्च रोमशे जङ्घे गुल्फौ यस्यास्तथोन्नतौ ।
गण्डयो:कूपरौ यस्या हसन्त्यास्तां न चोद्वहेत् ।।२०।।
नातिरूक्षच्छविं पाण्डुकरजामरुणेक्षणाम् ।
आपीनहस्तपादाँ च न कन्यामुद्वहेद् बुध: ।।२१।।

यदि विवाह की इच्छा हो तो तृतीयांश आयु की कन्या का पाणिग्रहण करे । वह अधिक केश वाली अथवा अल्पकेश वाली भी न हो, अधिक साँवली या पाण्डु वर्णं वाली स्त्री को ग्रहण न करे ।१७। दुष्ट स्वभावी, कड़वे वचन बोलने वाली, अङ्गहीना, मूँछों वाली, पुरुष जैसी आकृति वाली, घर्घर शब्द वाली, अत्यंत भिची हुई जुवान या कौए जैसे शब्द वाली, पक्षमशून्या अथवा वृत्ताकार नेत्र वाली स्त्री के साथ विवाह न करे ।१८-१९। जाँघों पर रोम वाली ऊँचे टखनों वाली हँसते समय जिसके कपोलों में गढ़े पड़ जाते हों, उस स्त्री के साथ भी विवाह करना अनुचित है ।२०। मलीन कान्ति वाली, पीले नख वाली, लाल नेत्र वाली, हाथ-पाँव वाली कन्या भी विवाह के लिये त्याज्य समझे ।२१।

न वामनां नातिदीर्घां नोद्वहेत्संहतभ्रुवम् ।
न चातिच्छिद्रदशनां न करालमुखीं नरः ॥२२॥
पञ्चमीं मातृपक्षाच्च पितृपक्षाच्च सप्तमीम् ।
गृहस्थश्चोद्वहेत्कन्यां न्यायेन विधिना नृप ॥२३॥
ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः ।
गान्धर्वराक्षसौ चान्यौ पैशाचश्चाष्टमो मतः ॥२४॥
एतेषां यस्य यो धर्मो वर्णस्योक्तो महर्षिभिः ।
कुर्वीत दारग्रहणं तेनान्यं परिवर्जयेत् ॥२५॥
सधर्मचारिणीं प्राप्य गार्हस्थ्यं सहितस्तया ।
समुद्वहेद्ददात्येतत्सम्यगूढं महाफलम् ॥२६॥

अत्यन्त नाटी, बहुत लम्बी, जुड़ी हुई भृकुटिवाली, असमान दांतों वाली तथा जिनके दाँत बाहर निकले हों, ऐसी कन्या से भी विवाह नहीं करना चाहिये ।२२। हे राजन् ! जिस कन्या का मातृ पक्ष से पाँचवीं पीढ़ी तक और पितृ पक्ष से सातवीं पीढ़ी तक सम्बन्ध हो, ऐसी कन्या से कभी विवाह न करे ।२३। विवाह ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्रजापत्य, आसुर, गांधर्व, राक्षस और पैशाच भेद से आठ प्रकार के होते हैं ।२४। महर्षियों ने इनमें से जिस विवाह को उचित बताया है, उसी के द्वारा नारि परिग्रह करे अन्य विधियों का त्याग करे ।२५। इस प्रकार सहधर्मिणी को पाकर उसके साथ गृहस्थाश्रम का पालन करे, क्योंकि पालन किया जाने वाला गार्हस्थ्य धर्म महान् फल का दाता होता है ।२६।



ग्यारहवां अध्याय

ग्रहस्थस्य सदाचारं श्रोतुमिच्छाम्यहं मुने ।
लोकादस्मात्परमाच्च यमातिष्ठन्न हीयते ॥ १ ॥

श्रूयतां पृथिवीपाल सदाचारस्य लक्षणम् ।
सदाचारवता पुंसा जितौ लोकावुभावपि ॥ २ ॥
साधवः क्षीणदोषास्तु सच्छब्दः साधुवाचकः ।
तेषामाचरणं यत्तु सदाचरस्स उच्यते ॥ ३ ॥
सप्तर्षयोऽथ मनवः प्रजानाँ पतयस्तथ ।
सदाचारस्य वक्तारः कर्त्तारश्च महीपते ॥ ४ ॥
ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय मनसा मतिमान्नृप ।
प्रबुद्धश्चिन्तयेद्धर्ममर्थं चाप्यविरोधिनम ॥ ५ ॥
अपीडया तयोः काममुभयोरपि चिन्तयेत् ।
दृष्टादृष्ठविनाशाय त्रिवर्गे समदर्शिता । ६ ॥
परित्यजेदर्थकामौ धर्मपीडाकरौ नृप ।
धर्ममप्यसुखोदर्कं लोकविद्विष्ठमेव च ॥ ७ ॥

सगर बोले—हे मुने ! अब में गृहस्थ के सदाचारों को सुनने की इच्छा करता हूँ, जिनका आचरण करने वाला मनुष्य इहलोक और परलोक से पतन को प्राप्त नहीं होता ।१। और्व ने कहा—हे राजन् ! अब अपने प्रश्न के अनुसार सदाचार के लक्षण सुनो। उसका पालन करने वाला मनुष्य इहलोक-परलोक दोनों जीतने वाला होता है ।२। सत् शब्द का अर्थ साधु होता है और दोष-रहित को ही साधु कहते हैं । उस साधु पुरुष का आचरण ही सदाचार कहा गया है ।३। हे पृथिवीपते ! इस सदाचार के कहने वाले तथा इसका पालन करने वाले सप्तर्षि, मनु तथा प्रजापति हैं ।४। हे राजन् ! मतिमान पुरुष को स्वस्थ चित्त से ब्राह्म मुहूर्त्त में उठ कर अपने धर्म तथा धर्म-कार्य में बाधक विषयों पर विचार करना चाहिये ।५। और उस कार्य का भी विचार करे जिससे धर्म और अर्थ की हानि न हो । इस प्रकार दृष्टादृष्ट अनिष्ट की शाँति के लिये धर्म, अर्थ और काम—इन तीनों के प्रति समभावी हो ।६। धर्म के विरुद्ध जो अर्थ और काम हैं, उनका त्याग करे और ऐसे धर्म को छोड़ दे जो आगे चल कर दुःखमय हो जाय अथवा समाज के विरुद्ध हो ।७।

ततः कल्यं समुत्थाय कुर्यान्मूत्रं नरेश्वर ।
नैर्ऋत्यामिषुविक्षपमतीत्याभ्यधिकं भुवः ॥ ८ ॥
दूरादावसथान्मूत्रं पुरीषं च विसर्जयेत् ।
पादावनेजनोच्छिष्टे प्रक्षिपेन्न गृहांगणे ॥ ९ ॥
आत्मच्छायां तरुच्छायां गोसूर्याग्न्यनिलांस्तथा ।
गुरुद्विजादींस्तु बुधो नाधिमेहेत्कदाचन ॥१०॥
न कृष्टे शस्यमध्ये वा गोव्रजे जनसंसदि ।
न वर्त्मनि नद्यादितीर्थेषु पुरुषर्षभ ॥११॥
नाप्सु नैवाम्भसस्तीरे श्मशाने न समाचरेत् ।
उत्सर्गं वै पुरीषस्य मूत्रस्य च विसर्जनम् ॥१२॥
उदङ्मुखो दिवा मूत्रं विपरीतमुखो निशि ।
कुर्वीतानापदि प्राज्ञो मूत्रोत्सर्गं च पार्थिव ॥१३॥
तृणैरास्तीर्य वसुधां वस्त्रप्रावृतमस्तकः ।
तिष्ठेन्नातिचिरं तत्र नैव किञ्चिदुदीरयेत् ॥१४॥

ब्राह्म मुहूर्त में उठने के पश्चात् ग्राम के नैर्ऋत्य कोण वाली दिशा में जितनी दूर छोड़ा हुआ बाण जा सकता है, उतनी दूर से भी आगे बढ़कर मल-मूत्र का त्याग करे और अपने घर के आँगन में पाँव धोने का जल अथवा जूठा जल न डाले ।८-९। अपनी छाया पर या वृक्ष की छाया पर अथवा गौ, सूर्य, अग्नि, वायु, गुरु और द्विजाति वाले किसी पुरुष के सामने जाकर कभी मल मूत्र न छोड़े ।१०। इसी प्रकार जोते हुए खेत, अनाज युक्त भूमि, गौओं के गोष्ठ, जन-सभा मार्ग के मध्य, नदी आदि तीर्थ, जल या जलाशय के किनारे और श्मशानादि में कभी मल-मूत्र न करे ।११-११। हे राजन् ? सम्भव हो तो दिन में उत्तर की ओर मुख करके और रात्रि में दक्षिण की ओर मुख करके मूत्रोत्सर्ग करे ।१३। मल त्याग करते समय पृथ्वी को तिनकों से ढक ले और सिर पर वस्त्र लपेट ले और उस स्थान पर अधिक समय तक न रहे तथा मुख से भी कुछ न बोले ।१४।

वल्मीकमूषिकोद्भूतां मृदं नान्तर्जलाँ तथा ।
शौचावशिष्टां गेहाच्च नादद्याल्लेपसम्भवाम् ॥१५॥
अणुप्राण्युपपन्नाँ च हलोत्खातां च पार्थिव ।
परित्यजेन्मृदो ह्येतास्सकलाश्शौचकर्मणि ॥१६॥
एका लिङ्गे गुदे तिस्रो दश वामकरे नृप ।
हस्तद्वये च सप्त स्युर्मृ दश्शौचोपपादिकाः ॥१७॥
अच्छेनागन्धलेपेन जलेनाबुद्बुदेन च ।
आचामेच्च मृद भूयस्तथादद्यात्समाहितः । १८॥
निष्पादिताङ्घ्रिशौचस्तु पादावभ्युक्ष्य तैः पुनः ।
त्रिःपिबेत्सलिलं तेन तथा द्विः परिमार्जयेत् ॥१९॥
शीर्षण्यानि ततः खानि मूर्द्धानं च समालभेत् ।
बाहू नाभि च तोयेन हृदय चापि संस्पृशेत् ॥२०॥
स्वाचान्तस्तु ततः कुर्यात्पुमान्केशप्रसाधनम् ।
आदर्शाञ्जनमाङ्गल्यं दूर्वाद्यालम्भनानि च ॥२१॥

हे राजन् ! बाँबी की मिट्टी, चूहों द्वारा बिल से निकली हुई जल के भीतर की, घर लीपने की, चींटी आदि जीवों द्वारा निकली हुई, हल द्वारा उखड़ी हुई तथा शौच कर्म से बची हुई मिट्टी को शौच कर्म में काम न ले ।१५-१६। हे राजन् ! उपस्थ में एक बार, गुदा में तीन बार, बाँए हाथ में दस बार और दोनों हाथों से सात बार मिट्टी लगाने से शुद्धि होती है ।१७। फिर निर्गंध और फेनहीन जल से आचमन करे और यत्नपूर्वक अधिक मिट्टी ग्रहण करे ।१८। उससे पाँवों को शुद्ध करे। पाँव-धोने के उपरांत तीन बार कुल्ला करे और फिर दो बार मुख को धोवे ।१९। फिर जल ग्रहण करके उससे इन्द्रियरन्ध्र, मूर्द्धा, बाहु, नाभि और हृदय को स्पर्श करे ।२०। फिर भले प्रकार स्नान करके बालों को सँभारे और आवश्यकतानुसार दर्पण, अजन, दूर्बा आदि माँगलिक द्रव्यों का विधिपूर्वक प्रयोग करे ।२१।

ततस्स्ववर्णधर्मेण वृत्त्यर्थं च धनार्जनम् ।
कुर्वीत श्रद्धासम्पन्नो यजेच्च पृथिवीपते ॥२२॥

सोमसंस्था हविस्संस्थाः पाकसंस्थास्तु संस्थिताः ।
धने यतो मनुष्याणाँ यतेतातो धनार्जने ॥२३॥
नदीनदतटाकेषु देवखातजलेषु च ।
नित्यक्रियार्थं स्नायीत गिरिप्रस्रवणेषु च ॥२४॥
कूपेषूद्धृततोयेन स्नान कुर्वीत वा भुवि ।
गृहेषूद्धृततोयेन ह्यथवा भुव्यसम्भवे ॥२५॥
शुचिवस्त्रधरः स्नातो देवर्षिपितृतर्पणम् ।
तेषामेव हि तीर्थेन कुर्वीत सुसमाहितः ॥२६॥
त्रिरपः प्रीणनार्थाय देवानामपवर्जयेत् ।
ऋषीणां च यथान्यायं सकृच्चापि प्रजापतेः ॥२७॥
पितृणां प्रीणनार्थाय त्रिरपः पृथिवीपते ।
पितामहेभ्यश्च तथा प्रीणयेत्प्रपितामहान् ॥२८॥
मातामहाय तत्पित्रे तत्पित्रे च समाहितः ।
दद्यात्पैत्रेण तीर्थेन काम्यं चान्यच्छृणुष्व मे ॥२९॥

हे राजन् ! इसके पश्चात् अपने वर्ण-धर्म के अनुसार आजीविका करे और धनोपार्जन पूर्वक यज्ञादि का अनुष्ठान करे ।२२। सोम संस्था हविस्संस्था और पाकसंस्था-इस सभी धर्मों का आश्रय धन है, इसलिये मनुष्यों को धनोपार्जन करना भी अत्यन्त कर्म है ।२३। नित्य कर्मों का सम्पादन करने के निमित्त पहिले स्नान करना आवश्यक है । इसीलिये नदी, नद, तालाब बावड़ी या पर्वत के झरने आदि में स्नान करना उचित है ।२४। अथवा कुँए से जल लेकर उसके निकटवर्ती भूमि पर स्नान करे यदि वहाँ न करे तो उस जल को अपने घर में लाकर ही उससे स्नान कर ले ।१५। स्नान के पश्चात् शुद्ध वस्त्र धारण कर देवता ऋषि और पितरों का उन-उन के तीर्थों से तर्पण करे ।१६। देवताओं और ऋषियों के तर्पण में तीन-तीन बार और प्रजापति के लिये एक ही बार पृथ्वी में जल छोड़े ।२७। पितरों और पितामहों की तृप्ति के लिये भी तीन बार ही जल छोड़ना चाहिये, इसी प्रकार प्रपितामहों की तृप्ति करे । मातामह

को और उनके पिता तथा पितामह को यत्न पूर्वक तीर्थ जल से प्रसन्न करे। अब मैं काम्य तर्पण कहता हूँ उसे सुनो।२८-२९।

मात्रे प्रमात्रे मम्मात्रे गुरुपत्न्यै तथा नृप।
गुरूणां मातुलानाँ च स्निग्धमित्राय भूभुजे ॥३०॥
इद चापि जपेदम्बु दद्यादात्मेच्छया नृप।
उपकाराय भूतानां कृतदेवादितर्पणम् ॥३१॥
देवासुरास्तथा यक्षा नागगन्धर्वराक्षसाः।
पिशाचा गुह्यकास्सिद्धाः कूष्साण्डाः पशवः खगा ॥३२॥
जलेचरा भूनिलया वाय्वाहाराश्च जन्तवः।
तृप्तिमेतेन यान्त्वाशु मद्दत्ते नाम्बुनाखिलाः ॥३३॥
नरकेषु समस्तेषु यातनासु च ये स्थिताः।
तेषामाप्यायनायैतद्दीयते सलिलं मया ॥३४॥
ये बान्धवाबान्धवा वा येऽन्य जन्मनि बान्धवाः।
ते तृप्तिमखिला यान्तु ये चास्मत्तोयकाङ्क्षिणः ॥३५॥
यत्र कचनसंस्थानां क्षुत्तृष्णोपहतात्मनाम्।
इदमाप्यायनायास्तु मया दत्तं तिलोदकम् ॥३६॥

हे राजन् ! माता को, प्रमाता को, उसकी माता को, गुरु पत्नी को, गुरु को, प्रिय मित्र को अथवा राजा को मेरा दिया हुआ यह जल प्राप्त हो, इस प्रकार कहता हुआ सब भूतों के लिये देवादि का तर्पण कर के अपने इच्छित सम्बन्धी को जल दे।३०-३२। देवता, असुर, यक्ष, नाग गन्धर्व, राक्षस, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध, कूष्माण्ड, पशु, पक्षी, जलचर, भूमिचर, वायु का आहार करने वाले सब जीव मेरे द्वारा दिये गये इस जल से तृप्त हों-ऐसा देवादि के तर्पण में कहे।३२-३३। सम्पूर्ण नरकों में स्थित हुए जो-जो जीव विभिन्न प्रकार की यन्त्रणाएँ प्राप्त कर रहे हैं उनकी तृप्ति के लिये जल देता हूँ।३४। जो मेरे बन्धु हैं अथवा अबन्धु हैं या पहिले किसी जन्म बन्धु थे या जो मुझसे जल-प्राप्ति की इच्छा रखते हैं, वह सभी मेरे द्वारा दिये गये इस जल से तृप्त हों।३५। क्षुधा-पिपासा से व्याकुल कोई भी प्राणी जहाँ कहीं भी हों, वे सब मेरे द्वारा दिये गये इस तिल-जल से तृप्त हो जाँय।३६।

काम्योदकप्रदानं ते मयतत्कथितं नृप ।
यद्दत्वा प्रीणयत्येतन्मनुष्यस्सकलं जगत् ॥३७॥
जगदाप्यायनोद्भूतं पुण्यमाप्नोति चानघ ।
दत्वा काम्योदकं सम्यगेतेभ्यः श्रद्धयान्वित ॥३८॥
आचम्य ततो दद्यात्सूर्याय सलिलाञ्जलिम् ।
नमो विवस्वते ब्रह्मभास्वते विष्णुतेजसे ॥३९॥
जगत्सवित्रे शुचये सवित्रे कर्मसाक्षिणे ।
ततो गृहार्चनं कुर्यादभीष्टसुरपूजनम् ॥४०॥
जलाभिषेकैः पुष्पैश्च धूपाद्यैश्च निवेदनम् ।
अपूर्वमग्निहोत्रं च कुर्यात्प्राग्ब्रह्मणे नृप ॥४१॥
प्रजापतिं समुद्दिश्य दद्यादाहुति मादरात् ।
गृह्याभ्यः काश्यपायाथ ततोऽनुमतये क्रमात् ॥४२॥
तच्छेष मणिके पृथ्वीपर्जन्येभ्यः क्षिपेत्ततः ।
द्वारे धातुर्विधातुश्च मध्ये च ब्रह्मणे क्षिपेत् ।
गृहस्य पुरुषव्याघ्र दिग्देवानपि मे शृणु ॥४३॥

हे राजन् ! इस प्रकार मैंने तुम्हारे प्रति यह काम्य तर्पण कहा है, जिसे करके मनुष्य सम्पूर्ण विश्व को तृप्ति प्रदान कर सकता है।३७। और हे निष्पाप ! इस उपरोक्त प्रकार से जीवों को श्रद्धा-भाव से काम्य जल देने के कारण उसे संसार की तृप्ति से होने वाले पुण्य की प्राप्ति होती है ।३८। इस प्रकार तर्पण करने के पश्चात् आचमन करे और भगवान् भास्कर को जलाञ्जलि प्रदान करे। भगवान् विवस्वान् को नमस्कार है। वह वेद के ज्ञाता और विष्णु तेज के समान अत्यन्त तेजोमय है। वही विश्व के उत्पन्न करने वाले, अत्यन्त पवित्र और कर्मों को देखने वाले हैं। यह कह कर जलाभिषेक करे और पुष्प-धूपादि देता हुआ गृह देवता और इष्ट देवता की पूजा करे। हे राजन् इसके पश्चात् अग्नि होत्र करना चाहिये, जिसमें प्रथम ब्रह्माजी को फिर प्रजापति, गृह्य, काश्यप और अनुमति को क्रमशः आदर भाव से आहुतियाँ प्रदान करे।३९-४०।

उससे शेष रहे हव्य को पृथ्वी और पर्जन्य के निमित्त उदक पात्र में, धाता-विधाता के निमित्त द्वार के दोनों ओर तथा ब्रह्माजी के निमित्त घर के बीच में छोड़े ! आज मैं तुम्हें दिक्पालों के पूजन की विधि बतलाता हूँ, ध्यान से सुनो ।४३।

इन्द्राय धर्मराजाय वरुणाय तथेन्दवे ।
प्राच्यादिषु बुधो दद्याद्धुतशेषात्मकं बलिम् ॥४४॥
प्रागुत्तरे च दिग्भागे धन्वन्तरिबलिं बुधः ।
निर्वपेद्वैश्वदेवं च कर्म कुर्यादतः परम् ॥४५॥
वायव्यां वायवे दिक्षु समस्तासु यथादिशम् ।
ब्रह्मणे चान्तरिक्षाय मानवे च क्षिपेद्बलिम् ॥४६॥
विश्वेदेवान्विश्वभूतानथ विश्वपतीन्पितॄन् ।
यक्षाणां च समुद्दिश्य बलिं दद्यान्नरेश्वर ॥४७॥
ततोऽन्यदन्नमादाय भूमिभागे शुचौ बुधः ।
दद्यादशेषभूतेभ्यस्स्वेच्छया सुसमाहितः ॥४८॥

देवा मनुष्याः पशवो वयाँसि
सिद्धास्सयक्षोरगदैत्यसङ्घाः ।
प्रेताः पिशाचास्तरवस्समस्ता
ये चान्नमिच्छन्ति मयात्रदत्तम् ॥४९॥
पिपीलिकाः कीटपतङ्गकाद्या
बुभुक्षिताः कर्मनिबन्धबद्धाः ।
प्रयान्तु ते तृप्तिमिदं मयान्नं
तेभ्यो विसृष्टं सुखिनो भवन्तु ॥५०॥

पूर्व में इन्द्र के उद्देश्य से, दक्षिण में यम के उद्देश्य से, पश्चिम में वरुण के तथा उत्तर में चन्द्रमा के लिये बची हुई सामग्री से बलि दे ।४४। पूर्व और उत्तर में धन्वन्तरि के लिये बलि देकर बलिवैश्व देव कर्म करे ।४५। इस समय वायव्य दिशा में केवल वायु को तथा अन्य सभी दिशाओं में वायु को और उन सब दिशाओं को बलि दे । इसी प्रकार ब्रह्माजी, अन्तरिक्ष और सूर्य को उन-उन की दिशाओं में बलि दे ।४६।

फिर विश्वदेवों, विश्वोभूतो, विश्वपतियों, पितरों और यज्ञों के निमित्त बलि प्रदान करे।४७। फिर अन्न लेकर पृथ्वी पर समाहित मन से बैठे और सब प्राणियों के उद्देश्य से बलि दे।४८। और कहे कि देवता, मनुष्य पशु, पक्षी, सिद्ध, यक्ष, सर्प, दैत्य, प्रेत, पिशाच, वृक्ष, चींटी, पतंगादि जो भी जीव अपने-अपने कर्मबन्धन में बँध कर क्षुधातुर हुए मेरे अन्न की इच्छा करते हैं, उन सभी के लिए मैं अन्न प्रदान करता हूँ, इससे तृप्त और सुखी हैं।४९-५०।

येषां न माता न पिता न बन्धु-
नैवान्नसिद्धिर्न तथान्नमस्ति।
तत्तृप्तयेऽन्नं भुवि दत्तमेतद्
ते यान्तु तृप्ति मुदिता भवन्तु ।५१।
भूतानि सर्वाणि तथान्नमेत-
दहं च विष्णुर्न ततोऽन्यदस्ति।
तस्मादहं भूतनिकायभूत-
मन्नं प्रयच्छामि भवाय तेषाम् ।।५३।।
चतुर्दशो भूतगणो य एष
तत्र स्थिता येऽखिलभूतसङ्घाः।
तृप्त्यर्थमनन हि मया विसृष्टं
तेषामिदं ते मुदिता भवन्तु ।।३५।।
इत्युच्चाय नरो दद्यादन्नं श्रद्धासमन्वितः।
भुवि सर्वोपकाराय गृही सर्वाश्रयो यतः ।।५४।।
श्वचाण्डालविहगानां भुवि दद्यान्नरेश्वर।
ये चान्ये पतिताः केचिदपुत्राः सन्ति मानवाः ।।५५।।
ततो गोदोहमात्रं वै काल तिष्ठेद् गृहांगणे।
अतिथिग्रहणार्थाय तदूर्ध्वं तु यवेच्छयाः ।।५६।।

जिनके माता, पिता, बाँधवादि नहीं हैं अथवा किसी के पास अन्नदान का साधन या अन्न नहीं हैं, मैंने उन्हें तृप्त करने के लिये भूमि पर यह अन्न रख दिया है, वे इसे ग्रहण करके तृप्त तथा सुखी हों।५१।

समस्त जीव, मैं तथा यह अन्य–सभी कुछ विष्णु हैं, क्योंकि विष्णु से भिन्न कुछ भी कहीं नहीं है। इसलिये सब भूतों के देह रूप इस अन्न को मैं उनकी पुष्टि के निमित्त प्रदान करता हूँ।५२। इस चतुर्दश प्रकार के भूत समुदाय में जितने भी जीव हैं, उन सभी को तृप्त करने के लिये मैंने यह अन्न रखा है, इसीलिये वे इससे प्रसन्न हों।५३। इस प्रकार कहता हुआ गृहस्थ पुरुष श्राद्ध-भाव पूर्वक सब जीवों के हितार्थ पृथ्वी में अन्नदान करे, क्योंकि गृहस्थ ही तो सब जीवों का आश्रय स्वरूप है।५४। फिर हे राजन् ! श्वान, चाण्डाल, खगगण अथवा अन्य जो-जो भी पतित या पुत्रहीन आदि पुरुष हों, उन सबकी तृप्ति के निमित्त पृथ्वी में बलि भाग को रख दे।५५। फिर गो दोहन का समय होने तक या उससे भी कुछ देर तक अतिथि की प्रतीक्षा में घर के आँगन में खड़ा रहे।५६।

अतिथिं तत्र सम्प्राप्तं पूजयेत्स्वागतादिना ।
तथासनप्रदानेन पादप्रक्षालनेन च ॥५७॥
श्रद्धया चान्नदानेन प्रियप्रश्नोत्तरेण च ।
गच्छतश्चानुयानेन प्रीतिमुत्पादयेद् गृही ॥५८॥
अज्ञातकुलनामानमन्यदेशादुपागतम् ।
पूजयेदतिथिं सम्यङ् नैकग्रामनिवासिनम् ॥५९॥
अकिञ्चनमसम्बन्धमज्ञातकुलशीलनम् ।
असम्पूज्यातिथिं भुक्त्वा भोक्तुकामं व्रजत्यधः ॥६०॥
स्वाध्यायगोत्राचरणमपृष्ट्वा च तथा कुलम् ।
हिरण्यगर्भबुद्ध्या तं मन्यताभ्यागतं गृही ॥६१॥
पित्रर्थं वापरं विप्रमेकमप्याशयेन्नृप ।
तद्देश्यं विदिताचारसम्भूतिं पाञ्चयज्ञिकम् ॥६२॥
अन्नाग्रञ्च समुद्धृत्य हन्तकारोदकल्पितम् ।
निर्वापभूतं भूपाल श्रोत्रियायोपपादयेत् ॥६३॥

यदि अतिथि मिल जाय तो उसे स्वागत पूर्वक आसन दे और चरण धोकर सत्कार करे और श्रद्धापूवक उसे भोजन करता हुआ मधुर वाणी से बातचीत करता हुआ उसके गमनकाल में पीछे-पीछे जाकर उसे

प्रसन्न करना चाहिये।५७-५८। जिस व्यक्ति के नाम और निवास स्थान आदि का पता न हो, उसी अतिथि का सत्कार करे। अपने ही ग्राम में निवास करने वाला पुरुष अतिथि का पात्र होता।५९। जिसके पास कोई सामान न हो, जिससे कोई सम्बन्ध न हो, जिसके वंशादि का ज्ञान न हो और जो भोजन करने के लिये इच्छुक हो, ऐसे अतिथि का सत्कार न करना या भोजन न कराना अधोगति को प्राप्त कराने वाला है।६०। आगत अतिथि का अध्ययन, गोत्र, आचरण, कुल आदि कुछ न पूछे और हिरण्यगर्भ बुद्धि से उसका पूजन करे।६१। हे राजन् ! अतिथि का सत्कार करने के पश्चात् अपने ग्राम के एक अन्य पंचाशिक ब्राह्मण को जिसके कुल और आचरण आदि की जानकारी हो बुलाकर पितर कार्य के लिये भोजन करावे।६२। उस श्रोत्रिय ब्राह्मण को पहिले ही निकाल अलग रखे हुए हन्तकार संज्ञक अन्न से भोजन करना चाहिये।६३।

दत्वा च भिक्षात्रितयं परिव्राड्ब्रह्मचारिणाम् ।
इच्छाया च बुधा दद्याद्विभवे सत्यवारितम् ।।६४।।
इत्येतेऽतिथयः प्रोक्ताः प्रागुक्ताः भिक्षवश्च ये ।
चतुरः पूजयित्वैतान्नृप पापात्प्रमुच्यते ।।६५।।
अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते ।
स तस्मै दुष्कृत दत्वा पुण्यमादाय गच्छति ।।६६।।
धाता प्रजापतिः शक्रो वह्निर्वसुगणोऽर्यमा ।
प्रविश्यातिथिमेते वै भुञ्जन्तेऽन्न नरेश्वर ।।६७।।
तस्मादतिथिपूजायां यतेत सततं नरः ।
स केवलमघं भुङ्क्तेयो ह्यतिथि विना ।।६८।।
ततः स्ववासिनीदुःखिगर्भिणीवृद्धबालकान् ।
भोजयेत्संस्कृतान्नेन प्रथमं रम गृही ।।६९।।
अभुक्तवत्सु चैतेषु भुञ्जन्भुङ्क्ते स दुष्कृतम् ।
मृतश्च गत्वा नरकं श्लेष्मभुग्जायते नरः ।।७०।।

इस प्रकार तीन भिक्षायें देने के उपरांत यदि शक्ति हो तो परिव्राजकों और ब्रह्मचारियों को भी विमुख न करके, उन्हें भिक्षा दे ।६४। पहिले के तीन (देव, अतिथि, ब्राह्मण) तथा चौथे भिक्षुक मिलकर यह चारों अतिथि ही कहे जाते हैं । हे नृप ! इन चारों की पूजा करने से मनुष्य सभी पापों से छूट जाता है ।६५। जिसके घर से अतिथि विमुख लौटता है, उसे वह अपने समस्त पाप देकर उसके सभी शुभ कर्मों को साथ ले जाते हैं ।६६। धाता, प्रजापति, इन्द्र, अग्नि, वसुगण और अर्यमा-यह सभी देवता अतिथि के शरीर में बैठकर उसके साथ भोजन करते हैं ।६७। इसीलिये अतिथि सत्कार के लिये गृहस्थ पुरुष को सदा यत्नशील रहना चाहिये । जो मनुष्य अतिथि को भोजन कराये बिना स्वयं ही भोजन कर लेता है, वह तो केवल पाप का ही भक्षण करता है ।६८। इसके पश्चात् गृहस्थ अपने घर में रहने वाली विवाहिता पुत्री, रोगिणी गर्भिणी, वृद्ध और बालकों को पहिले उस शुद्ध संस्कृत अन्न से भोजन करावे और फिर स्वयं भोजन करे ।६९। जो गृहस्थ इन सबको खिलाये बिना, स्वयं खा लेता है, वह पाप-भक्षक ही होता है और अन्त में नरक को प्राप्त होकर श्लेष्म भक्षी कीट होता है ।७०।

अस्नाताशी मल भुङ्क्ते ह्यजपी पूयशोणितम् ।
असंस्कृतान्नभुङ् मूत्रं बालादिप्रथमं शकृत् ॥७१।
अहोमी च कृमीन्भुङ्क्ते अदत्वा विषमश्नुते ।
तस्माच्छृणुष्व राजेन्द्र यथा भुञ्जीत वै गृही ॥७२॥
भुञ्जतश्च यथा पुंसः पापबन्धो न जायते ।
इह चारोग्यविपुलं बलबुद्धिस्तथा नृप ॥७३।।
भवत्यरिष्टशाँतिश्च वैरिपक्षाभिचारिका ।
स्नातो यथावत्कृत्वा च देवर्षिपितृतर्पणम् ॥७४॥
प्रशस्तरत्नपाणिस्त भुञ्जीत प्रयतो गृही ।
कृते जपे हुते वह्नौ शुद्धवस्त्रधरो नृप ॥७५॥
दत्वातिथिभ्यो विप्रेभ्यो गुरुभ्यस्संश्रिताय च ।
पुण्यगन्धश्शस्तमाल्यधारी चैव नरेश्वर ॥७६।।

एकवस्त्रधरोऽथार्द्रपाणिपादो महीपते ।
विशुद्धवदनः प्रीतो भुञ्जीत न विदिङ्मुख ।।७७।।

जो मनुष्य स्नान के बिना ही भोजन कर लेता है, उसे मल भक्षण करने वाला समझो। जप किये बिना भोजन कर लेना रुधिर और पूय पान करना है। असंस्कृत अन्न का भोजन करने वाला मूत्र पीता है, अथवा जो बालक वृद्धादि से पहिले भोजन कर लेता हैं, उसे विष्ठा का आहार करने वाला जानो।७१। हवन किये बिना भोजन करने वाला कीड़ों का और बिना दान किये खा लेने वाला विष का भोजन करता है। इसीलिये गृहस्थ जिस प्रकार भोजन करे उस विधि का श्रवण करो। स्नान के अनन्तर देवताओं, ऋषियों और पितरों का तर्पण कर हाथ में श्रेष्ठ रत्न धारण पूर्वक पवित्रता से भोजन करे। जप और अग्नि के बाद शुद्ध वस्त्र पहिने तथा अतिथि, ब्राह्मण, गुरुजन और अपने आश्रितों को भोजन कराने के पश्चात् श्रेष्ठ पुष्पमालादि धारण और हाथ-पाँव प्रक्षालन आदि से शुद्ध होकर भोजन करे और भोजन करते समय में इधर-उधर दृष्टिपात न करे।७२—७७।

प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि न चेवान्यमना नरः ।
अन्नं प्रशस्तं पथ्यं च प्रोक्षितं प्रोक्षणोदकैः ।।७८।।
न कुत्सिताहृतं नैव जुगुप्सावदसंस्कृतम् ।।७९।।
दत्वा तु भक्तं शिष्येभ्यः क्षुधितेभ्यस्तथा गृही ।
प्रशस्तशुद्धपात्रे तु भुञ्जताकुपितो नृप ।।८०।।
नासन्दिसंस्थिते पात्रे नादेशे च नरेश्वर ।
नाकाले नातिसङ्कीर्णे दत्वाग्रं च नरोऽग्नये ।।८१।।
मन्त्राभिमन्त्रितं शस्तं न च पर्युषितं नृप ।
अन्यत्र फलमूलेभ्यश्शुष्कशाखादिकात्तथा ।।८२।।
तद्वद्धारीतकेभ्यश्च गुडभक्ष्येभ्य एव च ।
भुञ्जीतोद्धृतसाराणि न कदापि नरेश्वर।।८३।।
नाशेषं पुरुषोऽश्नीयादन्यत्र जगपीहते ।
मध्वम्बुदधिसर्पिभ्यस्सक्तुभ्यश्च विवेकवान् ।।८४।।

अन्यमनस्क भाव को त्यागकर पुर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख बैठकर पथ्य अन्न को मन्त्रपूत जल छींटे देकर उसका आहार करे ।७८। किसी दुराचारी पुरुष से प्राप्त, घृणोत्पादक या बलि वैश्यदेव आदि संस्कारों से रहित अन्न को त्याग दे तथा अपने भोजन योग्य अन्न में से कुछ अंश अपने शिष्य अथवा अन्य क्षुधार्त व्यक्तियों को देकर शुद्ध पात्र में अन्न रख कर उसका भक्षण करे ।७९-८०। किसी वेत आदि के आसन पर स्थित पात्र में, अयोग्य या संकुचित स्थान में अथवा असमय में भोजन न करे । प्रथम अग्नि को अन्न का अग्रभाग देकर ही भोजन करे ।८१। मत्रपूत, प्रशस्त तथा ताजा अन्न का भोजन करे । परन्तु फल, मूल और सूखी शाखाओं के और चटनी या गुड़ के पदार्थों के प्रति यह नियम लागू नहीं है । सारहीन पदार्थों का भोजन न करना ही इस कथन का उद्दश्य है ।८२-८३। हे भूपते ! मधु, जल घृत, दही, सतू आदि के अतिरिक्त अन्य किसी पदार्थ को पूरा ही भक्षण न करे ।८४।

अश्नीयात्तन्मयो भूत्वा पूर्वं तु मधुरं सरम् ।
लवणाम्लौ तथा मध्ये कटुतिक्तादिकांस्ततः ॥८५॥
प्राग्द्रवं पुरुषोऽश्नीयान्मध्ये कठिनभोजनः ।
अन्ते पुनर्द्रवाशी तु बलारोग्ये न मुञ्चति ॥८६॥
अनिन्द्यं भक्षयेदित्थं वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन् ।
पञ्चग्रास महामौन प्राणाद्याप्यायन हि तत् ॥८७॥
भुक्त्वा सम्यगथाचम्य प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा ।
यथावत्पुनराचामेत्पाणी प्रक्षाल्य मूलतः ॥८८॥
स्वस्थः प्रशान्तचित्तास्तु कृतासनपरिग्रहः ।
अभीष्टदेवतानां तु कुर्वीत स्मरणं नरः ॥८९॥
अग्निराप्याययेद्धातुं पार्त्रिवं पवनेरितः ।
दत्तावकाशं नभसा जरयत्वस्तु मे सुखम् ॥९०॥
अन्नं बलाय मे भूमेरपामग्न्यनिलस्य च ।
भवत्येतत्परिणतं ममास्त्वव्याहतं सुखम् ॥९१॥

एकाग्र मन से भोजन करना चाहिये। पहिले मीठे फिर नमकीन फिर खट्टे और अन्त में कड़ुवे तीक्ष्ण पदार्थों का भोजन करे।८५। जो मनुष्य प्रथम द्रव पदार्थ, मध्य में कठिन पदार्थ और अन्त में पुनः द्रव पदार्थ भक्षण करता है, उसके बल और आरोग्य का कभी क्षय नहीं होता।८६। इस प्रकार अनिषिद्ध पदार्थों का वाणी के समय पूर्वक भोजन करे। अन्न का कभी तिरस्कार न करे। पहिले पाँचग्रास मौन रहकर खाय, वह पंचप्राणों की तृप्ति करने वाले हैं।८७। भोजन के पश्चात् भले प्रकार आचमन करे और पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके हाथों को उन के मूल देश तक धोकर पुनः विधिवत् आचमन करे।८८। फिर स्वस्थ और शान्त मन से आसन पर स्थित और अपने इष्ट देवताओं का ध्यान करे।८९। प्राणवायु से प्रदीप्त हुआ जठराग्नि आकाश से आकाशमय अन्न का परिपाक करता हुआ मेरी देहगत पार्थिव धातुओं का पोषण करे जिससे मैं सुखी रहूँ।९०। यह अन्न मेरे देह में स्थित पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु के बल की वृद्धि करे तथा इन्ही चारों तत्वों के रूप में हुआ यह अन्न मुझे सुखदायक हो।९१।

प्राणापानसमानानामुदानव्यानयोस्तथा ।
अन्नं पुष्टिकरं चास्तु ममाप्यव्याहतं सुखम् ॥९२॥
अगास्तिरग्निर्बडवानलश्च भुक्तं मयान्नं जरयत्वशेषम् ।
सुखं च मे तत्परिणामसंभव यच्छन्त्वरोगो मम चास्तुदेहे ।
विष्णुस्समस्तेन्द्रियदेहदेही प्रधानभूतो भगवान्यथैकः ।
सत्येन तेनात्तमशेषमन्नमारोग्यद मे परिणाममेतु ॥९४॥
विष्णुरत्ता तथैवान्नं परिणामश्च वै तथा ।
सत्येन तेन मद्भुक्तं जीर्यत्वन्नमिदं तथा ॥९५॥
इत्युच्चार्य स्वहस्तेन परिमृज्य तथोदरम् ।
अनायासप्रदायीनि कुर्यात्कर्माण्यतन्द्रितः ॥९६॥
सच्छास्त्रादिविनोदेन सन्मार्गादविरोधिना ।
दिनं नयेत्ततस्सन्ध्यामुपतिष्टेत्समाहितः ॥९७॥

यह अन्न मेरे प्राणापान, समान, उदान और व्यान को पुष्ट करे, जिससे मुझे बाधा रहित सुख मिल सके।९२। मेरे भोजन किये हुए सब

अन्न को अगस्ति नामक अग्नि और बड़वानल पकावें, उसके परिणाम से उपलब्ध होने वाला सुख दें और उससे मेरे देह को आरोग्य-लाभ हो।९२। देह तथा इन्द्रियादि के अधिष्ठाता केवल भगवान् श्रीहरि की प्रधान है, इस सत्य के प्रभाव से मेरे भोजन का सब अन्न पककर मुझे आरोग्य-लाभ करावे।९४। भोजन करने वाला, अन्न तथा उसका परिपाक-यह सब विष्णु ही हैं। इसी सत्य के प्रभाव से मेरे भोजन किये हुए इस अन्न का परिपाक हो।९५। इस प्रकार कहकर अपने पेट पर हाथ फेरे और यत्न पूर्वक अधिक श्रम उत्पन्न न करने वाले कार्यों को करने लगे।९६। दिवस का शेष काल सत् शास्त्रों के देखने तथा श्रेष्ठ मार्ग से विरोध न करने वाले विनोदों में बितावे और सायंकाल में यत्नपूर्वक संध्योपासन करे।९७।

दिनान्तसन्ध्यां सूर्येण पूर्वामृक्षयुतां बुधः।
उपतिष्ठेद्यथान्याय्यं सम्यगाचम्य पार्थिव ॥९८॥
सर्वकालमुपस्थानं सन्ध्ययोः पार्थिवेष्यते।
अन्यत्र सूतकाशौचविभ्रमातुरभीतितः ॥९९॥
सूर्येणाभ्युदितो यश्च त्यक्तः सर्येण व स्वपन्।
अन्यत्रातुरभावात्तु प्रायश्चित्ती भवेन्नरः ॥१००॥
तस्मादनुदिते सूर्य समुत्थाय महीपते।
उपतिष्ठेन्नरस्सन्ध्यामस्वपश्च दिनान्तजाम् ॥१०१॥
उपतिष्ठन्ति वै सन्ध्यां ये न पूर्वा न पश्चिमाम्।
व्रजन्ति ते दुरात्मानस्तामिस्रं नरकं नृप ॥१०२॥
पुनः पाकमुपादाय सायमप्यवनीपते।
वैश्वदेवनिमित्तं वै पत्न्यमन्त्रं बलिं हरेत् ॥१०३॥
तत्रापि श्वपचादिभ्यस्तथैवान्नविसर्जनम्।
अतिथिं चागतं तत्र स्वशक्त्या पूजयेद् बुधः ॥१२४॥

हे राजन्! सायंकाल में सूर्यास्त से पहिले और प्रातः काल में तारों के अस्त न होने से पूर्व विधिवत् आचमनादि करके सन्ध्योपासन करना चाहिये।९८। यदि सूतक, अशौच, उन्माद, रोग या भयादि में से किसी प्रकार की बाधा न हो तो नित्य प्रति ही सन्ध्योपासन करना चाहिये

।९९। रोगकी अवस्था के अतिरिक्त और कभी जो मनुष्य सूर्य के उदयास्त काल में सोता रहता है, उस प्रायश्चित का भागी होना होता है ।१००। इसलिये हे राजन् ! गृहस्थ पुरुष को सूर्योदय होने से पहिले ही उठकर प्रात:कालीन सन्ध्या करनी चाहिये, सायंकालीन सन्ध्या के समय भी सन्ध्योपासन करे शयन न करे ।१०१। हे राजन् ! जो मनुष्य प्रात:कालीन और सायंकालीन सन्ध्यावन्दन से विरत रहते हैं, उन दुरात्माओं को अन्धतामित्र नरक को प्राप्ति होती है ।१०२। फिर सायंकाल में परिपक्व किये अन्न से गृहिणी मंत्रहीन बलिवैश्वदेव करे ।१०३। उस समय भी श्वपचादि को अन्न दे और आगत अतिथि का भी अपनी शक्ति भर पूजन करे ।१०४।

पादशौचासनप्रह्वस्वागतोक्त्या च पूजनम् ।
ततश्चान्नप्रदानेन शयनेन च पार्थिव ।।१०५।।
दिवातिथौ तु विमुखे गते यत्पातकं नृप ।
तदेवाष्ठगुण पुंसस्सूर्योढे विमुखे गते ।।१०६।।
तस्मात्स्वशक्त्या राजेन्द्र सूर्योढमतिथि नरः ।
पूजयेत्पूजिते तस्मिन्नपूजितास्सर्वदेवता: ।।१०७।।
अन्नशाकाम्बुदानेन स्वशक्त्या पूजयेत्पुमान् ।
शयनप्रस्तरमहीपदानैरथवापि तम् ।।१०८।।
कृतपादादिशौचस्तु भुक्त्वा सायं तमो गृही ।
गच्छेच्छय्यामस्फुटितामपि दारुमयीं नृप ।।१०९।।
नाविशाला न वै भग्ना नासमा मलिना न च ।
न च जन्तुमयीं शय्यामधितिष्ठेदनास्तृताम् ।।११०।।
प्राच्या दिशि शिरश्शस्तं याम्यायामथ वा नृप ।
सदैव स्वपतः पुंसो विपरीतं तु रोगदम् ।।१११।।

हे राजन् ! अतिथि सत्कार में प्रथम पग-पक्षालन, आसन दान, स्वागत सूचक विनीत वचन, भोजन तथा शय्या आदि की व्यवस्था करना उचित है। हे नृप ! जो पाप दिन में आये हुए अतिथि के लौटने से होता है, उससे अष्टगुण पाप सूर्यास्त के समय आये हुए अतिथि के विमुख चले

जाने से होता है ।१०६। इसलिये सूर्यास्त काल में आये हुए अतिथि का अवश्य ही शक्ति भर सत्कार करना चाहिए, क्योंकि उसका पूजन होने में सभी देवताओं का पूजन निहित है ।१०७। जिस प्रकार हो सके भोजन के लिये अन्न, शाक अथवा जल ही दे, शयन के लिए शय्या न हो तो घास फूस बिछा दे अथवा भूमि ही बता दे । तात्पर्य यह है कि यथाशक्ति उसका सत्कार करे ।१०८। हे राजन् ! फिर वह गृहस्थ सायंकालीन भोजन करे और हाथ-पाँव धोकर छिद्रादि से रहित काष्टमयी शय्या पर शयन करे ।१०९ ऐसी शय्या पर शयन न करे जो बहुत बड़ी, ऊँची-नीची, टूटी अथवा मैली हो या उसमें जीव भरे हों ।११०। शयन के समय पूर्व अथवा दक्षिण की ओर शिर रखे, अन्य दिशाओं में शिर रखना रोग उत्पन्न करने वाला होता है ।१११।

ऋतावुपगमश्शस्तस्स्वपत्न्या मवनीपते ।
पुन्नामतु क्षुर्क्षेभे कालेज्येष्ठायुग्मासु रात्रिषु ।।११२।।
नाद्यूना स्त्रियं गच्छेन्नातुरा न रजस्वलाम् ।
नानिष्टां न प्रकुपितां न च गर्भिणीम् ।।११३।।
नादक्षिणाँ नान्यकामाँ नान्ययोषितम् ।
क्षुत्क्षामां नातिभुक्तां वा स्वयं चैभिर्गुणैर्युतः ।।११४।।
स्नातस्स्रग्गन्धधृक्प्रीतो नाध्मातः क्षुधितोऽपि वा ।
सकामस्सानुरागश्च व्यवायं पुरुषो व्रजेत् । ११५।।
चतुर्दश्यष्टमी चैव तथामा चाथ पूर्णिमा ।
पर्वाण्येतानि राजेन्द्र रविसंक्रान्तिरेव च ।।११६।।
तैलस्त्रीमाँसम्भोगी सर्वेष्वेतेषु वै पुमान् ।
विण्मूत्रभोजन नाम प्रयाति नरकंमृतः ।।११७।।
अशेषपर्वस्वेतेषु तस्मात्संयमिभिर्बुधैः ।
भाव्यं सच्छास्त्रदेवेज्याध्यानजप्यपरैर्नरैः ।।११८।।

हे राजन् ! ऋतुकाल को प्राप्त हुई अपनी ही भार्या से समागम करे । पुलिंग नक्षत्र में युग्म रात्रियों में बहुत रात गये तथा श्रेष्ठ समय देखकर ही नारी से संगति करे ।१११। अप्रसन्न मन वाली रोगिणी,

रजस्वला, अभिलाषा-हीन क्रोधमयी, दु:खिनी या गर्भवती के साथ संगति उचित नहीं है ।११३। जो सरल स्वभाव की न हो, अभिलाषा-हीन या दूसरे पुरुष की कामना वाली हो, भूख से व्याकुल या अधिक भोजन किये हुए हो ऐसी पत्नी अथवा कोई स्त्री गमन योग्य नहीं हैं । यदि अपने में भी इन दोषों की स्थिति हो तो उस दशा में संगति नहीं करनी चाहिये ।११४। स्नान करके पुष्पमाल तथा गन्ध लेपनादि से युक्त होकर काम और अनुरागके सहित स्त्री के पास जाय और अति भोजन करके अथवा भूखा रहने की अवस्था में संगति न करे ।११५। हे नृपेन्द्र ! चौदस, अष्टमी अमावस, पूर्णिमा तथा सूर्य की संक्रान्ति-यह सब पर्व दिवस हैं ।११६। इनमें तैल-मर्दन और नारी संयोग मृत्यु के अनन्तर मल-मूत्र युक्त नरक की प्राप्ति कराने वाला है ।११७। विद्वान पुरुषों को इन सभी पर्व-दिनों में संयम पूर्वक सत्-शास्त्रों का अध्ययन, देववन्दना, यज्ञानुष्ठान, जप और ध्यानादि कार्य करने चाहिये ।११८।

नान्ययोनावयोनौ वा नोपयुक्तौषधस्तथा ।
द्विजदेवगुरूणां च व्यवायी नाश्रमे भवेत् ।।११९।।
चैत्यचत्वरतीर्थेषु नैव गोष्ठे चतुष्पथे ।
नैव श्मशानोपवने सलिलेषु महीपते ।।१२०।।
प्रोक्तपर्वस्वशेषेषु नैव भूपाल सन्ध्ययोः ।
गच्छेद्व्यवायं मतिमान्न मूत्रोच्चारपीडितः ।।१२१।।
पर्वस्वभिगमोऽधन्यो दिवा पापप्रदो नृप ।
भुवि रोगावहो नृणामप्रशस्तो जलाशये ।।१२२।।
परदारान्न गच्छेच्च मनसापि कथञ्चन ।
किमु वाचास्थिबन्धोऽपि नास्तितेषू व्यवायिनाम् ।।१२३।।
मृतो नरकमभ्येति हीयतेऽत्रापि चायुषः ।
परदाररतिः पुंसामिह चामुत्र भीतिदा ।।१२४।।
इति मत्वा स्वदारेषु ऋतुमत्सु बुधो व्रजेत् ।
यथोक्तदोषहीनेषु सकामेष्वनृतावपि ।।१२५।।

गौ, बकरी आदि भिन्न योनि और अयोनि से समागम न करे ।

औषधि प्रयोग द्वारा भी यह कार्य वर्जित है, तथा ब्राह्मण, देवता या गुरु के आश्रम में भी संगति करने का निषेध है ।११९। चैत्य, वृक्ष के नीचे, आँगन, तीर्थ, पशुशाला, चौराहा, श्मशान, उपवन और जल भी नारी संग के लिये निषिद्ध कहे हैं ।१२०। पहिले कहे हुए सभी पर्व-दिवसों में, प्रातः अथवा सायं समय या मल-मूत्र का वेग होने की स्थिति में भी मैथुन कर्म वर्जित है ।१२१। हे राजन् ! पर्व दिनों का नारी-संग धन को नष्ट करने वाला है, दिन का मैथुन पाप-फल का देने वाला है, पृथिवी पर मैथुन-कर्म रोग-प्रद है तथा जल में किया गया प्रसंग अमङ्गल जनक है ।११२। पर-नारी से तो वाणी या मन से भी संग न करे, क्योंकि ऐसा मैथुन अस्थि-बन्धन-विहीन अर्थात् अस्थिहीन शरीर-कीटादि की योनि प्राप्त कराने वाला होता है ।१२३। परनारी में आसक्ति इहलोक और पर-लोक दोनों स्थानों पर भयावह होती है । इहलोक में आयु ह्रास और परलोक में नरक की प्राप्ति होती है ।१२४। ऐसा समझ कर मतिमान पुरुष अपनी ही स्त्री से ऋतुकाल में संग करे और यदि किसी समय विशेष मन हो तो बिना ऋतुकाल के भी स्वनारी-संयोग में प्रवृत्त हो ।१२५।

—:※:—

बारहवाँ अध्याय

देवगोब्राह्मणान्सिद्धान्वृद्धाचार्यास्तथार्चयेत् ।
द्विकालं च नमेत्सन्ध्यामग्नीनुपचरेत्तथा ॥ १ ॥
सदानुपहते वस्त्रे प्रशस्ताश्च महौषधीः ।
गारुडानि च रत्नानि बिभृयात्प्रयतो नरः ॥ २ ॥
प्रस्निग्धामलकेशश्च सुगन्धश्चारुवेषधृक् ।
सितास्सुमनसो हृद्या बिभृयाच्च नरस्सदा ॥ ३ ॥
किञ्चित्परस्व न हरेन्नाल्पमप्यप्रियं वदेत् ।
प्रियं च नानृतं ब्रूयान्नान्यदोषानुदीरयेत् ॥ ४ ॥
नान्यस्त्रियं तथा वैरं रोचयेत्पुरुषर्षभ ।
न दुष्टं यानमारोहेत्कूलच्छायां न संश्रयेत् ॥ ५ ॥

विद्विष्टपतितोन्मत्तबहुवैरादिकीटकैः ।
बन्धकी बन्धकीभर्ता क्षुद्रानृतकथैस्सह ॥६॥
तथातिव्ययशीलैश्च परिवादरतैश्शठैः ।
बुधो मैत्रीं न कुर्वीत नैकः पन्थानमाश्रयेत् ॥७॥

और्व ने कहा—गृहस्थ मनुष्य प्रतिदिन देवता, गौ, ब्राह्मण, सिद्धगण, गुरुजन और आचार्य का पूजन करे तथा दोनों समय सन्ध्योपासन और अग्निहोत्रादि करे ।१। संयम पूर्वक रहे, छिद्रहीन दो वस्त्र, श्रेष्ठ औषधियाँ तथा गारुड रत्न को धारण करे ।२। अपने बालों को स्वच्छ और चिकने रखे, सुगन्धमय वेशभूषा और मनोहर श्वेत-पुष्पों को धारण करे ।३। किसी के किंचित् मात्र धन का भी अपहरण या स्वल्प रूप में भी अप्रिय भाषण न करे । मिथ्या वचन प्रिय हो तो भी न बोले और परदोषों को किसी से न कहे ।४। परनारी में प्रीति न करे, किसी के साथ बैर करने में रुचि न रखे, निन्दित सवारी में न बैठे और नदी तट की छाया का कभी आश्रय न ले ।५। बुद्धिमान पुरुष को उचित है कि वह लोकनिंदित, पतित, उन्मत्त, बहुतों के बैरी या दूसरों को पीड़ित करने वाले पुरुषों से तथा कुलटा, कुलटा के पति मिथ्याभाषी अत्यन्त व्यय करने वाले, परनिन्दा में रुचि रखने वाले और दुष्टों के साथ कभी मित्रता न करे । निर्जन मार्ग में कभी अकेला न चले ।६—७।

नावगाहेज्जलौघस्य वेगमग्रे नरेश्वर ।
प्रदीप्तं वेश्म न विशेन्नारोहेच्छिखरं तरोः ॥८॥
न कुर्याद्दन्तसङ्घर्षं कुष्णीयाच्च न नासिकाम् ।
नासंवृतमुखो जृम्भेच्छ्वासकासौ विसर्जयेत् ॥९॥
नोच्चैर्हसेत्सशब्दं च न मुञ्चेत्पवनं बुधः ।
नखान्न खादयेच्छिन्द्यान्न तृणं न महीं लिखेत् ॥१०॥
न श्मश्रुभक्षयेल्लोष्टं न मृद्नीयाद्विचक्षणः ।
ज्योतीष्यमेध्यशस्तानि नाभिवीक्षेत च प्रभो ॥११॥
नग्नां परस्त्रियं चैव सूर्यं चास्तमयोदये ।
न हुङ्कुर्याच्छवं गन्धं शवगन्धो हि सोमजः ॥१२॥

चतुष्पथं चैत्यतरूं श्मशानोपवनानि च ।
दुष्टस्त्रीसन्निकर्षं च वर्जयेन्निशि सर्वदा ॥१३॥
पूज्यदेवद्विजज्योतिश्छायां नातिक्रमेद्बुधः ।
नेकश्शून्याटवीं गच्छेत्तथा शून्यगृहे वसेत् ॥१४॥

हे नरेश्वर ! जल प्रवाह के वेग के सामने से कभी स्नान न करे, जलते हुए घर में कभी न घुसे तथा वृक्ष के शिखर पर भी न चढ़े ।८। दाँतों का आपस में घर्षण न करे, नासिका को न कुरेदे । बन्द मुँह जमुहाई लेना, खांसना या श्वाँस छोड़ना वर्जित है ।९। जोर से न हँसे अधोवायु का शब्द सहित त्याग न करे, नखों को न चबावे, तिनका न तोड़े तथा भूमि पर न लिखे ।१०। मूँछ दाढ़ी के बालों को भी न चबावे, दो ढेलों को परस्पर में न घिसे, तथा निन्दित और अशुद्ध नक्षत्रों का दर्शन न करे ।११। नग्नावस्था वाली परनारी को न देखे, उदय या अस्त होते हुए सूर्य के दर्शन न करे, शव या शव की गन्ध से घृणा न करे, क्योंकि शव-गन्ध चन्द्रमा का अंश है ।१२। चौराहा, चैत्यवृक्ष, श्मशान, उपवन तथा दुष्ट स्त्री की निकटता-इन सबको रात्रिकाल में त्याग दे ।१३। अपने पूजनीय देवता, ब्राह्मण और ज्योतियों की छाया को कभी न लाँघे तथा सूने जङ्गल या सूने घर में भी अकेला न रहे ।१४।

केशास्थिकण्टकामेध्यबलिभस्मतुषांस्तथा ।
स्नानार्द्रं धरणीं चैव दूरतः परिवर्जयेत् ॥१५॥
नानार्थिनाश्रयेत्कांश्चिन्न जिह्मं रोचयेद् बुधः ।
उपसर्पेन्न वै व्यालं चिरं तिष्ठेन्न वोत्थितः ॥१६॥
अतीव जागरस्वप्ने तद्वास्नानासने बुधः ।
न सेवेत तथा शय्यां व्यायामं च नरेश्वर ॥१७॥
दंष्ट्रिणश्शृङ्गिणश्चैव प्राज्ञो दूरेण वर्जयेत् ।
अवश्यायं च राजेन्द्र पुरोवातातपौ तथा ॥१८॥
न स्नायान्न स्वपेन्नग्नो न चैवोपस्पृशेद् बुधः
मुक्तकेशश्च नाचाद्मेदे वाद्याचं च वर्जयेत् ॥१९॥

होमदेवार्चनाद्यासु क्रियास्वाचमने तथा ।
नैकवस्त्रः प्रवर्तेत द्विजवाचनिके जपे ॥२०॥
नासमञ्जसशीलैस्तु सहासीत कथञ्चन ।
सद्वृत्तसन्निकर्षो हि क्षणार्द्धमपि शस्यते ॥२१॥

केश, अस्थि, काँटे, अशुद्ध वस्तु, बलि, भस्म, तुष और स्नान से गीली हुई भूमि को दूर से ही त्याग दे ।१५। अनार्य पुरुष का संग और कुटिल मनुष्य में आसक्ति न करे, सर्प के समीप में न जाय और नींद खुलने पर देर तक न लेटे ।१६। जागने, सोने, स्नान करने, बैठने, शय्या पर लेटने और व्यायाम करने में अधिक देर न लगावे ।१७। दाँत और सींग वाले पशुओं को, ओस को, सामने की वायु को सर्वथा छोड़ दे ।१८ नङ्गा होकर स्नान, शयन और आचमन न करे और बालों को खोल कर आचमन या देव-पूजन ही करे ।१९। हवन देव-पूजन, आचमन, पुण्याहवाचन और जप में एक वस्त्र धारण पूर्वक ही प्रवृत्त न हो ।२०। संशय हृदय पुरुषों का कभी साथ न करे । सदाचारी पुरुषों का सदा साथ करे, क्योंकि ऐसे मनुष्यों के साथ तो आधे क्षण रहना भी प्रशंसनीय है ।२१।

विरोधं नोत्तमैर्गच्छेन्नाधमैश्च सदाबुधः ।
विवाहश्च विवदश्च तुल्यशीलैर्नृपेष्यते ॥२२॥
नारभेत कलिं प्राज्ञः शुष्कवैरं च वर्जयेत ।
अत्यल्पहानिस्सोढव्या वैरेणार्थागमं त्जेत् ॥२३॥
स्नातो नाङ्गानि सम्भार्जेत्स्नानशाट्या न पाणि ।
न च निधूनयेत्केशान्नाचामेच्चैव चोत्थितः ॥२४॥
पादेन नाक्रमेत्पादं न पूज्याभिमुखं नयेत् ।
नोच्चासनं गुरोरग्रे भजेताविनयान्वितः ॥२५॥
अपसव्यं न गच्छेच्च देवागारचतुष्पथान् ।
माङ्गल्यपूज्यांस्च तथा विरीतान्न दक्षिणम् ॥२६॥
सोमार्काग्न्यम्बु वायूनां पूज्यानां च न सम्मुखम् ।
कुर्यान्निष्ठीवविण्मूत्रस मुत्सर्गं च पण्डितः ॥२७॥

तिष्ठन्न मूत्रयेत्तद्वत्पथिष्वमि न मूत्रयेत् ।
श्लेष्मविण्मुत्ररक्तानि सर्वदव न ङ्घरेत् ।।२८।।

श्रेष्ठ अथवा नीच पुरुषों से कभी विरोध न करे, क्योंकि विवाद और विवाह यह दोनों ही कार्य समान पुरुषों से करने उचित है ।२२। कलह की वृद्धि न करे, व्यर्थ का वैर हो तो उसे भी छोड़ दे यदि थोड़ी-सी हानि उठाने पर भी वैर की समाप्ति होती हो तो उसमें चूके नहीं ।२३ स्नान करके स्नान से भीगी हुई धोती या हाथ से देह को न पोंछे, खड़े-खड़े ही बालों को न झाड़े और न आचमन करे ।२४। पैर पर पैर न रखे गुरुजनों के सामने पाँव न पसारे तथा उनके सामने उच्चासन पर कभी न बैठे ।२५। देव मन्दिर, चौराहा, मांगलिक द्रव्य और पूज्य पुरुष इनको बांये रख कर न निकले तथा इनके विपरीतों को दांये ओर रख कर न चले ।२६। चन्द्रमा, सूर्य, जल, वायु और पूज्य व्यक्तियों के समक्ष न थूके और न मल-मूत्र विसर्जन करे ।२७। मार्ग में या खड़े होकर मूत्र-त्याग न करे और कफ, मल, मूत्र, तथा रुधिर को न लांघे ।२८।

श्लेष्मशिङ्घाणकोत्सर्गो नान्नकाले प्रशस्यते ।
बलिमङ्गलजप्यादौ न होमे न महाजने ।।२९।।
योषितो नावमन्येत न चासां विश्वसेद् बुधः ।
न चैवेर्ष्या भवेत्तासु न धिक्कुर्यात्कदाचन ।।३०।।
मंगल्यपुष्परत्नाज्यपूज्याननभिवाद्य च ।
न निष्क्रमेद् गृहात्प्राज्ञस्सदाचारपरो नरः । ३१।।
चतुष्पथान्नमस्कुर्यात्काले होमपरो भवेत् ।
दीनानभ्युद्धरेत्साधूनुपासीत बहुश्रुतान् ।।३२।।
देवर्षिपूजकस्सम्यक्पितृपिण्डोदकप्रदः ।
सत्कर्ता चातिथीनां यः स लोकानुत्तमान्व्रजेत् ।।३३।।
हितं मितं प्रियं काले वश्यात्मा योऽभिभाषते ।
स याति लोकनाह्लादहेतुभूतान्नृपाक्षयान् ।।३४।।
धीमान्ह्रीमान्क्षमायुक्तो ह्यास्तिको विनयान्वितः ।
विद्याभिजनवृद्धानां याति लोकाननुत्तमान् ।।३५।।

भोजन, देव-पूजन, मांगलिक कार्य और जप-होमादि के समय या श्रेष्ठ पुरुष के समक्ष थूकना छींकना आदि कर्म न करे।२९। स्त्रियों का अपमान, उनसे ईर्षा, उनका विश्वास न करे और न उन्हें निन्दित ही करे।३०। मांगलिक द्रव्य, पुष्प, रत्न, घृत तथा पूज्य पुरुषों का अभिवादन किये बिना बुद्धिमान जन अपने घर से बाहर नहीं जाते।३१। मार्ग चलते में चौराहों को नमस्कार करे, समय होने पर हवन करे, दीनों का उद्धार करे और बहुश्रुत साधुओं की संगति में रहे।३२। जो पुरुष देवताओं और ऋषियों का पूजन, पितरों को पिण्डोदक-दान अतिथि का सत्कार करता है, वह पुण्यलोकों को प्राप्त होता है।३३। जो पुरुष इन्द्रियों को जीतकर समय के अनुसार हितकारी, अल्प और प्रिय वचन कहता है, वह आह्लाद के हेतु भूत अक्षय लोकों में जाता है।३४। जो पुरुष बुद्धिमान, लज्जावान्, क्षमावान्, आस्तिक और विनयशील होता है, वह विद्वान् और कुलीन पुरुषों के योग्य श्रेष्ठ लोकों को प्राप्त होता है।३५।

अकालगर्जितादौ च पर्वस्वाशौचकादिषु।
अनध्यायं बुधः कुर्यादुपरागादिके तथा ॥३६॥
शमं नयति यः क्रुद्धान्सर्वबन्धुरमत्सरो।
भीताश्वासनकृत्साधुस्स्वर्गस्तस्याल्पकं फलम् ॥३७॥
वर्षातपादिषु च्छत्री दण्डी रात्र्यटवीषु च।
शरीरत्राणकामो वै सोपानत्कस्सदा व्रजेत् ॥३८॥
नोर्ध्वं न तिर्यग्दूरं वा न पश्यन्पर्यटेद् बुधः।
युगमात्रं महीपृष्ठं नरो गच्छेद्विलोकयन् ॥३९॥
दोषहेतूनशेषांश्च वश्यात्मा यो निरस्यति।
तस्य धर्मार्थकामानां हानिर्नाल्पापि जायते ॥४०॥
सदाचाररतः प्राज्ञो विद्याविनयशिक्षितः।
पापेऽप्यपापः परुषे ह्यभिधत्ते प्रियाणि यः।
मैत्रीद्रवान्तःकरणस्तस्य मुक्तिः करे स्थिता ॥४१॥
ये कामक्रोधलोभानां वीतरागा न गोचरे।
सदाचारस्थितास्तेषामनुभावैर्धृता मही ॥४२॥

असमय में मेघ-गर्जन कर रहे हों, पर्व-दिन हो अशौचकाल या चन्द्र-सूर्यग्रहण का अवसर हो, ऐसे समय में बुद्धिमान् पुरुष को अध्ययन नहीं करना चाहिये ।३६। जो पुरुष क्रोध में भरे हुए के क्रोध को शान्त करने वाला, डरे हुए को सान्त्वना देने वाला, मत्सरता-रहित, सभी का बन्धु एवं साधु स्वभाव है, उसके लिये तो अत्यल्प फल समझो ।३७। देह-रक्षा की कामना करने वाले पुरुष को वर्षा या धूप के समय छाता धारण करना चाहिये, रात्रिकाल में अथवा वन में जाय तो हाथ में दण्डा लेले और जहाँ कहीं भी जाना हो तो सदा जूते पहिन कर जाय ।३८। ऊपर की ओर, इधर-उधर या दूरस्थ पदार्थों को देखता हुआ न चले, केवल चार हाथ तक पृथिवी को देखते हुए चलना चाहिये ।३९। जो पुरुष इंद्रियों को वश में करके दोष-प्राप्ति के सभी साधनों का त्याग करता है, उसके धर्म, अर्थ और काम का किंचित मात्र भी क्षय नहीं होता ।४०। जो पापी के प्रति भी पापमय व्यवहार न करने वाला पुरुष विद्या, विनय, सदाचार और ज्ञान से सम्पन्न है तथा अपना अन्तःकरण मित्रता से द्रवीभूत रहने के कारण जो कुटिल पुरुषों से भी प्रिय भाषण करता है, मोक्ष सदा उस के हाथ में रहती है ।४१। जो रागादि से विरक्त हुए महापुरुष, काम, क्रोध और लोभादि के वश नें कभी न पढ़कर सदैव सदाचार में तत्पर रहते हैं, उन्हीं के प्रभाव से यह पृथ्वी टिकी हुई है ।४२।

तस्मात्सत्यं वदेत्प्राज्ञा यत्परप्रीतिकारणम् ।
सत्यं यत्परदुःखाय तदा मौनपरो भवेत् ।।४३।।
प्रियमुक्तं हितं नैतदिति मत्वा न तद्वदेत् ।
श्रेयस्तत्र हितं वाच्यं यद्यप्यत्यन्तमप्रियम् ।।४४।।
प्राणिनामुपकाराय यथैवेह परत्र च ।
कर्मणा मनसा वाचा तदेव मतिमान्भजेत् ।।४५।।

इस प्रकार सभी ज्ञानी पुरुषों का कर्त्तव्य है कि वह उसी प्रकार का सत्य बोलें, जिससे दूसरों को सुख मिले । यदि किसी सत्य वाक्य से दूसरों का अहित होता हो तो मौन ही रहना उचित है ।४३। यदि प्रिय वाक्य भी हितकारी न हो उसे भी न कहे, केवल हित करने वाले वाक्य ही

चाहे वह अत्यन्त अप्रिय ही क्यों न हों ।४४। बुद्धिमान् पुरुष को इसलोक और परलोक में जिससे प्राणियों का हित साधन होता दीखे, उसी कार्य को मन, वचन और कर्म से करना चाहिये ।४५।

—:※:—

तेरहवाँ अध्याय

सचैलस्य पितुः स्नानं जाते पुत्रे विधीयते ।
जातकर्म तदा कुर्याच्छ्राद्धमभ्युदये च यत् ॥ १ ॥
युग्मान्देवांश्च पित्र्यांश्चसम्यक्सव्यक्रमाद् द्विजान् ।
पूजयेद्भोजयेच्चैव तन्मना नान्यमानसः ॥ २ ॥
दध्यक्षतैस्सबदरं प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा ।
देवतीर्थेन वै पिण्डान्दद्यात्कायेन वा नृप ॥ ३ ॥
नान्दीमुखः पितृगणास्तेन श्राद्धेन पार्थिव ।
प्रीयते तत्तु कर्त्तव्यं पुरुषस्सर्ववृद्धिषु ॥ ४ ॥
कन्यापुत्रविवाहेषु प्रवेशेषु च वेश्मनः ।
नामकर्मणि बालानां चूडाकर्मादिके तथा ॥ ५ ॥
सीमन्तोन्नयने चैव पुत्रादिमुखदर्शने ।
नान्दीमुखं पितृगणं पूजयेत्प्रयतो गृही ॥ ६ ॥
पितृपूजाक्रमः प्रोक्तो वृद्धावेष सनातनः ।
श्रूयतामवनीपाल प्रेतकर्मक्रियाविधिः ॥ ७ ॥

और्व ने कहा—पुत्र का जन्म होने पर पिता वस्त्रों के सहित स्नान करे और फिर जात-कर्म संस्कार और आभ्युदायिक श्राद्ध करे ।१। फिर संयमचित होकर देवताओं और पितरों के निमित्त क्रमशः दाँयी और बाँयी ओर दो-दो ब्राह्मणों को बिठाकर उनका पूजन करे और फिर उन्हें भोजन करावे ।२। पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख होकर दही, अक्षत और बदरी-फल से निमित्त पिण्डों को देवतीर्थ या प्रजापति तीर्थ से दे ।३। इस

आभ्युदयिक श्राद्ध के द्वारा नान्दीमुख नामक पितरों की प्रसन्नता प्राप्तकी जाती हैं इसलिए सब प्रकार-अभिवृद्धि के निमित्त इसका अनुष्ठान करना उचित है ।४। पुत्री या पुत्र के विवाह में, नामकरण संस्कार में, चूडाकर्म में, गृह प्रवेश में सीमन्तोन्नयन में और पुत्रादि का मुख देखने के समय गृहस्थ को एकाग्र मन से नान्दीमुख पितरों की पूजा करनी चाहिये ।५-६ हे राजन् ! आभ्युदायिक श्राद्ध में पितर-पूजन का यह सनातन क्रम मैंने तुमसे कहा है, अब प्रेत-क्रिया की विधि कहता हूँ, उसे श्रवण करो ।७।

प्रेतदेहं शुभैः स्नानैस्स्नापितं स्रग्विभूषितम् ।
दग्ध्वा ग्रामद्बहिः स्नात्वा सचैलस्सलिलाशये ॥ ८ ॥
यत्र तत्र स्थितायैतदमुकायेति वादिनः ।
दक्षिणाभिमुखा दद्युर्बान्धवास्सलिलाञ्जलीन् ॥ ९ ॥
प्रविष्टाश्च समं गोभिर्ग्रामं नक्षत्रदर्शने ।
कटकर्म ततः कुर्युर्भूमौ प्रस्तरशायिनः ॥१०॥
दातव्योऽनुदिन पिण्ड प्रेताय भुवि पार्थिव ।
दिवा च भक्तं भोक्तव्यममांसं मनुजर्षभ ॥११॥
दिनानि तानि चेच्छातः कर्तव्यं विप्रभोजनम् ।
प्रेता यान्ति तथा तृप्तिं बन्धुवर्गेण भुञ्जता ॥१२॥
प्रथमेऽन्हि तृतीये च सप्तमे नवमे तथा ।
वस्त्रत्यागबहिस्स्नाने कृत्वा दद्यात्तिलोदकम् ॥१३॥

शव को भले प्रकार स्नान कराने के पश्चात् पुष्प-मालाओं से विभूषित शव को ग्राम से बाहर ले जा कर दाह-संस्कार करना चाहिये । फिर जलाशय में वस्त्र सहित स्नान करके दक्षिण की ओर मुख करके 'यत्र तत्र स्थिता तदमुकाय'-इस वाक्य का उच्चारण करते हुए जलाञ्जलि देनी चाहिये ।८-९। फिर गोधूलि काल में जब तारा मण्डल दिखाई देने लगे, तब ग्राम प्रवेश कर कटकर्म कर घास-फूँस की शय्या पर, भूमि पर ही शयन करे ।१०। मृत पुरुष के निमित्त नित्य प्रति पृथ्वी पर पिण्ड-दान करे और केवल दिन के समय एक वार माँस-रहित भात का भोजन करे ।११। यदि अशौच, काल में ब्राह्मण भोजन करना चाहें तो उन्हें

भोजन करावे, क्योंकि उस समय ब्राह्मण और बन्धुजन के भोजन करने से मृत जीव तृप्त होता।१२। अशौच के प्रथम दिन तृतीय दिन, सातवें और नौवें दिन वस्त्र त्यागकर बहिर्देश में स्नान करने के पश्चात् तिल-जल देना चाहिये।१३।

चतुर्थेऽह्नि च कर्तव्यं तस्यास्थिचयनं नृप ।
तदूर्ध्वमंगसस्पर्शस्सपिण्डानामपाष्यते ॥१४॥
योग्यास्सर्वक्रियाणां तु समानसलिलास्तथा ।
अनुलेपमपुष्पादिभोगादन्यत्र पार्थिव ॥१५॥
शय्यासनोपभोगश्च सपिण्डानामपीष्यते ।
भस्मास्थिचयनादूर्ध्वं संयोगो न तु योषिताम् ॥१६॥
बाले देशान्तरस्थे च पतिते च मुनौ मृते ।
सद्यश्शौचं तथेच्छातो जलाग्न्युद्बन्धनादिषु ॥१७॥
मृतबन्धोर्दशाहानि कुलस्यान्नं न भुज्यते ।
दानं प्रतिग्रहो होम स्वाध्यायश्च निवर्तते ॥१८॥
विप्रस्यैतद् द्वादशाहं राजन्यस्याप्यशौचकम् ।
अर्धमासं तु वैश्यस्य मासं शूद्रस्य शुद्धये ॥१९॥
अयुजो भोजयेत्कामं द्विजानन्ते तता दिने ।
दद्याद्दर्भेषु पिण्डं च प्रेतायोच्छिष्टसन्निधौ ॥२०॥
वार्यायुधप्रतोदास्तु दण्डश्च द्विजभाजनात् ।
स्प्रष्टव्योऽन्तरं वर्णैः शुद्धेरन्ते ततः क्रमात् ॥२१॥

हे राजन्! अशौच के चौथे दिन मृतक की अस्थि संचित करे, उसके बाद अपने सपिण्ड बांधवों का अंग स्पर्श करे।१४। उस समय से सपिण्ड पुरुष चन्दन और पुष्प धारण आदि क्रिया तो नहीं कर सकते, परन्तु अन्य सब कर्म कर सकते हैं।१५। भस्म और अस्थि-संचयन के पश्चात् सपिण्ड जनों को शय्या और आसन के उपयोग की छूट है, परन्तु स्त्री-संसर्ग वर्जित है।१६। बालक, दूसरे देश में स्थित, पतित और तपस्वी की मृत्यु होने पर या जल में डूब कर, जल कर या फांसी आदि

लगाकर आत्मघात करने पर अशौच शीघ्र ही दूर हो जाता है ।१७। जिस कुटुम्ब में मृत्यु हुई हो, उसका अन्न दस दिन तक भोजन न करे और अशौच काल में, दान, परिग्रह, हवन, स्वाध्याय आदि भी न करे ।१८। यह दस दिन अशौच ब्राह्मण का कहा है, क्षत्रिय का अशौच बारह दिन का और वैश्य का पन्द्रह दिन का होता है तथा शूद्र की अशौच से निवृत्ति एक मास में होती है ।१९। अशौच की समाप्ति पर अयुग्म, अर्थात् ऊना (नौ, ग्यारह, तेरह) आदि संख्यक ब्राह्मणों को भोजन करावे उनकी जूठन के पास ही प्रेत की तृप्ति के लिये कुश के आसन पर पिण्ड दे ।२०। शुद्धि हो जाने पर तथा ब्राह्मण भोजन होने के पश्चात् ब्राह्मणादि चारों वर्ण को पहिले जल का, फिर शस्त्र का, फिर कोड़ा का और फिर सबके अन्त में लाठी का स्पर्श करना चाहिये ।

ततस्स्ववर्णधर्मा ये विप्रादीनामुदाहृताः ।
तान्कुर्वीत पुमाञ्जीवेन्निजधर्मार्जनैस्तथा ।।२२।।
मृताहनि च कर्तव्यमेकोद्दिष्टमतःपरम् ।
आह्वानादिक्रियादैवनियोगरहितं हि तत् ।।२३।।
एकोऽर्घ्यस्तत्र दातव्यस्तथैवैकपवित्रकम् ।
प्रेताय पिण्डो दातव्यो भुक्तवत्सु द्विजातिषु ।।२४।।
प्रश्नश्च तत्राभिरतिर्यजमानैर्द्विजन्मनाम् ।
अक्षय्यममुकस्येति वक्तव्यं विरतौ तथा ।।२५।
एकोद्दिष्टमयो धर्म इत्थमावत्सरात्स्मृतः ।
सपिण्डीकरणं तस्मिन्काले राजेन्द्र तच्छृणु ।।२६।।

फिर ब्राह्मणादि के जो-जो वर्ण धर्म कहे हैं, उन्हीं का आचरण करते हुए आजीविका का उपार्जन करे ।२२। इसके पश्चात् प्रतिमास मृतक की मृत्यु तिथि के दिन एकोद्दिष्ट श्राद्ध करे, जो कि आवाहनादि क्रिया और विश्वेदेव सम्बन्धी कर्म से रहित हो ।२३। उस समय एक अर्घ्य और एक पवित्रक दे । यदि बहुत से ब्राह्मण भोजन करें तो भी मृतक के लिये एक ही पिण्ड दे ।२४। फिर यजमान द्वारा पूछे जाने पर ब्राह्मण 'अभिरताः स्म' कहें और पिण्ड दान की समाप्ति पर 'अमुकस्य अक्षय्यम'

इत्यादि वाक्य का उच्चारण करें ।२५। इस प्रकार यह एकोद्दिष्ट कर्म एक वर्ष तक करना चाहिये । वर्ष के समाप्त होने पर सपिण्डीकरण (वर्षी) करे, उसका विधान सुनो ।२६।

एकोद्दिष्ठविधानेन कार्यं तदपि पार्थिव ।
संवत्सरेऽथ षष्ठे वा मासे वा द्वादशेऽह्नि तत् ॥२७॥
तिलगन्धोदकैर्युक्तं तत्र पात्रचतुष्टयम् ।
पात्तं प्रतस्य तत्रैकं पैत्रं पात्रत्रयं तथा ॥२८॥
सेचयेत्पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं ततस्त्रिषु ।
ततः पितृत्वमापन्ने तस्मिन्प्रेते महीपते ॥२९॥
श्राद्धधर्मैरशेषैस्तु तत्पूर्वानर्चयेत्पितॄन् ।
पुत्रः पौत्रः प्रपौत्री वा भ्राता वा भ्रातृसन्ततिः ॥३०॥
सपिण्डसन्ततिर्वापि क्रियार्हो नृप जायते ।
तेषामभावे सर्वेषां समानोदकसन्ततिः ॥३१॥
मातृपक्षसपिण्डेन सम्बद्धा ये जलेन वा ।
कुलद्वयेऽपि चोच्छिन्ने स्त्रीभिः कार्याः क्रिया नृप ॥३२॥
सङ्घातान्तर्गतैर्वापि कार्याः प्रेतस्य च क्रियाः ।
उत्सन्नबन्धुरिक्थाद्वा कारयेदवनीपतिः ॥३३॥

यह सपिण्डीकरण कर्म भी एकोद्दिष्ट श्राद्ध की विधि से एक वर्ष, छः मास अथवा बारह दिन के पश्चात् ही किया जा सकता है ।२७। इसमें तिल, गन्ध और जल सहित चार पात्र रखने चाहिये । इनमें से एक पात्र मृतक व्यक्ति का तथा तीन पात्र पितरों के होते हैं । फिर मृतक व्यक्ति के पात्र में स्थिति जलादि से पितरों के पात्रों को सींचे । इस प्रकार मृत व्यक्ति को पितृत्व की प्राप्ति हो जाय. तब सभी श्राद्ध के द्वारा प्रथम मृत व्यक्ति का और फिर पितरों का पूजन करे । अपने सपिण्ड में उत्पन्न पुरुष-पुत्र, प्रपौत्र, भ्राता, भतीजा आदि ही श्राद्धादि कर्म करने का अधिकारी होता है । यदि इनमें से कोई न हो तो समानोदक (सगोत्र) की सन्तान या मातृ-पक्ष के सपिण्ड या समानोदक इस कर्म को कर सकता है । यदि मातृकुल या पितृकुल दोनों में से कोई भी न हो तो,

स्त्री ही इस क्रिया को कर सकती है।२९-३२। स्त्री के अभाव में मृतक का कोई साथी करे। यदि उसका भी अभाव हो तो राजा को ही मृतक के द्रव्य से उसका सब प्रेत कर्म करना चाहिये।३३।

पूर्वाः क्रिया मध्यमाश्च तथा चैवोत्तराः क्रियाः।
त्रिप्रकाराः क्रियाः सर्वास्तासाँ भेद शृणुष्व मे ॥३४॥
आदाहवार्यायुधादिस्पर्शाद्यन्तास्तु याः क्रियाः।
ता पूर्वा मध्यसा मासि मास्येकोद्दिष्टसंज्ञिताः ॥३५॥
प्रेते पितृत्वमापन्ने सपिण्डीकरणादानु।
क्रियन्ते याः क्रियाः पित्र्याः प्रोच्यन्ते ता नृपोत्तराः ॥३६॥
पितृमातृसपिण्डैस्तु समानसलिलस्तथा।
सङ्घातान्तर्गतैर्वापि राज्ञा तद्धनहारिणा ॥३७॥
पूर्वाः क्रियाश्च कर्तव्याः पुत्राद्यैरेव चोत्तराः।
दौहित्रैर्वा नृपश्रेष्ठ कार्यास्तत्तनयैस्तथा ॥३८॥
मृताहनि च कर्तव्याः स्त्रीणामप्युत्तराः क्रियाः।
प्रतिसंवत्सरं राजन्नेकोद्दिष्टविधानतः ॥३९॥
तस्मादुत्तरसंज्ञायाः क्रियास्ताः शृणु पार्थिव।
यथा यथा च कर्तव्या विधिना येनचानघ ॥४०॥

प्रेत कर्म के तीन प्रकार हैं—पूर्व कर्म, मध्यम कर्म और उत्तर कर्म। इन सबके लक्षण पृथक-पृथक हैं, उन्हें भी सुनो।३४। दाह संस्कार से जलशस्त्रादि के स्पर्श तक जितने भी संस्कार हैं, वे सब पूर्व कर्म कहे गये हैं तथा प्रतिमास किया जाने वाला एकोद्दिष्ट श्राद्ध मध्यम कर्म है।३५। सपिण्डीकरण के बाद जब मृतक पितृत्व को प्राप्त हो जाता है, तब उसके प्रति किये जाने वाले सब कर्म उत्तर कर्म कहे जाते हैं।३६। माता, पिता सपिण्ड, समानोदक, साथी अथवा उसका धनाधिकारी राजा—यह सब उसके पूर्व कर्म करने के अधिकारी हो सकते हैं, परन्तु उत्तर कर्म पुत्र, दौहित्र या उनकी सन्तान ही कर सकती है।३६-३८। हे राजन्! स्त्रियों का उत्तर कर्म भी प्रतिवर्ष मृत्यु-दिवस पर एकोद्दिष्ट

श्राद्ध विधि से ही अवश्य कर्तव्य है ।३९। इसलिये हे निष्पाप ! वे उत्तर क्रियाएँ जिस-जिस व्यक्ति के द्वारा जिस-जिस विधान से करनी चाहिये, उन्हें भी अब ध्यान से श्रवण करो ।४०।

—:**:—

चौदहवाँ अध्याय

ब्रह्मेन्द्ररुद्रनासत्यसूर्याग्निवसुमारुतान् ।
धिश्वेदेवान्पितृगणान्वयांसि मनुजान्पशून् ॥ १ ॥
सरीसृपानृपिगणान्यच्चान्यद् भूतसंज्ञितम् ।
श्राद्धं श्रद्धान्वित: कुर्वन्प्रीणयत्यखिलं जगत् ॥ २ ॥
मासि मास्यसिते पक्षे पञ्चदश्यां नरेश्वर ।
तथाष्टकासु कुर्वीत काम्यान्कालाञ्छृणुष्व मे ॥ ३ ॥
श्राद्धार्हमागतं द्रव्यं विशिष्ठमथ वा द्विजम् ।
श्राद्धं कुर्वीत विज्ञाय यतीपातेऽयने तथा ॥ ४ ॥
विषुवे चापि सम्प्राप्ते ग्रहणे शशिसूर्ययो: ।
समस्तेष्वेव भूपाल राशिष्वर्के च गच्छति ॥ ५ ॥
नक्षत्रग्रहपीडासु दुष्टस्वप्नावलोकने ।
इच्छाश्राद्धानि कुर्वीत नवसस्यागमे तथा ॥ ६ ॥
अमावास्या यदा मैत्रविशाखास्वातियोगिनी ।
श्राद्धै: पित्रगणस्त्रप्ति तथाप्नोत्यष्टवार्षिकीम् ॥ ७ ॥

और्व ने कहा—श्रद्धा भाव से श्राद्ध कर्म करने वाला मनुष्य ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, अश्विनीकुमार, सूर्य, अग्नि, वसुगण, मरुद्‌गण, विश्वेदेव, पितरगण, पक्षी, मनुष्य, पशु, सरीसृप, ऋषिगण और भूतगण आनि मम्पूर्ण विश्व को प्रसन्न करने में समर्थ होता है ।१-२। हे राजन् ! प्रत्येक महीने की अमावस और अष्टका (हेमन्त और शिशिर ऋतुओं के शुक्ल पक्ष की अष्टमी) पर श्राद्ध करे । अब काम्य श्राद्ध का समय कहता हूँ, उसे सुनो ।३। जब श्राद्ध के योग्य कोई पदार्थ घर में लावे अथवा किसी

विशिष्ठ ब्राह्मण का आगमन हो या उत्तरायण अथवा दक्षिणायन का आरम्भ हो या व्यतीतपात हो तब काम्य श्राद्ध को करे।४। विषुव संक्रान्ति सूर्य-चन्द्रग्रहण, सूर्य का प्रत्येक राशि में प्रवेश होते समय, नक्षत्र या ग्रह के पीड़ित होने पर, दु:स्वप्न देखने पर अथवा घर में नया अन्न आवे तब काम्य-श्राद्ध करना उचित है।५-६। जिस अमावस में अनुराधा, विशाखा या स्वाति नक्षत्र का योग हो, उसमें श्राद्ध करने से पितरों की आठ वर्ष के लिये तृप्ति हो जाती है।७।

अमावास्या यदा पुष्ये रौद्रे चर्क्षे पुनर्वसौ ।
द्वादशाब्दं तथा तृप्तिं प्रयान्ति पितरोऽर्चिताः ॥ ८ ॥
वासवाजैकपादर्क्षे पितॄणां तृप्तिमिच्छताम् ।
वारुणे वाप्यमावास्या देवानामपि दुर्लभा ॥ ९ ॥
नवस्वृक्षेष्वमावास्या यदैतेष्ववनीपते ।
तदा हि तृप्तिदं श्राद्धं पितॄणां शृणु चापरम् ॥१०॥
गीतं सनत्कुमारेण यथैलाय महात्मने ।
पृच्छते पितृभक्ताय प्रश्रमावनताय च ॥११॥
वैशाखमासस्य च या तृतीता नवम्यसौ कार्तिकशुक्लपक्षे ।
नभस्यमासस्य च कृष्णपक्षे त्रयोदशी पञ्चदशी च माघे॥१२॥
एता युगाद्याः कथिताः पुराणेष्वनतपुण्यास्तिथयश्चतस्रः ।
उपप्लवे चन्द्रमसा रवेश्च त्रिष्वष्टकास्वप्ययनद्वये च ॥१३॥
पानीयमप्यत्र तिलैर्विमिश्र दद्यात्पितृभ्यः प्रयतो मनुष्य ।
श्राद्धं कृतं तेन समासहस्रं रहस्यमेतत्पितरो वदन्ति॥१४॥

जिस अमावस में पुष्य, आर्द्रा या पुनर्वसु नक्षत्र का योग हो उसमें पूजित हुए पितर बारह वर्ष तक तृप्त रहते हैं। परन्तु धनिष्ठा, पूर्वभाद्रपदा या शतभिषा नक्षत्र वाली अमावस पितरों को तृप्त करने वालों के लिये अत्यन्त दुर्लभ है।९। जब अमावस इन नौ नक्षत्रों के योग से संपन्न होती है तब जो श्राद्ध किया जाता है वह पितरों के लिये अत्यन्त तृप्ति देने वाला होता है। इन तिथियों के अतिरिक्त भी जो तिथियाँ पितृभक्त इला-पुत्र पुरूरवा के पूछने पर श्री सनत्कुमारजी ने बताई थीं, उनके विषय में भी

सुनी ।१०।-११। श्री सनत्कुमारजी ने कहा-वैशाख शुक्ल पक्ष की तीन कार्तिक शुक्ला नौमी, भादो कृष्ण तेरस और माघ मास की अमावस-यह चार तिथियाँ पुराणों में 'युगाद्या' कही गयी हैं, यह अनन्त पुण्य-फल के देने वाली हैं। चन्द्रग्रहण या सूर्यग्रहण से समय तीन अष्टकाओं में, उत्तरायण के या दक्षिणायन के आरम्भ में जो पुरुष पितरों के निमित्त एकाग्र चित्त से तिलोदक देता है, वह उन्हें एक हजार वर्ष के लिये तृप्त कर देता है-इस परम रहस्य को स्वयं पितरों ने ही कहा है ।१२-१४।

माघेऽसिते पञ्चदशी कदाचिदुपैति योगं यदि वारुणेन ।
ऋक्षेण कालस्स परः पितृणां न ह्यल्पपुण्यैर्नृप लभ्यतेऽसौ ।
काले धनिष्ठा यदि नाम तस्मिन्भवेत्त भूपाल तदा पितृभ्यः ।
दत्तं जलान्नं प्रददाति तृप्तिं वर्षायुतं तत्कुलजैर्मनुष्यैः ॥१६॥
तत्रैव चेद्भाद्रपदा नु पूर्वा काले यथावत्क्रियते पितृभ्यः ।
श्राद्धं परां तृप्तिमुपेत्य तेन युगं सहस्रं पितरस्स्वपन्ति ॥१७॥
गङ्गां शतद्रूं यमुनां विपाशां सरस्वतीं नैमिषगोमतीं वा ।
तत्रावगाह्याचनमादरेण कृत्वा पितॄणां दुरितानि हन्ति ॥१८॥
गायन्ति चैतत्पितरः कदा नु वर्षामघातृप्तिमवाप्य भूयः ।
माघासितान्ते शुभतीर्थतोयैर्यास्याम तृप्तिं तनयादिदत्तैः ॥१६॥
वित्तं च वित्तं च नृणां विशुद्धं शस्तश्च कालः कथितो विधिश्च ।
पात्रं यथोक्तं परमा च भक्तिर्नृणां प्रयच्छन्त्यभिवाञ्छितानि ।२०।

यदि कभी शतभिषा नक्षत्र, माघी अमावस के दिन हो तो उस दिन किया जाने वाला श्राद्ध पितरों की तृप्ति के लिये परमोत्कृष्ट काल वाला कहा है। जो अल्प पुण्य वाले पुरुष हैं, उनको ऐसा सुयोग प्राप्त नहीं होता ।१५। यदि उस माघ की अमावस में घनिष्ठा नक्षत्र का योग हो जाय, तो अपने ही वंशोत्पन्न पुरुष द्वारा दिये गये अन्न-जल से पितर-गण दस हजार वर्ष तक को तृप्त रहते हैं ।१६। यदि उस अमावस के साथ भद्रापद का योग हो जाय तब श्राद्ध करने से पितरों को परम तृप्ति-लाभ होता है और वे एक हजार युग तक सोते रहते हैं ।१७। गंगा

शतद्रू, यमुना, विपाशा, सरस्वती और नैमिषारण्य में स्थित गोमती में स्नान करके पितरों का आदर सहित पूजन करे तो मनुष्य उसके सभी पापों का नाश कर देता है।१८। पितरगण सदा ही गाते रहते हैं कि वर्षाकाल के मघा नक्षत्र में तृप्त होकर फिर माघ की अमावस के दिन अपने वंशजों की पुण्यतीर्थों वाली जलाञ्जलि से हम कब तृप्त होंगे? ।१९। चित्त की शुद्धि, पवित्र धन, प्रशस्तकाल, उपरोक्त विधि, योग्य पात्र और परम भक्ति—यह सभी, मनुष्य को वाँछित फल प्रदान करने वाले हैं।२०।

पितृगीतान्तथैवात्र स्लोकांस्ताञ्छृणु पार्थिव ।
श्रुत्वा तथैव भवता भाव्यं तत्रादृतात्मना ॥२१॥
अपि धन्यः कुले जायादस्माकं मतिमान्नरः ।
अकुर्वन्वित्तशाठ्यं यः पिण्डान्नो निर्वपिष्यति ॥२२॥
रत्नं वस्त्रं महायानं सर्वभोगादिकं वसु ।
विभवे सति विप्रेभ्यो योऽस्मानुद्दिश्य दास्यति ॥२३॥
अन्नेन वा यथाशक्त्या कालेऽस्मिन्भक्तिनम्रधीः ।
भोजयिष्यति विप्राग्र्यांस्तन्मात्रविभवो नरः ॥२४॥
असमर्थोऽन्नदानस्य धान्यमामं स्वशक्तितः ।
प्रदास्यति द्विजाग्र्येभ्यः स्वल्पां वापि दक्षिणाम् ॥२५॥
तत्राप्यसामर्थ्ययुतः कराग्राग्रस्थितांस्थिलान् ।
प्रणम्य द्विजमुख्याय कस्मैचिद्भूप दास्यति ॥२६॥
तिलैस्सप्ताष्टभिर्वापि समवेतं जलाञ्जलिम् ।
भक्तिनम्रस्समुद्दिश्य भुव्यस्माकं प्रदास्यति ॥२७॥
यतः कुतश्चित्सम्प्राप्य गोभ्यो वापि गवाह्निकम् ।
अभावे प्रीणयन्नस्माञ्छ्रद्धायुक्तः प्रदास्यति ॥२८॥
सर्वाभावे वनं गत्वा कक्षमूलप्रदर्शकः ।
सूर्यादिलोकपालानामिदमुच्चैर्वदिष्यति ॥२९॥
न मेऽस्ति वित्तं न धनं च नान्यच्छ्राद्धोपयोग्यस्वपितॄन्नतोऽस्मि ।
तृप्यन्तु भक्त्या पितरो मयैतौ कृतौ भुजौ वर्त्मनि मारुतस्य ॥३०॥
इत्येतत्पितृभिर्गीतं भावाभावप्रयोजनम् ।
यः करोति कृतं तेन श्राद्धं भवति पार्थिव ॥३१॥

हे राजन् ! अब तुम पितरों द्वारा गाये हुए कुछ श्लोकों को सुनो, जिन्हें सुन लेने पर वैसा ही आचरण करना उचित है ।२१। क्या हमारे वंश में कोई ऐसा बुद्धिमान और धन्य पुरुष होगा जो धन-लोलुपता को त्याग कर हमारे निमित्त पिण्ड देगा ।२२। जो धन होने पर हमारे लिये ब्राह्मणों को रत्न, वस्त्र, महायान या सर्वभोग सामिग्री प्रदान करेगा ।२३। या यदि केवल अन्न वस्त्र वाला होने पर श्राद्ध के समय विनम्रता पूर्वक श्रेष्ठ ब्राह्मणों को हमारे निमित्त अन्न का ही भोजन करायेगा ।२४ अथवा अन्न देने में भी समर्थ न होने पर ब्राह्मणों को कच्चा धान्य और स्वल्प दक्षिणा ही दे सकेगा ।२५। कदाचित् ऐसा भी करने योग्य न होगा तो किसी ब्राह्मण श्रेष्ठ को एक मुट्ठी तिल ही प्रदान करेगा ।१६। यदि इसमें भी असमर्थ हो तो हमारे निमित्त भक्ति भाव से झुकते हुए केवल सात-आठ तिलों के सहित जलाञ्जलि ही देगा ।२७। यदि ऐसा भी न कर सके तो कहीं से चारा लाकर श्रद्धा और प्रेम के सहित गौ को भक्षण करायेगा ।२८। यदि इनका मिलना भी सम्भव न हो तो वन में जाकर अपनी बगल को दीखता हुआ सूर्यादि लोकपालों से उच्चस्वर में ऐसा कहेगा कि श्राद्ध-कर्म के योग्य मेरे पास न वित्त है, न धन है, न कोई अन्न सामिग्री ही है, इसलिये मैं अपने पितरों को नमस्कार करता हूँ वे मेरी भक्ति से तृप्त हो जाँय । मैंने अपनी दोनों भुजाएं आकाश की ओर ऊँची कर रखी हैं ।३०। और्व ने कहा-हे पार्थिव ! धन के होने या उसके अभाव में पितरों ने जो बताया है, उसके अनुकूल आचरण करने पर भी विधिवत् श्राद्ध हो ही जाता है ।३१।

पन्द्रहवाँ अध्याय

ब्राह्मणान्भोजयेच्छ्राद्धे यद्गुणाँस्तान्निबोध मे ।
त्रिणाचिकेतस्त्रि मधुस्त्रिसुपर्णःषडङ्गवित् ॥ १ ॥
वेदविच्छ्रोत्रियो योगी तथा वै ज्येष्ठसामगः ।
ऋत्विक्स्वस्रेयदौहित्रजामातृ श्वशुरास्तथा ॥ २ ॥
मातुलोऽथ तपोनिष्ठः पञ्चाग्न्यभिरतस्तथा ।

मातुलोऽथ तपोनिष्ठः पञ्चाग्न्यभिरतस्तथा ।
शिष्यास्सम्बन्धिनश्चैव मातापितृरतश्च यः ॥ ३ ॥
एतान्नियोजयेच्छ्राद्धे पूर्वोक्तान्प्रथमे नृप ।
ब्राह्मणान्पितृतुष्ट्यर्थमनुकल्पेष्वनन्तरान् ॥ ४ ॥
मित्रध्रुक्कुनखो क्लीबश्श्यावदन्तस्तथा द्विजः ।
कन्यादूषयिता वह्निवेदोज्झस्सोमविक्रयी ॥ ५ ॥
अभिशस्तस्तथा स्तेनः पिशुनो ग्रामयाजकः ।
भृतकाध्यापकस्तद्वद्भृतकाध्यापितश्च यः ॥ ६ ॥
परपूर्वापतिश्चैव मातापित्रोस्तथोज्झकः ।
वृषलीसूतिपोष्टा च वृषलीपतिरेव च ॥ ७ ॥
तथा देवलकश्चैव श्राद्धे नार्हति केतनम् ॥ ८ ॥

और्व ने कहा—हे राजन् ! श्राद्ध के समय जैसे-जैसे गुण वाले ब्राह्मणों को भोजन कराना उचित है, उसे कहता हूँ, सुनो । त्रिणाचिकेत, त्रिमधु, त्रिसुपर्ण, षडाङ्गविद, देववेत्ता, श्रोत्रिय, योगी, ज्येष्ठ-सामग, ऋत्विक्, भानजा, दौहित्र, जामातृ, श्वसुर, मामा, तपस्वी, पंचाग्नि-निष्ठ, शिष्य, सम्बन्धी तथा माता-पिता के प्रियजन-इन ब्राह्मणों को श्राद्ध में निमन्त्रित करे । इनमें से पहिले कहे हुओं को पूर्व कर्म में और पीछे कहे हुओं को पितरों की तृप्ति वाले कर्म में नियुक्त कर भोजन करावे ।१-४। मित्रघाती, विकृतनखी, पुंसत्वहीन, मलीन दाँत वाला, कन्यागामी, अग्नि और वेद से हीन सोम-विक्रेता लोकनिन्दित, चोर, पिशुन कर्म वाला, ग्राम पुरोहित, वेतन-भोगी अध्यापक, पुनर्विवाहिता का पति, माता-पिता को त्याग देने वाला, शूद्र की सन्तान का पालक, शूद्रा का पति और देवताओं से जीविका चलाने वाला ब्राह्मण श्राद्ध में बुलाने को अयोग्य है ।५-८।

प्रथमेऽह्नि बुधश्शस्ताञ्छ्रोत्रियादीन्निमन्त्रयेत् ।
कथयेच्च तथैवैषां नियोगान्पितृदैविकान् ॥ ९ ॥
ततः क्रोधव्यवायादीनायासं तैर्द्विजैस्सह ।
यजमानो न कुर्वीत दोषस्तत्र महानयम् ॥१०॥

श्राद्धे नियुक्तो भुक्त्वा वा भोजयित्वा नियुज्य च ।
व्यवायी रेतसो गर्ते मज्जयत्यात्मनः पितृन् ॥११॥
तस्मात्प्रथममत्रोक्तं द्विजाग्र्याणां निमंत्रणम् ।
अभिमन्त्र्य द्विजानेवमागतान्भोजयेद्यतीन् ॥१२॥
पादशौचादिना गेहमागतान्पूजयेद् द्विजान् ।
पवित्रपाणिराचान्तानासनेषूपवेशयेत् ॥१३॥
पितृणामयुजो युग्मान्देवानामिच्छया द्विजान् ।
देवानामेकमेकं वा पितृणां च नियोजयेत् ॥१४॥

श्राद्ध से पहिले दिन ही श्रोत्रिय आदि ब्राह्मणों को निमन्त्रित कर के उन्हें बता दे कि आपको पितृ-श्राद्ध में और आपको विश्वेदेव-श्राद्ध में नियुक्त करना है ।९। श्राद्ध करने वाला पुरुष और वे निमन्त्रित ब्राह्मण भी उस दिन क्रोधादि, नारी-संग या परिश्रम का कोई कार्य न करें, क्योंकि श्राद्ध में इसका अत्यन्त दोष कहा है ।१०। श्राद्ध में निमन्त्रित होकर अथवा भोजन करके या श्राद्ध निमन्त्रण देकर या भोजन कराकर, जो नारी-संग करता है, वह अपने पितरों को ही वीर्य-कुण्डी में डुबाता है ।११। इसलिये श्राद्ध के पहिले दिन यत्न पूर्वक उपरोक्त विशिष्ट गुण सम्पन्न ब्राह्मणों को निमन्त्रण दे और श्राद्ध के दिन यदि कोई अनिमन्त्रित सद्ब्राह्मण घर पर आ जाँय, तो उन्हें भी भोजन करा दे ।१२। पहिले उन ब्राह्मणों के चरण धोवे, फिर हाथ धोकर आचमन करने के बाद उन्हें प्रदान करे ।१३। अपने सामर्थ्य के अनुसार पितरों के लिये अयुग्म (पाँच, सात, नौ आदि) तथा देवताओं के लिये युग्म (दो चार, छः आदि) ब्राह्मण बुलावे अथवा दोनों के लिये एक-एक ब्राह्मण ही नियुक्त करे ।१४।

तथा [मातामहश्राद्धं वैश्वदेवसमन्वितम् ।
कुर्वीत भक्तिसम्पन्नस्तन्त्रं वा वैश्वदैविकम् ॥१५॥
प्राङ् मुखान्भोजयेद्विप्रान्देवानामुभयात्मकान् ।
पितृमातामहानां च भोजयेच्चाप्युदङ्मुखान् ॥१६॥

पृथक्तयोः केचिदाहुः श्राद्धस्य करणं नृप ।
एवत्रैकेन पाकेन वदन्त्यन्ये महर्षयः ॥१७॥
विष्टरार्थं कुशं दत्त्वा सम्पूज्यार्घ्यं विधानतः ।
कुर्यादावाहनं प्राज्ञो देवानां तदनुज्ञया ॥१८॥
यवाम्बुना च देवानां दद्यादर्घ्यं विधानवित् ।
स्रग्गन्धधूपदीपांश्च तेभ्यो दद्याद्यथाविधि ॥१९॥
पितृणामपसव्यं तत्सर्वमेवोपकल्पयेत् ।
अनुज्ञां च ततः प्राप्य दत्त्वा दर्भान्द्विधाकृतान् ॥१०॥
मन्त्रपूर्वं पितृणां तु कुर्याच्चावाहनं बुधः ।
तिलाम्बुना चाप्यसव्यं दद्यादर्घादिक नृप ॥२१॥

इसी प्रकार वैश्यदेव के सहित मातामह (नाना) का श्राद्ध करना चाहिये। अथवा पितृ-पक्ष और मातामह पक्ष दोनों के निमित्त एक श्राद्ध ही कर सकता है।१५। देवपक्ष के ब्राह्मणों को पूर्व की ओर मुख करके बैठावे और पितृ तथा मातामह पक्ष के ब्राह्मणों के उत्तराभिमुख बैठाकर भोजन करावे।१७। हे राजन् ! कोई महर्षि तो पितृ-पक्ष और मातामह पक्ष के श्राद्धों को पृथक्-पृथक् करने का विधान करते हैं और किसी ने एक साथ तथा एक ही पाक में करना ठीक बताया है।१७। पहिले आमन्त्रित ब्राह्मणों के लिये कुश बिछाकर फिर उनका अर्घ्यदानादि से पूजन करे और उनकी अनुमति प्राप्त करके देवताओं का आवाहन करे।१८। फिर श्राद्ध विधि का ज्ञाता पुरुष जौ मिले हुए जल से देवताओं को अर्घ्य दे और फिर धूप, दीप, गन्ध, और पुष्पमालादि समर्पित करे।१ । पितरों के निमित्त किये जाने वाले सब उपचार अवसव्य-भाव (दाँये, कन्धे पर जनेऊ करके) से करने चाहिये। फिर ब्राह्मणों की अनुमति प्राप्त कर दो भागों में विभक्त कुशों का दान कर मन्त्रोच्चारण पूर्वक पितरों का आवाहन करे और अपसव्य रहकर ही तिलोदक से अर्घ्यादि प्रदान करे।२०-२१।

काले तत्रातिथिं प्राप्तमन्नकामं नृपाध्वगम् ।
ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञातः कामं तमपि भोजयेत् ॥२२॥

योगिनो विविधै रूपैर्नराणामुपकारिणः ।
भ्रमन्ति पृथिवीमेतामविज्ञातस्वरूपिणः ॥२३॥
तस्मादभ्यर्चयेत्प्राप्तं श्राद्धकालेऽतिथिं बुधः ।
श्राद्धक्रियाफलं हन्ति नरेन्द्रापूजितोऽतिथिः ॥२४॥
जुहुयाद्व्यञ्जनक्षारवर्जमन्नं ततोऽनले ।
अनुज्ञातो द्विजैस्तैस्तु त्रिकृत्वः पुरुषर्षभ ॥२५॥
अग्नये कव्यवाहाय स्वाहेत्यादौ नृपाहुतिः ।
सोमाय वै पितृमते दातव्या तदनन्तरम् ॥२६॥
वैवस्वताय चैवान्य तृतीया दीयते ततः ।
हुतावशिष्टमल्पान्नं विप्रपात्रेषु निर्वपेत् ॥२७॥

हे राजन् ! यदि उस काल कोई क्षुधार्त मार्ग चलता हुआ व्यक्ति अतिथि रूप से आ पहुँचे तो ब्राह्मणों की अनुमति लेकर उसे भी भोजन कराना चाहिए ।२२। क्योंकि बहुत से अज्ञात योगिगण जन-कल्याण की भावना से विविध रूप से भूतल पर विचरण करते रहते हैं ।१३। इसलिए विद्वान मनुष्य को श्राद्ध काल में अपने घर पर आये हुए अतिथि का अवश्य पूजन करना चाहिए । वैसा न करने से यह विमुख हुआ अतिथि समस्त श्राद्ध क्रिया को विफल कर देता है ।२४। हे राजन् ! फिर उन ब्राह्मणों की आज्ञा से नमक हीन तथा शाक-रहित अन्न से अग्नि में तीन आहुतियाँ प्रदान करे ।२५। उनमें से 'अग्नये कव्यवाहाय स्वाहा' कहकर प्रथम, 'सोमाय पितृमते स्वाहा' कहकर द्वितीय और 'वैवस्वताय स्वाहा' कहकर तीसरी आहुति देनी चाहिए । फिर हुतावशिष्ट अन्न में से थोड़ा-थोड़ा सब ब्राह्मणों के पात्रों में परोसे ।२६ २७।

ततोऽन्नं मृष्टमत्यर्थमभीष्टमतिसंस्कृतम् ।
दत्त्वा जुषध्वमिच्छातो वाच्यमेतदनिष्ठुरम् ॥२८॥
भोक्तव्यं तैश्च तच्चित्तैर्मौनिभिस्सुमुखैः सुखम् ।
अक्रुद्ध्यता चात्वरता देयं तेनापि भक्तितः ॥२९॥
रक्षोघ्नमन्त्रपठनं भूमेरास्तरणं तिलैः ।
कृत्वा ध्येयास्स्वपितरस्त एव द्विजसत्तमाः ॥३०॥

पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।
मम तृप्तिं प्रयान्त्वद्य विप्रदेहेषु संस्थिताः ॥३१॥
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।
मम तृप्तिं प्रयान्त्वद्य होमाप्यायितमूर्तयः ॥३२॥
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।
तृप्तिं प्रयान्तु पिण्डेन मया दत्तेन भूतले ॥३३॥
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।
तृप्तिं प्रयान्तु मेभिक्त्या मयैतत्समुदाहृतम् ॥३४॥
मातामहस्तृप्तिमपैतु तस्य तथा पिता तस्य पिता ततोऽन्यः ।
विश्वे च देवाः परमां प्रयांतु तृप्तिं प्रणश्यतु च यातुधानाः ।३५।
यज्ञेश्वरो हव्यसमस्तकव्यभोक्ताव्ययात्मा हरिरीश्वरोऽत्र ।
तत्सन्निधानादपयांतु सद्यो रक्षांस्यशेषाण्यसुराश्च सर्वे ।३६।

फिर भले प्रकार सिद्ध किये हुए मधुर अन्न को इच्छानुसार सब ब्राह्मणों को परोस कर अत्यन्त मीठी वाणी से भोजन करने को कहे ।२८ ब्राह्मण भी उस भोजन को मन लगाकर मौन धारण पूर्वक सुख से भोजन करें तथा यजमान भी क्रोध और शीघ्रता को त्याग कर भक्ति सहित उन के भोजन करते में परोसता रहे ।२९। फिर रक्षोघ्न मन्त्र का पाठ करके श्राद्ध के स्थान पर तिल छिड़के और उन ब्राह्मणों का पितृ रूप से इस प्रकार ध्यान करे ।३०। इन ब्राह्मणों के देहों में प्रतिष्ठित हुए और मेरे पिता, पितामह और प्रपितामह आदि तृप्ति को प्राप्त हों ।३१। होम के द्वारा मेरे पितामह और प्रपितामह बलवान होते हुए तृप्ति को प्राप्त हो ।३२। पृथ्वी पर मैंने जो पिण्ड दिये हैं, उससे मेरे पिता, पितामह और प्रपितामह तृप्त हों ।३३। मैंने भक्तिभाव से इस समय जो कुछ निवेदन किया है, उसी के द्वारा मेरे पिता, पितामह तृप्त हों ।३४। मेरे नाना, के पिता और उनके भी पिता तथा विश्वे-देवगण परम तृप्ति को प्राप्त हों तथा सभी राक्षस नष्ट हो जाँय ।३५। समस्त हव्य कव्य के भोक्ता यज्ञेश्वर अव्यात्मा श्री हरि यहाँ विराजमान हैं, इसलिये उनकी सन्निधि से सभी राक्षसगण और असुरगण यहाँ से इसी समय पलायन करें ।३६।

तृप्तेष्वेषु विकिरेदन्नं विप्रेषु भूतले ।
दद्यादाचमनार्थाय तेभ्यो वारि सकृत्सकृत् ।३७।
सुतृप्तैस्तैरनुज्ञातस्सर्वेणान्नेन भूतले ।
सतिलेन ततः पिण्डान्सम्यग्दद्यात्समाहितः ।।३८।।
पितृतीर्थेनसतिलेन तथैव सलिलाञ्जलिम् ।
मातामहेभ्यस्तेनैव पिण्डांस्तीर्थेन निर्वपेत् ।।३९।।
दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु पुष्पधूपादिपूजितम् ।
स्वपित्रे प्रथमं पिण्डं दद्यादुच्छिष्टसन्निधौ ।।४०।।
पितामहाय चैवान्यं तत्पित्रे च तथापरम् ।
दर्भमूले लेपभुजः प्रीणयेल्लेपघर्षणैः ।।४१।।
पिण्डैर्मातामहांस्तद्वद्गन्धमाल्यादिसंयुतैः ।
पूजयित्वा द्विजाग्र्याणां दद्याच्चाचमनं ततः ।।४२।।
पितृभ्यः प्रथमं भक्त्या तन्मनस्को नरेश्वर ।
सुस्वधेत्याशिषा युक्तां दद्याच्छक्त्या च दक्षिणाम् ।।४३।।
दत्वा च दक्षिणां तेभ्यो वाचयेद्वैश्वदेविकान् ।
प्रीयन्तामिह ये विश्वेदेवास्तेन इतीरयेत् ।।४४।।
तथेति चोक्ते तैर्विप्रैः प्रार्थनीयास्तथाशिषः ।
पश्चाद्विसर्जयेद्देवान्पूर्वं पित्र्यान्महीपते ।४५।।

फिर जब ब्राह्मण भोजन कर लें तब थोड़ा-सा अन्न लेकर पृथ्वी पर डाले और आचमन के लिये उन्हें और एक बार जल दे।३८। तदनन्तर अच्छी प्रकार से सन्तुष्ट हुए उन ब्राह्मणों की अनुमति से पृथ्वी पर अन्न और तिल के पिण्ड दे।३८। फिर पितृतीर्थ से तिलोदक की जलांजलि दे। नाना आदि के निमित्त भी उसी पित्र तीर्थ से पिण्डदान आदि करना चाहिए।३९। ब्राह्मणों की जूठन के पास ही दक्षिण दिशा की ओर अग्र भाग करके जो कुश बिछाये हों, उन पर प्रथम अपने पिता के निमित्त पुष्प-धूपादि से अर्चित पिण्ड दे।४०। फिर एक पिंड पितामह के निमित्त और पश्चात् एक पिंड प्रपितामह के लिये दान करे। फिर कुश-मूल में लगे अन्न को पोंछ कर लेपभोजी पितरों की तृप्ति करे।४१। इसी

प्रकार गन्ध पुष्पमाल आदि से पूजित पिण्डों से नाना आदि को तृप्त करें और ब्राह्मणों को आचमन करावे।४२। फिर भक्तिभाव पूर्वक खड़े हो कर प्रथम पितृपक्ष के ब्राह्मणों से 'सुस्वधा' कहलाता हुआ आशीर्वाद प्राप्त कर और शक्ति भर दक्षिणा दे।४३। विश्वेदेव पक्ष के ब्राह्मणों के पास जाकर उन्हें दक्षिणा दे और निवेदन करे कि विश्वदेवता प्रसन्न हों।४४। जब वे ब्राह्मण 'ऐसा ही हो' कहें तब उनसे आशीर्वाद मांगे और पितृपक्ष के ब्राह्मणों को पहिले और देवपक्ष के ब्राह्मणों को उनके पश्चात् विदा करे।४५।

मातामहानामप्येवं सह देवैः क्रमः स्मृतः ।
भोजने च स्वशक्त्या च दाने तद्वद्विसर्जने ॥४६॥
आपादशौचनात्पूर्वं कुर्याद्देवद्विजन्मसु ।
विसर्जनं तु प्रथमं पैत्रमातामहेषु वै ॥४७॥
विसर्जयेत्प्रीतिवचस्सम्मान्याभ्यर्थितांसततः ।
निवर्तेताभ्यनुज्ञात आद्वारंताननुव्रजेत् ॥४८॥
ततस्तु वैश्वदेवाख्यं कुर्यान्नित्यक्रियां बुधः ।
भुञ्जाच्चैव समं पूज्यभृत्यबन्धुभिरात्मनः ॥४९॥
एवं श्राद्धं बुधः कुर्यात्पित्र्यं मातामहं तथा ।
श्राद्धैराप्यायिता दद्युस्सर्वान्कामान्पितामहाः ॥५०॥
त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रः कुतपस्तिलाः ।
रजतस्य कथा दानं तथासङ्कीर्तनादिकम् ॥५१॥
वर्ज्यानि कुर्वता श्राद्धं क्रोधोऽध्वगमं त्वरा ।
भोक्तुरप्यत्र राजेन्द्र त्रयमेतन्न शस्यते ॥५२॥
विश्वेदेवास्सपितरस्तथा मातामहा नृप ।
कुलं चाप्यायते पुंसा सर्वं श्राद्धं प्रकुर्वताम् ॥५३॥
सोमाधारः पितृगणो योगाधारश्च चन्द्रमाः ।
श्राद्धे योगिनियोगस्तु तस्माद्भूपाल शस्यते ॥५४॥
सहस्रस्यापि विप्राणां योगी चेत्पुरतः स्थितः ।
सर्वान्भोक्तॄंस्तारयति यजमानं तथा नृप ॥५५॥

विश्वेदेवताओं के सहित नाना आदि के श्राद्ध में भी ब्राह्मण-भोजन, दान, विसर्जनादि का यही क्रम कहा गया है ।४६। पितृपक्ष तथा नानापक्ष-दोनों प्रकार के श्राद्धों में पग प्रक्षालनादि सभी कर्म प्रथम देव-पक्षीय ब्राह्मणों के करे। परन्तु पितृपक्षीय नानापक्षीय ब्राह्मण को पहिले विदा करे ।४७। प्रीतिमय वचनों सहित सम्मान करते हुये उन ब्राह्मणों को बिदा करे तथा उनके पीछे-पीछे द्वार तक जाकर उनकी आज्ञा होने पर घर में लौट आवे ।४८. इसके पश्चात् वैश्वदेव नामक नित्य कर्म करके अपने पूजनीय व्यक्तियों, बन्धुओं और भृत्यगणों के सहित भोजन करे ।४६। इस प्रकार बुद्धिमान पुरुष को पितृ श्राद्ध और मातामह श्राद्ध का अनुष्ठान करना चाहिये । श्राद्ध से तृप्त हुए पित्रगण सभी अभिलाषाओं के पूर्ण करने वाले हैं ।५०। श्राद्ध के समय पुत्री का पुत्र, दिन का आठवाँ मुहूर्त्त, तिल, चाँदी का दान तथा उसकी बात कहना-यह सब पवित्र समझे जाते हैं ।५१। श्राद्ध करने वाले को क्रोध करना, कहीं जाना और श्राद्ध कर्म में उतावलापन करना वर्जित माना गया है और श्राद्ध में भोजन करने वालों को भी उक्त तीनों बातें निषिद्ध हैं ।५२। हे नृप ! श्राद्धकर्त्ता पुरुष से विश्वेदेवगण, पितरगण, नाना और कुटुम्बीजन सभी प्रसन्न रहते हैं ।५३. पितरों का आधार चन्द्रमा का आधार योग है, इसलिये श्राद्ध में योगियों का नियुक्त किया जाना अत्यन्त श्रेष्ठ है ।५४। हे नृप ! श्राद्ध में भोजन करने वाले एक हजार ब्राह्मणों के सामने यदि एक योगी हो, तो वह एक ही योगी यजमान के सहित उन सबका उद्धार करने में समर्थ है ।५५।

—:※:—

सोलहवाँ अध्याय

हविष्यमत्स्यमांसैस्तु शशस्य नकुलस्य च ।
सौकरच्छागलैणेयरौरवैर्गवयेन च ॥ १ ॥
औरभ्रगव्यैश्च तथा मासवृद्धया पितामहाः ।
प्रयान्ति तृप्तिं मांसैस्तु नित्यं वार्ध्रीणसामिषैः ॥ २ ॥

खड्गमाँसमतीवात्र कालशाकं तथा मधु ।
शस्तानि कर्मण्यत्यन्ततृप्तिदानि नरेश्वर ॥ ३ ॥
गयामुपेत्य यः श्राद्धं करोति पृथिवीपते ।
सफलं तस्य तज्जन्म जायते पितृतुष्टिदम् ॥ ४ ॥
प्रशान्तिकास्सनीवाराश्श्यामाका द्विविधास्तथा ।
वन्यौषधीप्रधानास्तु श्राद्धार्हाः पुरुषर्षभ ॥ ५ ॥
यवाः प्रियङ्गवो मुद्गा गोधूमा व्रीहयस्तिलाः ।
निष्पावाः कोविदाराश्च सर्षपाश्चत्र शोभनाः ॥ ६ ॥

और्व ने कहा-हविष्यादि का भोजन करने से पितरों की एक मास तक तृप्ति रहती है। श्राद्ध कर्म में काल शाक और मधु आदि अत्यन्त प्रशस्त तथा अधिकाधिक तृप्ति के देने वाले हैं।१—३।

हे राजन् ! गया में जाकर श्राद्ध करने से मनुष्य का पितरों को तृप्त करने वाला वह जीवन सफल होता है।४। देवधान्य, नीवार तथा सफेद या काले रंग के समा और प्रमुख-प्रमुख वनौषधि श्राद्ध के लिए उपयुक्त मानी गई है।५। जौ, प्रियगु, मूँग, गेहूँ, धान, तिल, मटर, कचनार तथा सरसों को श्राद्ध में श्रेष्ठ माना गया है।६।

अकृताग्रयणं यच्च धान्यजातं नरेश्वर ।
राजमाषानणूंश्चैव मसूरांश्च विसर्जयेत् ॥ ७ ॥
अलाबुं गृञ्जनं चैव पलाण्डुं पिण्डमूलकम् ।
गान्धारककरम्बादिलवणान्यौषराणि च ॥ ८ ॥
आरक्ताश्चैव निर्यासाः प्रत्यक्षलवणानि च ।
वर्ज्यान्येतानि वै श्राद्धेयच्च वाचा न शस्यते ॥ ९ ॥
नक्ताहृतमनुच्छिन्नं तृप्यते न यत्र गौः ।
दुर्गन्धि फेनिलं चाम्बु श्राद्धयोग्यं न पार्थिव ॥१०॥
क्षीरमेकशफानां यदौष्ट्रमाविकमेव च ।
मार्गं च माहिषं चैव वर्जयेच्छ्राद्धकर्मणि ॥११॥

पुण्ढापविद्धचाण्डालपापिपाषण्डिरोगिभिः ।
कृकवाकुश्वनग्नैश्च वानरग्रामसूकरैः ॥१२॥
उदक्यासूतकाशौचिमृतहारैश्च वीक्षिते ।
श्राद्धे सुरा न पितरो भुञ्जते पुरुषर्षभ ॥१३॥

जिससे नवान्न यज्ञ न हुआ हो वह अन्न, बड़े छोटे उरद, मसूर, कासीफल, गाजर, प्याज, शलजम, शालि, धान्य का आटा, ऊसर भूमि में उत्पन्न नमक, हींग आदि वस्तुएँ तथा वे अन्य पदार्थ जिनका शास्त्रों में विधान नहीं है, सब श्राद्ध में वर्जित हैं ।७-९। हे राजन् ! रात्रि काल में लाया हुआ जल, क्षुद्र जलाशय का अथवा जिसमें गौ भी तृप्त न हो सकती हों ऐसे गढ़े का जल या फेन और दुर्गन्धमय जल श्राद्ध में त्याज्य है ।१०। एक खुर वाले पशु का, भेड़, ऊँटनी या मुर्गी का तथा भैंस का दूध भी श्राद्ध में उपयुक्त नहीं है ।११। हे पुरुष श्रेष्ठ ! नपुंसक, समाज-बहिष्कृत, चाण्डाल, पातकी, पाखंडी, रोगी, कुक्कुट, कुत्ता, बन्दर, ग्राम्य शूकर, नग्न पुरुष, रजस्वला स्त्री, जन्म मरण के सूतक या अशौच वाले मनुष्य तथा शव उठाने वाले पुरुष-इनमें से किसी की दृष्टि पड़ जाय तो देवता या पितर कोई भी अपना भाग श्राद्ध में ग्रहण नहीं करते ।१२-१३।

तस्मात्परिश्रिते कुर्याच्छ्राद्धं श्रद्धासमन्वितः ।
उर्व्यां च तिलविक्षेपाद्यातुधानान्निवार्येत् ॥१४॥
नखादिना चोपपन्नं केशकोटादिभिर्नृप ।
न चैवाभिषवैर्मिश्रमन्नं पर्युषित तथा ॥१५॥
श्रद्धासमन्वितैर्दत्तं पितृभ्यो नामगोत्रतः ।
यदाहारास्तु ते जातास्तदाहारत्वमेति तत् ॥१६॥
श्रूयते चापि पितृभिर्गीता गाथा महीपते ।
इक्ष्वाकोर्मनुपुत्रस्य कलोपोपवने पुरा ॥१७॥
अपि नस्ते भविष्यन्ति कुले सन्मार्गशीलिनः ।
गयामुपेत्य ये पिण्डान्दास्यन्त्यस्माकमादरात् ॥१८॥

अपि नस्स कुले जायोद्यो नो दद्यात्त्रयोदशीम् ।
पायसं मधुसर्पिर्भ्यां वेर्षासु च मघासु च ॥१९॥
गौरीं वाप्युद्वहेत्कन्यां नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ।
यजेत वाश्वमेधेन विधिवद्दक्षिणावता ॥२०॥

इसलिये किसी घिरे हुए स्थान में (घर आदि में) श्रद्धा सहित श्राद्ध करना चाहिये। राक्षसों की निवृत्ति के लिये पृथ्वी में तिल छिड़के।१४। जिस अन्न में नख, केश या कीटादि पड़े हों अथवा जो निचोड़ कर निकाले हुए रस से युक्त या बासी हो, वह अन्न श्राद्ध में वर्जित है।१५। श्रद्धापूर्वक तथा नाम-गोत्र का उच्चारण करते हुए दिया जाने वाला अन्न पितरों के योग्य होकर उन्हें प्राप्त होता है।१६। इस विषय में सुना जाता है कि पूर्वकाल में पितरों ने मनुपुत्र राजा इक्ष्वाकु के प्रति कहा था।१७। क्या हमारे वंश में सन्मार्ग पर चलने वाले ऐसे पुरुष होंगे जो गया में जाकर हमारे निमित्त पिण्ड देंगे।१८। क्या हमारे कुल में कोई ऐसा भी होगा जो मघानक्षत्र वाली वर्षाकालीन त्रयोदशी को हमारे निमित्त मधु और घृत से युक्त खीर प्रदान करेगा?।१९। या गौरी कन्या का दान करेगा (अर्थात् दस वर्ष की आयु में ही उसका विवाह कर देगा) नीला साँड़ छोड़ेगा अथवा विधिपूर्वक दक्षिणा वाले अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान करेगा?।२०।

—:※:—

सत्रहवाँ अध्याय

इत्याह भगवानौर्वस्सगराय महात्मने ।
सदाचारं पुरा सम्यङ् मैत्रेय परिपृच्छते ॥ १ ॥
मयाप्येतदशेषेण कथितं भवतो द्विज ।
समुल्लङ्घ्य सदाचारं कश्चिन्नाप्नोति शोभनम् ॥ २ ॥
षण्ढापविद्धप्रमुखा विदिता भगवन्मया ।
उदक्याद्याश्च मे सम्यङ् नग्नमिच्छामि वेदितुम् ॥३॥

को नग्नः किं समाचारो नग्नसंज्ञां नरो लभेत् ।
नग्नस्वरूपमिच्छामि यथावत्कथितं त्वया ।
श्रोतुं धर्मभृतां श्रेष्ठ न ह्यस्त्यविदितं तव ॥ ४ ॥
ऋग्यजुस्सामसंज्ञेयं त्रयी वर्णावृतिर्द्विज ।
एतामुज्झति यो मोहात्स नग्नः पातको द्विज ॥ ५ ॥
त्रयी समस्तवर्णानां द्विज संवरणं यतः ।
नग्नो भवत्युज्झितायामतस्तस्यां न संशयः ॥ ६ ॥
इदं च श्रूयतामन्यद्भीष्माय महात्मने ।
कथयामास धर्मज्ञो वसिष्ठोऽस्मत्पितामहः ॥ ७ ॥

श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेय जी ! भगवान् और्व ने महात्मा सगर के प्रश्न का उत्तर देते हुये गृहस्थ के सदाचार की इस प्रकार व्याख्या की थी ।१। हे द्विज ! मैंने भी इस विषय को तुम्हारे प्रति भले प्रकार कह दिया है । सदाचार उल्लंघन करने वाले किसी भी पुरुष को सद्गति प्राप्त नहीं हो सकती ।२। श्रीमैत्रेयजी ने कहा-हे भगवान् ! नपुंसक, बहिष्कृत तथा रजस्वलादि को तो मैं भले प्रकार समझता हूँ, परन्तु इस समय मैं 'नग्न' के विषय में जानने की इच्छा करता हूँ ।३। नग्न कौन है, कैसे आचरण वाले पुरुष को नग्न कहा है । मैं आपसे नग्न का स्वरूप सुनना चाहता हूँ, क्योंकि आपसे कोई विषय छुपा नहीं है ।४। श्री पराशरजी ने कहा-हे द्विज ! ऋक, साम और यजुः यह वेदत्रयी वर्णों के आचरण रूप हैं । मोहवश इसे त्याग देने वाला पापी पुरुष ही 'नग्न' कहा जाता है ।५। सब वर्णों का आचरण वेदत्रयी ही है, उसका त्याग कर देने पर ही पुरुष 'नग्न' संज्ञक होता है ।६। हमारे पितामह वशिष्ठ जी ने महात्मा भीष्म से इस विषय में जो कहा था, उसे सुनो ।७।

मयापि तस्य गदतश्श्रुतमेतन्महात्मनः ।
नग्नसम्बन्धि मैत्रेय यत्पृष्टोऽहमिह त्वया ॥ ८ ॥
देवासुरमभूद्युद्धं दिव्यमब्दशतं पुरा ।
तस्मिन्पराजिता देवा दैत्यैर्ह्रादिपुरोगमैः ॥ ९ ॥

क्षीरोदस्योत्तरं कूलं गत्वातप्यन्त वै तपः ।
विष्णोराराधनार्थाय जगुश्चेमं स्तवं तदा ॥१०॥
आराधनाय लोकानां विष्णोरीशस्य यां गिरम् ।
वक्ष्यामो भगवानाद्यस्तया विष्णुः प्रसीदतु ॥११॥
यतो भूतान्यशेषाणि प्रसूतानि महात्मनः ।
यस्मिंश्च लयमेष्यन्ति कस्तं स्तोतुमिहेश्वरः ॥१२॥
तथाप्यरातिविध्वस्तवीर्याभयार्थिनः ।
त्वां स्तोष्यामस्तवोक्तीनां याथार्थ्यनवगोचरे ॥१३॥

हे मैत्रेय जी तुमने जो नग्न विषयक प्रश्न किया है, उसी विषय में मैंने भी महात्मा वशिष्ठजी ने भीष्म से जो कुछ कहा था, वह सब सुना था ।८। प्राचीनकाल की बात है—सौ दिव्य वर्षों तक देवताओं और दैत्यों में परस्पर संग्राम हुआ । उसमें ह्लाद-प्रभृति दैत्यों ने देवताओं को हरा दिया इसलिये देवताओं ने क्षीर सागर के उत्तरी तट पर जाकर तप किया और भगवान् श्रीहरि को प्रसन्न करने के लिये इस स्तोत्र को गाया ।१०। देवताओं ने कहा-लोकनायक भगवान् विष्णु की आराधना के हेतु हम जिस वाणी को कहते हैं, उससे वे आदि पुरुष भगवान् हम पर प्रसन्न हों ।११। जिनसे सब भूतों की उत्पत्ति हुई है और वे उन्हीं में लीन हो जायेंगे, ऐसे उन परमात्मा की स्तुति करने की सामर्थ्य किसी में है ? यद्यपि आप के यथार्थ रूप का वाणी से वर्णन नहीं हो सकता, फिर भी हम शत्रुओं द्वारा पराजित एवं पराक्रमहीन होकर विजय और पराक्रम को प्राप्ति की स्तुति करते हैं ।१३।

त्वमुर्वी सलिलं वह्निर्वायुराकाशमेव च ।
समस्तमन्तः करणं प्रधान तत्परः पुमान् ॥१४॥
एकं तवैतद्भूतात्मन्मूर्त्तामूर्तमयं वपुः ।
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं स्थानकालविभेदवत् ॥१५॥
तत्रेश तवयत्पूर्वं त्वन्नाभिकमलोद्भवम् ।
रूपं विश्वोपकाराय तस्मै ब्रह्मात्मने नमः ॥१६॥

शक्रार्करुद्रवस्वश्विमरुत्सोमादिभेदवत्
वयमेकं स्वरूपं ते तस्मै देवात्मने नमः ॥१७॥
दम्भप्रायसम्बोधि तितिक्षादमवर्जितम् ।
यद्रूपं तव गोविन्द तस्मै दैत्यात्मने नमः ॥१८॥
नातिज्ञानवहा यस्मिन्नाड्यः स्तिमिततेजसि ।
शब्दादिलोभि यत्तस्मै तुभ्यं यक्षात्मने नमः ॥१९॥
क्रौर्यमायामयं घोरं यच्च रूपं तवासितम् ।
निशाचरात्मने तस्मै नमस्ते पुरुषोत्तम ॥२०॥
स्वर्गस्थधर्मिसद्धर्मफलोपकरणं तव ।
धर्माख्यं च तथा रूपं नमस्तस्मै जनार्दन ॥२१॥

हे प्रभो ! पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, अन्तःकरण, कल-प्रकृति तथा प्रकृति से परे–यह सब आप ही हैं ।१४। ब्रह्मा से तृण पर्यन्त जीव तथा कालादि भेद वाले इन मूर्त्त और अमूर्त्त पदार्थों से युक्त यह प्रपच आप ही का देह है ।१५। उसमें आपके नाभि-पद्म से जगत् के हितार्थ उत्पन्न हुआ जो आपका प्रथम स्वरूप है, उस ब्रह्मात्मा को नमस्कार है ।१६। इन्द्र, सूर्य, वसुगण, अश्विनीद्वय, मरुद्गण और चन्द्रमा आदि के भेद से उत्पन्न हुए हम भी आपके ही रूप हैं, इसलिये आपके इस देव रूप को नमस्कार है ।१७। हे गोविन्द ! आपकी जो मूर्ति दम्भ और अज्ञान से युक्त तथा तितिक्ष और दम से परे हैं, उस दैत्य रूप को नमस्कार है ।१८। जिस मंद-सत्व रूप में हृदयस्थ नाड़ियाँ ज्ञान का अत्यन्त वहन करने वाली नहीं होतीं तथा जो शब्दादि विषयों का अभिलाषी होता है, आपके उस यक्ष रूप को नमस्कार है ।१९। हे पुरुषोत्तम ! आपका जो तमोमय स्वरूप क्रूरता और माया से सम्पन्न है, उस राक्षस रूप को नमस्कार है ।२०। हे जनार्दन ! आपका जो रूप स्वर्गवासी धार्मिकों के यज्ञादि धर्मों के फल की प्राप्ति कराने वाला है उस धर्म रूप को नमस्कार है ।२१।

हर्षप्रायमसंसर्गि गतिमद्गमनादिषु ।
सिद्धाख्यं तव यद्रूपं तस्मै सिद्धात्मने नमः॥२२॥

अतितिक्षालन क्रूरमुपमोगसहं हरे ।
द्विजह्वं तव यद्रूपं तस्मै नागात्मने नमः ॥२३॥
यवबोधि च यच्छान्तमदोषमपकल्मषम् ।
ऋषिरूपात्मने तस्मै विष्णो रूपाय ते नमः ॥२४॥
भक्षयत्यथ कल्पान्ते भूतानि यदवारितम् ।
त्वद्रूपं पुण्डरीकाक्ष तस्मै कालात्मने नमः ॥२५॥
सम्भक्ष्य सर्वभूतानि देवादीन्यविशेषतः ।
नृत्यत्यन्ते च यद्रूप तस्मै रुद्रात्मने नमः ॥२६॥
प्रवृत्या रजसो यच्च कर्मणां करणात्मकम् ।
जनार्दन नमस्तस्मै त्वद्रूपाय नरात्मने ॥२७॥
अष्ठाविंशद्वधोपेतं यद्रूप तामसं तवं ।
उन्मार्गगामि सर्वात्मस्तस्मै दश्यात्मने नमः ॥२८॥

आपका जो रूप जल, अग्नि आदि गमन स्थानों को प्राप्त होकर भी सदा निर्लेप और प्रसन्न रहता है, आपके उस सिद्ध नामक स्वरूप को नमस्कार है ।२२। आपका जो स्वरूप अक्षमा का आधार, अत्यन्त क्रूर तथा भोग में अत्यन्त समर्थ है, उस दो जीभ वाले नाग को नमस्कार है ।२३। हे विष्णो ! आपका जो रूप ज्ञान युक्त, शान्त, निर्दोष तथा कल्मष रहित है, उस मुनि को नमस्कार है ।२४। आपका जो स्वरूप कल्प के अन्त में सभी भूतों का अनिवार्य रूप से भक्षण कर लेता है, उस काल रूप को नमस्कार है ।२५। प्रलयकाल में देवादि सब प्राणियों को सामान्य रूप से भक्षण करके नृत्य करने वाले आपके रुद्र रूप को नमस्कार है ।२६। आपका जो रूप रजोगुण की प्रवृति के कारण कर्मों का करने वाला है, उस मनुष्य रूप को नमस्कार है ।२७। हे सर्वात्मन ! जो अट्ठाइस वध युक्त तमोमय तथा उन्मार्गगामी रूप हैं, उस पशु रूप को नमस्कार है ।२८।

यज्ञाङ्गभूतं यद्रूपं जगतः स्थितिसाधनम् ।
वृक्षादिशेर्देष्षड्वेदि तस्मै मुख्यात्मने नमः ॥२९॥

तिर्यङ्मनुष्यदेवादि व्योमशब्दादिकं चयत् ।
रूपं तवादि: सर्वस्य तस्मै सर्वात्मने नमः ।३०॥
प्रधानबुद्धयादिमयादशेषाद्यदन्यदस्मात्परमं परात्मन् ।
रूपं तवाद्य यदनन्यतुल्यौ तस्मै नमः कारणकारणाय ।३१॥
शुक्लादिदीर्घादिघनादिहीनमगोचरं यच्च विशेषणानाम् ।
शुद्धातिशुद्धं परमर्षिदृश्यं रूपाय तस्मै भगवन्नताः स्मः।३२
यन्नः शरीरेषु यदन्यदेहेष्वशेषवस्तुष्वजमक्षयं यत् ।
तस्माच्च नान्यद्व्यतिरिक्तमस्ति ब्रह्मस्वरूपाय नताःस्मतस्मै ।
सकलमिदमजस्य यस्य रूपं परमपदात्मवतस्सनातनस्य ।
तमनिधनमशेषबीजभूतं प्रभुममलं प्रणतास्म वासुदेवम्।३४।

जो विश्व की स्थिति का साधन स्वरूप तथा यज्ञ का अङ्गभूत है और जो वृक्ष, लता गुल्म, वीरुध, तृण और गिरि इन छः भेदों वाला है उस मुख्यात्मक रूप को नमस्कार है ।२६। तिर्यक्, मनुष्यक-देवतादि जीव आकाशादि भूत और शब्दादि गुण-इन सभी आदि भूत आप सर्वात्मा को नमस्कार है ।३०। हे परमात्मन् ! प्रधानाधि जो सम्पूर्ण जगत् से परे आपका रूप सबका आदि कारण और अनुपम है आपके उस प्रकृति आदि के कारणों के भी कारण स्वरूप को नमस्कार है ।३१। जो शुक्ल आदि रङ्ग से, दोर्घता आदि परिणाम से और घनता आदि गुणों से रहित होने के कारण सब विशेषणों का अविषय परमर्षियों के लिये दर्शनीय यथा शुद्ध से भी शुद्ध है आपके उस रूप को नमस्कार है ।३२। हमारे या अन्य जीवों के देहों में और सभी पदार्थों में जो वर्तमान है तथा जो अजन्मा और अविनाशी है, उससे पृथक् कोई भी नहीं है उस ब्रह्म स्वरूप को हमारा नमस्कार है ।३३। जिनका आत्मा परमपद ब्रह्म ही है, ऐसे जिन सनातन अजन्मा भगवान् का रूप ही यह सम्पूर्ण प्रपंच है और जो सबके बीज भूत अविनाशी था मल-रहित हैं, उन भगवान वासुदेव को नमस्कार है ।३४।

स्तोत्रस्य चावसाने ते ददृशुः परमेश्वरम् ।
शङ्खचक्रगदापाणिं गरुडस्थं सुरा हरिम् ।।३५॥

तमूचुस्सकला देवाः प्रणिपातपुरस्सरम् ।
प्रसीद नाथ दैत्येभ्यस्त्राहि नश्शरणार्थिनः ॥३६॥
त्रैलोक्ययज्ञभागाश्च दैत्यैर्ह्रादपुरोगमैः ।
हृता नो ब्रह्मणोऽप्याज्ञामुल्लङ्घ्य परमेश्वर ॥३७॥
यद्यप्यशेषभूतस्य वयं ते च तवांशजा ।
तथाप्यविद्याभेदेन भिन्नं पश्यामहे जगत् ॥३८॥
स्ववर्णधर्माभिरता वेदमार्गानुसारिणः ।
न शक्यास्तेऽरयो हन्तुमस्माभिस्तपसावृताः ॥३९॥
तमुपायमशेषात्मन्नस्माकं दातुमर्हसि ।
येन तानसुरान्हन्तुं भवेम भगवन्क्षमाः ॥४०॥
इत्युक्तो भगवांस्तेभ्यो मायामोहं शरीरतः ।
समुत्पाद्य ददौ विष्णुः प्राह चेदं सुरोत्तमान् ॥४१॥
मायामोहोऽयमखिलान्दैत्यांस्तान्मोहयिष्यति ।
ततो वध्या भविष्यन्ति वेदमार्गवहिष्कृताः ॥४२॥
स्थितौ स्थितस्य मे वध्या यावन्तः परिपन्थिनः ।
ब्राह्मणो ह्यधिकारस्य देवदैत्यादिका सुराः ॥४३॥
तद्गच्छत न भीः कार्या मायामोहोऽयमग्रतः ।
गच्छन्नद्योपकाराय भवतां भविता सुराः ॥४४॥
इत्युक्ताः प्रणिपत्यैनं ययुर्देवा यथागतम् ।
मायामोहोऽपि तस्सार्द्धं ययौ यत्र महासुराः ॥४५॥

श्री पराशरजी ने कहा–हे मैत्रेय जी ! स्तुति के पूर्ण होते ही उन देवताओं ने शङ्ख, चक्र, गदाधारी भगवान् श्रीहरि को गरुड़ पर चढ़े हुए अपने सामने देखा ।३५। उन्हें देखते ही सब देवताओं ने उन्हें प्रणाम करके कहा-हे नाथ ! हम पर प्रसन्न होकर दैत्यों से हम शरणागतों को बचाइये ।४६। हे परमेश्वर ! हराद प्रभृति दैत्यों ने ब्रह्माजी की आज्ञा न मान कर हमारे और त्रैलोक्य के यज्ञ भागों का अपहरण किया है ।३७। यद्यपि हम और वे आप ही सर्वभूत के अंश से उत्पन्न हुए हैं, फिर भी हम

अविद्या के वशीभूत होकर इस विश्व को पृथक्-पृथक् देखते हैं।३८। हमारे वैरी भी अपने वर्ण धर्म के पालक, वेद मार्ग पर चलने वाले तथा तपोनिष्ठ हैं, इसलिये हम उनका वध करने में समर्थ नहीं है ३९ इसलिये हे सर्वात्मन् ! हमें कोई ऐसा उपाय बताइये, जिससे कि हम उनको मारने में समर्थ हो सकें।४०। श्री पराशरजी ने कहा-उनकी प्रार्थना सुनकर भगवान् विष्णु ने अपने देह से मोह की उत्पत्ति कर उसे देवताओं को देते हुए कहा।४१। यह माया-मोह उन सभी दैत्यों को मोहित कर देगा तब वे वेद मार्ग को त्याग देंगे, जिससे तुम उनका वध करने में समर्थ होंगे।४२। हे देवताओ ! कोई भी देवता हो या दैत्य, ब्रह्माजी के कार्य से बाधक होने से सृष्टि की रक्षा के कारण मेरे द्वारा मारने योग्य होते हैं।४३। इसलिये हे देवताओ ! तुम अब जाओ। भय का त्याग करो। यह माया-मोह वहाँ जाकर तुम्हारे लिये उपकारी होगा।४४। श्री पराशरजी ने कहा-भगवान् की आज्ञा सुनकर देवतागण उन्हें प्रणाम कर अपने-अपने स्थान को गये और माया-मोह भी असुरों के पास पहुँचा।४४।

—*—

अठारहवाँ अध्याय

तपस्यभिरतान्सोऽथ मायामोहो महासुरान्।
मैत्रेय ददृशे गत्वा नर्मदातीरसंश्रितान्॥ १॥
ततो दिगम्बरो मुण्डो बर्हिपिच्छधरो द्विज।
मायामोहोऽसुरान् श्लक्ष्णमिद वचनमब्रवीत्॥ २॥
हे दैत्यपतयो ब्रूत यदर्थं तप्यते तपः।
ऐहिकं वाथ पारत्र्यं तपसः फलमिच्छथः॥ ३॥
पारत्र्यफललाभाय तपश्चर्या महामते।
अस्माभिरियमारब्धा किं वा तेऽत्र विवक्षितम्॥ ४॥
कुरुध्वं मम वाक्यानि यदि मुक्तमभीप्सथ।
अर्हध्वमेनं धर्मं च मुक्तद्वारमसंवृतम्॥ ५॥

धर्मो विमुक्तेरर्होऽयं नैतस्तादपरो वर: ।
अत्रैव संस्थिता: स्वर्गं विमुक्तं वा गमिष्यथ ॥ ६ ॥

श्री पराशरजी ने कहा-हे मैत्रेयजी ! फिर माया मोह ने वहाँ पहुँच कर देखा कि वे महान् असुर नर्मदा नदी के तीर पर तपस्या में तत्पर हैं ।१। तब उस मयूर पङ्ख धारण करने वाले नग्न एवं मुड़े हुए बाल वाले माया मोह ने उन असुरों से अत्यन्त मीठे वचनों में कहा ।२। माया-मोह ने कहा-हे दैत्यपतियो ! कहो तुम यह तप किस हेतु कर रहे हो तुम किसी लौकिक फल की कामना करते हो अथवा कोई पारलौकिक फल पाना चाहते हो ? ।३। असुरों ने कहा-हे श्रेष्ठ बुद्धि वाले ! पारलौकिक कामना की सिद्धि के लिए ही हमने यह तप आरम्भ किया है । इस विषय में तुम हमसे क्या कहना चाहते हो ? ४। माया-मोह ने कहा—यदि आप मोक्ष की कामना करते हैं तो मैं जो कहता हूँ, वह करो । आप इस मोक्ष के खुले द्वार रूप इस धर्म का पालन करो ।५। यह धर्म की सिद्धि में अत्यन्त उपयोगी है, इससे श्रेष्ठ धर्म कोई नहीं है । इसके अनुष्ठान से आप स्वर्ग अथवा मोक्ष-जो भी चाहोगे वही प्राप्त होगा ।६।

अर्हथ्व धर्ममेतं च सर्व यूयं महाबला: ।
एवंप्रकारैर्बहुभिर्युक्तिदर्शनचर्चितैः ॥ ७ ॥
मायामोहेन दैत्या वेदमार्गादपाकृता: ।
धर्मायैतदधर्माय सदेतन्न सदित्यपि ॥ ८ ॥
विमुक्तये त्विदं नैतद्विमुक्तिं सम्प्रयच्छति ।
परमार्थोऽयमत्यर्थं परमार्थो न चाप्ययम् ॥ ९ ॥
कार्यमेतदकार्यं च नैतदेवं स्फुटं त्विदम् ।
दिग्वाससामयं धर्मो धर्मोऽयं बहुवाससाम् ॥ १० ॥
इत्यनेकान्तवादं च मायामोहेन नैकधा ।
तेन दर्शयता दैत्यास्स्वधर्मं त्याजिता द्विज ॥११॥
अर्हतैतं महाधर्मं मायामोहेन ते यत: ।
प्रोक्तास्तमाश्रिता धर्ममार्हतास्तेन तेऽभवन् ॥१२॥

आप सब महाबली हैं, इसलिए इस धर्म में श्रद्धा करिये श्री परा-शरजी ने कहा-इन अनेक प्रकार उपायों से परिपूर्ण वाक्यों से माया-मोह ने उन दैत्यों को वैदिक मार्ग से हटा दिया। यह धर्ममय है यह अधर्म उपाय है, यह सत् है यह असत् है, यह मोक्षकारक है अथवा यह मोक्ष प्राप्ति में बाधक है, यह परमार्थ है यह परामार्थ के विपरीत हैं यह कर्त्तव्य है यह करने योग्य नहीं है, यह ऐसा है, यह ऐसा नहीं है, यह वस्त्र हीनों का धर्म है तथा यह वस्त्र धारियों का धर्म है।७-१०। इस प्रकार की अनेक उपाय देकर माया-मोह ने उन दैत्यों को उनके धर्म से विमुख कर दिया।११। उस माया-मोह ने दैत्यों से कहा कि आप इसी महाधर्म का आदर करिये, इसलिये वे दैत्य उस धर्म के मानने वाले होने से 'अर्हत' कहे जाने लगे।१२।

त्रयीधर्मसमुत्सर्गं मायामोहेन तेऽसुरः।
कारितास्तन्मया ह्यासस्ततोऽन्ये तत्प्रचोदिताः ॥१३॥
तैरप्यन्ये परे तैश्च तैरप्यन्ये परे च तैः।
अल्पैरहोभिस्सन्त्यक्ता तैर्दैत्यैः प्रायशस्त्रयी ॥१४।
पुनश्च रक्ताम्बरधृङ्मायामोहो जितेंद्रियः।
अन्यानाहासुरान् गत्वा मृद्वल्पमधुराक्षरम् ।१५।
स्वर्गार्थं यदि वो वाञ्छा निर्वाणार्थमथासुराः।
तादलं पशुघातादिदुष्टधर्मैर्निबोधत ॥१६॥
विज्ञानमयमेवैतदशेषमगगच्छत।
बुध्यध्वं मे वचः सम्यग्बुधैरेवमिहोदितम् ॥१७॥
जगदेतदनाधारं भ्रान्तिज्ञानार्थतत्परम्।
रागादिदुष्टमात्यर्थं भ्राम्यते भवसङ्कटे ॥१८॥
एवं बुध्यत बुध्यध्वं बुध्यतैवमितीरयन्।
मायामोहः स दैतेयान्धर्ममायाजयन्निजम् ॥१९॥
नानाप्रकारवचनं स तेषां युक्तियोजितम्।
या तथा त्रयीधर्मं तस्यजुस्ते यथा यथा ॥२०॥

तेऽप्यन्येषां तथैवोचुरन्यैरन्ये तथोदिताः ।
मैत्रेय तत्यजुर्धर्मं वेदस्मृत्युदितं परम् ॥११॥

माया-मोह द्वारा असुरों को त्रयीधर्म से विमुख किया जाने से वे सभी मोह में पड़ गये और फिर उन्होंने अन्य सब दैत्यों को इसी धर्म में प्रवृत्त कर लिया।१३। उन्होंने दूसरों को, दूसरों ने तीसरों को, तीसरों ने फिर अन्यों को इसी प्रकार एक दूसरे को उस धर्म का अवलम्बन कराने लगे। इस प्रकार कुछ काल में ही सभी दैत्य त्रयीधर्म से विमुख हो गये।१४। इसके पश्चात् माया-मोह ने रक्त वस्त्र धारण किये और उन असुरों से कोमल, संक्षिप्त और मीठे शब्दों में कहा।१५। हे असुरगण! यदि तुम स्वर्ग या मोक्ष को प्राप्त करना चाहते हो तो पशु-वधादि खोटे कर्मों को छोड़कर ज्ञान प्राप्त करो।१६। इस सम्पूर्ण विश्व को विज्ञान-मय समझो। मेरे वचनों पर यत्नपूर्वक ध्यान दो। इस विषय में ज्ञानीजन इस जगत् को व्यर्थ बताते हैं। उनका कहना है कि यह विश्व भ्रम से उत्पन्न पदार्थों के विश्वास पर ही टिका हुआ है और रागादि दोषों के कारण दूषित हो गया है। इस भवसागर रूपी संकट में प्राणी भटकता हुआ घूमता है।१७-१८। इस प्रकार जानो, समझो आदि बोधात्मक शब्दों के प्रयोग द्वारा माया-मोह के युक्तिपूर्ण वाक्यों के जाल में फंस कर दैत्यों ने त्रयीधर्म को छोड़ दिया।२०। उन दैत्यों ने दूसरे दैत्यों से और दूसरे दैत्यों दूसरे-दूसरे दैत्यों से यही बात कही। इस प्रकार हे मैत्रेयजी! उन सबसे ही श्रुति-स्मृति-सम्मत अपने परम धर्म का त्याग कर दिया।२१।

अन्यानप्यन्यपाषण्डप्रकारैर्बहुभिर्द्विज ।
दैतेयान्मोहयामास मायामोहोऽतिमोहकृत् ॥२२॥
स्वल्पेनैव हि कालेन मायामोहेन तेऽसुराः ।
मोहितास्तत्यजुस्सर्वां त्रयीमार्गाश्रितां कथाम् ।२३।
केचिद्विनिन्दां वेदानां देवानामपरे द्विज ।
यज्ञकर्मकलापस्य तथान्ये च द्विजस्मनाम ॥२४॥

गैतद्युक्तिसहं वाक्यं हिंसा धर्माय चेष्यते ।
हवींष्यनलदग्धानि फलायेत्यर्भकोदितम् ।२५।।
यज्ञैरनेकैर्देवत्वमवाप्येन्द्रेण भुज्यते ।
शम्यादि यदि चेत्काष्ठं तद्वरं पत्रभुक्पशुः ।।२६।।
निहतस्य पशोर्यज्ञे स्वर्गप्राप्तिर्यदीष्यते ।
स्वपिता यजमानेन किन्नु तस्मान्न हन्यते ।।२७।।
तृप्तये जायते पुंसो भुक्तमन्येन चेत्ततः ।
कुर्याच्छ्राद्धं श्रमायान्नं न वहेयुः प्रवासिनः ।।२८।।
जनश्रद्धेयमित्येतदवगम्य ततोऽत्र वः ।
उपेक्षा श्रेयसे वाक्यं रोचतां यन्मयेरितम् ।।२९।।
न ह्याप्तवादा नभसो निपतन्ति महासुराः ।
युक्तिमद्वचनं ग्राह्यं मयान्यैश्च भवद्विधैः ।।३०।।

हे द्विज श्रेष्ठ ! मोह उत्पन्न करने वाले मायामोह ने अन्यान्य सभी दैत्यों को नाना प्रकार के अनेकों पाखण्डों से मोहित किया ।२२। इस प्रकार कुछ काल में ही मायामोह द्वारा मोहित हुए उन दैत्यों ने त्रयीधर्म की वार्ता का भी त्याग कर दिया ।२३। अब उन दैत्यों में से कोई वेदों की, कोई यज्ञानुष्ठान आदि की तथा कोई ब्राह्मणों की ही निन्दा करने लगे ।२४। उन्होंने परस्पर में कहा-हिंसा में भी धर्म है—यह कथन युक्ति सगत नहीं है और अग्नि में हवि झोंकने से फल की प्राप्ति होगी-यह भी अज्ञानियों की ही बात है २५। अनेकों यज्ञों के द्वारा देवत्व को प्राप्त होकर भी यदि इन्द्र को शमी आदि काष्ठ ही खाना पड़ता है तो उससे पत्रभक्षी पशु ही उत्तम है ।२६। यदि यज्ञ में बलि होने वाले पशु को स्वर्ग मिलता है तो यजमान अपने पिता का बलिदान करके ही उसे स्वर्ग क्यों नहीं प्राप्त करा देता ? २७। यदि किसी और के भोजन करने से कोई तृप्त हो सकता है, तो विदेश जाने के समय भोजन सामिग्री साथ ले जाने का परिश्रम ही क्यों किया जाय ? फिर तो पुत्रगण घर पर श्राद्ध करके ही उसे तृप्त कर दिया करें ।२८। इसलिये इसे केवल अन्ध-श्रद्धा समझकर

इसकी उपेक्षा करना उचित है, तथा श्रेय-सिद्धि के लिये मेरे वचनों में चित्त लगाना चाहिये ।२९। हे असुरो ! आप्त वाक्यों की आकाश से वर्षा नही होती, हम, तुम या अन्यान्य सभी जो यथार्थ हो, उसे ही ग्रहण कर लें ।३०।

मायामोहेन ते दैत्याः प्रकारैर्बहुभिस्तथा ।
व्युत्थापिता यथा नैषां त्रयी कश्चिदरोचयत् ॥३१॥
इत्थमुन्मार्गयातेषु तेषु दैत्येषु तेऽमराः ।
उद्योगं परमं कृत्वा युद्धाय समुपस्थिताः ॥३२॥
ततो देवासुर युद्धं पुनरेवाभवद् द्विज ।
हताश्च तेऽसुरा देवैः सन्मार्गपरिपन्थिनः ॥३३॥
स्वधर्मकवच तेषामभूद्यत्प्रथमं द्विज ।
तेन रक्षाभवत्पूर्वं नेशुर्नष्टे च तत्र ते ॥३४॥
ततो मैत्रेय तन्मार्गवर्तिनो येऽभवञ्जनाः ।
नग्नास्ते तैर्यतस्त्यक्तं त्रयीसंवरण तथा ॥३५॥
ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थस्तथाश्रमी ।
परिव्राड् वा चतुर्थोऽत्र पञ्चमो नोपपद्यते ॥३६॥
यस्तु सन्त्यज्य गार्हस्थ्यं वानप्रस्थी न जायते ।
परिव्राट् चापि मैत्रेय स नग्नः पापकृन्नरः ॥३७॥

श्री पराशरजी ने कहा-ऐसी अनेक युक्तियों से मायामोह ने दैत्यों को स्वधर्म से विचलित किया, जिससे उस त्रयीधर्म में उनकी किंचित भी रुचि न रही ।३१। इस प्रकार जब दैत्यगण पूर्णतया विपरीतमार्गी होगये तब, युद्ध के लिये सब प्रकार से तैयार हुए देवगण युद्ध की इच्छा से उन के पास पहुँचे ।३२। फिर तो देवताओं और असुरों में घोर युद्ध होने लगा । उस युद्ध में सन्मार्ग-भ्रष्ट दैत्यों का भीषण संहार हुआ ।३३। दैत्यों के पास का जो स्वधर्म रूपी कवच उनकी रक्षा किये हुए था, इस बार उसके नष्ट होने से वे दैत्यगण भी नाश को प्राप्त हुए ।३४। हे मैत्रेयजी ! उस समय से मायामोह द्वारा प्रवर्तित मार्ग के अनुयायी ही 'नग्न' कहे जाने लगे, क्योंकि उन्होंने वेदत्रयी रूपी वस्त्र का परित्याग कर दिया था

।३५। ब्रह्मचारी गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी यही चार आश्रम हैं, पाँचवाँ आश्रम कोई नहीं है।३६ हे मैत्रेयजी ! जो पुरुष गृहस्थाश्रम को त्याग कर भी वानप्रस्थ या संन्यास ग्रहण नहीं करता वह पापकर्मी भी 'नग्न' संज्ञक ही है।३७।

नित्यानाँ कर्मणाँ विप्र तस्य हानिरहर्निशम् ।
अकुर्वान्विहितं कर्म शक्तः पतति तद्दिने ।।३८।।
प्रायश्चित्तेन महता शुद्धमाप्नोत्यनापदि ।
पक्षं नित्यक्रियाहानेः कर्त्ता मैत्रेय मानवः ।।३९।।
संवत्सरं क्रियाहानिर्यस्य पुंसोऽभिजायते ।
तस्यावलोकनात्सूर्यो निरीक्ष्यस्साधुभिस्सदा ।४०।
स्पृष्टे स्नानं सचैलस्य शुद्धे हेतुर्महामते ।
पुंसो भवति तस्योक्ता न शुद्धिः पापकर्मणः ।।४१।।
देवर्षिपितृभूतानि यस्य निःश्वस्य वेश्मनि ।
प्रयान्त्यनर्चितान्यत्र लोके तस्मान्न पापकृत् ।।४२।।
सम्भाषणानुप्रश्नादि सहास्याँ चैव कुर्वतः ।
जायते तुल्यता तस्य तेनैव द्विज वत्सरात् ।४३।।
देवादिनिःश्वासहतं शरीरं यस्य वेश्म च ।
न तेन सङ्करं कुर्याद् गृहासनपरिच्छदैः ।।४४।।
अथ भुङ्क्ते गृहे तस्य करोत्यास्यां तथासने ।
शेते चाप्येकशयने स सद्यस्तत्समो भवेत् ।।४५।

हे ब्रह्मन् ! सशक्त होकर भी जो विहित कर्म नहीं करता, वह उसी दिन अपने धर्म से गिर जाता है और एक दिन-रात्रि में ही उसके सब नित्कर्म नष्ट हो जाते हैं।३८। हे मैत्रेयजी ! आपत्तिकाल के अतिरिक्त कभी भी एक पक्ष तक जो नित्यकर्म नहीं करता उसकी शुद्धि महाप्रायश्चित के बिना नहीं हो सकती।३९। एक वर्ष तक नित्य क्रिया न करने वाले पुरुष पर दृष्टि पड़ जाने से जो पाप होता है उसी निवृत्ति के लिये सूर्य भगवान् का दर्शन करे।४०। हे महामते ! ऐसे पुरुष का स्पर्श हो जाने पर शुद्धि के लिये वस्त्र सहित स्नान करना चाहिये। परन्तु उस

पापात्मा की शुद्धि के लिये कोई विधान नहीं है ।४१। जिसके घर से देवता, ऋषि, पितर, भूतादि पूजित न होने के कारण निःश्वास का त्याग करते हुए विमुख चले जाते हैं, उस पुरुष से बढ़कर और कोई पापी संसार में नहीं है ।४१। यदि ऐसे मनुष्य के साथ कोई एक वर्ष तक संभाषण या कुशल प्रसन्न करता हुआ बैठे-उठे तो वह भी उसी के जैसे हो जाता है ।३३। जिस पुरुष का शरीर या घर देवता आदि के निःश्वास से युक्त है, उसके आसन से अपने आसन का और उसके वस्त्र से अपने वस्त्र का स्पर्श न करे। न उसके घर में स्वयं जाय और न उसे आने दे ।४४। तो पुरुष वैसे पुरुष के घर में जाकर भोजन या आसन ग्रहण करता या उसके साथ एक शय्या पर सोता है, वह उसी के समान हो जाता है ।४५।

देवतापितृभूतानि तथानभ्यर्च्य योऽतिथीन् ।
भूङ्क्ते स पातकं भुङ्क्ते निष्कृतिस्तस्य नेष्यते ।।४६।।
ब्राह्मणाद्यास्तु ये वर्णास्स्वधर्मादन्यतोमुखाः ।
यान्ति ते नग्नसंज्ञां तु हीनकर्मस्ववस्थिताः ।।४७।
चतुर्णां यत्र वर्णानां मैत्रेयात्यन्तसङ्करः ।
तत्रास्या साधुवृत्तीनामुपघाताय जायते ।।४८।।
अनभ्यर्च्य ऋषीन्देवान्पितृभूतातिथींस्तथा ।
यो भुङ्क्ते तस्य संल्लापात्पतन्ति नरके नराः ।।४९।।
तस्मादेतान्नरो नग्नांस्त्रयीसन्त्यागदूषितान् ।
सर्वदा वर्जयेत्प्राज्ञ आलापस्पर्शनादिषु ।।५०।
श्रद्धावद्भिः कृतं यत्न द्देवान्पितृपितामहान् ।
न प्रीणयति तच्छ्राद्धं यद्येभिरवलोकितम् ।।५१।।

जो पुरुष देव, पितर, भूत, अतिथि का पूजन किये बिना ही स्वयं भोजन कर लेता है, वह पापमय भोजन करने के कारण शुभ गति का अधिकारी नहीं होता ।४६। जो ब्राह्मणादि वर्ण अपने धर्म का त्याग कर अन्य वर्णों के धर्म में प्रवृत्त होते या नीच वृत्ति का आश्रय लेते हैं, वे 'नग्न' कहे जाते हैं ।४७। हे मैत्रेयजी ! जिस स्थान में चारों वर्णों का

अत्यन्त संकरत्व (मिश्रण) हो, वहाँ निवास करने वाले मनुष्य की साधु वृत्तियाँ भी नष्ट हो जाती हैं।४८। जो पुरुष ऋषि, देवता, पितर, भूत और अतिथि का सत्कार न करके स्वयं भोजन करता है, उससे बातचीत करने वालों को भी नरक की प्राप्ति होती है।४९। इसलिये वेदत्रयी को छोड़ने से दूषित हुए इन नग्न पुरुषों के साथ सम्भाषण और स्पर्शादि का भी त्याग करना चाहिए।५०। इनकी दृष्टि पड़ने मात्र से श्रद्धावान पुरुषों का श्राद्ध सहित किया जाने वाला श्राद्ध देवताओं, पितरों या पितामहों की तृप्ति वाला नहीं होता।५१।

श्रूयते च पुरा ख्यातो राजाशतधनुर्भुवि ।
पत्नी च शैव्या तस्याभूदतिधर्मपरायणा ॥५२॥
पतिव्रता महाभागा सत्यशौचदयान्विता ।
सर्वलक्षणसम्पन्ना विनयेन नयेन च ॥५३॥
स तु राजा तया सार्द्धं देवदेवं जनार्दनम् ।
आराधयामास विभुं परमेण समाधिना ॥५४॥
होमैर्जपैस्तथा दानैरुपवासैश्च भक्तितः ।
पूजाभिश्चानुदिवसं तन्मना नान्यमानसः ॥५५॥
एकदा तु हमं स्नातौ दौ तु भार्यापतो जले ।
भागीरथ्यास्समुत्तीर्णौ कार्त्तिक्यां समुपोषितौ ।
पाषाण्डिनमपश्येतामायान्त सम्मुख द्विज ॥५६॥
चापाचार्यस्य तस्यासौ सखा राज्ञो महात्मनः ।
अतस्तद्गौरवात्तेन सखाभावमथाकरोत् ॥५७॥
न तु सा वाग्यता देवी तस्य पत्नी पतिव्रता ।
उपोषितास्मीति रविं तस्मिन्दृष्टे ददर्श च ॥५८॥
समागम्य यथान्यायं दम्पती तौ यथाविधि ।
विष्णोः पूजादिकं सर्वं कृतुवन्तौ द्विजोत्तम ॥५९॥

सुनते हैं कि प्राचीन काल में एक शतुधन नामक प्रसिद्ध राजा इस भूतल पर हुआ था। उसकी धर्म परायण पत्नी का नाम शैव्या था।५२। वह महाभागा रानी पतिव्रत, शोच, सत्य, दया, विनय, नीति आदि सभी

गुणों से सम्पन्न थी ।५३। उस रानी के साथ राजा शतधनु ने परम समाधि साधन द्वारा देवदेव भगवान् जनार्दन का आराधना किया ।५४ वे नित्य-प्रति तन्मयता पूर्वक होम, जप, दान, उपवास तथा पूजनादि के द्वारा भक्तिपूर्वक भगवान् को आराधना करने लगे ।५५। एक दिन जब कार्तिकी पूर्णिमा आई तब उन पति-पत्नी दोनों ने उपवास पूर्वक श्री गङ्गाजी में एक साथ स्नान किया और जब वे जल से बाहर निकले तब उन्होंने एक पाखण्डी को सामने से आता हुआ देखा ।५६। उस महात्मा राजा को जो धनुर्वेद सिखाने वाले आचार्य थे, उनका यह ब्राह्मण मित्र था, इसलिये आचार्य के गौरव के विचार से राजा ने उसके साथ मित्र जैसा व्यवहार किया ।५७। परन्तु उस पतिव्रता रानी ने उस ब्राह्मण का कोई आदर नहीं किया, वह चुप रही और अपने को उपवास युक्त मानकर उसने सूर्य भगवान् का दर्शन किया ।५८ फिर उन पति पत्नी दोनों ने विधिपूर्वक भगवान् श्रीहरि के पूजनादि कार्यों को सम्पन्न किया ।५९ ।

कालेन गच्छता राजा ममारासौ सपत्नजित् ।
अन्वारुरोह तं देवी चितास्थं भूपतिं पतिम् ।।६०।।
स तु तेनापचारेण श्वा जज्ञे वसुधाधिपः ।
उपोषितेन पाषण्डसंल्लापो यत्कृतोऽभवत् ।।६१।।
सा तु जातिस्मरा जज्ञे काशीराजसुता शुभा ।
सर्वविज्ञानसम्पूर्णा सर्वलक्षणपूजिता ।।६२।।
तां पिता दातुकामोऽभूद्वराय विनिवारितः ।
तयैव तन्व्या विरतो विवाहारम्भतो नृपः ।।६३।।
ततस्सा दिव्यया दृष्ट्या दृष्ट्वा श्वानं निजं पतिम् ।
विदिशाख्यं पुरं गत्वा तदवस्थं ददर्श तम् ।।६४।।
तं दृष्ट्वैव महाभागं श्वभूतं तु पतिं तदा ।
ददौ तस्मै वराहारं सत्कारप्रवणं शुभा ।।६५।।
भुञ्जन्दत्तं तया सोऽन्नमतिमृष्टमभीप्सितम् ।
स्वजातिललितं कुर्वन्बहु चाटु चकार वै ।।६६।।
अतीव व्रीडिता बाला कुर्वता चाटु तेन सा ।
प्रणामपूर्वमाहेदं दयितं तं कुयोनिजम् ।।६७।।

स्मर्यतां तन्महाराज दाक्षिण्यललितं त्वया ।
येन श्वयोनिमापन्नो मम चाटुकरो भवान् ॥६८॥
पाषण्डिन समाभाष्य तीर्थस्नानादनन्तरम् ।
प्राप्तोऽसि कुत्सितां योनिं किन्न स्मरसि तत्प्रभो ॥६९॥

समय पाकर वह राजा शतधनु मृत्यु को प्राप्त हुआ और रानी शैव्या ने भी चितारूढ़ राजा के अनुगमन पूर्वक सतीधर्म का पालन किया ।६०। उस राजा ने उपवास-काल में पाखण्डी से सम्भाषण किया था, इसलिये उसे अपने उस पाप के कारण श्वान योनि में जन्म लेना पड़ा ।६१ उधर उस शुभलक्षण रानी ने काशी नरेश के यहाँ जन्म लिया, वह सब प्रकार के विज्ञान को जानने वाली, सभी श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त तथा पूर्व जन्म की याद रखने वाली हुई ।६२। काशी नरेशने जब उसका विवाह करना चाहा, तब अपनी कन्या की अनिच्छा जानकर वह उस कार्य से उपरत हुए ।६३। जब उस कन्याने दिव्य दृष्टि से यह जान लिया कि उसके पति ने कुत्ते का जन्म धारण किया है, तब उसने विदिशा नगर में जाकर उसे श्वान के रूप में देखा ।६४। उसने अपने महाभाग पतिको उस रूप में देखकर उसे सत्कार सहित भोजन कराया ।६५। रानी के द्वारा प्राप्त हुए उस सुस्वादु मधुर और इच्छित अन्न का सेवन कर वह अपनी जाति के अनुकूल विभिन्न प्रकार की चाटुकारिता दिखाने लगा ।६६। परन्तु उस चाटुकारिता प्रदर्शन के कारण संकोच में पड़ी हुई बालाने कुत्सित योनि को प्राप्त हुए अपने उस पति को प्रणाम करके कहा ।६७। हे महाराज ! आप अपनी उस उदारता को याद करिये, जिसके कारण आप इस कुत्ते की योनि को पाकर मेरा चाटुकारिता कर रहे हैं ।६८। हे प्रभो ! क्या आपको याद नहीं है कि आपने तीर्थ-स्नान के पश्चात् उस पाखण्डी से सम्भाषण किया था, जिसके कारण आपको इस कुत्सित योनि में आना पड़ा है ।६९।

तयैवं स्मारिते तस्मिन्पूर्वजातिकृते तदा ।
दध्यौ चिरमथावाप निर्वेदमतिदुर्लभम् ॥७०॥

निर्विण्णचित्तस्स ततो निर्गम्य नगराद्बहिः ।
मरुत्प्रपतनं कृत्वा शार्गालीं योनिमागतः ॥७१॥
सापि द्वितीते सम्प्राप्ते वीक्ष्य दिव्येन चक्षुषा ।
ज्ञात्वा श्रृगालं तं द्रष्टुं ययौ कोलाहलं गिरिम् ॥७२॥
तत्रापि दृष्ट्वा तं प्राह शार्गाली योनिमागतम् ।
भर्त्तारमपि चार्वङ्गी तनया पृथिवीक्षिता ॥७३॥
अपि स्मरसि राजेन्द्र श्वयोनिस्थस्य यन्मया ।
प्रोक्तं ते पूर्वचरितं पाषण्डालापसंश्रयम् ॥७४॥
पुनस्तयोक्तं स ज्ञात्वा सत्यं सत्यवती वरः ।
कानने स निराहारस्तत्याज स्वं कलेवरम् ॥७५॥
भूयस्ततो वृको जज्ञे गत्वा तं निर्जने वने ।
स्मरयामास मर्त्तारं पूर्वे वृत्तमनिन्दिता ॥७६॥
स त्वं वृको महाभाग राजा शतधनुर्भवान् ।
श्वा भूत्वा श्रृगालोऽभुर्वृकत्वं साम्प्रत गतः

श्री पराशरजी ने कहा-उस काशी नरेश की पुत्री ने जब इस प्रकार याद दिलाई तब श्वान बहुत देर तक अपने पूर्व जन्म की याद करता रहा। तब उसे दुर्लभ निर्वेद गति की प्राप्ति हुई।७०। उसने अत्यन्त दुःखित चित्त से नगर के बाहर जाकर अपने प्राणों का त्याग किया, तब उसे श्रृगाल योनि की प्राप्ति हुई।७१। जब काशिराज सुता ने दिव्य दृष्टि से उसे श्रृगाल हुआ जाना, तब वह उसे देखने के लिये उस कोलाहल पर्वत पर पहुँची।७२। जहाँ उसे श्रृगाल योनि में पड़ा हुआ देखकर उसने उससे कहा।७३। हे राजेन्द्र ! जब आप श्वान-योनि में थे, तब पूर्व जन्म में उस पाखण्डी से सम्भाषण करने वाली घटना की मैंने याद दिलाई थी, क्या वह बात आपको याद है? ७४। सत्यपालकों में श्रेष्ठ उस राजा शतधनु ने काशिराज की पुत्री की बात सुनकर सब वृतान्त जान लिया और आहार के परित्याग पूर्वक अपने देह का त्याग किया।७५। फिर इस ने भेड़िया का जन्म लिया, उस समय भी वह अनिन्दित राजपुत्री निर्जन

वन में पहुँची और उसने अपने पति को पूर्व जन्म की याद दिलाई ।७६। हे महाभाग ! आप भेड़िया नहीं हैं, आप तो राजा शतधनु हैं । आपने क्रमशः कुत्ता, शृगाल और अब भेड़िया का जन्म लिया है ।७७।

स्मारितेन यदा त्यक्तस्तेनात्मा गृध्रतां गतः ।
अपापा सा पुनश्चैनं बोधयामास भामिनी ॥७८॥
नरेन्द्र स्मर्यतामात्मा ह्यल ते गृध्रचेष्टया ।
पाषण्डालापजातोऽय दोषो यत्गृध्रतां गतः ॥७९॥
ततः काकत्वमापन्नं समनन्तरजन्मनि ।
उवाच तन्वी भर्त्तारमुपलभ्यात्मयोगतः ॥८०॥
अशेषभूभृतः पूर्वं वश्या यस्मै बलिं ददुः ।
स त्वं काकत्वमापन्नो जातोऽद्य बलिभुक् प्रभो ॥८१॥
एवमेव च काकत्वे स्मारितस्स पुरातनम् ।
तत्याज भूपतिः प्राणान्मयूरत्वमवाप च ॥८२॥

उसके इस प्रकार याद दिलाने पर राजा ने भेड़िया की योनि छोड़ दी । तब उसे गृध्र होना पड़ा । उस योनि में भी उसकी पाप-रहित पत्नी ने उसे पूर्व वृतान्त का स्मरण कराया ।७८। हे राजन् ! आप अपने रूप की याद करिये । इन गृध्र चेष्टाओं का त्याग कीजिये, क्योंकि पाखण्डी से सम्भाषण करने के कारण ही आपको इस योनि की प्राप्त हुई है ।७९। उस योनि का परित्याग करने पर उसे कौए की योनि मिली । तब भी उस सुन्दरी ने योग बल से उसका वृतान्त जानकर और उसके पास पहुँच कर उससे कहा ।८०। हे प्रभो ! आप वही हैं, जिसकी आधीनता को प्राप्त हुए समस्त सामन्तगण विभिन्न प्रकार की भेंट प्रस्तुत करते थे । आज आप इस लोक-योनि में आकर वलि का भोजन करने वाले हुए हैं ।८१। इस प्रकार पूर्व जन्म की याद दिलाये जाने पर राजा ने काक-योनि को त्यागकर मोर की योनि प्राप्त की ।८२।

मयूरत्वे ततस्सा वै चकारानुगतिं शुभा ।
दत्तैः प्रतिक्षणं भोज्यैर्बाला तज्जातिभोजनैः ॥८३॥

ततस्तु जनको राजा वाजिमेधं महाक्रतुम् ।
चकार तस्यावभृथे स्नापयामास तं तदा ॥८४॥
सस्नौ स्वयं च तन्वङ्गी स्मारयामास चापि तम् ।
यथासौ श्वशृगालादियोनिं जग्राह पार्थिवः ॥८५॥
स्मृतजन्मक्रमस्सोऽथ तत्याज स्वकलेवरम् ।
जज्ञे स जनकस्यैव पुत्रोऽसौ सुमहात्मनः ॥८६॥
ततस्सा पितरं तन्वी विवाहार्थमचोदयत् ।
स चापि कारयामस तस्या राजा स्वयंवरम् ।८७॥
स्वयंवरे कृते सा तं सम्प्राप्त पतिमात्मनः ।
वरयःमास भूयोऽपि भर्तृभावेन भामिनी ॥८८॥
बुभुजे च तया सर्द्ध सम्भोगान्नृपनन्दनः ।
पितुर्युपरते राज्यं विदेहेषु चकार सः ॥८९॥
इयाज यज्ञान्सुबहून्ददौ दानानि चार्थिनाम् ।
पुत्रानुत्पादयामास युयुधे च सहारिभिः ॥९०॥

उस योनि में भी काशिराजपुत्री ने उसे प्रतिक्षण मयूरोचित श्रेष्ठ आहार देते हुए उसकी सेवा की ।८३। जिस समय राजा जनक ने अश्वमेध का अनुष्ठान किया । उस महा यज्ञ में अवभृथ स्नान के समय उस मोर को स्नान कराया गया ।८४। फिर उस राजकन्या ने स्वयं भी स्नान किया और मयूर रूपी राजा को उसकी श्वान, शृगाल आदि योनियों का स्मरण कराया ।८५। सब वृतान्त के याद आने पर उसने अपना मयूर-देह भी छोड़ दिया और राजा जनक के ही घर में पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ ।८६ फिर उस राजकुमारी ने अपने विवाह के लिये अपने पिता को प्रेरित किया, तब राजा ने उसका स्वयंवर का आयोजन होने पर स्वयंवर में आये अपने उस पति का उस राज पुत्री ने पुनः पतिभाव से वरण किया ।८८। फिर उस राजकुमार ने काशिराज पुत्री के साथ अनेक भोगों को भोगते हुए अपने पिता के मरणोपरान्त विदेह नगर का राजपद सम्भाला

।८९। उसने अनेकानेक यज्ञ किये, याचकों को इच्छित दान दिये अनेक पुत्रों की उत्पत्ति की और शत्रुओं के साथ अनेकों भीषण युद्ध किये ।९०

राज्यं भुक्त्वा यथान्यायं पालयित्वा वसुन्धराम् ।
तत्याज स प्रियान्प्राणान्संग्रामे धर्मतो नृपः ॥९१॥
ततश्चितास्थं तं भूयो भर्त्तारं सा शुभेक्षणा ।
अन्वारुरोह विधिवद्यथापूर्वं मुदान्विता ॥९२॥
ततोऽवाप तया सार्द्धं राजपुत्र्या स पार्थिवः ।
ऐन्द्रानतीत्या वै लोकांल्लोकान्प्राप तदाक्षयान् ॥९३॥
स्वर्गाक्षयत्वमतुल दाम्पत्यमतिदुर्लभम् ।
प्राप्त पुण्यफलं प्राप्य संशुद्धिं तां द्विजोत्तम ॥९४॥
एष पाषण्डसम्भाषाद्दोषः प्रोक्तो मया द्विज ।
तथाश्वमेधावभृथस्नानमाहात्म्यमेव च ॥९५॥
तस्मात्पाषण्डिभिः पापैरालापस्पर्शनं त्यजेत् ।
विशेषतः क्रियाकाले यज्ञादौ चापि दीक्षितः ॥९६॥
क्रियाहानिर्गृहे यस्य मासमेकं प्रजायते ।
तस्यावलोकनात्सूर्यं पश्येत मतिमान्नरः ॥९७॥

इस प्रकार उसने पृथ्वी का न्यायपूर्वक पालन और राज-सुखों का उपभोग किया तथा अन्त में धर्म युक्त युद्ध करते हुए ही अपने प्राणों का परित्याग कर दिया ।९१। तब पहिले के समान ही उस सुन्दर नयन वाली रानी ने अपने चितारूढ़ पति के साथ परलोक गमन किया ।९१। इस प्रकार राजकुमारी सहित उस राजा ने इन्द्रलोक से भी बढ़कर अक्षय लोकों को प्राप्त किया ।९३। हे द्विजवर ! इस प्रकार शुद्धि को प्राप्त हुए उस राजा ने अतुलित एवं अक्षय स्वर्ग, अत्यन्त दुर्लभ दाम्पत्य तथा अपने पुण्य के फल को प्राप्त किया ।९४। हे द्विज ! इस प्रकार मैंने तुम्हारे प्रति पाखण्डी से वार्तालाप करने का दोष और अश्वमेध यज्ञ में अवभृथ स्नान करने का महात्म्य कहा है ।९५। इसलिये पाखण्डियों और पापाकर्मियों से कभी संभाषण या उनका स्पर्श नहीं करना चाहिये । विशेषकर नित्य नैमित्तिक कर्मों के समय या यज्ञादि क्रियाओं में दीक्षित होने

पर तो उनके संसर्ग से बचना ही चाहिये ।६६। जिसके घर में एक महीने तक नित्यकर्म न हुए हों, उस पुरुष का दर्शन मात्र होने पर सूर्य का दर्शन करना चाहिये ।६७।

किं पुनर्यैस्तु सन्त्यक्ता त्रयी सर्वात्मना द्विज ।
पाषण्डभोजिभिः पापैर्वेदवादविरोधिभिः ।।६८।।
सहालापस्तु संसर्गः सहास्या चातिपापिनी ।
पाषण्डिभिर्दुराचारैस्तस्मात्तान्परिवजयेत् ।।६६।।
पाषाण्डिनो विकर्मस्थान्वेडालव्रतिकान्छठान् ।
हैतुकान्वकवृत्तींश्च वाङ मात्रेणापि नार्चयेत् ।।१००।।
दूरतस्तैस्तु सम्पर्कस्त्याज्यश्चाप्यतिपापिभिः ।
पाषण्डिभिर्दुराचारैस्तस्मात्तान्परिवर्जयेत् ।।१०१।।
ऐते नग्नास्तवाख्यातदृष्ठाः श्राद्धोपघातका ।
येषां सम्भाषणात्पुंसाँ दिनपुण्यं प्रणश्यति ।।१०२।।
ऐते पाषण्डिनः पापा न ह्येतानालपेद् बुधः ।
पुण्यं नश्यति सम्भाषादेतेषाँ तद्दिनोद्भवम् ।।१०३।।
पुंसां जटाधरणमौण्ड्यवताँ वृथैव
मोघाशिनामखिलशौचनिराकृतानाम् ।
तोयप्रदानपितृपिण्बहिष्कृतानाँ
सम्भाषणादपि नरा नरकं प्रयान्ति ।।१०४।

वेदत्रयी धर्म के त्यागी, पाखण्डियों का अन्न भोजन करने वाले और वैदिक धर्म का विरोध करने वाले उन पापियों को देख लेने पर तो उपाय ही क्या कहा जाय ? ।६८। इन दुराचारियों के साथ सम्भाषण करना, सम्पर्क रखना या उठना बैठना भी पाप है, इसलिये उनका त्याग करना ही उचित है, ।६६। पाखण्डी, कुकर्मी, छिपकर पाप करने वाले, दुष्ट, स्वार्थी तथा बगुला वृत्ति वाले मनुष्यों का वचनों से भी सत्कार न करे ।१००। इन पाखण्डियों, दुराचारियों और अत्यन्त

पापियों का संसर्ग दूर से ही त्याग देना चाहिये। इसलिये इनसे सदा ही बचे ।१०१। इस प्रकार नग्नों के विषय में मैंने तुमसे कहा है, जिसके देखने से ही श्राद्ध का क्षय हो जाता है तथा जिनसे वार्तालाप करने मात्र से एक दिन का पुण्य नष्ट हो जाता है ।१०२। ऐसे यह पाखण्डी अत्यन्त पापी होते हैं, बुद्धिमानों को इनसे कभी भी वार्ता नहीं करना चाहिये। क्योंकि वार्तालाप करने से ही उस दिन का पुण्य क्षीण हो जाता है ।१०३। जो अकारण ही जटा धारण करते और मुँड़ा लेते हैं, तथा जो सब प्रकार से अशुद्ध और जलदान-पिण्डदान आदि से बहिष्कृत हैं, उन व्यक्तियों से बातचीत करने वालों को भी नरक की प्राप्ति होती है ।१०४।

—: ✲ ✲ :—

चतुर्थ अंश

पहला अध्याय

भगवन्यन्तरं कार्यं साधुकर्मण्यवस्थितैः ।
तन्मह्यं गुरुणाख्यातं नित्यनैमित्तिकात्मकम् ॥ १ ॥
वर्णधर्मास्तथाख्याता धर्मा ये चाश्रमेषु च ।
श्रोतुमिच्छाम्यहं वंशं राज्ञां तद् ब्रूहि मे गुरो ॥ २ ॥
मैत्रेय श्रूयतामयमनेकयज्वशूरवीरधीरभूपालालङ्कृतो ब्रह्मादिर्मानवो वंशः ।३। तदस्य वंशस्यानुपूर्वीमशेषवंशपापप्रणाशनाय मैत्रेयैतां कथां शृणु ॥ ४ ॥

तद्यथा सकलजगतामादिरनादि भूतस्य ऋग्यजुःसामादिमयो भगवान् विष्णुस्तस्य ब्रह्मणो मूर्त्तं रूपं हिरण्यगर्भो ब्रह्माण्डभूतो ब्रह्मा भगवान् प्राग्बभूव ।५। ब्रह्मणश्च दक्षिणाङ्गुष्ठजन्मा दक्षप्रजापतिः दक्षस्याप्यदितिरदितेर्विवस्वान् विवस्वतो मनुः ।६। मनोरिक्ष्वाकुनृगधृष्टशर्यातिनरिष्यन्तप्रांशुनाभागदिष्टकरूषपृषध्राख्या दश पुत्रा बभूवुः ॥ ७ ॥

श्री मैत्रेयजी ने कहा-हे भगवान् ! साधु कर्मों में अवस्थित पुरुषों के करने योग्य उन सभी नित्य-नैमित्तिक कर्मों को आपने मुझसे कह दिया ।१। हे गुरो ! आपने वर्ण-धर्मों और आश्रय धर्मों की भी व्याख्या कर दी, अब मैं राजवंशों को सुनने की इच्छा करता हूँ, इसलिये वह विषय मेरे प्रति कहिये ।२। श्री पराशरजी ने कहा-हे मैत्रेयजी ! जिस वंश के आदि कर्त्ता ब्रह्माजी हैं, उस अनेकों यज्ञ वाले, शूर, वीर और धीरजवान् राजाओं से सुशोभित मनुवंश का वर्णन सुनो ।३। हे मैत्रेयजी ! अपने वंश के सब पापों को मिटाने के लिये इस वंश की परम्परा-गाथा को यत्न से सुनो ।४। वह इस प्रकार है-सम्पूर्ण जगत् के आदि कारण भगवान्

विष्णु हैं। वे अनादि और त्रिवेद रूप हैं। उन्हीं ब्रह्म स्वरूप भगवान् के मूर्त्त स्वरूप में ब्रह्माण्डमय एवं हिरण्यगर्भ ब्रह्माजी सर्व प्रथम उत्पन्न हुए।५। उन ब्रह्माजी के दाँये अँगूठे से दक्ष प्रजापति की उत्पत्ति हुई, दक्ष से अदिति ने भगवान् विवस्वान् को प्रकट किया। उन्हीं विवस्वान् से मनु की उत्पत्ति हुई।६। मनु के दस पुत्र हुए, जिनके नाम इक्ष्वाकु नृग, धृष्ट शर्याति, नरिष्यन्त, प्रांशु, नाभाग, दिष्ट, करूष और पृषध्र थे।७।

इष्टिं च मित्रावरुणयोर्मनुः पुत्रकामश्चकार।८। तत्र तावदपह्नते होतुरपचारादिला नाम कन्या बभूव।९ सैव च मित्रावरुणयोः प्रसादात्सुद्युम्नो नाम मनोः पुत्रो मैत्रेय आसीत्।१०। पुनश्चेश्वरकोपात्स्त्री सती सा तु सोमसूनोर्बुधस्याश्रमसमीपे बभ्राम।११।सानुरागश्च तस्या बुधःपुरूरवसमात्मजमुत्पादयामास।१२। जातेऽपि तस्मिन्नमिततेजोभि परमर्षिभिरिष्टिमय ऋङ्मयो यजुर्मयस्सामसयोऽथर्वणमयस्सर्ववेदमयो मनोमयो ज्ञानमयो न किञ्चिन्मयोऽन्नमयो भगवान् यज्ञपुरुषस्वरूपी सुद्युम्नस्य पुंस्त्वत्वमभिलषद्भिर्यथावदिष्टस्तत्प्रसादादिला पुनरपि सुद्युम्नोऽभवत्।१३। तस्याप्युत्कलगयविनतास्त्रयः पुत्रा बभूवुः।१४।

पुत्र की कामना से मनु ने मित्रावरुण की प्रसन्नता के लिये यज्ञ किया।८। परन्तु होता के विपरीत संकल्प से उस यज्ञ में विपर्यय हो गया और उससे इला नाम की कन्या उत्पन्न हुई।९। हे मैत्रेयजी ! बाद में मित्रावरुण की कृपा से वही इला नाम्नी कन्या मनु-पुत्र सुद्युम्न हो गया।१०। शिवजी के क्रोध के कारण वह इला स्त्री बनी हुई चन्द्रमा के पुत्र बुध के आश्रम के समीप भ्रमण करने लगी।११। तब बुध उसे देखकर आसक्तिमय होगये और उन्होंने उससे पुरूरवा नामक एक पुत्र उत्पन्न किया।१२। पुरूरवा के उत्पन्न होने के पश्चात् परम ऋषियों ने सुद्युम्न को पुरुषत्व-प्राप्ति कराने की इच्छा से सर्ववेदमय, मनोमय, ज्ञानमय, अन्नमय और परमार्थ वाले भगवान् यज्ञ पुरुष का विधिवत् यजन किया,

तब उन यज्ञ पुरुष की कृपा से इला सुद्युम्न रूप में परिवर्तित हुई ।१३।
तब उस सुद्युम्न के तीन पुत्र उत्कल, गय और विनत नामक हुए ।१४।

सुद्युम्नस्तु स्त्रीपूर्वकत्वाद्राज्यभागं न लेभे ।१५। तत्पित्रा तु वसिष्ठवचनात्प्रतिष्ठानं नामनगरं सुद्युम्नायदत्तं तच्चासौ पुरूरवसे प्रदात् ।१६। तदन्वयाश्च क्षत्रियास्सर्वे दिक्ष्वभवन् । पृषध्रस्तु मनुपुत्रो गुरुगोवधाच्छूद्रत्वमगमत् ।१७। मनोः पुत्रः करूषः करूषत्कारूषाः क्षत्रिया महाबलपराक्रमा बभूवुः ।१८। दिष्टपुत्रस्तु नाभागो वैश्यतामगमत्तस्माद्बलन्धनः पुत्रोऽभवत् ।१९। बलन्धनाद्वत्सप्रीतिरुदारकीर्तिः ।२०। वत्सप्रीतेः प्राँशुरभवत् ।२१। प्रजापतिश्च प्रांशोरेकोऽभवत् ।२२।

पहिले स्त्री होने के कारण सुद्युम्न को राज्य अधिकार नहीं मिला था, परन्तु वशिष्ठजी की आज्ञा से पिताने उसे प्रतिष्ठान नामक नगर का राजा बनाया, वही नगर सुद्युम्न ने पुरूरवा को प्रदान कर दिया ।१५-१६। उसी पुरूरवा की संतान सब दिशाओं में फैल गई । मनु का पुत्र पृषध्र अपने गुरू की गौ को मारने के कारण शूद्रत्व को प्राप्त हो गया ।१६। मनु का जो पुत्र करूष था, उसी की सन्तान कारूष नामक अत्यन्त बल और पराक्रम वाले क्षत्रियगण ।१८। दिष्ट का पुत्र नाभाग हुआ जो वैश्यत्व को प्राप्त हो गया, उसने बलन्धन नामक पुत्र उत्पन्न किया ।१९। बलन्धन से अत्यन्त यशस्वी वत्सप्रीति. वत्सप्रीति से प्राँशु और प्राँशु से प्रजापति नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई ।२०–२१।

ततश्च खनित्रः ।२३। तस्माच्चक्षुषः ।२४। चाक्षुषाच्चातिबलपराक्रमो विंशोऽभवत् ।२५। ततो विविंशकः ।२६। तस्माच्च खनिनेत्रः ।२७। ततश्चातिविभूतिः ।२८। अतिविभूतेरतिबलपराक्रमः करन्धमः पुत्रोऽभवत् ।१९ तस्मादव्यविक्षित् ।३०। अविक्षितोऽप्यतिबलपराक्रमः पुत्रो मरुत्तो नामाभवत्: यस्येमावद्यापि श्लकौ गीयेते ।३१।

मरुत्तस्य यथा यज्ञस्तथा कस्यामवद्भुवि ।
सर्वं हिरण्मयं तस्य यज्ञवस्त्वतिशोभनम् ।३२।
अमाद्यदिन्द्रस्सोमेन दक्षिणाभिर्द्विजातयः ।
मरुतः परिवेष्टारस्सदस्याश्च दिवौकसः ॥३३॥

प्रजापति का पुत्र खनित्र हुआ, खनित्र से चाक्षुष और चाक्षुष से अत्यन्त बली-पराक्रमी विंश हुआ।२३-२५। विंश से विविंशक की उत्पत्ति हुई, विविंशक से खनिनेत्र, खनिनेत्र से अति विभूति और अति विभूति से अत्यन्त बलवान् करन्धम हुआ।२६-२९। करन्धम से अविक्षित् और अविक्षित से मरुत नामक महाबली पुत्र हुआ, जिसके विषय में अब भी यह दो श्लोक प्रचलित हैं।३०-३१। मरुत के जैसा यज्ञ पृथिवी पर अभी तक किसी अन्य का नहीं हुआ क्योंकि उसकी सभी याज्ञिक वस्तुएँ स्वर्ण युक्त और अत्यन्त सुन्दर थीं।३२। उस यज्ञ में इन्द्र को सोम-रस से और ब्राह्मणों को दक्षिणा से तृप्त किया गया था। उसमें मरुद्गण परोसने वाले और देवगण सदस्य हुए थे।३३।

स मरुत्तश्चक्रवर्ती नरिष्यन्तनामानं पुत्रमवाप ३४ तस्माच्च दमः।३५। दमस्य पुत्रो राजवर्द्धनो जज्ञे।३६। राजवर्द्धनात्सुवृद्धिः सुवृद्धः केवलः।३८। केवलात्सुधृतिरभूत्।३९। ततश्च नरः।४०। तस्माच्चन्द्रः।४१। ततः केवलोऽभूत्।४२। केवलाद्बन्धुमान्।४३। वेगवान्।४५। वेगवतो बुधः।४५। ततश्च तृणबिन्दुः।४६। तस्याप्येका कन्या इलविला नाम।४७। ततश्चालम्बुसा नाम वराप्सरा. स्तृणबिन्दु भेजे।४८। तस्यामप्सरस्य विशालो जज्ञेयः पुरीं विशालां निर्ममे।४९।

उस मरुत्त के नरिष्यन्त नामक पुत्र उत्पन्न हुआ नरिष्यन्त से दम और दम से राजवर्द्धन हुआ।३४-३६। राजवर्द्धन से सुवृद्धि, सुवृद्धि से केवल और केवल से सुधति उत्पन्न हुआ।३७-३९। सुधृति में नर नर से चन्द्र और चन्द्र से केवल का जन्म हुआ।४०-४२। केवल से बुन्धुमान्, बुन्धुमान् से वेगमान्, वेगमान् से बुध, बुध से तृणबिन्दु। तृणबिन्दु प्रथम में तो इलविला नाम की कन्या उत्पन्न की, फिर अलम्बुसा नामकी अप्सरा के आसक्त होने पर उससे तृणबिन्दु ने विशाल नामक एक पुत्र उत्पन्न किया, जिसने विशाल नाम से एक पुरी का निर्माण कराया।४३-४९।

हेमचन्द्रश्च विशालस्य पुत्रोऽभवत्।५०। ततश्चन्द्रः।५१। तत्तनयो धूम्राक्षः।५२। तस्यापि सृञ्जयोऽभूत्।५३। सृञ्जयात्सहदेवः।५४। ततश्च कृशाश्वो नाम पुत्रोऽभवत्।५५। सोमदत्तःकृशा-

श्चाञ्जज्ञे योऽश्वमेधानां शतमाजहार ।५६। तत्पुत्रो जनमेजयः।५७
जनमेजयात्सुमतिः ।५८। एते वैशालिका भूभृतः ।५९। श्लोको-
ऽप्यत्र गीयते ।६०।

तृणबिन्दोः प्रसादेन सर्वे वैशालिका नृपाः ।
दीर्घायुषो महात्मानो वीर्यवन्तोऽतिधार्मिकाः ।।६१।

शर्यातेः कन्या सुकन्या नामाभवत् या मुपयेमे च्यवनः ।६२।
आनर्त्त नामा परमधार्मिकश्शर्यातिपुत्रोऽभवत् ।६३। आनर्त्तस्यापि
रेवतनामा पुत्रो जज्ञे योऽसावानर्त्त विषयं बुभूजे तुरीं च कुशस्थ-
लीमध्युवास ।।६४।।

विशाल का पुत्र हेमचन्द्र, (हेमचन्द्र का) पुत्र धूम्राक्ष हुआ। धूम्राक्ष के सृञ्जय के सहदेव और सहदेव के कुशाश्व की उत्पत्ति हुई ।५०-५१। कुशाश्व से सौ अश्वमेधों का कर्त्ता सोमदत्त हुआ। सोमदत्त से जनमेजय और जनमेजय से सुमति हुआ। यह सभी राजा विशाल के वंशधर हुए। इनके विषयमें यह गाया जाता है ।५६-६०। कि तृणबिंदुके प्रसादसे विशाल वंश के सभी राजा दीर्घायु, महात्मा वीर्यवन्त तथा अत्यन्त धार्मिक हुए ।६१। मनु-पुत्र शर्याति के सुकन्या नाम की एक कन्या हुई जिसका पाणि-ग्रहण च्यवन ऋषि ने किया ।६२। शर्याति के एक अत्यन्त धर्मात्मा आनर्त्त नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। आनर्त्त से रेवत हुआ, जिसने कुशस्थली नगरी में निवास करते हुए आनर्त्त के राज्य को भोगा ।६३-६४।

रेवतस्यापि रैवतः पुत्रः ककुद्मिनामा धर्मात्मा भ्रातृशतस्य
ज्येष्ठोऽभवत् ।६५। तस्य रेवती नाम कन्याभवत्।६६। स तामादाय
कस्येयमर्हतीति भगवन्तमब्जयोनिं प्रष्टुं ब्रह्मलोकं जगाम ।६७।
तावच्च ब्रह्मणोऽन्तिके हाहाहूहूसंज्ञाभ्यां गन्धर्वाभ्यमतितानं नाम
दिव्य गांधर्वमगीयत ।६८। तच्च त्रिमार्गपरिवृत्तैरनेकयुगपरिवृत्ति
तिष्ठन्नपि रैवतश्शृण्वन्मुहूर्त्तमिव मेने ।६९। गीतावसाने च भगव-
न्तमब्जयोनिं प्रणम्य रैवतः कन्यायोग्यं वरमपृच्छत् ।७०। तत-
सौ भगवानकथयत् कथय योऽभिमतस्ते वर इति ।७१। पूनश्च

प्रणम्य भगवते तस्मै यथाभिमतानात्मनस्स वरान् कथयामास । क एषां भगवतोऽभिमत इति यस्मै कन्यामिमां प्रयच्छामीति ।७२।

रेवत का पुत्र रैवत ककुद्मी हुआ जो अत्यंत धार्मिक और अपने सौ-भाइयों में ज्येष्ठ था ।६५। उसके जो कन्या हुई उसका नाम रेवती हुआ ।६६। उस कन्या को साथ लेकर राजा रैवत ब्रह्माजी से वह कन्या किस वर के योग्य है-यह पूछने के लिये ब्रह्मलोक को गये ।६७। उस समय ब्रह्मा जी के समक्ष हाहा और हूहू नामक दो गंधर्व अतितान नामक दिव्य गीत गा रहे थे ।६८। वहाँ त्रिमार्ग परिवर्तन युक्त उस अद्भुत गीतको सुनते हुए वे राजा रैवत युगों के परिवर्तन काल तक वहाँ रुके रहे परन्तु उन्हें उतना समय केवल एक मुहूर्त के समान ही व्यतीत हुआ लगा ।६९। गीत के समाप्त होने पर महाराज रैवत ने कमलयोनि भगवान् श्री ब्रह्माजी को प्रणाम करके उनसे अपनी कन्या के योग्य वर के विषय में प्रश्न किया ।७०। ब्रह्मा जी ने कहा-तुमने जो वर पसन्द किया हो उसे बताओ ।७१। इस पर उन्होंने ब्रह्माजी को पुन: प्रणाम किया और जो-जो वर उनकी दृष्टि में थे, वह सब उन्हें बताकर प्रश्न किया कि-इनमें से कौनसा वर आपको उचित प्रतीत होता है, जिसे मैं अपनी यह कन्या प्रदान कर दूँ ।७२।

ततः किञ्चिदवनतशिरास्सस्मितं भगवानब्जयोनिराह ७३। य एते भवतोऽभिमत नैतेषां साम्प्रतं पुत्रपौत्रापत्यापत्यसन्ततिरस्त्यवनीतले ।७४। बहूनि तवात्रैव गान्धर्वं शृण्वतश्चतुर्युगान्यतीतानि ।७५। साम्प्रतं महीतलेऽष्टाविंशतितममनोश्चतुर्युगमतीतप्राय वर्तते ।७६। आसन्नो हि कलिः ।७७। अन्यस्मै कन्यारत्नमिदं भवतैकाकिनाभिमताय देयम् ।७८। भवतोऽपि पुत्रमित्रकलत्रमन्त्रिभृत्यबन्धु बलकोशादयस्समस्ताः कालेनैतेनात्यन्तमतीताः ।७९।ततः पुनरप्युत्पन्नसाध्वसो राजा भगवन्तं प्रणम्य पप्रच्छ ।८०। भगवन्नेवमवस्थिते मयेयं कस्मै देयेति ।८१। ततस्स भगवान् किञ्चिदवनम्रकन्धरः कृताञ्जलिर्भूत्वा सर्वलोकगुरुरम्भोजयोनिराह ।८२।

इस प्रकार भगवान् पद्मयोनि ब्रह्माजी ने मस्तक झुकाकर कुछ मुसकाते हुए कहा-तुम्हें जो जो वर पसन्द हैं, उनमें से तो किसी की पुत्र-पौत्रादि सन्तान की अब पृथ्वी पर स्थित नहीं हैं।७४। क्योंकि यहाँ गंधर्वों का गीत सुनते हुए कई चतुर्युगियाँ व्यतीत हो चुकी हैं।७५। इस समय पृथ्वी पर अट्ठाइसवें मनु की चतुर्युगी समाप्त होने को है और कलियुग का आरम्भ निकट है।७६-७७। अब तुम एकाकी ही रह गये हो, इसलिये इस कन्या-रत्न को किसी अन्य योग्य वर को प्रदान करो। इतने समय में तुम्हारे पुत्र, मित्र, कलत्र, मंत्रिगण, भृत्यगण, बन्धु-बांधव, सेना और कोषादि कुछ भी शेष नहीं रहा।७८-७९। इस बात को सुनकर भयभीत हुए राजा रैवत ने ब्रह्माजी को पुनः प्रणाम करके प्रश्न किया।८०। हे भगवान्! यदि ऐसा है तो अब मैं इस कन्या को किसे दूँ? ८१। तब सब लोकों के गुरू ब्रह्माजी ने कुछ मस्तक झुकाकर हाथ जोड़ते हुए कहा।८२।

न ह्यादिमध्यान्तमजस्य यस्य विद्मो वयं सर्वमयस्य धातुः।
न च स्वरूपं न परं स्वभाव न चैव सारं परमेश्वरस्य।८३।
कलामुहूर्त्तादिमयश्च कालो न यद्विभूतेः परिणामहेतुः।
अजन्मनाशस्य सदैकमूर्त्तेरनामरूपस्य सनातनस्य।८४।
यस्य प्रसादादहमच्युतस्य भूतः प्रजासृष्टिकरोऽन्तकारी।
क्रोधाच्च रुद्रः स्थितिहेतुभूतो यस्माच्च मध्ये पुरुषः परस्मात्।८५।
मद्रूपमास्थाय सृजत्यजोयः स्थितौ च योऽसौ पुरुषस्वरूपी।
रुद्रस्वरूपेण च योऽत्ति विश्वं धत्ते तथानन्तवपुस्समस्तम्।८६।
पाकाय योऽग्नित्वमुपैति लोकान्बिभर्त्ति पृथिवीवपुरव्ययात्मा।
शक्रादिरूपी परिपाति विश्वमर्केन्दुरूपश्च तमो हिनस्ति।८७।
करोति चेष्टाश्श्वसनस्वरूपी लोकस्य तृप्तिं च जलान्नरूपी।
ददाति विश्वस्थितिसंस्थितस्तु सर्वावकाशं च नभस्स्वरूपो।८८।
यस्सृज्यते सर्गकृदात्मनैव यः पाल्यते पालयिता च देवः।
विश्वात्मकस्संहि यतेऽन्तकारी पृथकत्रयस्यास्य च योऽव्ययात्मा८९

यस्मिञ्जगद्यो जगदेतदाद्यो यश्चाश्रितोऽस्मिञ्जगति स्वयम्भूः ।
स सर्वभूतप्रभवो धरित्र्यां स्वांशेन विष्णुर्नृपतेऽवतीर्ण- ।९०।

श्री ब्रह्माजी बोले-जिन जन्म-रहित सर्वात्मक परमेश्वर के आदि मध्य, अन्त को हम जानते और जिनके रूप, श्रेष्ठ स्वभाव और सार का ज्ञान भी हमको नहीं है ।८३। जिनकी विभूत के परिणाम का कारण कला मुहूर्त्तादि युक्त काल भी नहीं हो सकता तथा जो जन्म-मरण से रहित, सनातन नाम-रूप से रहित एवं सदा ही एक रूप हैं ।८४। जिन अच्युत भगवान् के प्रसाद से मैं प्रजोत्पत्ति का कर्त्ता हूँ और जिनके क्रोध से उत्पन्न होकर रुद्र सृष्टि का अन्त करने में समर्थ होते हैं तथा जिनसे विश्व की स्थिति करने वाले विष्णु रूपी पुरुष प्रकट हुए हैं ।८५। जो अजन्मा मेरे रूप में विश्व की रचना पुरुष रूप में स्थिति और रुद्र रूप में सम्पूर्ण विश्व को ग्रस लेता हैं तथा अनन्त रूप से उसी विश्व को धारण करता है ।८५। जो अव्ययात्मा परिपाक करने के लिए अग्नि रूप होता तथा पृथ्वी रूप से सब लोकों को धारण करता है इन्द्रादि के रूप में जगत् का पालन करता तथा सूर्य, चन्द्रमा के रूप में सब अन्धकार का हरण कर लेता है ।८७। जो श्वास-प्रश्वास रूप में प्राणियों को चेष्टावान् करता है, अन्न जल के रूप में संसार की तृप्ति करता है और जगत् की स्थिति के कार्य को करता हुआ जो सभी को आकाश रूप से अवकाश प्रदान करता है ।८८। जो अव्ययात्मा सृष्टि को रचने वाला होकर भी स्वयं ही विश्व रूप से उत्पन्न होता और विश्व का पालनकर्त्ता होकर भी स्वयं पालित होता है तथा संहारकर्त्ता होकर भी स्वयं ही नष्ट हो जाता है ।८९। जिसमें यह संसार स्थित है और जो आदि-पुरुष विश्वरूप है और विश्व के ही आश्रित स्वयं उत्पन्न होने वाला है । हे राजन् ! सभी भूतों का उदभवस्थल वह विष्णु भगवान् पृथ्वी पर अपने अंश से उत्पन्न होता है ।९०।

कुशस्थली या तव भूप रम्या पुरी पुराभूदमरावतीव ।
सा द्वारका सम्प्रति तत्र चास्ते स केशवांशो बलदेवनामा ।९१।
तस्मै त्वमेनां तनयां नरेन्द्र प्रयच्छ मायामनुजाय जायाम् ।
श्लाघ्यो वरोऽसौ तनया तवेयं स्त्रीरत्नभूता सदृशो हि योगः।९२।

इतीरितोऽसौ कमलोद्भवेन भुवां समासाद्य पतिः प्रजानाम् ।
ददर्श ह्रस्वान् पुरुषान् विरूपानल्पौजसस्स्वल्पविवेकवीर्यान् ।९३।
कुशस्थलीं तां च पुरीमुपेत्य दृष्ट्वान्यरूपां प्रददौ स कन्याम् ।
सीरायुधाय स्फटिकाचलाभवक्षः स्थलायातुलधीर्नरेन्द्रः ।९४।
उच्चप्रमाणामिति तामवेक्ष्य स्वलाङ्गलाग्रेण च तालकेतुः ।
निनम्रयामास ततश्च सापि बभूव सद्यो वनिता यथान्या ।९५।
तां रेवतीं रैवतभूपकन्यां सीरायुधोऽसौ विधिनोपनेमे ।
दत्त्वाथ कन्यां स नृपो जगाम हिमालयं वै तमसे धृतात्मा ।९६।

हे राजन् ! अमरावती के समान तुम्हारी कुशस्थली नाम की नगरी अब द्वारावती हो गई है । वहाँ भगवान् विष्णु के अंश रूप बलदेव जी स्थित हैं ।९१। तुम अपनी इस कन्या को माया से मनुष्य बने बलदेव जी को ही भार्या रूप में प्रदान कर दो । वह बलदेवजी जगत् में अत्यन्त प्रशंसा के पात्र हैं और तुम्हारी यह पुत्री भी रत्न है, इसलिये इन दोनों का मिलन उपयुक्त रहेगा ।९२। श्री पराशरजी ने कहा-श्री ब्रह्माजी द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर महाराज रैवत भूतल पर लौटे और उन्होंने देखा कि सब मनुष्य छोटे कद के, रूपहीन, न्यून तेज वाले, अल्प-वीर्य और मतिहीन हो गये हैं ।९३। उन्होंने अपनी कुशस्थली नाम की नगरी को नितांत परिवर्तित रूप में पाया और स्फटिकाचल के समान वक्षःस्थल वाले बलरामजी को अपनी कन्या प्रदान कर दी ।९४। जब उन बलदेवजी ने उसे अत्यन्त ऊँचे शरीर को देखा तो अपने हल के अगले भाग से दबा कर छोटे कद की कर दी। ऐसा करने से वह रेवती भी उस समय की अन्य नारियों जैसे कद की हो गई ।९५। फिर बलरामजी ने राजा रैवत की उस कन्या से विधिवत् विवाह किया और राजा भी उन्हें कन्या देकर तप करने के लिये हिमालय पर्वत पर चले गये ।९६।

—※—

दूसरा अध्याय

यावच्च ब्रह्मलोकात्म ककुद्मा रैवतो नाभ्येति तावत्पुण्यजनसंज्ञा राक्षसास्तामस्य पुरीं कुशस्थली निजघ्नुः ।१। तच्चास्य भ्रातृशतं पुण्यजनात्रासाद्दिशो भेजे ।२। तदन्वयाश्च क्षत्रियास्सर्वदिक्ष्वभवन् ।३। धृष्टस्यापि धार्ष्टकं क्षत्रमभवत् ।४। नाभागस्यात्मजो नाभागसंज्ञोभवत् ।५। तस्याप्यम्बरीषः ।६। अम्बरीषस्यापि विरूपोऽभवत् ।७। विरूपात्पृषदश्वो जज्ञे ।८। ततश्च रथीतरः ।९। अत्र यं श्लोकःएते क्षत्रप्रसूता वै पुनश्चाङ्गिरसाः स्मृताः । रथीतराणां प्रवराः क्षत्रोपेता द्विजातयः ।१०।

श्री पराशरजी ने कहा-जब तक रैवत ककुद्मी ब्रह्मलोक से नहीं लौटे, तभी पुण्यजन नामक राक्षसों ने उनकी कुशस्थली पुरी को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया ।१। उनके जो सौ भाई थे, वे सब उन पुण्यजन राक्षसों के भय के कारण दसों दिशाओं में भाग गये ।२। उन्हीं सब के वंशधर क्षत्रियगण उन सब दिशाओं में फैल गये ।३। धृष्ट का वंश धार्ष्टक नाम क्षत्रियों के रूप में हुआ ।४। नाभाक का पुत्र भी नाभाग संज्ञक हुआ, जिसका पुत्र अम्बरीष और अम्बरीष का पुत्र विरूप हुआ । विरूप का पुत्र पृषदश्व से रथीतर की उत्पत्ति हुई ।५-९। उस रथीतर के विषय में यह श्लोक प्रसिद्ध हैं-रथीतर के वंशधर क्षत्रिय होते हुए भी आँगिरस कहला कर क्षत्रोपेत ब्राह्मण हुए ।१०।

इति क्षुतवतश्च मनोरिक्ष्वाकुः पुत्रो जज्ञे घ्राणतः ।११। तस्य पुत्रशतप्रधाना विकुक्षिनिमिदण्डख्यास्त्रयः पुत्र बभुवुः ।१२। शकुनिप्रमुखाः पञ्चाशतपुत्रा उत्तरापथरक्षितारी बभूवुः ।१३। चत्वारिंशदष्टौ च दक्षिणापथभूपालाः।१४। स चेक्ष्वाकुरष्टकायाश्श्राद्धमुत्पाद्य श्राद्धार्हं मांसमानयेति विकुक्षमिज्ञाप यामास ।१५। स तथेतिगृहीताज्ञो विधृतशरासनो वनमध्येत्यानेकशो मृगान् हत्वा श्रान्तोऽतिक्षुत्परीता विकुक्षिरेकं शशमक्षयत् । शेषं च मासमानीय पित्रे निवेदयामास ।१६। इक्ष्वाकुकुलाचार्यो वशिष्टस्वत्प्रो-

क्षणाय चोदितः प्राह । अलमनेनामेध्येनामिषेण दुरात्मना तव पुत्रेणैतन्मांसमुपहतं यतोऽनेन शशो भक्षितः।१७। ततश्चासौ विकुक्षिर्गुरुणैवमुक्तश्शशादसंज्ञमवाप पित्रा च परित्यक्तः ।१८। पितर्युपरते चासावखिलामेतां पृथ्वीं धर्मतश्शशास ।१९। शशादस्य तस्य पुरञ्जयो नाम पुत्रोऽभवत् ।२०।

छींकते समय मनु की नासिका से इक्ष्वाकु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ।११। उनके सौ पुत्रों में विकुक्षि, निमि और दण्ड यह तीन पुत्र प्रमुख हुये और उनके शकुनि आदि पचास पुत्र उत्तरापथ के और अड़तालीस पुत्र दक्षिणापथ के अधिकारी हुए ।१२-१४ राजा इक्ष्वाकु ने अष्टका श्राद्ध का आरम्भ किया और अपने पुत्र विकुक्षि को श्राद्ध-योग्य अन्न लाने की आज्ञा दी ।१५। उसने उनकी आज्ञा मानकर धनुष-बाण ग्रहण किया और वन में जाकर मृगों को मारने लगा। उस समय अत्यन्त क्षुधार्त्त होने के कारण विकुक्षि ने उनमें से एक खरगोश भक्षण कर लिया और शेष मांस पिता के समक्ष लाकर रखा ।१६। उस मांस को धोने की प्रार्थना किये जाने पर राजा इक्ष्वाकु के आचार्य वशिष्ठजी ने कहा कि— तुम्हारे दुरात्मा पुत्र ने इस मांस को अपवित्र कर दिया है, उसने इसमें से एक खरगोश का भक्षण किया है, इसलिये इस दूषित मांस की क्या आवश्यकता है ? ।१७। उसी समय से विकुक्षिक नाम शशाक हो गया और गुरु के वचन सुनकर पिता ने उसका त्याग कर दिया ।१८। परन्तु पिता की मृत्यु हो जाने पर उसी ने इस पृथ्वी पर धर्मपूर्वक राज्य किया ।१९। उस शशाक का पुत्र पुरञ्जय हुआ ।२०।

तस्येदं चान्यत् ।२१। पुरा हि त्रेतायां देवासुरयुद्धमतिभीषणमभवत् ।२२। तत्र चातिबलिभिरसुरैरमराः पराजितास्ते भगवन्तं विष्णुमाराधयाञ्चक्रुः।२३। प्रसन्नाश्च देवानामनादिनिधनोऽखिलजगत्परायणो नारायणः प्राह ।२४। ज्ञाननेतन्मया युष्माभिर्यदभिलषितं तदर्थमिदं श्रूयताम्।२५।पुरञ्जयो नाम राजर्षेश्शशादस्य तनयः क्षत्रियवरोंयस्तस्य शरीरद्भिरेऽहमंशेन स्वयमेवावतीर्य तानशेषानसुरान्निहनिष्यामि तद्भवद्भिः पुरञ्जयोऽसुरबधार्थमुद्योगं कार्यतामिति ।२६।

पुरञ्जय का भी एक दूसरा नाम पड़ा ।२१। पूर्वकाल की बात है-त्रेता युग में एक बार अत्यन्त भयङ्कर देवासुर युद्ध हुआ ।२२। उसमें अत्यन्त बली दैत्यों से देवगण पराजित हो गये और तब उन्होंने भगवान् बिष्णु की आराधना की ।२३। उस समय आदि-अन्त से रहित, विश्व का परिपालन करने वाले भगवान् श्री नारायण ने प्रसन्न होकर उन देवताओं से कहा ।२४। आपकी जो कामना है, उसे मैं जान गया हूँ, अब उसके विषय में मेरी बात सुनो ।२५। राजर्षि शशाद के पुत्र पुरंजय के देह में स्वयं मैं ही अपने अंश से अवतीर्ण होकर उन सब दैत्यों का संहार करूँगा । इसलिये तुम उस पुरंजय को दैत्यों से मारने के कार्य में तत्पर करो ।२६।

एतच्च श्रुत्वा प्रणम्य भगवन्तं विष्णुममराः पुरञ्जयसकाशमाजग्मुरूचुश्चैनम् ।२७। भो भो क्षत्रियवर्यास्माभिरभ्यर्थितेन भवतास्मकिमरातिवधोद्यतानां कर्तव्यं साहाय्यमिच्छामः तद्भवतास्माकमभ्यागतानां प्रणयभङ्गो न कार्यं इत्युक्तः पुरञ्जयः प्राह ।२८। त्रैलोक्यनाथो योयं युष्माकमिन्द्रः शतक्रतुस्य यद्ययं स्कंधाधिरूढो युष्माकमरातिभिस्सह योत्स्ये तदहं भवतां सहायः स्याम् ।२६। इत्याकर्ण्य समस्तदेवैरिन्द्रेण च बाढमित्येवं समन्वीप्सितम् ततश्च शतक्रतोर्वृषरूपधारिणः ककुदि स्थितोऽतिरोषसमन्वितो भगवतश्चराचरगुरोरच्युतस्य तेजसाप्यायितो देवासुरसंग्रामे समस्तानेवासुरान्निजघान।३१। यतश्च वृषभककुदि स्थितेन राज्ञा दैतेयेबल निषूदितमतश्चासौ ककुत्स्थसंज्ञामवाप ।।३२।।

यह सुनकर भगवान् को प्रणाम करके देवगण वहाँ से चल दिये और पुरंजय के पास पहुँच कर बोले ।२७। हे क्षत्रियवर ! अपने शत्रुओं को नष्ट करनेमें तत्पर हुए हम अपनी सहायता के लिये यहाँ आये हैं। आप हमारी याचना को अस्वीकार न करें । इस पर पुरञ्जय बोले ।२८। इस त्रैलोक्य नाथ शतक्रतु इन्द्र के कन्धे पर आरूढ़ होकर यदि मैं युद्ध कर सकूँ तो अवश्य ही आपकी सहायता कर सकता हूँ ।२९। उनकी बात सुन कर सभी देवगण सहित इन्द्र ने उसे स्वीकार कर लिया ।३०। और वृषभ

रूपधारी इन्द्र की पीठ पर आरूढ़ होकर भगवान् विष्णु के तेज से परिपूर्ण हुये वह राजा युद्ध में पहुँचे और उन्होंने क्रोधपूर्वक उन सब दैत्यों का वध कर दिया ।३१। उन्होंने इन्द्र रूपी बैल के ककुद (कन्धे) पर चढ़ कर दैत्य-सेना का संहार किया था, इसलिये वह ककुत्स्थ नाम से विख्यात हुए ।३२।

ककुत्स्थस्याप्यनेना पुत्रोऽभवत्।३३। पृथुरनेनसः ३४ पृथोर्विष्टराश्व ।४५। तस्यापि चान्द्रो युवनाश्व ।३६। चान्द्रस्य तस्य युवनाश्वस्य शावस्तः यः पुरीं शावस्तीं निवेशयामास ।३७। शावस्तस्य वृहदश्वः ।३८। तस्यापि कुवलयाश्वः ।३९। योऽसावुदकस्य महर्षेरपकारिणं धुन्धुनामानमसुरं वैष्णवेन तेजसाप्यायिता पुत्रसहस्रैरेकविंशद्भिः परिवृतो जघान धुन्धुमारसंज्ञामवाप ।४०। तस्य च तनयास्समस्ता एव धुन्धुमुखनिःश्वासाग्निना विप्लुष्टा विनेशुः ।४१। दृढाश्वचन्द्राश्वकपिलाश्वाश्च त्रयः केवलं शेषिताः ।४२।

ककुत्स्थ का पुत्र अनेना हुआ ।३३ अनेना का पुत्र पृथु पृथु का विष्टराश्व का चान्द्र युवनाश्व और उसका पुत्र शावस्त हुआ, जिसने शावस्ती पुरी को बसाया ।३४-३७। शावस्त बृहदश्व और वृहश्व के कुवलयाश्व हुआ, जिसने भगवान् विष्णु के तेज से परिपूर्ण होकर अपने इक्कीस पुत्रों को साथ लेकर महर्षि उदक का उपकार करने वाले धुन्धु नामक दैत्य का संहार किया था, इसलिये उसका नाम धुन्धुमार भी पड़ गया था ।३८-४०। उनके सब पुत्र धुंधु के मुख से निर्गत हुई श्वाच्छ्वास रूपी अग्नि में भस्म हो गये ।४१। उनमें से दृढाश्व, चन्द्राश्व और कपिलाश्व नामक तीन पुत्र ही शेष बचे थे ।४२।

दृढाश्वाद्धर्यश्वः ।४३। तस्माच्च निकुम्भः ।४४। निकुम्भस्यामिताश्वः ।४५। ततश्च कृशाश्वः ।४६। तस्माच्च प्रसेनजित् ।४७। प्रसेनजितो युवनाश्वोऽभवत् ।४८। तस्य चापुत्रस्यातिनिर्वेदान्मुनीनामाश्रममण्डले निवसतो दयालुभिर्मुनिभिरपत्योत्पादनायेष्टिः कृता ।४९। तस्यां च मध्यरात्रौ निवृत्तायां मन्त्रपूतजलपूर्णं कलशं वेदिमध्ये निवेश्य ते मुनयः सुषुपुः ।५०। सुप्तेषु तेषु अतीव तृट्प-

रीतस्स भूपालस्तमाश्रम विवेश ।५१। सुप्तांश्च तानृषीन्नैवोत्थापयामास ।५२। तच्च कलशमपरिमेयमाहात्म्यमन्त्रपूतं पपौ ।५३। प्रबुद्धाश्च ऋषयः पप्रच्छुः केनैतन्मत्रपूतं वारि पीतम् ।५४। अत्र हि राज्ञो युवनाश्वस्य पत्नी महावलपराक्रमं पुत्रं जनयिष्यति । इत्याकर्ण्य श राजा अजानता मया पीतमित्याह ।५५। गर्भश्च युवनाश्वस्योदरे अभवत् क्रमेण च ववृधे ।५६। प्राप्तसमयश्च दक्षिणं कुक्षिमवनिपतेर्निर्भिद्य निश्चकाम ।५७। न चासौ राजा ममार ।५८।

दृढाश्व से हर्षश्व हर्षश्व से निकुम्भ, निकुम्भ से अभिताश्व, अमिताश्व से कृशाश्व, कृशाश्व से प्रसेनजित् और प्रसेमजित से युवनाश्व उत्पन्न हुआ ।४३-४८। वह युवनाश्व सन्तानहीन होने के कारण दुःखित चित्त से महर्षियों के आश्रम में रहने लगा ।४९। आधी रात के समय जब वह यज्ञ सम्पूर्ण हो गया, तब महर्षिगण मंत्रपूत जल से परिपूर्ण कलश को वेदी में रख कर सो गये ।५०। उनके सोने के पश्चात् राजा को अत्यंत प्यास लगी और उसने यज्ञ स्थान में प्रवेश किया और ऋषियों को शयन करते हुये देखकर उसने उन्हें नहीं जगाया ।५१-५२। प्यास को रोक न सकने के कारण उसने उसी मंत्रपूत जल को पान कर लिया ।५३। जब ऋषिगण की निन्द्रा भंग हुई तब उन्होंने कलश को जल-रहित देखा तो पूछा कि मन्त्रपूत जल को किसने पान किया है ? ।५४। इसी जल को पीकर युवनाश्च की भार्या अत्यन्त बल-विक्रम युक्त पुत्र को जन्म देगी । तब राजा ने कहा-इस बात को बिना जान मैंने ही इस जल को पी लिया है ।५५। इस प्रकार युवनाश्व के उदर में गर्भ स्थित हो गई और वह गर्भ क्रमशः वृद्धि को प्राप्त होने लगा ।५६। समय प्राप्त कर राजा की दाहिनी कोख को फोड़ता वह गर्भ बाहर निकल आया ।५७। परन्तु राजा उससे मरा नहीं ।५८।

जातो नामैष कं धास्यतीति ते मुनयः प्रोचुः।५९। अथागत्य देवराजोऽब्रवीत् मामयं धास्य तोति ।६०। ततो मांधातृनामा सोऽभवत् । वक्त्रे चास्य प्रदेशिनी देवेन्द्रेण न्यस्ता ताँ पपौ ।६१। ताँ चामृतस्राविणीमास्वाद्याह्न्वैव स व्यवर्द्धत ।६२। ततस्तु मान्धाता

चक्रवर्ती सप्तद्वीपां महीं बुभुजे ।६३। तत्राय श्लोकः ।६४। यावत्सूर्य उदेत्यस्त यावच्च प्रतितिष्ठति । सर्वं तद्यौवनाश्वस्य मांधातुः क्षेत्रमुच्यते ।६५।

उस बालक के उत्पन्न होने पर ऋषिगण बोले-यह बालक क्या पीकर जीवित रहेगा ? ।५९। तभी देवराज इन्द्र ने वहाँ उपस्थित होकर कहा-यह मेरे आश्रय में जीवित रहेगा ।६०। इसलिये उसका मान्धाता नाम पड़ा । इन्द्र ने उसके मुख में अपनी तर्जनी अँगुली देकर अमृत पान कराया, जिससे वह उसी दिन बढ़ गया ।६१-६२। उसी समय मान्धाता सातों द्वीप वाली सम्पूर्ण पृथ्वी का चक्रवर्ती राजा हुआ ।६२। इसके विषय में यह श्लोक प्रसिद्ध है-सूर्योदय के स्थान से सूर्यास्थ के स्थान पर्यन्त सभी क्षेत्र युवनाश्व-पुत्र मानन्धाता के आधीन है ।६४-६५।

मान्धाता शतबिन्दोर्दुहितरं बिन्दुमतीमुपयेमे ।६६। पुरुकुत्समम्बरीषं मुचुकुन्दं च तस्यां पुत्रत्रयमुत्पादयामास।६७ पञ्चाशद्दुहितरस्तस्यामेव तस्य नृपतेर्बभूवुः ।६८ तस्मिन्नन्तरे वहवृचश्च सौभरिर्नाम महर्षिपन्तर्जले द्वादशाब्दं कालमुवास ।६९।तत्र चान्तर्जले सम्पदो मामतिबहुप्रजोऽतिमात्रप्रमाणो मीनाधिपतिरासीत् ।७०। तस्य च पुत्रपौत्रदौहित्राः पृष्ठतोऽग्रतः पार्श्वयोः पक्षपुच्छशिरसां चोपरि भ्रमन्तस्तेनैव सदाहर्निशमतिनिर्वृता रेमिरे ।७१। स चापत्यस्पर्शोपचीयमानप्रहर्षप्रकर्षो बहुप्रकारं तस्य ऋषेः पश्ययस्तैरात्मजपुत्रपौत्रदौहित्रादिभिः सहानुदिनं सुतरां रेमे।७२। अथान्तर्जलावस्थितस्सौभरिरेकाग्रतस्समाधिमपहायानुदिनं तस्यमत्स्यस्यात्मजपुत्रपौत्रदौहित्रादिभिस्सहाति रमणीयतामवेक्ष्याचिन्तयत् ।७३। अहो धन्योऽयमीदृशमनभिमतं योन्यन्तरमवाप्यैभिरात्मजपुत्रादिभिस्सह रममाणोऽतीवास्माकं स्पृहामुत्पादयति ।७४। वयमप्येवं पुत्रादिभिस्सह ललितं रंस्यामहे इत्येवमभिकाङ्क्षन् स तस्मादन्तर्गलान्निष्क्रम्य सन्तानाय निवेष्टुकामः कन्यार्थं मान्धातारं राजा नमरण गच्छत् ।।७५।।

शतबिन्दु की पुत्री बिन्दुमती से उस मान्धाता ने विवाह किया, जिससे पुरुकुत्स, अम्बरीष और मुचुकुन्द नामक तीन पुत्र और पचास

कन्याएँ उत्पन्न हुईं ।६७-६८। उसी काल की बात है कि बहवृच-पुत्र सौभरि ऋषि ने बारह बर्ष तक जल में रहकर तप किया ।६९। उसी जल में सम्मद नामक एक विशाल देह वाला मत्स्यराज रहता था जिसके बहुत सी सन्तानें थीं ।७०। उसके पुत्र, पौत्र, दौहित्र आदि उसके आगे पीछे, इधर-उधर तथा पूँछ और मस्तक पर हर्षित होते हुए घूमते हुए उसके साथ क्रीड़ा रत रहते थे ।७१। और वह भी अपने बालकों के कोमल स्पर्श से अत्यंत प्रसन्न होकर उन मुनि के सामने ही दिन रात खेलता रहता था ।७२। इस प्रकार जल में रहते हुए सौभरि ऋषि अपनी तन्मयतायुक्त समाधि को त्याग कर अहिर्निश उस मत्स्यराज की उन बालकों के साथ होने वाली क्रीड़ा को देखते रहते और फिर उन्होंने सोचा ।७३। अहो, यह कैसा कृतकृत्य हैं जो ऐसा निकृष्ट योनि को प्राप्त हुआ भी अपने पुत्र, पौत्र दौहित्रादि के साथ निरन्तर क्रीड़ा करता हुआ हमारे हृदय में ईर्ष्या उत्पन्न कर रहा है ।७४। इसी प्रकार हम भी अपने पुत्रादि के साथ अत्यंन्त ललित बालक्रीड़ा करें। ऐसी कामना करते हुए ऋषि उस जल से बाहर निकले और सन्तान के निमित्त गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होने की अभिलाषा करते हुए कन्या प्राप्ति के हेतु राजा मान्धाता के यहाँ पहुँचे ।७५।

आगमनश्रवणसमनन्तरं चोत्थाय तेन राज्ञा सम्यगर्घ्यादिना सम्पूजितः कृतासनपरिग्रहः सौभरिरुवाच राजानम् ।७६।
निवेष्टुकामोऽस्मि नरेन्द्र कन्यां प्रयच्छ मे प्रणय विभङ्क्षोः
न ह्यर्थिनः कार्यदशादुपेताः ककुत्स्थवंशे विमुखाः प्रयान्ति ७७।
अन्येऽपि सन्त्येव नृपाः पृथिव्यां मान्धातरेषां तनयाः प्रसूताः ।
किं त्वर्थिनामर्थितदानदीक्षाकृतव्रत श्लाघ्यमिदं कुलं ते ।७८।
शतार्धसंख्यास्तव सन्ति कन्यास्तासां ममैकां नृपते प्रयच्छ ।
यत्प्रार्थनाभङ्गभयाद्बिभेमि तस्मादहं राजवरातिदुःखात् ।७९।

इति ऋषिवचनमाकर्ण्य स राजा जराजर्जरतदेहमृषिमालोक्य प्रत्याख्यानकातरस्तस्माच्च शापभीतो बिभ्यत्किञ्चिदधोमुखश्चिरं दध्यौ च ।८०।

नरेन्द्र कस्मात्समुपैषि चिन्ता मसह्यमुक्तं न मयात्र किंचत्।
यावश्यदेया तनया तयैव कृतार्थता नो यदि किं न लब्धा ।८१।

ऋषि के आने की बात सुनकर राजा अपने सिंहासन से उठे और उन्होंने ऋषि को अर्घ्य देकर उनका पूजन किया। तब श्रेष्ठ आसन को प्राप्त हुये सौभरि ऋषि राजा से बोले ।७६। सौभरि ऋषि ने कहा—हे राजन्! मैं कन्या प्राप्त करने का इच्छुक हूँ इसलिये तुम मुझे एक कन्या प्रदान करो। मेरा प्रणय भङ्ग न हो, वह कार्य करो। क्योंकि ककुत्स्थ वंश में किसी प्रकार की कामना लेकर आया हुआ कोई भी याचक खाली हाथ कभी नहीं जाता ।७७। हे मान्धाता! भूतल पर अन्य अनेक राजा है और उनके यहाँ कन्याएँ हैं, परन्तु याचकों की इच्छित वस्तु प्रदान करने में दृढ़-प्रतिज्ञ तो तुम्हारा यही वंश विख्यात है ।७८। हे राजन्! तुम अपनी पचास कन्याओं में से मुझे केवल एक ही कन्या प्रदान कर दो, क्योंकि मैं इस कष्ट से अत्यन्त भयभीत हूँ कि मेरी प्रार्थना भंग न हो जाय ।७९। श्री पराशरजी ने कहा-ऋषि के वचन सुनकर उनके वृद्धवस्था से जीर्ण हुये देह को देखता हुआ देह को देखता हुआ राजा शाप की आशङ्का से भयभीत होकर अपने मुख को नीचा किए हुए मौन चिन्तन करने लगे ।८०। सौभरि ने कहा-हे राजन्! तुम व्यर्थ चिन्तन कर रहे हो? मैंने कोई ऐसी बात तो कही नहीं, जो असह्य समझी जा सके। तुम्हें अपनी जो कन्या एक दिन किसी को अवश्य देनी है उसे प्राप्त कर यदि मैं कृतार्थ हो सकूं तो तुम्हें क्या उपलब्ध नहीं हो सकता? ।८१।

अथ तस्य भगवतश्शापभीतस्सप्रश्रयस्तमुवाचासौ राजा।८२। भगवन् अस्मत्कुलस्थितिरियं य एव कन्याभिरुचितोऽभिजनवान्वर स्तस्मै कन्या प्रदीयते भगवद्याञ्चा चास्मन्मनोरथानामप्यतिगोचरवर्त्तिनी कथमप्येषा सञ्जाता तदेवमुपस्थिते न विद्मः किं कुर्म इत्येतन्मया चिन्त्यत इत्यभिहिते च तेन भूभुजा मुनिरचिन्तयत ।८३। अयमन्योऽस्मत्प्रत्याख्यानोपायो वृद्धोऽयमनभिमतः स्त्रीणां किमुत कन्यकानामित्यमुना सञ्चिन्त्यैतदभिहितमेवमस्तु तथा

करिष्यामीति सञ्चिन्त्य मान्धातारमुवाच ।८४ यद्येवं तदादिश्य-तामस्माकं प्रवेशात कन्यान्त:पुरबर्षवरो यदि कन्येव काचिन्माम-भिलषति तदाहं दारसंग्रहं करिष्यामि अन्यथा चेत्तदलमस्माकमे-तेनातीतकालारम्भणेनेत्युक्त्वा विरराम ।८५।

श्री पराशरजी ने कहा-फिर महर्षि सौभरि के शाप को अशंका से भयभीत हुए राजा मान्धाता विनम्रता पूर्वक उन ऋषि से बोले ।८२। राजा ने कहा-हे भगवान् ! हमारे वंश की यह परम्परा रही है कि कन्या जिस सत्कुलोत्पन्न वर को पसन्द करे उसी को वह प्रदान की जाती है । आपकी याचना हमारे अभीष्ट से भी परे हैं, और न जाने किस प्रकार इसकी उत्पत्ति हुई है ? इस अवस्था में मुझे क्या करना चाहिये, यह नहीं समझ पा रहा हूँ और इसी बात की चिन्ता है । राजा मान्धाता की यह बात सुनकर सौभरि ऋषि विचार करने लगे ।८३। मुझे टालने के लिए यह एक अन्य उपाय प्रयोग किया गया है । यह वृद्ध है, इसे प्रौढ़ा स्त्रियाँ भी पसन्द नहीं कर सकतीं तो कन्याओं का कहना ही क्या है ? राजा ने यही सोचते हुए मुझे टालने की चेष्टा की है । यदि ऐसा है तो मैं भी इसका उपाय करूँगा ऐसा विचार करके उन्होंने राजा से कहा ।८४। यदि ऐसा है तो कन्याओं के अन्त:पुर रक्षक को मेरे प्रवेश की आज्ञा दो । फिर यदि कोई कन्या स्वयं ही मुझे पसंद करेगी, तभी मैं स्त्री-परिग्रह करूँगा, अन्यथा इस ढलती हुई आयु में व्यर्थ के इस उद्यम से कोई प्रयोजन ही नहीं रखूँगा । यह कह कर वह चुप हो गये ।८५।

ततश्च मान्धात्रा मुनिशापशङ्कितेन कन्यान्त:पुरवर्षवरस्स-माज्ञप्तः ८६। तेन सह कन्यान्त:पुरं प्रविशन्नेव भगवानखिलसिद्ध-गन्धर्वेभ्योऽतिशयेन कमनीयं रूपमकरोत् ।८७। प्रवेश्य चतमृषिम-न्त:पुरे वर्षवरस्ता: कन्या:प्राह८८। भवतीनां जनयिता महाराज-स्समाज्ञापयति ।८९। अयमस्मान् ब्रह्मर्षि: कन्यार्थी समभ्यागत:९०। मया चास्य प्रतिज्ञातं यद्यस्मत्कन्या या काचिद्भगवन्तं वरयति तत्कन्यायाश्छन्दे नाहं परिप-थान- करिष्यामीत्याकर्ण्य सर्वा एव

ताः कन्याः सानुरागाः सम्प्रमदाः करेणव इवेभयूथपतिं तमृषिमहमहमिकया वरयाम्बभूवुरूचुश्च ।९१।

यह सुन कर ऋषि के शाप भय से भीत हुए राजा ने कन्याओं के अन्तःपुर रक्षक को उनके प्रवेश की आज्ञा दी ।८६। तब उसके साथ अन्तःपुर में जाते हुए महर्षि सौभरि ने रूप को सभी सिद्धों और गन्धर्वों से भी अत्यन्त कमनीय बना लिया ।८७। इस प्रकार उन ऋषि श्रेष्ठ को कन्याओं के अन्तःपुर में ले जाकर उसके रक्षक ने कन्याओं से कहा ।८८। तुम्हारे पिता महाराज मान्धाता ने आज्ञा दी है कि ब्रह्मर्षि हमारे यहाँ एक कन्या की इच्छा से आये हैं और मैंने इनको वचन दिया है कि मेरी जो कन्या इन्हें स्वेच्छा से वरण करना चाहेगी, मैं उसकी स्वच्छन्दता में बाधक नहीं बनूँगा। उसकी यह बात सुन कर उन सब कन्याओं ने यूथपति हाथी का वरण करने वाली हथनियों के समान अनुराग और आह्लाद सहित सहसा कहा कि मैं ही इनका वरण करती हूँ—मैं ही करती हूँ। इस प्रकार कहती हुई सभी कन्याओं ने उन मुनि को वरण कर लिया। उस समय वे सब परस्पर कहने लगीं ।८९-९१।

अलं भगिन्योऽहमिमं वृणोमि वृणोम्यहं नैष तवानुरूपः ।
ममैष भर्त्ता विधिनैव सृष्टस्सृष्टाहमस्योपशमं प्रयाहि ।९२।
वृतो मयायं प्रथमं मयायं गृहं विशन्नेव विहन्यसे किम् ।
मया मयेति क्षितिपात्मजानां तदर्थमत्यर्थकलिर्बभूव ।९३।
यदामुनिस्ताभिरतीवहार्दाद्वृतस्स कन्याभिरनिन्द्यकीर्तिः ।
तदा स कन्याधिकृतो नृपाय यथावदाचष्ट विनम्रमूर्तिः ।९४।

तदवगमात्किङ्किमेतत्कथमेतत्किं किं करोमि किं मयाभिहितमित्याकुलमतिरनिच्छन्नपि कथमपि राजानुमेने।९५। कृतानुरूपविवाहश्च महर्षिस्सकला एव ताः कन्यास्स्वमाश्रममानयत्।९६

अहो बहिनो! तुम सब क्यों व्यर्थ चेष्टा कर रही हो, यह तुम्हारे तो अनुरूप ही नहीं है मैं ही इनका वरण करती हूँ। विधता ने ही इन्हें रा पति और मुझे इनकी पत्नी निश्चित किया है, इसलिये तुम अपने

प्रयत्न में शांत होओ ।९२। इनके अन्तःपुर में घुसते ही मैंने इन्हें वरण कर लिया था, अब तुम क्यों इन पर न्यौछावर हो रही हो ? इस प्रकार मैंने उनका वरण किया, मैंने प्रथम ही वरण कर लिया कहती हुई उन सभी राज-कन्याओं में कलह उपस्थित हो गया ।९३। फिर उन सभी कन्याओं ने अत्यन्त अनुराग के वशीभूत होकर उन अनिंद्ययश वाले मुनिश्रेष्ठ का वरण करलिया। तब अन्तःपुर रक्षक ने राजा के पास जाकर सब वृत्तांत यथावत निवेदन किया ।९४। श्री पराशरजी बोले-सब वृत्तांत जानकर राजा सोचने लगे कि यह क्या कह रहा है ? यह किस प्रकार सम्भव हुआ ? अब मुझे क्या करना चाहिए ? मैंने उन्हें क्यों वैसा कहा ? इस प्रकार व्याकुल होते हुए राजा ने अनिच्छापूर्वक अपने वचन को निभाया तथा अपने अनुरूप विवाह-संस्कार के सम्पन्न होने पर उन सब कन्याओं को साथ लेकर महर्षि सौभरि अपने आश्रम को गये ।९५-९६।

तत्र चाशेष शिल्पकल्पप्रणेतारं धातारमिवान्यं विश्वकर्माण-माहूय सकलकन्यानामेकैकस्याः प्रोत्फुल्लपङ्कजाः कूजत्कलहंसका-रण्डवादिविहङ्गमाभिरामजलाशयास्सोपधानाःसावकाशास्साधुश य्यापरिच्छदाः प्रसादाः क्रियंतामित्यादिदेश ।९७। तच्च तथैवा-नुष्ठितमशेषशिल्पविशेषाचार्यस्त्वष्टा दर्शितवान् ।९८। ततः परम-र्षिणा सौभरिणाज्ञप्तस्तेषु गृहेष्वनिवार्यानन्दनामा महानिधिरा-साञ्चक्रे ।९९। ततोऽनवरतेन भक्ष्यभोज्यलेह्याद्यु पभोगैरागता-नुगतभृत्यादीनहर्निशमशेषगृहेषुताः क्षितीशदुहितारो भोजयामासुः ॥१००॥

वहाँ पहुँच कर उन्होंने शिल्पकला के प्रणेता विश्वकर्मा को आहूत कर उनसे कहा कि इन सब कन्याओं के लिए पृथक-पृथक भवन बना दो, जिनमें विकसित हुए कमल, कूजते हुये हंस और कारण्डवादि जल-पक्षियों से परिपूर्ण जलाशय, सुन्दर उपधान, शय्या और परिच्छदादि हों, उनमें खुला हुआ स्थान पर्याप्त रूप से हो ।९७। यह सुनकर सम्पूर्ण शिल्पकला

के विशेष आचार्य विश्वकर्मा ने उनकी इच्छा के अनुसार ही सब निर्मित करके उन्हें दिखाया ।९८। फिर महर्षि सौभरि की आज्ञा से उन भवनों में 'अनिवार्य आनन्द' नाम की महानिधि विराजमान हो गई ।९९। इससे वहाँ अनवरत भक्ष्य, भोज्य लेह्य आदि सामग्रियों के द्वारा वे राजपुत्रियाँ आगत अतिथियों और अपने अनुगत भृत्यों को तृप्त करने में रात दिन समर्थ हुई ।१००।

एकदा तु दुहितृस्नेहाकृष्टहृदयस्स महीपतिरतिदु:खितास्ता उत सुखिता वा इति विचिन्त्य तस्य महर्षेराश्रमसमीपमुपेत्य स्फुरदंशुमालाललामांस्फटिकमयप्रासादमालामतिरम्योपवनजलाशयाँ ददर्श।१०१। प्रविश्य चैकं प्रासादामात्मजांपरिष्वज्य कृतासन परिग्रह: प्रवृद्धस्नेहनयनाम्बुगर्भनयनोऽब्रवीत् ।१०२। अप्यत्र वत्से भवत्या: सुखमुतं किञ्चदसुखमपि ते महर्षिस्स्नेहवानुत न: रमयंतेऽस्मद्गृहवास इत्युक्ता त तनया पितरमाह ।१०३। तातातिरमणीय: प्रासादोऽत्रातिमनोज्ञमुपवनमेते कलवाक्यविहंगमाभिरता: प्रोत्फुल्लपद्माकरजलाशया: मनोऽनुकूलभक्ष्यभाज्यानुकुलेपनवस्त्रभूषणादिभोगो मृदूनि शयनासनोनि सर्वसम्पत्समेतं मे गार्हस्थ्यम् ।१०४। तथापि केन वा जन्मभूमिर्न स्मर्यते ।१०५। त्वत्प्रसादादिदमशेषमतिशोभनम्१०६ किं त्वेकं ममैतद्दु:खकारणं यदस्मगृहान्महर्षिरयम्नद्भर्त्ता न निष्कामति ममैव केवलमतिप्रीत्या समीपपरिवर्ती नान्यासामस्मद्भगिनीनाम् ।।१०७।।

फिर किसी एक दिन राजा मान्धाता अपनी कन्याओं के स्नेह से आकृष्ट हृदय सहित उनके सुखी या दुखी होने के विषय में जानने की उत्कण्ठा से महर्षि के आश्रम के समीप पहुँचे। तब उन्हें वहाँ अत्यंत रमणीक उपवनों और जलाशयों से सुशोभित स्फटिकमय प्रासादों की पंक्ति दिखाई पड़ी, जो स्फुर अंशुमालाओं से अत्यंत ललाम प्रतीत होती थी ।१०१। फिर वह एक भवन में जाकर अपनी पुत्री को हृदय से लगाकर आसन पर बैठ गये और स्नेहसिक्त नयनों में जल भरते हुये कहने

लगे ।१०२। हे वत्से ! तुम यहाँ सुख-पूर्वक तो रह रही हो ? किसी प्रकार का कष्ट तो नहीं पातीं ? महर्षि तुमसे प्रेम तो करते हैं ? क्या तुम्हें अपने पितृगेह की भी कभी याद आती है ? पिता की बात सुनकर राजकुमारी बोलीं, हे पिताजी ! यह प्रसाद अत्यंत रमणीय है यह उपवनादि भी अत्यंत चित्त कर्षक हैं, विकसित कमलों वाले इन जलाशयों में जल-पक्षी सदा ही मधुर बोली बोलते हैं, भक्ष्य भोज्यादि खाद्य तथा अङ्गराग, वस्त्राभूषण, सुकोमल शय्या, मृदु आसन सभी मन-पसंद हैं। इस प्रकार हमारा गार्हस्थ जीवन अत्यंत वैभव सम्पन्न और सुखी है ।१०४। फिर भी अपने जन्म स्थान का स्मरण भला किसे न होगा ।१०५। यद्यपि आपके प्रसाद से सब कुछ अत्यंत शोभायमान है, फिर भी मुझे एक अत्यंत दुःख है कि हमारे पति यह महर्षि मेरे भवन से कभी निकलते ही नहीं, मुझ पर भी अत्यधिक स्नेह करने के कारण यह मेरे ही पास रहे आते हैं, मेरी अन्य बहिनों के पास कभी नहीं जाते ।१०६-१०७।

एवं च मम सादर्योऽतिदुःखिता इत्येवमतिदुःखकारणमित्युक्तस्तया द्वितीयं प्रासादमुपेत्य स्वतनयां परिष्वज्योप विष्टस्तथैव पृष्टवान्।१०८। तथापि च सवमेतत्तत्प्रासाद्यु पभोगसुखं भृशमाख्यातं ममैव केवलमतिप्रीत्या पार्श्वपरिवर्त्ती, नान्यासामस्मद्भगिनीनामित्येवतादि श्रुत्वा समस्तप्रासादेषु राजा प्रविवेशतनयां तनयाँ तथैवापृच्छत् ।१०९। सर्वाभिश्च ताभिस्तथैवाभिहितः परितोषविस्मयनिर्भर विवशहृदयो भगवन्तं सौभरिमेकान्तावस्थित मुपेत्य कृतपूजोऽब्रवीत् ।११०। दृष्टस्ते भगवन् सुमहानेष सिद्धिप्रभावो नैवंविधमन्यस्य कस्यचिदस्माभिर्विभूतिभिर्विलसितमुपलक्षितं यदेतद्भगवतस्तपसः फलमितमिपूज्य तमृषि तत्रैव तेन ऋषिवर्येण सह किञ्चत्कालमभिमतोपभोगान् बुभुजे स्वपुरं च जगाम ।।१११।।

इससे मेरी अन्य बहिनें अत्यंत दुःखित होंगी । इसी से मैं अत्यंत दुःखी हूँ । इसके पश्चात राजा दूसरे भवन में पहुँचे और अपनी कन्या का

आलिंगन कर आसन पर बैठे और उससे भी उन्होंने वही प्रश्न किया १०८ उस राजकुमारी ने भी उसी के समान भवनादि सब सुख भोगों का वर्णन करके उसी प्रकार कहा कि मुझ में अत्यन्त प्रेम होने के कारण महर्षि केवल मेरे ही पास रहते हैं, मेरी किसी अन्य बहिन के पास नहीं जाते। इस बात को सुन कर राजा एक-एक करके सभी भवनों में गये और अपनी सभी कन्याओं से वैसा ही प्रश्न किया।१०९। तथा उन सब ने भी उन्हें वैसा ही उत्तर दिया। सब की बात सुनने के अनन्तर राजा अत्यन्त आनन्दित और विस्मित हुए तथा एकांत में स्थित महर्षि सौभरि का पूजन करके उन्होंने निवेदन किया।११०। हे भगवान् ! यह सब प्रभाव आपकी हीं योग-सिद्धि का दिखाई दे रहा है। इस प्रकार के ऐश्वर्य के सहित विलास करते हुए कभी किसी को नहीं देखा। यह सब आपके तप का ही प्रभाव है। राजा ने इस प्रकार महर्षि का अभिवादन कर कुछ काल तक उनके साथ आनन्दोपभोग किया और अन्त में अपने नगर को वापिस लौटे।१११।

कालेन गच्छता तस्य तासु राजतनयासु पुत्रशतं सार्धमभवत्।१२२। अनुदिनानुरूढ़स्नेह प्रसरश्च स तत्रातीव ममताकृष्टहृदयोऽभवत् ।११३। अप्येतेऽमत्पुत्राः कलभाषिणः पद्भ्याँ गच्छेयुः अप्येते यौवनिनो भवेयुः अपि कृतदारानेतान् पश्येमप्येषां पुत्रा भवेयुः अप्येतत्पुत्रान्पुत्रसमन्वितान्पश्यामीत्यादिमनोरथाननुदिनं कालसम्पतिप्रवृद्धानुपेक्ष्यैतच्चिन्तयामास ।।११४।

अहो मे मोहस्यातिविस्तारः ।।११५।।
मनोरथानाँ न समाप्तिरस्ति वर्षायुतेनापि तथाब्दलक्षैः।
पूर्णेषु पूर्णेषु मनोरथानामुत्पत्तयस्सन्ति पुनर्नवानाम् ।११६।
पद्भ्यां गता यौवनिनश्च जाता दारैश्च संयोगमिताः प्रसूताः।
दृष्टाःसुतास्तत्तनयप्रसूतिं द्रष्टुं पुनर्वाञ्छति मेऽन्तरात्मा ११७
द्रक्ष्यामि तेषामिति चेत्प्रसूतिं मनोरथो मे भविता ततोन्यः
पूर्णोऽपि तत्राप्यपरस्य जन्म निवर्यते केन मनोरथस्य ।११८।

आमृत्युतो नैव मनोरथानामन्तोऽस्ति विज्ञातमिदं मयाद्य ।
मनोरथासक्तिपरस्य चित्तं न जायते वै परमार्थसंगि ।११९।

कालान्तर में उन राजकुमारियों के द्वारा सौभरि मुनिने डेढ़सो पुत्र उत्पन्न किए। इससे दिनों दिन बढ़ते हुए स्नेह के कारण उनका हृदय अत्यन्त ममता से भर गया।११२-११३। उस समय वह सोचने लगे कि क्या मेरे यह पुत्र मधुर बोली सुनायेंगे ? अपने पैरों से चलेंगे ? युवावस्था को प्राप्त होंगे। क्या मैं इन सब को पत्नी सहित देख सकूंगा ? फिर इनके भी पुत्र होगे तब क्या मैं अपने को पुत्र-पौत्रों से सम्पन्न देख पाऊँगा ? फिर इस प्रकार दिन प्रतिदिन बढ़ते हुए इन मनोरथों की उपेक्षा करते हुए उन्होंने सोचा।११४। अरे ! मेरा मोह कितना विस्तृत हो गया है।११५। यह मनोरथ तो हजारों लाखों वर्ष में भी निवृत नहीं हो सकते ! क्योंकि उनमें से जितने मनोरथ पूर्ण होते हैं, उनके स्थान पर अन्य नवीन मनोरथ उत्पन्न हो जाते हैं।११६। मेरे पुत्र अपने पाँवों से चलने लगे, फिर युवावस्था को प्राप्त हुये, फिर उनका विवाह हो गया यह सभी कुछ मैंने देख लिया है। अब मैं अपने पौत्रों की उत्पत्ति देखने की अभिलाषा करता हूँ।११७। जब मैं उनकी उत्पत्ति देख लूंगा तब मेरे मन में अन्य मनोरथों की उत्पत्ति होगी और जब वह भी पूर्ण हो जायगी तब किसी अन्य मनोरथ के उद्भव को कौन रोक सकेगा ?।११८। मैं अब भले प्रकार समझ गया हूँ कि मरणकाल तक भी मनोरथों का अन्त नहीं होगा और चित्त मनोरथों में आसक्त है, वह परमार्थों में लग नहीं सकता।११९।

स मे समाधिर्जलवासमित्रमत्स्यस्य संगात्सहसैव नष्ट ।
परिग्रहस्संगकृतो मयायं परिग्रहोत्था न ममातिलिप्सा।१२०।
दुःख यदेवैकशरीरजन्म शतार्द्ध संख्याकमिदं प्रसूतम् ।
परिग्रहेण क्षितिपात्मजानां सुतेरनेकैर्बहुलीकृतं तत् ।१२१।
सुतात्मजस्तत्तनयैश्च भूयो भूयश्च तेषां च परिग्रहेण ।
विस्तारमेष्यत्यतिदुःखहेतुः परिग्रहो वै ममताभिधानः।१२२।

चीर्णं तपो यत्तु जलाश्रयेण तस्यर्द्धिरेषा तपसोऽन्तरायः ।
मत्स्यस्य सङ्गादभवच्च यो मे सुतादिरागो मुषितोऽस्मि तेन ।
निसङ्गता मुक्तिपदं यतीनां संगादशेषः प्रभवन्ति दोषाः ।
आरूढयोगो विनिपात्यतेऽधस्संगेन योगी किमुताल्पसिद्धिः ।

अरे, मेरी वह समाधि जल में साथ रहने वाला मत्स्य की संगति में सहसा भंग हो गई । उसी से भ्रान्त चित्त हुए मैंने स्त्री और धनादि का ग्रहण किया तथा वह स्त्री–धनादि का परिग्रह ही अब मेरी तृष्णा वृद्धिका कारण बन गया है ।१२०। प्रथम तो देह धारण करना ही दुःख रूप हैं, फिर मैंने तो इन राजपुत्रियों के साथ विवाह करके उस दुःख को पचास गुना कर लिया है और अब तो इन अनेक पुत्रों के कारण उसकी अत्यंत वृद्धि हो गई हैं ।१२१। अब भविष्य में जब पुत्रों के पुत्र होंगे, तथा उनके भी पुत्रादि और बार बार विवाह सम्बंध होने से उसकी और भी वृद्धि होती जायगी । यह ममतारूप विवाह सम्बंध आदि अत्यंत ही दुःख का कारण हो रहा है ।१२२। जलाशय में निवास करते हुये मैंने जो तप किया था, उसके फल से प्राप्त यह वैभव भी तपस्या में बाधक हो रहा है । मत्स्य के सङ्ग-दोष से मेरे मन में जो सन्तानादि का राग उत्पन्न हुआ था, उसी से मैं ठगगया हूँ ।१२३। संगहीनता यतियों के लिये मोक्षदायिनी है और सभी दोषों की प्राप्ति सङ्ग से ही होती है । सङ्ग के कारण योगसिद्ध पुरुषों का भी पतन हो जाता है तो अल्प सिद्धि वालों का कहना ही क्या है ।१२४।

अहं चरिष्यामि तदात्मनोऽर्थे परिग्रहगृहीतबुद्धिः ।
यदा हि भूयः परहीनदोषो जनस्य दुःखैर्भविता न दुःखी १२५
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमणोरणीयांसमतिप्रमाणत् ।
सितासितं चेश्वमीश्वराणामाराथयिष्ये तपसैव विष्णुम्।१२६।
तस्मिन्नशेषौजसि सर्वरूपिण्यव्यक्तविस्पष्टतनावनन्ते ।

ममाचलं चित्तमपेतदोषं सदास्तु विष्णाभवाय भूयः ।१२७।
समस्तभूतादमलादनन्तात्सर्वेश्वरादन्यदनादिमध्यात् ।
यस्मान्न किञ्चित्तमहं गुरूणां परं गुरुं संश्रयमेमि विष्णुन् ।

परिग्रह रूपी ग्राह ने मेरी मति को जकड़ लिया है, इस समय मैं ऐसा यत्न करूँगा, जिससे दोषों से छुटकारा पाकर फिर अपने कुटुम्बी-जनों के से दुःख को प्राप्त न होऊँ ।१२५। अब सर्वसाधारण, अचिन्त्य रूप, अणु से भी सूक्ष्म, सब से महान्, सित और असित रूप, ईश्वरों के भी ईश्वर भगवान् श्री हरि की तप के द्वारा आराधना करूँगा ।१२६। उन सर्वतेजोमय, सर्वरूप, अव्यक्त, विस्पष्ट तन, अनन्त रूप भगवान विष्णु में मेरा निर्दोष चित्त अविचल भाव से सदा ही लगा रहे, जिससे मुझे पुनः पृथ्वी पर जन्मधारण न करना पड़े ।१२७। जिस सर्वरूप, निर्मल, अनन्त, सर्वेश्वर तथा आदि, मध्य से रहित से अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है, मैं उन्हीं गुरुओं के परम गुरु भगवान् श्री हरि की शरण लेता हूँ ।१२८।

इत्यात्मानमात्मनैवाभिधायासौ सौभरिरपहाय पुत्रगृहासनपरिच्छदादिकमशेषमर्थजातं सकल भार्यासमन्वितो वनं प्रविवेश ।१२९। तत्राप्यनुदिनं वैखानसनिष्पाद्यमशेषक्रियाकलापं निष्पाद्य क्षपितसकलपापः परिपक्वमनोवृत्तिरात्मन्यग्नीन्समारोप्य भिक्षुरभवत् ।।१३०।।
भगवत्यासज्याखिलं कर्मकलापं हित्वानन्तमजमनादिनिधनमविकार मरणादिधर्मसवापपरमनन्तं परवतामच्युतं पदं ।१३१। इत्येनतन्मान्धातृदुहितृसम्बन्धादाख्यातम् ।१३२। यश्चैं तत्सौभरिचरितमनुस्मरति पठति पाठयति शृणोति श्रावयति धरत्यवधारयति लिखति लेखयति शिक्षयत्यध्यापयत्युपदिशति व तस्य षड् जन्मानि दुस्सन्ततिरसद्धर्मो वाङ् मतसयोरसन्मार्गचरणमशेषहेतुषु वा ममत्वं न भवति ।।१३३।।

श्री पराशरजी ने कहा—इस प्रकार विचार करके महर्षि सौभरि ने अपने पुत्र, गृह आसन, परिच्छद आदि सब पदार्थों का त्याग कर दिया और अपनी सब पत्नियों को साथ लेकर वन में गये ।१२६। वहाँ उन्होंने वानप्रस्थों के योग्य सभी कर्मों का अनुष्ठान किया और सभी पापों के नष्ट होने पर आहवनीय आदि अग्नियों को धारण कर सन्यास ग्रहण कर लिया ।१३०। फिर सब कर्म कलापों को छोड़ कर भगवान में आसक्त चित्त से उन्होंने प्रभु—परायण पुरुषों के मोक्ष पद को प्राप्त किया, जो पद जन्म ने परे, अनादि, अविनाशी, अविकारी मरणधर्मों से परे, इन्द्रियातीत तथा अन्त रहित है ।१३१। इस प्रकार मान्धाता की पुत्रियों वाले इस आख्यान को मैंने कहा है। इस सौभरि चरित्र के स्मरण करने, पढ़ने, पढ़ाने सुनने, सुनाने, धारण करने या कराने अथवा उपदेश करने वाले को छः जन्मों पर्यन्त कुसन्तान, मिथ्यधर्म, असद्वाणी, कुमार्ग में चित्त—प्रवृत्ति अथवा किसी वस्तु में ममता की प्राप्ति नहीं होती ।१३२-१३३।

॥ इति श्री विष्णुपुराण (प्रथम खण्ड) समाप्त ॥

न
नि
ान मैं ।
। किन्तुं



भारतीय संस्कृति के श्रेंठतम धर्मग्रन्थ

१– चारों वेद ८ जिल्दों में—

ऋग्वेद ४ खण्ड

अथर्व वेद २ खण्ड

यजुर्वेद

सामवे

२– (ध)५

(६)७५

३– षट्

वेद २३)२५

साँ

४)

४)

४)

वैशेषिक ४)

न्याय दर्शन ४)

मीमांसा दर्शन ... ५)

२० स्मृतियां २ खंड १४)

पुराण

शिव (२ खंड)	१४)	वायु (२ खंड)	१४)
विष्णु (२ खंड)	१४)	अग्नि (२ खंड)	१४)
मार्कण्डेय (२ खण्ड)	१४)	गरुड़ (२ खण्ड)	१४)
हरिवंश (२ खण्ड)	१४)	भविष्य (२ खण्ड)	१४)
पद्म (२ खण्ड)	१४)	देवीभागवत (२ खण्ड)	१४)
लिङ्ग (२ खण्ड)	१४)	वामन (२ खण्ड)	१४)
कूर्म (२ खण्ड)	१४)	कल्कि (१ खण्ड)	७)७५

विष्णु रहस्य ६)

तन्त्र महाविज्ञान २ खण्ड १५)

कृति संस्थान, ख्वाजा कुतुब, बरेली।

गोपाल प्रार्ट प्रेस, बरेली